श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतधर्मारण्यमाहात्म्यम् ॥

दोहा। पूंछयो धर्मज व्याससन धर्मारण्य चरित्र। सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित कथा विचित्र ॥ तीनों लोकों में संसाररूपी समुद्र के उतरने के लिये जिन विष्णुजी का नाम नौकारूप है व जिनसे उत्पन्न और स्थित यह सब संसार सदैव शोभित है और जो चैतन्यघन व प्रमाणरहित है व जो व्यापक तथा वेदान्तों से जानने योग्य है उन स्वभावही से प्रकाशवान् व निर्मल उत्तम श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं (॥ १ ॥) स्त्रियां, पुत्र, धन व कुटुंब समेत बंधुवर्ग, प्रिय, माता, भ्राता,

श्रीगणेशाय नमः ॥ तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभोर्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम् ॥ यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभुस्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम् (॥ १ ॥) दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्य्यवित्ते ॥ विद्यारूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः (॥ २ ॥) नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ १ ॥ एकदा सूतमायान्तं दृष्ट्वा तं शौनकादयः ॥ परं

पिता व श्वशुरवंश के लोग, सेवक, ऐश्वर्य, धन, [illegible] रूप, निर्मल मन्दिर, यौवन व स्त्रीगण यह सब व्यर्थ है क्योंकि मरण के समय में केवल धर्मही सहायक होता है (॥ २ ॥) नैमिषसंज्ञक अनिमिष क्षेत्र में [illegible] ऋषि लोग हज़ारों वर्षों तक स्वर्गलोक के लिये यज्ञ करते रहे ॥ १ ॥ एक समय आतेहुए सूतजी को देख

कर बड़े हर्ष से संयुत शौनकादिक ऋषियों ने उ[illegible] नेत्रों से पान किया और वहां विचित्र कथाओं को सुनने के लिये तपस्वियों ने उन सूतजी को सब ओर से घेर लिया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त उन तपस्वी महात्[illegible] बैठने पर विनय से बतलाये हुए आसन पै सूतजी बैठगये ॥ ३ ॥ और सुख से बैठे हुए उन सूतजी को देखकर व विघ्नान्त को देखकर उन ऋषियों ने कुछ प्रस्ताविक कथाओं को पूंछा ॥ ४ ॥ कि हे तात ! तुम्हारे पिता ने पहले सब पुराण को पढ़ा था हे लोमहर्षणे ! क्या तुमने भी उस सब को पढ़ा है ॥ ५ ॥ हे सूत ! पापों को नाशनेवाली व पवित्र कथा को कहिये कि जिसको सुनकर सौ जन्मों में उपजा हुआ पाप नाश हो

हर्ष समाविष्टाः पपुर्नेत्रैः सुचेतसा ॥ चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥ २ ॥ अथ तेषूपविष्टेषु तपस्विषु महात्मसु ॥ निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लोमहर्षणिः ॥ ३ ॥ सुखासीनं च तं दृष्ट्वा विश्रान्तमुपलक्ष्य च ॥ अथापृच्छंस्त ऋषयः काश्चित्प्रास्ताविकीः कथाः ॥ ४ ॥ पुराणमखिलं तात पुरा तेऽधीतवान्पिता ॥ कच्चित्त्वयापि तत्सर्वमधीतं लोमहर्षणे ॥ ५ ॥ कथयस्व कथां सूत पुण्यां पापनिषूदिनीम् ॥ श्रुत्वा यां याति विलयं पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ श्रीभारत्यङ्घ्रियुगलं गणनाथपदद्वयम् ॥ सर्वेषां चैव देवानां नमस्कृत्य वदाम्यहम् ॥ ७ ॥ शक्तींश्चैव वसूंश्चैव ग्रहान्यज्ञादिदेवताः ॥ नमस्कृत्य शुभान्विप्रान्कविमुख्यांश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ अभीष्टदेवताश्चैव प्रणम्य गुरुसत्तमम् ॥ नमस्कृत्य शुभान्देवान् रामादींश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ यान्स्मृत्वा त्रिविधैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ तेषां प्रसादाद्वक्ष्येऽहं तीर्थानां फलमुत्तमम् ॥ सर्वेषां च नियन्तारं धर्मात्मानं प्रणम्य च ॥ १० ॥ धर्मारण्यपतिस्त्रिविष्टपपतिर्नित्यं

जावै ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि श्रीसरस्वतीजी के दोनों चरण व गणनायक के युगचरण को प्रणामकर तथा सब देवताओंके दोनों चरणों को प्रणाम कर मैं कहताहूं ॥७॥ और शक्ति, वसु, ग्रह व यज्ञादि देवता तथा उत्तम ब्राह्मणों व सब मुख्य कवियों को प्रणाम कर ॥ ८ ॥ व इष्ट देवता तथा उत्तम गुरु को और विशेष कर रामादिक उत्तम देवताओं को प्रणाम कर ॥ ९ ॥ जिनको स्मरणकर मनुष्य तीन प्रकार के पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है और सबों के नियामक धर्मात्मा विष्णुजी को प्रणामकर उनके प्रसाद से मैं तीर्थों के उत्तम फल को कहता हूं ॥ १० ॥ धर्मारण्य के स्वामी व स्वर्ग के स्वामी तथा स्थिर भोग व योग से सुलभ वे पार्वती

के पति धर्मेश्वर देवजी सदैव तुमलोगों की रक्षा करैं जोकि जीव की कला से सबों के हृदयों को व्यासकर स्थित हैं व सदैव जिनको देखकर मनुष्य फिर संसाररूपी कारागृह में नहीं प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि एक समय वे धर्मराज ब्रह्मा की सभामें गये तब उस सभा को देखकर वे धर्मराज ज्ञान में निष्ठहुए ॥ १२ ॥ और देवताओं व उत्तम मुनियों से घिरी सभा को देखकर विस्मित हुए व देवता, यक्ष, नाग, पन्नग, असुर ॥ १३ ॥ ऋषि, सिद्ध व गंधर्वों से बैठे हुए उचित आसन वाली सुख समेत वह सभा हे ब्रह्मन्! न शीत थी न उष्णादायक थी ॥ १४ ॥ जिसमें बैठनेवाले लोग क्षुधा, प्यास व ग्लानि को नहीं पाते हैं अनेक रूप की

भवानीपतिः पायाद्वः स्थिरभोगयोगसुलभो देवः स धर्मेश्वरः ॥ सर्वेषां हृदयानि जीवकलया व्याप्य स्थितः सर्वदा ध्यात्वा यं न पुनर्विशन्ति मनुजाः संसारकारागृहम् ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु स धर्म्मो वै जगाम ब्रह्मसंसदि ॥ तां सभां स समालोक्य ज्ञाननिष्ठोऽभवत्तदा ॥ १२ ॥ देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां सभामालोक्य विस्मितः ॥ देवैर्यक्षैस्तथा नागैः पन्नगैश्च तथाऽसुरैः ॥ १३ ॥ ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैः समाक्रान्तोचितासना ॥ ससुखा सा सभा ब्रह्मन्न शीता न च धर्म्मदा ॥ १४ ॥ न क्षुधं न पिपासां च न ग्लानिं प्राप्नुवन्त्युत ॥ नानारूपैरिव कृता मणिभिः सा सभा वरैः ॥ १५ ॥ स्तम्भैश्च विधृता सा तु शाश्वती न च सक्षया ॥ दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभा ॥ १६ ॥ अति[1] चन्द्रं च सूर्य्यं च शिखिनं च स्वयम्प्रभा ॥ दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् ॥ १७ ॥ तस्यां स भगवाञ्चक्षास्ति विविधान्देवमानुषान् ॥ स्वयमेकोऽनिशं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ १८ ॥ उपतिष्ठन्ति चाप्येनं प्रजानां प

उत्तम मणियों से कीहुई सी वह सभा ॥ १५ ॥ स्तंभों से धारण कीहुई वह सभा सदैव रहती है जिसका नाश नहीं होता है व अनेक प्रकार के प्रकाशमान भावों से वह अमित प्रभाववान् थी ॥ १६ ॥ और चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि को उल्लंघन कर आपही प्रकाशमान स्वर्गपृष्ठ में स्थित वह सभा सूर्य को निन्दती हुई सी शोभित है ॥ १७ ॥ व उस सभा में अनेक भांति के देवताओं व मनुष्यों को एक सबलोकों के पितामह ब्रह्माजी आपही सदैव शासन करते हैं ॥ १८ ॥ और इन ब्रह्मा प्रभु की

१ अति–अतिक्रम्य–दीप्यत इत्युत्तरेण संबन्धः ।

प्रजापतिलोग सेवा करते हैं और दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि व कश्यप प्रभु ॥ १९ ॥ और भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद व कर्दम ॥ २० ॥ और अथर्वा, अंगिरा व किरणों को पीनेवाले बालखिल्य महर्षि, मन, आकाश, विद्या, पवन, तेज, जल व पृथ्वी ॥ २१ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति, विकार व सत् और असत् का कारण ॥ २२ ॥ व बड़े तेजस्वी अगस्त्य तथा बलवान् मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन ॥ २३ ॥ व महाभाग दुर्वासा और धर्मवान् ऋष्यशृंग तथा योगाचार्य व बड़े तपस्वी भगवान् सनत्कुमारजी ॥ २४ ॥ और असित, देवल व तत्त्ववित् जैगीषव्य और अष्टांग आयुर्वेद व गान्धर्ववेद वहां

तयः प्रभुम् ॥ दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिः कश्यपः प्रभुः ॥ १९ ॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमोऽथ तथाङ्गिराः ॥ पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादः कर्द्दमस्तथा ॥ २० ॥ अथर्वाङ्गिरसश्चैव बालखिल्या मरीचिपाः ॥ मनोन्तरिक्षं विद्याश्च वायुस्तेजो जलं मही ॥ २१ ॥ शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसो गन्धस्तथैव च ॥ प्रकृतिश्च विकारश्च सदसत्कारणं तथा ॥ २२ ॥ अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्यवान् ॥ जमदग्निर्भरद्वाजः संवर्त्तश्च्यवनस्तथा ॥ २३ ॥ दुर्वासाश्च महाभाग ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः ॥ सनत्कुमारो भगवान्योगाचार्य्यो महातपाः ॥ २४ ॥ असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित् ॥ आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो गान्धर्वश्चैव तत्र हि ॥ २५ ॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान् ॥ वायवस्तन्तवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ॥ २६ ॥ मूर्तिमन्तोमहात्मानो महाव्रतपरायणाः ॥ एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपासिरे ॥ २७ ॥ अर्थो धर्मश्च कामश्च हर्षो द्वेषः शमो दमः ॥ आयान्ति तस्यां सहिता गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ २८ ॥ शुक्राद्याश्च ग्रहाश्चैव ये चान्ये तत्समीपगाः ॥ मन्त्रा रथन्तरं चैव हरिमान्वसुमानपि ॥ २९ ॥ महितो विश्वकर्मा

आया ॥ २५ ॥ और नक्षत्रों समेत चन्द्रमा व किरणवान् सूर्य, पवन, तंतु, संकल्प व प्राण ॥ २६ ॥ महाव्रतों में परायण इन व अन्य बहुत से मूर्तिमान् महात्माओं ने ब्रह्मा की उपासना किया ॥ २७ ॥ और अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, द्वेष, शम, दम और गंधर्व व अप्सराओं के गण उस सभा में साथही आते थे ॥ २८ ॥ और शुक्रादिक ग्रह व जो अन्य उनके समीप में प्राप्त थे वे और मंत्र व रथंतर, हरिमान् व वसुमान् भी ॥ २९ ॥ और पूजित विश्वकर्मा व सब वसु तथा सब पितरों के गण व सब

हव्य ॥ ३० ॥ और ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्वणवेद और सब शास्त्र ॥ ३१ ॥ और इतिहास, उपवेद व सब वेदांग, मेधा, धैर्य, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश व सम ॥ ३२ ॥ और वह सदैव अक्षय व अव्यय कालचक्र और जितनी देवस्त्रियां थीं मन के समान वेगवाली वे सब ॥ ३३ ॥ और गार्हपत्य, स्वर्गचारी व लोकों में प्रसिद्ध सोमप पितर तथा एकशृंग व सब तपस्वी ॥ ३४ ॥ और नाग, सुपर्ण व पशु ब्रह्मा की उपासना करते थे और चर, अचर व अन्य महाभूत ॥ ३५ ॥ व देवताओं के राजा इन्द्र, वरुण, कुबेर व पार्वती समेत सर्वदायक शिवजी सदैव इस सभा में आते थे ॥ ३६ ॥ व सदैव देवता, नारायण व ऋषिलोग जाते थे और बालखिल्य

च वसवश्चैव सर्वशः ॥ तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ ॥ ३० ॥ ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथैव च ॥ अथर्व वेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह ॥ ३१ ॥ इतिहासोपवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ मेधा धृतिः स्मृतिश्चैव प्रज्ञाबुद्धिर्य शः समाः ॥ ३२ ॥ कालचक्रं च तद्दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ यावन्त्यो देवपत्न्यश्च सर्वा एव मनोजवाः ॥ ३३ ॥ गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः ॥ सोमपा एकशृङ्गाश्च तथा सर्वे तपस्विनः ॥ ३४ ॥ नागाः सुपर्णाः पश वः पितामहमुपासते ॥ स्थावरा जङ्गमाश्चापि महाभूतास्तथापरे ॥ ३५ ॥ पुरन्दरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदस्तथा ॥ महादेवः सहोमोऽत्र सदा गच्छति सर्वदः ॥ ३६ ॥ गच्छन्ति सर्वदा देवा नारायणस्तथर्षयः ॥ ऋषयो बालखिल्याश्च योनिजायोनिजास्तथा ॥ ३७ ॥ यत्किञ्चित्त्रिषु लोकेषु दृश्यते स्थाणु जङ्गमम् ॥ तस्यां सहोपविष्टायां तत्र ज्ञात्वा स धर्मवित् ॥ ३८ ॥ देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां समालोक्यातिविस्मितः ॥ हर्षेण महता युक्तो रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ३९ ॥ तत्र धर्मो महातेजाः कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वाच्यमानां तु शुश्राव व्यासेनामिततेजसा ॥ ४० ॥ धर्मारण्यकथां

ऋषि व योनिज और अयोनिज प्राणी ॥ ३७ ॥ व तीनों लोकों में जो कुछ चराचर देख पड़ता है वह सब उस सभा में जानकर वे धर्मज्ञ धर्मराजजी ॥ ३८ ॥ देवताओं व मुनिवरों से आक्रमित सभा को देखकर बड़े हर्ष से युक्त हुए और उनके शरीर में रोमांच होगया ॥ ३९ ॥ और अमित तेजवाले व्यासजी से उस सभा में पढ़ी जाती हुई पापनाशिनी कथा को महातेजस्वी धर्म ने सुना ॥ ४० ॥ वैसेही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की फलदायिनी सुन्दरी व दिव्य धर्मारण्य की कथा को

सुना ॥ ४१ ॥ धारने, सुनने, पढ़ने व कीर्तन करने से पुत्र, पौत्र व प्रपौत्रादिक फल को देनेवाली ॥ ४२ ॥ उस ब्रह्माण्ड से उपजी हुई विस्तारित कथा को सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले धर्मात्मा धर्मराजजी उस समय ब्रह्मा से सम्मतिकर जाने की इच्छा करते भये और उस समय वे धर्मराजजी पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम कर ॥ ४३ । ४४ ॥ व उनसे आज्ञा को लेकर तब ये धर्मराजजी यमपुरी को गये ब्रह्मा के प्रसाद से पुण्यदायिनी ॥ ४५ ॥ व पापनाशिनी दिव्य तथा पवित्र धर्मारण्य की कथा को सुनकर तदनन्तर दूतों समेत वे यमपुरी को चलेगये ॥ ४६ ॥ जब मंत्री व दूतों समेत यमराज अपनी पुरीमें बैठे तब उसी अवसरमें मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥४७॥

दिव्यां तथैव सुमनोहराम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदात्रीं तथैव च ॥ ४१ ॥ पुत्रपौत्रप्रपौत्रादि फलदात्रीं तथैव च ॥ धारणाच्छ्रवणाच्चापि पठनाच्चावलोकनात् ॥ ४२ ॥ तां निशम्य सुविस्तीर्णां कथां ब्रह्माण्डसम्भवाम् ॥ प्रमोदोत्फुल्लनयनो ब्रह्माणमनुमत्य च ॥ ४३ ॥ कृतकार्योपि धर्मात्मा गन्तुकामस्तदाभवत् ॥ नमस्कृत्य तदा धर्मो ब्रह्माणं स पितामहम् ॥ ४४ ॥ अनुज्ञातस्तदा तेन गतोऽसौ यमशासनम् ॥ पितामहप्रसादाच्च श्रुत्वा पुण्यप्रदायिनीम् ॥ ४५ ॥ धर्मारण्यकथां दिव्यां पवित्रां पापनाशिनीम् ॥ स गतोऽनुचरैः सार्द्धं ततः संयमिनीं प्रति ॥ ४६ ॥ अमात्यानुचरैः सार्धं प्रविष्टः स्वपुरं यमः ॥ तत्रान्तरे महातेजा नारदो मुनिपुङ्गवः ॥ ४७ ॥ दुर्निरीक्ष्यः कृपायुक्तः समदर्शी तपोनिधिः ॥ तपसा दग्धदेहोपि विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ४८ ॥ सर्वगः सर्वविच्चैव नारदः सर्वदा शुचिः ॥ वेदाध्ययनशीलश्च त्वागतस्तत्र संसदि ॥ ४९ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा धर्मो भार्यया सेवकैः सह ॥ सम्मुखो हर्षसंयुक्तो गच्छन्नेव स सत्वरः ॥ ५० ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं कुलम् ॥ अद्य मे सफलो धर्मस्त्वय्यायाते तपोधने ॥ ५१ ॥

जोकि दुर्दर्श व दयायुक्त और समदर्शी तथा तपस्या के निधान थे और तपस्या से भस्म शरीरवाले व विष्णुजी की भक्ति में परायण थे ॥ ४८ ॥ सर्वत्रगामी व सर्वज्ञ और सदैव पवित्र तथा वेदपाठ करनेवाले वे नारदजी उस सभा में आये ॥ ४९ ॥ उनको देखकर स्त्री व सेवकों समेत हर्ष से संयुत वे धर्मराजजी शीघ्रता समेत चलते हुए सामने गये ॥ ५० ॥ व यह बोले कि आज मेरा जन्म सफल होगया व आज मेरा कुल सफल होगया और आज तपोधन आपके आनेपर मेरा धर्म सफल होगया ॥५१॥

इसके उपरान्त अर्घ्य व पाद्यादि की विधिसे विधिपूर्वक पूजन कर व दंडा के समान उनको प्रणामकर रत्नों व सुवर्ण से भूषित अपने महादिव्य आसन पै बिठाया तब सब सभा खिंची हुई तसवीर की नाई होगई और वहां के मनुष्य निर्वात स्थान में प्राप्त दीपक के समान निश्चल होगये ॥ ५२ । ५३ ॥ और कुशल पूंछकर स्वागत से उनको अभिनंदनकर धर्मारण्य की कथा को स्मरण करते हुए उन्हों ने प्रसन्नचित्त से नारदजी को पूजकर बहुत आनन्द पाया व यमराज को प्रसन्न देखकर नारदजी विस्मययुक्त मुख से उपलक्षित हुए ॥ ५४ । ५५ ॥ व उन्हों ने मन से विचार किया कि यह क्या है कि जो यमराजजी प्रसन्न हैं व यमराज-

अर्घ्यपाद्यादिविधिना पूजां कृत्वा विधानतः ॥ दण्डवत्तं प्रणम्याथ विधिना चोपवेशितः ॥ ५२ ॥ आसने स्वे महा दिव्ये रत्नकाञ्चनभूषिते ॥ चित्रार्पिता सभा सर्वा दीपा निर्वातगा इव ॥ ५३ ॥ विधाय कुशलप्रश्नं स्वागतेनाभिनन्द्य तम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे धर्मारण्यकथां स्मरन् ॥ ५४ ॥ नारदं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ हर्षितं तु यमं दृष्ट्वा नारदो विस्मिताननः ॥ ५५ ॥ चिन्तयामास मनसा किमिदं हर्षितो हरिः ॥ अतिहर्षं च तं दृष्ट्वा यमराजस्व रूपिणम् ॥ आश्चर्यमनसं चैव नारदः पृष्टवांस्तदा ॥ ५६ ॥ नारद उवाच ॥ किं दृष्टं भवताश्चर्य्यं किं वा लब्धं म हत्पदम् ॥ दुष्टस्त्वं दुष्टकर्मा च दुष्टात्मा क्रोधरूपधृक् ॥ ५७ ॥ पापिनां यमनं चैवमेतद्रूपं महत्तरम् ॥ सौम्यरूपं कथं जातमेतन्मे संशयः प्रभो ॥ ५८ ॥ अद्य त्वं हर्षसंयुक्तो दृश्यसे केन हेतुना ॥ कथयस्व महाकाय हर्षस्यैव हि कारणम् ॥ ५९ ॥ धर्मराज उवाच ॥ श्रूयतां ब्रह्मपुत्रैतत्कथयामि न संशयः ॥ पुराहं ब्रह्मसदनं गतवानभिवन्दि

स्वरूपी उन धर्म को बड़े प्रसन्न व आश्चर्ययुक्त मनवाले देखकर उस समय नारदजी ने पूंछा ॥ ५६ ॥ नारदजी बोले कि आपने क्या आश्चर्य देखा व किस बड़े स्थान को पाया क्योंकि दुष्ट व दुष्कर्मी और दुष्टचित्त तुम थे ॥ ५७ ॥ और पापियों को दंड देनेवाला जो यह बड़ाभारी रूप था हे प्रभो ! वह सौम्यरूप कैसे होगया यह मुझको सन्देह है ॥ ५८ ॥ हे महाकाय ! आज तुम किस कारण हर्ष से संयुत देख पड़ते हो इस हर्ष के कारण को कहो ॥ ५९ ॥ धर्मराज बोले कि हे

ब्रह्मपुत्र! सुनिये मैं इसको कहता हूं इसमें सन्देह नहीं है कि पहले मैं प्रणाम करने के लिये ब्रह्मस्थान को गया ॥ ६० ॥ व सब लोकों में एकही पूजित उस सभा के बीच में मैं बैठगया और धर्मवर्ग से संयुत अनेक भांति की कथाओं को मैंने वहीं सुना ॥ ६१ ॥ और धर्म, काम व अर्थ से संयुत तथा सब पापौघ को नाशने वाली, धर्म से संयुत सुन्दरी कथाओं को मैंने व्यासजी के मुख से सुना ॥ ६२ ॥ हे मुने! जिन कथाओं को सुनकर मनुष्य सब पापों से व ब्रह्महत्या से छूट जाते हैं और एक सौ एक पितृगणों को तारते हैं ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि उसकी कथा कैसी है उसको मुझसे कहिये हे महाबाहो, यम! आपसे सुनी हुई उस कथा को

तुम् ॥ ६० ॥ तत्रासीनःसभामध्ये सर्वलोकैकपूजिते ॥ नानाकथाः श्रुतास्तत्र धर्म्मवर्गसमन्विताः ॥ ६१ ॥ कथाः पुण्या धर्मयुता रम्या व्यासमुखाच्छ्रुताः ॥ धर्मकामार्थसंयुक्ताः सर्वाघौघविनाशिनीः ॥ ६२ ॥ याः श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते ब्रह्महत्यया ॥ तारयन्ति पितृगणाञ्छतमेकोत्तरं मुने ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ कीदृशी तत्कथा मे तां प्रशंस भवता श्रुताम् ॥ कथां यम महाबाहो श्रोतुकामोस्म्यहं च ताम् ॥ ६४ ॥ यम उवाच ॥ एकदा ब्रह्मलोकेऽहं नमस्कर्तुं पितामहम् ॥ गतवानस्मि तं देशं कार्याकार्यविचारणे ॥ ६५ ॥ मया तत्राद्भुतं दृष्टं श्रुतं च मुनिसत्तम ॥ धर्म्मारण्यकथां दिव्यां कृष्णद्वैपायनेरिताम् ॥ ६६ ॥ श्रुत्वा कथां महापुण्यां ब्रह्मन्ब्रह्माण्डगां शुभाम् ॥ गुणपूर्णां सत्ययुक्तां तेन हर्षेण हर्षितः ॥ ६७ ॥ अन्यच्चैव मुनिश्रेष्ठ तवागमनकारणम् ॥ शुभाय च सुखायैव क्षेमाय च जयाय हि ॥ ६८ ॥ अद्यास्मि कृतकृत्योऽहमद्याहं सुकृती मुने ॥ धर्मोनामाद्य जातोऽहं तव पद्युग्मदर्शनात् ॥ ६९ ॥ पूज्यो

मैं सुना चाहता हूं ॥ ६४ ॥ यमराज बोले कि एक समय ब्रह्मलोक में कर्तव्याकर्तव्य के विचार में ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये मैं उस स्थान को गया ॥ ६५ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैंने वहां अद्भुत चरित्र को देखा व सुना कि व्यासजी से कहीहुई महापवित्र व ब्रह्माण्ड में प्राप्त तथा गुणों से पूर्ण व सत्यसंयुत उत्तम व दिव्य धर्मारण्य की कथा को सुनकर उस हर्ष से मैं प्रसन्न हुआ ॥ ६६ । ६७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ! अन्य तुम्हारे आने का कारण शुभ व सुख और कल्याण व जय के लिये है ॥ ६८ ॥ हे मुने! आज मैं कृतकृत्य होगया व आज मैं पुण्यवान् हुआ और तुम्हारे चरणयुगल के दर्शन से मैं आज धर्म नामक हुआ ॥ ६९ ॥ व हे नारद!

आज मैं पूज्य व कृतार्थ और धन्य होगया व तुम्हारे चरण के प्रसाद से मैं त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ७० ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार के वचनों से प्रसन्न होते हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने बड़ी भक्ति से धर्मारण्य की उत्तम कथा को पूंछा ॥ ७१ ॥ नारदजी बोले कि हे धर्म ! व्यासजी के मुख से धर्मारण्य की उत्तम कथा जो सुनी गई उस सब विस्तीर्ण कथा को मुझसे यथार्थ कहिये ॥ ७२ ॥ यमराज बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं सुख व दुःखवाले प्राणियों को उस उस कर्म के अनुसार क्लेशित गति को देने के लिये सदैव व्यग्र रहता हूं ॥ ७३ ॥ तथापि सज्जनों का संग धर्महीं के लिये होता है और इस लोक व परलोक में भी कल्याण व सुख के लिये होता

ऽहं च कृतार्थोहं धन्योहं चाद्य नारद ॥ युष्मत्पादप्रसादाच्च पूज्योऽहं भुवनत्रये ॥ ७० ॥ सूत उवाच ॥ एवंविधैर्व चोभिश्च तोषितो मुनिसत्तमः ॥ पप्रच्छ परया भक्त्या धर्मारण्यकथां शुभाम् ॥ ७१ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुता व्यास मुखाद्धर्म्म धर्मारण्यकथा शुभा ॥ तत्सर्वं हि कथय मे विस्तीर्णं च यथातथम् ॥ ७२ ॥ यम उवाच ॥ व्यग्रोऽहं सत तं ब्रह्मन्प्राणिनां सुखदुःखिनाम् ॥ तत्तत्कर्मानुसारेण गतिं दातुं सुखेतराम् ॥ ७३ ॥ तथापि साधुसङ्गो हि धर्मायैव प्रजायते ॥ इह लोके परत्रापि क्षेमाय च सुखाय च ॥ ७४ ॥ ब्रह्मणः सन्निधौ यच्च श्रुतं व्यासमुखेरितम् ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि मानुषाणां हिताय वै ॥ ७५ ॥ सूत उवाच ॥ यमेन कथितं सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मसंसदि ॥ आदिमध्यावसा नं च सर्वं नैवात्र संशयः ॥ ७६ ॥ कलिद्वापरयोर्मध्ये धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ गतोऽसौ नारदो मर्त्ये राज्यं धर्मसुतस्य वै ॥ ७७ ॥ आगतः श्रीहरेरंशो नारदः प्रत्यदृश्यत ॥ ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः ॥ ७८ ॥ सव्याप

है ॥ ७४ ॥ ब्रह्मा के समीप व्यासजी से कहे हुए जिस चरित्र को मैंने सुना है मनुष्यों के हित के लिये मैं उस सब को कहता हूं ॥ ७५ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा की सभा में यमराज ने जो सुना था आदि, मध्य व अन्त तक वह सब चरित्र कहा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ और कलियुग व द्वापर के मध्य में धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राज्य में ये नारदजी मृत्युलोक में धर्मसुत युधिष्ठिर के समीप गये ॥ ७७ ॥ व आये हुए श्रीविष्णुजी के अंश नारदजी देख पड़े जो कि जलती हुई अग्निके समान व बाल सूर्य के समान नेत्रवान् थे ॥ ७८ ॥ और बायें ओर से घूमे हुए बड़े भारी जटामंडल को धारते हुए तथा चन्द्रमा की किरणों के समान दो वसनों को पहने

और सुवर्ण के भूषणों से भूषित थे ॥ ७९ ॥ और बगल में लगी हुई सखी की नाईं बड़ी भारी वीणा को लेकर कृष्णाजिन का दुपट्टा लिये और सुवर्ण के समान जनेऊ पहने थे ॥ ८० ॥ व दण्ड को लिये और कमण्डलु को हाथ में धारण किये साक्षात् दूसरी अग्नि की नाईं जो गुप्त विग्रहों के भेदन करनेवाले व स्वामिकार्त्तिकेय के समान थे ॥ ८१ ॥ व महर्षिगणों से संसिद्ध, विद्वान् और गंधर्व वेद को जाननेवाले तथा वैर की क्रीड़ा करनेवाले जो विप्र दूसरी ब्राह्मय कलि की नाईं थे ॥ ८२ ॥ व देवताओं और गंधर्वलोकों के आदि वक्ता व इन्द्रियों को भलीभांति जीते हुए और चारों वेदों के गानेवाले तथा विष्णुजी के उत्तम गुणों के गानेवाले थे ॥ ८३ ॥

वृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् ॥ चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषणः ॥ ७९ ॥ वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ॥ कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ॥ ८० ॥ दण्डी कमण्डलुकरः साक्षाद्वह्निरिवापरः ॥ भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां गुहोपमः ॥ ८१ ॥ महर्षिगणसंसिद्धो विद्वान्गान्धर्ववेदवित् ॥ वैरकेलिकलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः ॥ ८२ ॥ देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता सुनिग्रहः ॥ गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता हरिसद्गुणान् ॥ ८३ ॥ स नारदोऽथ विप्रर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ आगतोऽथ पुरीं हर्षाद्धर्मराजेन पालिताम् ॥ ८४ ॥ अथ तत्रोपविष्टेषु राजन्येषु महात्मसु ॥ महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च तत्र वै ॥८५॥ लोकाननुचरन्सर्व्वानागतः स महर्षिराट् ॥ नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥ ८६ ॥ तमागतमृषिं दृष्ट्वा नारदं सर्वधर्मवित् ॥ सिंहासनात्समुत्थाय प्रययौ सम्मुखस्तदा ॥ ८७ ॥ अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा ॥ तदर्हमासनं तस्मै सम्प्रदाय यथाविधि ॥ ८८ ॥ गां चैव

ब्रह्मलोक तक जानेवाले वे अव्यय नारद ब्रह्मर्षिजी धर्मराज से पालित पुरी को हर्ष से आये ॥ ८४ ॥ वहां राजगण व महात्माओं के बैठने पर तथा बहुत गंधर्वों के वहां बैठने पर ॥ ८५ ॥ सब लोकों में घूमते हुए वे महर्षिराज व बड़े तेजस्वी नारदजी उस समय ऋषियों समेत आये ॥ ८६ ॥ तब उन आये हुए नारद ऋषि को देखकर सब धर्मों के जाननेवाले युधिष्ठिरजी सिंहासन से उठकर सामने चले ॥ ८७ ॥ व उस समय विनय से झुके हुए युधिष्ठिरजी ने प्रीति से प्रणाम किया व विधिपूर्वक उनके लिये उनके योग्य आसन को देकर ॥ ८८ ॥ व गऊ, मधुपर्क और अर्घ को देकर धर्मज्ञ युधिष्ठिरजी ने रत्नों से व सब मनोरथों से पूजन

किया ॥ ८९ ॥ और यथायोग्य पूजन को पाकर वे धर्मज्ञ प्रसन्न हुए व युधिष्ठिरजी ने यह पूंछा कि हे महाभाग ! तुम कुशल समेत हो और तुम्हारे तप की कुशल है ॥ ९० ॥ और कोई दुष्ट स्वर्ग के राजा इन्द्र को पीड़ित नहीं करता है व हे मुने, ब्रह्मपुत्र, दयानिधे ! देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए कल्याणरूप तुम सर्वत्र जानेवाले व सर्वज्ञ हो ॥ ९१ ॥ नारदजी बोले कि हे महाभाग, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर ! ब्रह्मा की प्रसन्नता से इस समय मेरे सब ओर से कुशल है व तुम सदैव कुशलपूर्वक रहते हो ॥ ९२ ॥ हे राजेन्द्र ! भाइयों समेत तुम्हारा मन धर्मों में लगता है व स्त्री, पुत्र, सेवक और चतुर गज, वाजियों समेत ॥ ९३ ॥ हे धर्मज ! प्रजाओं को औरस

मधुपर्कं च सम्प्रदायार्घमेव च ॥ अर्चयामास रत्नैश्च सर्वकामैश्च धर्मवित् ॥ ८९ ॥ तुतोष च यथावच्च पूजां प्राप्य च धर्मवित् ॥ कुशली त्वं महाभाग तपसः कुशलं तव ॥ ९० ॥ न कश्चिद्बाधते दुष्टो दैत्यो हि स्वर्गभूपतिम् ॥ मुने कल्याणरूपस्त्वं नमस्कृतः सुरासुरैः ॥ सर्व्वगः सर्व्ववेत्ता च ब्रह्मपुत्र कृपानिधे ॥ ९१ ॥ नारद उवाच ॥ सर्वतः कुशलं मेद्य प्रसादाद्ब्रह्मणः सदा ॥ कुशली त्वं महाभाग धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ ९२ ॥ भ्रातृभिः सह राजेन्द्र धर्मेषु रमते मनः ॥ दारैः पुत्रैश्च भृत्यैश्च कुशलैर्गजवाजिभिः ॥ ९३ ॥ औरसानिव पुत्रांश्च प्रजा धर्मेण धर्मज ॥ पालयसि कि माश्चर्यं त्वया धन्या हि सा प्रजा ॥ ९४ ॥ पालनात्पोषणान्नॄणां धर्मो भवति वै ध्रुवम् ॥ तत्तद्धर्मस्य भोक्ता त्वमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ९५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कुशलं मम राष्ट्रं च भवतामङ्घ्रिदर्शनात् ॥ दर्शनेन महाभाग जातोऽहं गतकिल्बिषः ॥ ९६ ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं धरातले ॥ अद्याहं सुकृती जातो ब्रह्मपुत्रे गृहागते ॥ ९७ ॥

पुत्रों की नाई पालन करते हो तो क्या आश्चर्य है और वह प्रजा आप से धन्य है ॥ ९४ ॥ मनुष्यों को पालन व पोषण करने से अचल धर्म होता है और उस उस धर्म के तुम भोक्ता हा ऐसा मनु ने कहा ॥ ९५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि आप के चरणों के दर्शन से मेरा राज्य कुशल है व हे महाभाग ! आप के दर्शन से मैं पापरहित होगया ॥ ९६ ॥ व मैं धन्य और कृतार्थ व सभाग्य होगया और ब्रह्मपुत्र आप के घर आने पर आज मैं पृथ्वी में पुण्यवान् होगया ॥ ९७ ॥

हे मुनिसत्तम, ब्रह्मन्! साधुवों के ऊपर दया के लिये या किसी कार्य से आज आपका कहां से आगमन होता है॥ ९८ ॥ नारदजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मा के आगे व्यासजी से कही हुई धर्मारण्य के आश्रित व समस्त संताप को हरनेवाली पुराण की दिव्य व उत्तम कथा को सुनकर मैं यमराज के समीप से आया हूं कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से व ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ९९ । १०० ॥ व दश हज़ार हत्याओं को नाशनेवाली तथा तीनों तापों को नाशनेवाली जिस कथा को बड़ी भक्ति से सुनकर कठिन पुरुष कोमलता को धारण करता है ॥ १ ॥ मेरे आगे धर्मराज से कही हुई उस कथा को सुनकर मैं यहां आया हूं अमित

कुत आगमनं ब्रह्मन्नद्य ते मुनिसत्तम ॥ अनुग्रहार्थं साधूनां किं वा कार्येण केन च ॥ ९८ ॥ नारद उवाच ॥ आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ सकाशाच्छमनस्य च ॥ व्यासेनोक्तां ब्रह्मणोग्रे कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ९९ ॥ धर्मारण्याश्रितां दिव्यां सर्वसंतापहारिणीम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १०० ॥ हत्यायुतप्रशमनीं तापत्रयविनाशिनीम् ॥ यां वै श्रुत्वातिभक्त्या च कठिनो मृदुतां भजेत् ॥ १ ॥ धर्मराजेन तां श्रुत्वा ममाग्रे च निवेदिताम् ॥ तमपृच्छदमेयात्मा कथां धर्मविनोदिनीम् ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्याश्रितां पुण्यां कथां मे द्विजसत्तम ॥ कथयस्व प्रसादेन लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ स्नानकालोयमस्माकं न कथावसरो मम ॥ परन्तु श्रूयतां राजन्नुपदेशं ददाम्यहम् ॥ ४ ॥ मासानामुत्तमो माघः स्नानदानादिके तथा ॥ तस्मिन्माघे च यः स्नाति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ स्नानार्थं याहि शीघ्रं त्वं गङ्गायां नृपतेऽधुना ॥ व्यासस्यागमनं चाद्य भविष्यति

बुद्धिवाले ब्रह्माजी ने उन नारदजी से धर्मकेलिवाली कथा को पूछा ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम! लोकों के हित की इच्छा से धर्मारण्य के आश्रित पवित्र कथा को मुझ से प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि यह हमारा स्नान का समय है मुझको कथा का अवकाश नहीं है परन्तु हे राजन्! सुनिये मैं उपदेश देता हूं ॥ ४ ॥ कि स्नान व दानादिक कार्य में मासों के मध्य में माघ महीना श्रेष्ठ होता है और उस माघ महीने में जो गंगाजी में नहाता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ ५ ॥ हे नृपोत्तम, नृपते! इस समय तुम गंगाजी में नहाने के लिये शीघ्रही जावो क्योंकि आज वहां व्यासजी का आगमन

होगा ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! तुम उनसे पूछोगे तो वे व्यासजी सब तीर्थों का जो अद्भुत फल है उस उत्तम फल को तुम्हें सुनावैंगे ॥ ७ ॥ भूत, भव्य, भविष्य और उत्तम, मध्यम, अधम इतिहास से उपजे हुए उस सब चरित्र को व्यासजी कहैंगे ॥ ८ ॥ और धर्मारण्य का जो जो प्राचीन वृत्तान्त है उस सबको सत्यवतीसुत व्यासजी तुमसे कहैंगे ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर ब्रह्मा के पुत्र नारदजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और उनके जाने पर नृपति युधिष्ठिरजी मंत्रियों समेत क्रीड़ा करनेलगे ॥ १० ॥ इसी अवसर में वहां सत्यवती के पुत्र व्यासजी प्राप्त हुए तब विदुरने युधिष्ठिरजी को बतलाया ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि उन आये हुए व्यास मुनि को सुनकर धर्मराज

नृपोत्तम ॥ ६ ॥ तं पृच्छस्व महाभाग श्रावयिष्यति ते शुभम् ॥ तीर्थानां चैव सर्वेषां फलं पुण्यं यदद्भुतम् ॥ ७ ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च उत्तमाधममध्यमाः ॥ वाचयिष्यति तत्सर्वमितिहाससमुद्भवम् ॥ ८ ॥ धर्मारण्यस्य सकलं वृत्तं यद्यत्पुरातनम् ॥ व्यासः सत्यवतीपुत्रो वदिष्यति च तेऽखिलम् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा विधेः पुत्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिन्गते स नृपतिः क्रीडते सचिवैः सह ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तः सत्यवतीसुतः ॥ विज्ञापयामास तदा विदुरः पाण्डवस्य हि ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ आगतं तु मुनिं श्रुत्वा सर्वे हर्षसमाकुलाः ॥ समुत्तस्थुर्हि भीमाद्याः सह धर्मेण सर्वशः ॥ १२ ॥ तदा हि सम्मुखो भूत्वा मुमुदे नतकन्धरः ॥ दण्डवत्तं प्रणम्याथ भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ १३ ॥ मधुपर्केण विधिना पूजां कृत्वा सुशोभनाम् ॥ सिंहासने समावेश्य पप्रच्छानामयं तदा ॥ १४ ॥ ततः पुण्यां कथां दिव्यां श्रावयामास धर्मवित् ॥ कथान्ते मुनिशार्दूलं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

समेत हर्ष से संयुत सब भीमादिक उठ पड़े ॥ १२ ॥ तब सामने होकर झुकेहुए कन्धेवाले युधिष्ठिरजी भाइयों समेत उन व्यासजी को दंडवत् प्रणामकर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ व विधि समेत मधुपर्क से उत्तम पूजनकर सिंहासन पै बिठाकर तब उन्होंने कुशल पूंछा ॥ १४ ॥ तदनन्तर धर्मज्ञ व्यासजी ने पवित्र व दिव्य कथा को सुनाया और कथा के अन्त में युधिष्ठिरजी ने मुनिश्रेष्ठ व्यासजी से यह वचन कहा ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने उत्तम

कथाओं को सुना और विपत्ति धर्म, राजधर्म व अनेक मोक्षधर्म ॥ १६ ॥ और पुराणों के धर्म, व्रत व अनेक भांति के बहुत से तीर्थ व सब स्थानों को मैंने सुना ॥ १७ ॥ इस समय मैं धर्मारण्य की उत्तम कथा को सुना चाहता हूं जिसको सुनकर ब्रह्मघातादिक पाप नाश होजाता है ॥ १८ ॥ मैं धर्मारण्य में स्थित तीर्थों को यथार्थ सुना चाहता हूं कि किसका यह स्थान स्थापित है व किसलिये यह बनाया गया है ॥ १९ ॥ और किससे यह रक्षित व पालित है और किस समय यह बनाया गया है और यहां पहले क्या क्या हुआ है इसको पूंछतेहुए मुझसे कहिये ॥ २० ॥ और उस स्थान में भूत, भव्य व भविष्य जो होवै और जिस भांति तीर्थों की स्थिति होवै

त्वत्प्रसादान्मया ब्रह्मञ्छ्रुतास्तु प्रवराः कथाः ॥ आपद्धर्म्मा राजधर्मा मोक्षधर्म्मा ह्यनेकशः ॥ १६ ॥ पुराणानां च धर्माश्च व्रतानि बहुशस्तथा ॥ तीर्थान्यनेकरूपाणि सर्वाण्यायतनानि च ॥ १७ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि धर्मारण्य कथां शुभाम् ॥ श्रुत्वा यां हि विनश्येत पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ १८ ॥ धर्म्मारण्यस्थतीर्थानां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ कस्येदं स्थापितं स्थानं कस्मादेतद्विनिर्मितम् ॥ १९ ॥ रक्षितं पालितं केन कस्मिन्कालेऽथ निर्मितम् ॥ किं किं त्व त्राभवत्पूर्वं शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ २० ॥ भूतं भव्यं भविष्यच्च तस्मिन्स्थाने च यद्भवेत् ॥ तत्सर्वं कथयस्वाद्य तीर्था नां च यथा स्थितिः ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

व्यास उवाच ॥ पृथ्वीपुरन्ध्रयास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम् ॥ वाग्देवताया जलकेलिरम्यं धर्माटवीं सम्प्रति वर्णयामि ॥ १ ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ॥ धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ श्रृणुष्वावहि

उस सबको इस समय मुझसे कहिये ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन कर पूंछ्यो धर्म हवाल । यहि दूजे अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि पृथ्वीरूपी पुरंध्री (स्त्री) के मस्तक में तिलकरूप और लक्ष्मीरूपिणी लता के प्रकटही आलवाल (थाल्हा) रूप व सरस्वतीजी के सुन्दर जलक्रीड़ारूप धर्मारण्य को मैं इस समय वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ हे नृपश्रेष्ठ,

राजन् ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा काशी से बहुतही अधिक धर्मारण्यक्षेत्र को सावधान होकर सुनिये ॥ २ ॥ कि वहीं पर सब तीर्थ हैं उससे वह ऊषर कहा जाता है और ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक व इन्द्रादिक देवताओं से वह सेवित है ॥ ३ ॥ और लोकपाल, दिक्पाल व मातृका शिवशक्ति तथा गंधर्व, अप्सरा व यज्ञ कर्मों से सेवित है ॥ ४ ॥ और शाकिनी, भूत, वेताल, ग्रह देवता व अधिदेवता और ऋतु, मास, पक्ष व सुरासुरों से सेवित है ॥ ५ ॥ हे नृप ! वह श्रेष्ठ स्थान सब सुखों को देनेवाला है और बहुत यज्ञों व मुनिश्रेष्ठों से सेवित है ॥ ६ ॥ और सिंह, व्याघ्र, हाथी व अनेक भांति के पक्षी तथा गऊ, भैंसी आदिक व सारस, मृग और शूकरों

तो भृशम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊषरं तेन कथ्यते ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यैः परिसेवितम् ॥ ३ ॥ लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभिः ॥ गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ॥ ४ ॥ शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदेवतैः ॥ ऋतुभिर्मासपक्षैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः ॥ ५ ॥ तदाद्यं च नृप स्थानं सर्वसौख्यप्रदं तथा ॥ यज्ञैश्च बहुभिश्चैव सेवितं मुनिसत्तमैः ॥ ६ ॥ सिंहव्याघ्रैर्द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधैस्तथा ॥ गोमहिष्यादिभिश्चैव सारसैर्मृगशूकरैः ॥ ७ ॥ सेवितं नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ॥ तत्र ये निधनं प्राप्ताः पक्षिणः कीटकादयः ॥ ८ ॥ पशवः श्वापदाश्चैव जलस्थलचराश्च ये ॥ खेचरा भूचराश्चैव डाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥ ९ ॥ एकोत्तरशतैः सार्द्धं मुक्तिस्तेषां हि शाश्वती ॥ ते सर्वे विष्णुलोकांश्च प्रयान्त्येव न संशयः ॥ १० ॥ सन्तारयति पूर्वज्ञान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥ यवव्रीहितिलैः सर्पिर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वया ॥ ११ ॥ गुडैश्चैवोदकैर्नाथ तत्र पिण्डं करोति यः ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ १२ ॥

से ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! अनेक प्रकार के हिंसकजीवों से वह धर्मारण्य सेवित है और वहां जो पक्षी व कीटादिक मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ और पशु, हिंसक प्राणी व जो जलचारी व जो स्थलचारी हैं और आकाशचारी, भूमिचारी, डाकिनी व राक्षस ॥ ९ ॥ उन सबों की एक सौ एक पुश्ति समेत शाश्वती मुक्ति होती है और वे सब विष्णुलोकों को जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और दश पहले व दश पीछे की पुश्तियों को वह तारता है जो कि यव, धान, तिल, घी, बिल्वपत्र व दूर्वा से ॥ ११ ॥ व हे नाथ ! जो गुड़ और जल से वहां पिण्ड करता है वह सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को तारता है ॥ १२ ॥

वह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षों से संयुत व लताओं तथा गुल्मों से शोभित है और वह सदैव पुण्यदायक व सदैव फलों से संयुतहै॥१३॥ व हे भूपते ! धर्मारण्य वैर रहित व निर्भय है वहां गऊ व्याघ्रों से क्रीड़ा करती है व बिलार मूसों से क्रीड़ा करते हैं ॥ १४ ॥ और मेढक सांप के साथ व मनुष्य राक्षसों के साथ क्रीड़ा करते हैं उस पृथ्वीतल में निर्भय धर्मारण्य बसता है ॥ १५ ॥ और वह धर्मारण्य महानन्दमय, दिव्य व पावन से भी अधिक पावन है और कुंज में प्राप्त कबूतर मधुर व अव्यक्त शब्द की उत्कण्ठा से जब गूंजता है ॥ १६ ॥ तब कबूतरी इस कारण उसको मना करती है कि ध्यान में स्थित कोक (चकवा) उसको सुनता है

वृक्षैरनेकधा युक्तं लतागुल्मैः सुशोभितम् ॥ सदा पुण्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् ॥ १३ ॥ निर्वैरं निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते ॥ गोव्याघ्रैः क्रीड्यते तत्र तथा मार्जारमूषकैः ॥ १४ ॥ भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसैः सह ॥ निर्भयं वसते तत्र धर्म्मारण्यं च भूतले ॥ १५ ॥ महानन्दमयं दिव्यं पावनात्पावनं परम् ॥ कलकण्ठः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जगः ॥ १६ ॥ ध्यानस्थः श्रोष्यति तदा पारावत्येति वार्य्यते ॥ कोकः कोकीं परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात् ॥ १७ ॥ चकोरश्चन्द्रिकाभोक्ता नक्तव्रतमिवास्थितः ॥ पठन्ति सारिकाः सारं शुकं सम्बोधयन्त्यहो ॥ १८ ॥ अपारवारसंसारसिन्धुपारप्रदः शिवः ॥ आलस्येनापि यो यायाद् गृहाद्धर्मवनम्प्रति ॥ १९ ॥ अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्च पदे पदे ॥ शापानुग्रहसंयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र सन्ति वै ॥ २० ॥ अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः ॥ षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि भृत्यास्ते वणिजो भुवि ॥ २१ ॥ द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते

और चकई को छोड़कर वह उसके भय से चुपचाप स्थित होता है ॥ १७ ॥ और चंद्रिका को भोगनेवाला चकोर रात्रि के व्रत में सा स्थित है और सारिका सारांश को पढ़ती हैं व शुक को संबोधन करती हैं ॥ १८ ॥ कि बिन पारवाले संसाररूपी समुद्र से पार उतारनेवाले शिवजी हैं जो मनुष्य आलस्य से भी घर से धर्मारण्य को जाता है ॥ १९ ॥ उसको पग २ पै अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और वहां ब्राह्मणलोग शाप व अनुग्रह में समर्थ हैं ॥ २० ॥ और पुण्य के कार्यों में अठारह हज़ार ब्राह्मण बनाये गये हैं व छत्तीस हज़ार जो सेवक हैं वे पृथ्वी में बनिया हैं ॥ २१ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति से संयुत वे ब्रह्मण्य अयोनिज हैं जो कि पुराण

के जाननेवाले, सदाचार, धार्मिक व शुद्धबुद्धि हैं स्वर्ग में देवता भी धर्मारण्यनिवासी जनों की प्रशंसा करते हैं ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि धर्मारण्य ऐसा नाम कब देवताओं से किया गया है व उन धर्म से बनाया हुआ यह धर्मारण्य किस कारण पृथ्वी में पवित्रकारक हुआ ॥ २३ ॥ व किस कारण वह तीर्थभूत है उसको मुझसे कहिये और कितने संख्यक ब्राह्मण पहले किससे स्थापित कियेगये हैं ॥ २४ ॥ और अठारह हज़ार ब्राह्मण किस लिये स्थापित किये गये व किस वंश में श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥ और सब विद्याओं में प्रवीण व वेद वेदांगों के पारगामी हैं और ऋग्वेद में चतुर व यजुर्वेद में परिश्रम किये हैं ॥ २६ ॥ व सामवेद

त्वयोनिजाः ॥ पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिकाः शुद्धबुद्धयः ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्म्मारण्यनिवासिनः ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्येति त्रिदशैः कदा नाम प्रतिष्ठितम् ॥ पावनं भूतले जातं कस्मात्तेन विनिर्मितम् ॥२३॥ तीर्थभूतं हि कस्माच्च कारणात्तद्वदस्व मे ॥ ब्राह्मणाः कतिसंख्याकाः केन वै स्थापिताः पुरा ॥ २४ ॥ अष्टादशसहस्राणि किमर्थं स्थापितानि वै ॥ कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ २५ ॥ सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमाः ॥२६॥ सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ॥ तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥ २७ ॥ मासोपवासैः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ॥ सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥ तत्सर्वमादितः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदतां वर ॥ २८ ॥ दानवास्तत्र दैतेया भूतवेतालसम्भवाः ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

के अंगों का पार जाननेवाले तथा वेदत्रयी के पढ़नेवाले व बड़े धर्मवान् हैं और तपस्या में निष्ठ व उत्तम आचारवाले तथा सत्य के व्रत में परायण हैं ॥ २७ ॥ और मासोपवास से दुर्बल व चांद्रायणादिकों से कृशित व उत्तम आचारवाले वे ब्राह्मण किस कर्म से नित्य जीविका करते हैं हे वदतांवर ! पहले से लगाकर उस सब को कहिये ॥ २८ ॥ और वहां दानव, दैत्य व भूतों, वेतालों से उपजे हुए प्राणी और राक्षस व पिशाच उनको क्यों नहीं दुःखित करते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । धर्मराज तप भंग हित वेश्यावर्द्धिनि नाम । गई तीसरे में सोई वर्णित चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपोत्तम ! पुराण की उत्तम कथा को सुनिये कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ एक समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के कारण जल वर्षा व आतप (धूप) आदि को सहनेवाले धर्मराज ने बड़ा कठिन तप किया है ॥ २ ॥ हे राजन् ! पहले त्रेतायुग में तीस हज़ार वर्ष तक अशोक वृक्ष के मूल में प्राप्त मध्यवन में तप करते हुए ॥ ३ ॥ सूखी नसों से बँधे हुए अस्थिसमूहवाले व अचल आकारवान् तथा बँबौरि के करोड़ों कीटों से शोषित समस्त रक्तवाले ॥ ४ ॥ व मांसरहित अस्थि

व्यास उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ एकदा धर्मराजो वै तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्जलवर्षातपादिषाट् ॥ २ ॥ आदौ त्रेतायुगे राजन्वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ मध्ये वनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलगम् ॥ ३ ॥ शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयं निश्चलाकृतिम् ॥ वल्मीककीटिकाकोटिशोषिताशेषशोणितम् ॥ ४ ॥ निर्मांसकीकसचयं स्फटिकोपलनिश्चलम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम् ॥ ५ ॥ सत्त्वावलम्बितप्राणमायुःशेषेण रक्षितम् ॥ निश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम् ॥ ६ ॥ निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् ॥ पिशङ्गितस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम् ॥ ७ ॥ तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ॥ तच्छान्त्युदसुधावर्षसंसिक्ताखिलभूरुहम् ॥ ८ ॥ साक्षात्तपस्यन्तमिव तपो

समूहवाले तथा स्फटिकशिला के समान निश्चल और शंख, कुंद, चन्द्रमा, पाला व महाशंख के समान शोभित लक्ष्मीवाले ॥ ५ ॥ व सत्त्व में अवलम्बित प्राणोंवाले तथा शेष आयुर्बल से रक्षित व निश्वास, ऊर्ध्वश्वास की पवनवृत्ति से सूचित जीवनवाले ॥ ६ ॥ व पलकों के मूंदने उघारने से सूचित प्राणीवाले व पीले रंग की चमकती हुई किरणों के समान नेत्रों से प्रकाशित दिशामुखवाले ॥ ७ ॥ और उनकी तपस्या की अग्निज्वाला के दाव से चुंबित होने के कारण मलिन वनवाले व उनकी शांतिरूपी जल व अमृत की वर्षा से सींचे हुए समस्त वृक्षोंवाले ॥ ८ ॥ व नराकार धारण कर तप करते हुए साक्षात् तप की नाईं व भक्ति करके इच्छारहित

मनुष्य के आकारवाले सुवर्ण की नाईं ॥ ६ ॥ व घूमते हुए मृगबालकों के गणों से घिरेहुए व शब्द से भयंकर मुखवाले वनजन्तुओं से रक्षित ॥ १० ॥ व सबों को अभय देनेवाले महादेवजी को ध्यान करते हुए ऐसे बड़े भयंकर धर्मराज को देखकर इन्द्र समेत सब देवता ॥ ११ ॥ और ब्रह्मादिक सब देवता कैलास पर्वत पै पारिजात वृक्ष की छाया में पार्वती समेत बैठेहुए शिवजी के समीप गये ॥ १२ ॥ और नंदि, भृंगि, महाकाल व अन्य महागण और स्वामिकार्त्तिकेय स्वामी व भगवान् गणेशजी और इन्द्रादिक देवता वहां अपने २ स्थानों में बैठगये ॥ १३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नीलकण्ठ ! अनन्तरूपी आप के लिये नमस्कार है व अज्ञात

धृत्वा नराकृतिम् ॥ नराकृतिं निराकाङ्क्षं कृत्वा भक्तिं च काञ्चनम् ॥ ६ ॥ कुरङ्गशावैर्गणशो भ्रमद्भिः परिवारितम् ॥ निनादभीषणास्यैश्च वनजैः परिरक्षितम् ॥ १० ॥ एतादृशं महाभीमं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ ध्यायन्तं च महादेवं सर्वेषां चाभयप्रदम् ॥ ११ ॥ ब्रह्माद्या दैवताः सर्वे कैलासं प्रति जग्मिरे ॥ पारिजाततरुच्छायामासीनं च सहोमया ॥ १२ ॥ नन्दिर्भृङ्गिर्महाकालस्तथान्ये च महागणाः ॥ स्कन्दस्वामी च भगवान्गणपश्च तथैव च ॥ तत्र देवाः सब्रह्माद्याः स्वस्वस्थानेषु तस्थिरे ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमोस्त्वनन्तरूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च ॥ १४ ॥ नान्तं देवा विजानन्ति यस्य तस्मै नमोनमः ॥ यं न वाचः प्रशंसन्ति नमस्तस्मै चिदात्मने ॥ १५ ॥ योगिनो यं हृदः कोशे प्रणिधानेन निश्चलाः ॥ ज्योतीरूपं प्रपश्यन्ति तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥ १६ ॥ कालात्पराय कालाय स्वेच्छया पुरुषाय च ॥ गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १७ ॥ विष्णवे सत्त्वरूपाय

स्वरूपवाले तथा कैवल्य मोक्षरूप के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिसका अन्त देवता नहीं जानते हैं उनके लिये नमस्कार है नमस्कार है व वचन जिनकी प्रशंसा नहीं करते हैं उन चैतन्यात्मक शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ सावधानता से निश्चल योगी लोग जिनको हृदय के कमल में ज्योतिरूप देखते हैं उन श्रीब्रह्म के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ और काल से परे काल के लिये व अपनी इच्छा से जीवरूप के लिये तथा त्रिगुणस्वरूपी व प्रकृतिरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ सत्त्वगुणी

विष्णु व रजोगुणरूपी ब्रह्मा और तमोगुणरूपी रुद्र के लिये व पालन, सृष्टि तथा संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ व बुद्धिस्वरूप आप के लिये और तीन प्रकार के अहंकाररूपी तथा पांच तन्मात्रारूप व प्रकृतिरूपी के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व पांच ज्ञानेन्द्रियात्मस्वरूपी आप के लिये नमस्कार है नमस्कार है व पृथ्वी आदिक पांचरूपोंवाले व विषयात्मक तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व ब्रह्माण्डरूपी और उसके मध्य में वर्तमान होनेवाले के लिये प्रणाम है व अर्वाचीन, पराचीन आप विश्वरूपजी के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ व अनित्य तथा नित्यरूपी व कार्य, कारणरूपवाले आप के लिये प्रणाम है व हे भक्त के ऊपर दया

रजोरूपाय वेधसे ॥ तमोरूपाय रुद्राय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥ १८ ॥ नमो बुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहङ्काररूपिणे ॥ पञ्च तन्मात्ररूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १९ ॥ नमो नमः स्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने ॥ क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने ॥ २० ॥ नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः ॥ अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥ २१ ॥ अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः ॥ नमस्ते भक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह ॥ २२ ॥ तव निश्वसितं वेदास्तव वेदोऽखिलं जगत् ॥ विश्वाभूतानि ते पादः शिरो द्यौः समवर्तत ॥ २३ ॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यस्तव प्रभो ॥ २४ ॥ त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं सर्वस्तुतिस्तव्य इह त्वमेव ॥ ईश त्वया वास्यमिदं हि सर्वं नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ २५ ॥ इति स्तुत्वा महादेवं निपेतुर्दण्डवत्क्षितौ ॥ प्रत्यु

से अपनी इच्छा से शरीर को धारनेवाले ! आप के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ वेद तुम्हारा श्वास हैं और सब संसार वेद हैं व संसार के प्राणी तुम्हारा चरण हैं और तुम्हारा शिर स्वर्ग है ॥ २३ ॥ व आकाश तुम्हारी नाभि है और वनस्पति रोम हैं व हे प्रभो ! तुम्हारे मन से चन्द्रमा पैदा हुआ है और तुम्हारे नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ हे देव ! सब तुम्हीं हो व तुम्हीं में सब वर्तमान है और इस संसार में सब स्तुतियों से स्तुति करने योग्य तुम्हीं हो हे ईश ! तुम से यह सब वासित है तुम्हारे लिये नमस्कार है व बार २ आप के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ इस प्रकार महादेवजी की स्तुतिकर सब देवता पृथ्वी में दण्ड की नाईं गिरपड़े तब शिवजी

बोले कि मैं वरदायक हूं तुम लोग क्या चाहते हो ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! बृहस्पति आदिक सब देवता क्यों विकल हैं उसको कहो जोकि आप लोगों के दुःख का कारण होवै ॥ २७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दुःखनाशक, अभयदायक, नीलकण्ठ, महादेव ! तुम हम लोगों का दुःख सुनो जो कि आप से हम कहते हैं ॥ २८ ॥ कि धर्मात्मा धर्मराज ने बड़ा दुस्सह तप किया मैं यह नहीं जानता हूं कि ये देवताओं का कौन उत्तम स्थान चाहते हैं ॥ २९ ॥ उस कारण उसके तप से इन्द्र आदिक सब देवता डर गये हैं उसी से बहुत दिनों से आपके चरणों में मन लगाया गया हे देवेश ! उसको उठाइये वे धर्मराज क्या चाहते हैं ॥ ३० ॥

वाच तदा शम्भुर्वरदोऽस्मि किमिच्छथ ॥ २६ ॥ महादेव उवाच ॥ कथं व्यग्राः सुराः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ तत्स माचक्ष्व मां ब्रह्मन्भवतां दुःखकारणम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नीलकण्ठ महादेव दुःखनाशाभयप्रद ॥ शृणु त्वं दुःख मस्माकं भवतो यद्वदाम्यहम् ॥ २८ ॥ धर्मराजोऽपि धर्मात्मा तपस्तेपे सुदुःसहम् ॥ न जानेऽसौ किमिच्छति देवानां पदमुत्तमम् ॥ २९ ॥ तेन त्रस्तास्तत्तपसा सर्व इन्द्रपुरोगमाः ॥ भवतोङ्घ्रौ चिरेणैव मनस्तेन समर्पितम् ॥ तमुत्था पय देवेश किमिच्छति स धर्मराट् ॥ ३० ॥ ईश्वर उवाच ॥ भवतां नास्ति नु भयं धर्मात्सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ३१ ॥ तत उत्थाय ते सर्वे देवाः सह दिवौकसः ॥ रुद्रं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्वा पुनःपुनः ॥ ३२ ॥ इन्द्रेण सहिताः सर्वे कैलासात्पुनरागताः ॥ स्वस्वस्थाने तदा शीघ्रं गताः सर्वे दिवौकसः ॥ ३३ ॥ इन्द्रोऽपि वै सुधर्मायां गतवान्प्रभुरी श्वरः ॥ न निद्रां लब्धवांस्तत्र न सुखं न च निर्वृतिम् ॥ ३४ ॥ मनसा चिन्तयामास विघ्नं मे समुपस्थितम् ॥ अवाप

महादेवजी बोले कि धर्मराज से आप लोगों को भय नहीं है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वे सब देवता साथही उठकर शिवजी की प्रदक्षिणा कर व बार २ प्रणाम कर ॥ ३२ ॥ इन्द्र समेत सब देवता फिर कैलास से आये और उस समय सब देवता शीघ्रही अपने अपने स्थान में गये ॥ ३३ ॥ और इन्द्र स्वामी भी सुधर्मा सभा में गये व उन इन्द्रजी ने वहां निद्रा, सुख व आनन्द को नहीं पाया ॥ ३४ ॥ व मन से यह विचार किया कि मुझको विघ्न प्राप्त हुआ

तब इन्द्राणी के पति इन्द्रदेवजी बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ कि मेरा स्थान हरने के लिये धर्मराज ने बड़ा कठिन तप किया है सब देवताओं को बुलाकर उन इन्द्र ने यह वचन कहा ॥ ३६ ॥ इन्द्रजी बोले कि सब देवता लोग मेरे दुःख का कारण सुनैं कि मैंने जिसको दुःख से पाया है क्या यमराज उसी की प्रार्थना करते हैं इसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने देखकर सब देवताओं से कहा ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे देवताओ ! तपस्या के लिये सामर्थ्य नहीं है इस कारण विघ्न करने के लिये वहां उर्वशी आदिक अप्सरा बुलाकर पठाई जावैं ॥ ३८ ॥ उनको बुलाने के लिये द्वारपालक गया और वह जाकर उन अप्सराओं को लाकर

महतीं चिन्तां तदा देवः शचीपतिः ॥ ३५ ॥ मम स्थानं पराहर्तुं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ सर्वान्देवान्समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृण्वन्तु देवताः सर्वा मम दुःखस्य कारणम् ॥ दुःखेन मम यल्लब्धं तत्किं वा प्रार्थयेद्यमः ॥ बृहस्पतिः समालोक्य सर्वान्देवानथाब्रवीत् ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ तपसे नास्ति सामर्थ्यं विघ्नं कर्तुं दिवौकसः ॥ उर्वश्याद्याः समाहूय सम्प्रेष्यन्तां च तत्र वै ॥ ३८ ॥ तासामाकारणार्थाय प्रतिहारः प्रतस्थिवान् ॥ स गत्वा ताः समादाय सभायां शीघ्रमाययौ ॥ ३९ ॥ आगतास्ता हरिः प्राह महत्कार्यमुपस्थितम् ॥ गच्छन्तु त्वरिताः सर्वा धर्मारण्यं प्रति द्रुतम् ॥ ४० ॥ यत्र वै धर्मराजोसौ तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥ हास्यभावकटाक्षैश्च गीतनृत्यादिभिस्तथा ॥ ४१ ॥ तं लोभयध्वं यमिनं तपःस्थानाच्च्युतिर्भवेत् ॥ देवस्य वचनं श्रुत्वा तथा अप्सरसां गणाः ॥ ४२ ॥ मिथः संरेभिरे कर्तुं विचार्य च परस्परम् ॥ धर्मारण्यं प्रतस्थेसावुर्वशी स्ववराङ्गना ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुः पुष्पवर्षांश्च स

शीघ्रही सभा में आया ॥ ३९ ॥ व उन आई हुई अप्सराओं से इन्द्र ने कहा कि बड़ाभारी कार्य उपस्थित हुआ है इस लिये तुम सब शीघ्रही धर्मारण्य को जावो ॥ ४० ॥ जहां ये धर्मराजजी बहुत कठिन तप करते हैं वहां हाव, भाव संयुत कटाक्षों से व गीतों और नृत्यादिकों से ॥ ४१ ॥ उन यमराज को लुभावो कि जिस से तपस्या से पृथक्ता होवै इन्द्रदेवजी के उस प्रकार वचन को सुनकर अप्सराओं के गणों ने ॥ ४२ ॥ आपस में करने का विचार किया व परस्पर विचार कर वह स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी धर्मारण्य को चली ॥ ४३ ॥ तब इन देवताओं ने इसकी स्तुति की व उसके शिर पै फूलों की वृष्टि की तदनन्तर देवताओं व ब्राह्मणों से सब ओर

स्तुति कीजाती हुई वह उर्वशी ॥ ४४ ॥ बड़ी प्रीति से बेल, मदार व खैर के वृक्षों से आकीर्ण व कैथा व धव के वृक्षोंसे व्याप्त परमपवित्रकारक वनको गई ॥ ४५ ॥ वहां सूर्य प्रकाश नहीं करते थे उस महांधकार से संयुत व निर्जन, मनुष्यरहित तथा बहुत योजन चौंड़े वन को गई ॥ ४६ ॥ जो कि मृगों व सिंहों से तथा अन्य वनचारी जन्तुवों से घिरा था और फूलेहुए वृक्षोंसे व्याप्त व बहुत सुन्दर घाससे हरित था ॥ ४७ ॥ और बड़ाभारी व मीठे शब्दवाले पक्षियों से शब्दायमान था और पुरुषकोकिल के शब्द से संयुत तथा झिल्लीक गणों से नादित था ॥ ४८ ॥ व बढ़े हुए विकट तथा सुखदायिनी छायावाले वृक्षों से घिरा था और वृक्षोंसे ढकी हुई नीचे की भूमिवाला

सृजुस्तच्छिरस्यमी ॥ ततस्तु देवैर्विप्रैश्च स्तूयमाना समन्ततः ॥ ४४ ॥ निर्ययौ परमप्रीत्या वनं परमपावनम् ॥ बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसंकुलम् ॥ ४५ ॥ न सूर्यो भाति तत्रैव महान्धकारसंयुतम् ॥ निर्जनं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम् ॥ ४६ ॥ मृगैः सिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः ॥ पुष्पितैः पादपैः कीर्णं सुमनोहरशाद्वलम् ॥ ४७ ॥ विपुलं मधुरानादैर्नादितं विहगैस्तथा ॥ पुंस्कोकिलनिनादाढ्यं झिल्लीकगणनादितम् ॥ ४८ ॥ प्रवृद्धविकटैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ वृक्षैराच्छादिततलं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥ ४९ ॥ नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कण्टकी ॥ षट्पदैरप्यनाकीर्णं नास्मिन्वै कानने भवेत् ॥ ५० ॥ विहङ्गैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव हि ॥ सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ ५१ ॥ मारुताकम्पितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशाखिनः ॥ पुष्पवृष्टिं विचित्रां तु विसृजन्ति च पादपाः ॥ ५२ ॥ दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पक्षिभिर्मधुरस्वनैः ॥ विरेजुः पादपास्तत्र सुगन्धकुसुमैर्वृताः ॥ ५३ ॥

वह वन बड़ी लक्ष्मी से संयुत था ॥ ४९ ॥ और इस वन में कोई वृक्ष बिन फूल व बिन फल का और कांटों से युक्त नहीं है व भ्रमरों से वियुक्त नहीं है ॥ ५० ॥ और पक्षियों से नादित व पुष्पों से बहुतही भूषित था व सब ऋतुवोंवाले फूलों से संयुत तथा सुखद छायावाले वृक्षों से घिरा था ॥ ५१ ॥ और वहां पवन से कंपाये हुए पुष्प शाखावाले वृक्ष विचित्र पुष्पवृष्टि करते थे ॥ ५२ ॥ और वहां सुगन्धित पुष्पों से संयुत व मीठे शब्दवाले पक्षियों से कूजित आकाश को छूनेवाले वृक्ष शोभित थे ॥ ५३ ॥

और पुष्पों के भार से नीचे झुके हुए नवीन पत्तों में मधु को चाहनेवाले व मीठे शब्दवाले भ्रमर बैठे थे व शब्द करते थ ॥ ५४ ॥ और वहां सुगन्धित अंकुरों से शोभित व लतागृहों से आच्छादित तथा मन की प्रीतिको बढ़ानेवाले बहुत से स्थानों को ॥ ५५ ॥ देखती हुई वह बड़ी तेजवती अप्सरा उस समय प्रसन्न हुई और फूलों से व्याप्त तथा परस्पर मिली हुई शाखावाले इन्द्रध्वज के समान वृक्षों से वह वन शोभित था और वहां सुखदायक व शीतल सुगन्ध तथा पुष्पों की धूलि को लेजानेवाला पवन चलता था ॥ ५६।५७ ॥ ऐसे गुणोंसे संयुत वन को उस उर्वशी ने उस समय देखा तब वहां सब ओर शोभित व पवित्र यमुनाजी को देखा ॥ ५८ ॥ और वहां मुनिगणोंसे

तिष्ठन्ति च प्रवालेषु पुष्पभारावनामिषु ॥ रुवन्ति मधुरालापाः षट्पदा मधुलिप्सवः ॥ ५४ ॥ तत्र प्रदेशांश्च बहूना मोदाङ्कुरमण्डितान् ॥ लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्द्धनान् ॥ ५५ ॥ सम्पश्यन्ती महातेजा बभूव मुदिता तदा ॥ परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमाचितैः ॥ ५६ ॥ अशोभत वनं तत्तु महेन्द्रध्वजसन्निभैः ॥ सुखशीतसुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः ॥ ५७ ॥ एवं गुणसमायुक्तं सा ददर्श वनं तदा ॥ तदा सूर्योद्भवां तत्र पवित्रां परिशोभिताम् ॥ ५८ ॥ आश्रमप्रवरं तत्र ददर्श च मनोरमम् ॥ यतिभिर्वालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणावृतम् ॥ ५९ ॥ अग्न्यगारैश्च बहुभिर्वृक्ष शाखावलम्बितैः ॥ धूम्रपानकणैस्तत्र दिग्वासोयतिभिस्तथा ॥ ६० ॥ पाल्या वन्या मृगास्तत्र सौम्या भूयो बभूविरे ॥ मार्जारा मूषकैस्तत्र सर्पैश्च नकुलास्तथा ॥ ६१ ॥ मृगशावैस्तथा सिंहाः सत्त्वरूपा बभूविरे ॥ परस्परं चिक्रीडुस्ते यथा चैव सहोदराः ॥ दूराद्ददर्श च वनं तत्र देवोऽब्रवीत्तदा ॥ ६२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ अयं च धर्मराजो वै तपस्युग्रे

आच्छादित तथा यतियों व बालखिल्य मुनियों से घिरे हुए सुन्दर व श्रेष्ठ आश्रम को देखा ॥ ५९ ॥ और वृक्षों की शाखामें लटके हुए मुनियों व बहुत से अग्निमन्दिरों से वह वन संयुत था और वहां धुवां के पीनेके किनुकों से व नग्न यतियोंसे वह वन संयुत था ॥ ६० ॥ व वनवाले पालने योग्य मृग वहां फिर सौम्य होगये और वहां बिलार मूसों के साथ व नेउला सर्पों के साथ ॥ ६१ ॥ तथा सिंह मृगबच्चों के साथ सत्त्वरूप हुए और एकही पेट से पैदा हुए की नाईं वे परस्पर खेलते थे दूरसे इन्द्र देवजीने वनको देखा तब वहां यह वचन कहा ॥ ६२ ॥ इन्द्रजी बोले कि ये धर्मराज उग्र तपस्या में स्थितहैं व मेरे राज्य की ये इच्छा करते हैं इस कारण इनके लिये

यहां यत्न कीजावै ॥ ६३ ॥ कि आप सब तपस्या का विघ्न करो व मेरी आज्ञा से वहां जावो इन्द्र का वचन सुनकर उर्वशी, तिलोत्तमा ॥ ६४ ॥ सुकेशी, मंजुघोषा, घृताची, मेनका, विश्वाची, रम्भा व सुन्दर भाषण करनेवाली प्रम्लोचा ॥ ६५ ॥ व सुन्दररूपवाली पूर्वचित्ति और यशस्विनी अनुम्लोचा ये और अन्य बहुतसी अप्सरा वहां बैठ कर विचारनेलगीं ॥ ६६ ॥ और परस्पर देखकर भय से शंकित हुई कि यमराज व इन्द्र ये दोनों तुम लोगों का स्थान हैं ॥ ६७ ॥ हे भारत ! इस प्रकार बहुत भांति से विचार कर जो वर्द्धनी नामक थी सब अप्सराओं के मध्य में श्रेष्ठ वह सब आभूषणों से भूषित थी ॥ ६८ ॥ उसने वहां उर्वशी से कहा कि हे वरानने ! तुम क्यों

वतिष्ठते ॥ मम राज्याभिकाङ्क्षोऽसावतोर्थे यत्यतामिह ॥ ६३ ॥ तपोविघ्नं प्रकुर्वन्तु ममाज्ञा तत्र गम्यताम् ॥ इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा उर्वशी च तिलोत्तमा ॥ ६४ ॥ सुकेशी मञ्जुघोषा च घृताची मेनका तथा ॥ विश्वाची चैव रम्भा च प्रम्लोचा चारुभाषिणी ॥ ६५ ॥ पूर्वचित्तिः सुरूपा च अनुम्लोचा यशस्विनी ॥ एताश्चान्याश्च बहुशस्तत्र संस्था व्यचिन्तयन् ॥ ६६ ॥ परस्परं विलोक्यैव शङ्कमाना भयेन हि ॥ यमश्चैव तथा शक्र उभौ वायतनं हि वः ॥ ६७ ॥ एवं विचार्य बहुधा वर्द्धनीनाम भारत ॥ सर्वासामप्सरसां श्रेष्ठा सर्वाभरणभूषिता ॥ ६८ ॥ उवाचैवोर्वशीं तत्र किं खिद्यसि शुभानने ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मायारूपबलेन च ॥ वर्णधर्मो यथा भूयात्करिष्ये पाकशासन ॥ ६९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ साधु साधु महाभागे वर्द्धनीनाम सुव्रता ॥ शीघ्रं गच्छ स्वयं भद्रे कुरु कार्यं कृशोदरि ॥ ७० ॥ धीराणामवने शक्ता नान्या सुभ्रु त्वया विना ॥ वर्द्धनी च तथेत्युक्त्वा गता यत्र स धर्मराट् ॥ ७१ ॥ महता भूषणेनैव

खेद करती हो व हे पाकशासन ! देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये माया के रूपके बलसे जिस प्रकार वर्णधर्म होगा मैं वैसाही करूंगी ॥ ६९ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे महाभागे ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा वर्द्धनी नामक तुम उत्तमव्रतवाली हो हे कृशोदरि, भद्रे ! तुम शीघ्रही जावो व आपही कार्य करो ॥ ७० ॥ हे सुभ्रु ! तुम्हारे विना धीरों की रक्षा में अन्य समर्थ नहीं है बहुत अच्छा यह कहकर वह वर्द्धनी वहां गई जहां कि धर्मराज थे ॥ ७१ ॥ बड़े भूषण से सुन्दर रूप करके कुंकुम, कज्जल,

वस्त्र व भूषणों से भूषित हुई ॥ ७२ ॥ व कुसुम से रंगे हुए वसन को उसने धारण किया और क्षुद्रघंटिका को कटि में पहन कर शोभित हुई व दोनों चरणों में बाजते हुए भूषणोंसे भूषित हुई ॥ ७३ ॥ और अनेक प्रकार के भूषणों की शोभा से संयुत व अनेक भांति के चन्दनों से चर्चित व अनेक भांति के पुष्पमालाओं से संयुत वह उत्तम अप्सरा रेशमी वस्त्र को पहनकर ॥ ७४ ॥ हाथ में शुद्ध वीणा को लेकर सब अंगों से सुन्दरी उस अप्सरा ने वहां मनुष्यों के मन को रमानेवाला तीन भांति का नृत्य किया ॥ ७५ ॥ व तारस्वर से और वंशनाद से मिश्रित व मूर्च्छना तथा मालाओं से युक्त और तंत्री के लय से युक्त नृत्य किया तब हे नृपात्मज ! जो धर्मराज

रूपं कृत्वा मनोरमम् ॥ कुङ्कुमैः कज्जलैर्वस्त्रैर्भूषणैश्चैव भूषिता ॥ ७२ ॥ कुसुमं च तथा वस्त्रं किङ्किणीकटिराजिता ॥ झणत्कारैस्तथा कष्टैर्भूषिता च पदद्वये ॥ ७३ ॥ नानाभूषणभूषाढ्या नानाचन्दनचर्चिता ॥ नानाकुसुममालाढ्या दुकूलेनावृता शुभा ॥ ७४ ॥ प्रगृह्य वीणां संशुद्धां करे सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ नर्तनं त्रिविधं तत्र चक्रे लोकमनोरमम् ॥ ७५ ॥ तारस्वरेण मधुरैर्वंशनादेन मिश्रितम् ॥ ७६ ॥ मूर्च्छनातालसंयुक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ क्षणेन सहसा देवो धर्मराजो जितात्मवान् ॥ विमनाः स तदा जातो धर्मराजो नृपात्मज ॥ ७७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आश्चर्यं परमं ब्रह्मञ्ज्ञातं मे ब्रह्मसत्तम ॥ कथं ब्रह्मोपपन्नस्य तपश्छेदो बभूव ह ॥ ७८ ॥ धर्मे धरा च नाकश्च धर्मे पातालमेव च ॥ धर्मे चन्द्रार्कमापश्च धर्मे च पवनोऽनलः ॥ ७९ ॥ धर्मे चैवाखिलं विश्वं स धर्मो व्यग्रतां कथम् ॥ गतः स्वामिंस्तद्वैयग्र्यं तथ्यं कथय सुव्रत ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ पतनं साहसानां च नरकस्यैव कारणम् ॥ योनिकुण्डमिदं सृष्टं कुम्भी

जितेन्द्रिय थे वे यकायक क्षण भर में क्षुभितमानस हुए ॥ ७६ । ७७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मसत्तम ! मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रह्म में युक्त उन यमराज का कैसे तपोभंग हुआ ॥ ७८ ॥ धर्म में पृथ्वी व स्वर्ग है और धर्म में पाताल है और धर्म में चन्द्रमा, सूर्य व जल हैं और धर्म में पवन व अग्नि हैं ॥ ७९ ॥ और धर्म में सब संसार है वह धर्म कैसे व्यग्रता को प्राप्त हुआ हे स्वामिन्, सुव्रत ! उसकी व्यग्रता को सत्य कहिये ॥ ८० ॥ व्यासजी बोले कि साहसों का पतन नरकही

का कारण है और पृथ्वी में यह योनिकुण्ड कुम्भीपाक के समान रचा गया है ॥ ८१ ॥ और नेत्ररूपी रस्सी से दृढ़ बांधकर स्त्रियां मनस्वी पुरुषों की धर्षणा करती हैं और कुचरूपी महादण्डों से ताड़ित पुरुष को निश्चेत ॥ ८२ ॥ करके हे नृपोत्तम ! वे स्त्रियां शीघ्रही नरक में गिराती हैं व सब प्राणियों को मोहनेवाली स्त्री बनाई गई है ॥ ८३ ॥ तबतक मन की स्थिरता, शास्त्र, सत्य व निराकुलता होती है जबतक कि सुन्दरचित्तवाले पुरुषों के आगे जाल की नाईं मत्त स्त्री नहीं होती है ॥ ८४ ॥ व तबतक तपस्या की वृद्धि होती है व तबतक दान, दया व दम होता है और तबतक वेद पढ़ने का आचार व तबतक शौच, धैर्य व व्रत होता है ॥ ८५ ॥ जबतक

पाकसमं भुवि ॥ ८१ ॥ नेत्ररज्ज्वा दृढं बद्ध्वा धर्षयन्ति मनस्विनः ॥ कुचरूपैर्महादण्डैस्ताड्यमानमचेतसम् ॥ ८२ ॥ कृत्वा वै पातयन्त्याशु नरकं नृपसत्तम ॥ मोहनं सर्वभूतानां नारी चैवं विनिर्मिता ॥ ८३ ॥ तावद्भन्त मनःस्थैर्यं श्रुतं सत्यमनाकुलम् ॥ यावन्मत्ताङ्गनाग्रे न वागुरेव सुचेतसाम् ॥ ८४ ॥ तावत्तपोभिवृद्धिस्तु तावद्दानं दया दमः ॥ तावत्स्वाध्यायवृत्तं च तावच्छौचं धृतं व्रतम् ॥ ८५ ॥ यावत्त्रस्तमृगीदृष्टिं चपलां न विलोकयेत् ॥ तावन्माता पिता तावद् भ्राता तावत्सुहृज्जनः ॥ ८६ ॥ तावल्लज्जा भयं तावत्स्वाचारस्तावदेव हि ॥ ज्ञानमौदार्यमैश्वर्यं तावदेव हि भासते ॥ यावन्मत्ताङ्गनापाशैः पातितो नैव बन्धनैः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये इन्द्रभयकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कि डरी हुई मृगी की नाईं चंचलदृष्टि को मनुष्य नहीं देखता है और तबतक माता, पिता, भाई व तबतक मित्रजन होते हैं ॥ ८६ ॥ और तबतक लज्जा व तबतक भय और तभी तक उत्तम आचार होता है व तबतक ज्ञान, उदारता और ऐश्वर्य प्रकाशित होता है जबतक कि मनुष्य मत्त स्त्री के पाशरूपी बन्धनों से नहीं गिराया जाता है ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रभयकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥

दो० । धर्मराज तपकरि यथा क्षेत्र स्थापन कीन । सो चौथे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त मैं धर्मराज की चेष्टा को कहता हूं कि जिसको सुनकर यमदूतों का कहीं भय नहीं होता है ॥ १ ॥ यमराज ने जब वर्द्धनी नामक उत्तम अप्सरा को देखा तब यह विचार किया कि बड़े भारी वन में सुन्दर अंगोंवाली व बहुतही सुन्दरी यह कौन है ॥ २ ॥ और यह मनुष्यों से रहित वन सिंहों व व्याघ्रों से भयानक है बड़े आश्चर्य को जानकर धर्मराज ने यह कहा ॥ ३ ॥ धर्मराज बोले कि हे मानिनि ! तुम अकेली निर्जन वन में क्यों घूमती हो व हे सुशोभने ! तुम किस स्थान से आई हो और किसकी स्त्री हो ॥ ४ ॥ व

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मराजस्य चेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा यमदूतानां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ १ ॥ धर्मराजेन सा दृष्टा वर्द्धनी च वराप्सरा॥ महत्यरण्ये का ह्येषा सुन्दराङ्ग्यतिसुन्दरी ॥ २ ॥ निर्मानुषवनं चेदं सिंहव्याघ्रभयानकम् ॥ आश्चर्यं परमं ज्ञात्वा धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥ धर्मराज उवाच ॥ कस्मात्त्वं मानिनि ह्येका वने चरसि निर्जने ॥ कस्मात्स्थानात्समायाता कस्य पत्नी सुशोभने ॥ ४ ॥ सुता त्वं कस्य वामोरु अतिरूपवती शुभा ॥ मानुषी वाथ गन्धर्वी अमरी वाथ किन्नरी ॥ ५ ॥ अप्सरा यक्षिणी वाथ अथवा वनदेवता ॥ राक्षसी वा खेचरी वा कस्य भार्या च तद्वद ॥ ६ ॥ सत्यं च वद मे सुभ्रूरित्याहार्कसुतस्तदा ॥ किमिच्छसि त्वया भद्रे किं कार्यं वा वदात्र वै ॥ ७ ॥ यदिच्छसि त्वं वामोरु ददामि तव वाञ्छितम् ॥ ८ ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ धर्मे तिष्ठति सर्वं वै स्थावरं जङ्गमं विभो ॥ स धर्मो दुष्करं कर्म कस्मात्त्वं कुरुषेऽनघ ॥ ९ ॥ यम उवाच ॥ ईशानस्य च यद्रूपं द्रष्टुमिच्छामि भामिनि ॥ ते

हे वामोरु ! बहुत रूपवती तुम किसकी उत्तम कन्या हो मानुषी हो या गंधर्विणी हो या देवी हो व किन्नरी हो ॥ ५ ॥ या अप्सरा व यक्षिणी हो अथवा वनदेवता हो या राक्षसी व खेचरी हो तुम किस की स्त्री हो उसको कहो ॥ ६ ॥ सुन्दर भौंहोंवाली तुम मुझ से सत्य कहो यह उस समय सूर्यनारायण के पुत्र यमराज ने कहा हे भद्रे ! तुम क्या चाहती हो और तुम्हारा यहां क्या कार्य है यह कहो ॥ ७ ॥ हे वामोरु ! तुम जो चाहती हो उस मनोरथ को मैं तुम को दूंगा ॥ ८ ॥ वर्द्धनी बोली कि हे विभो ! धर्म में सब चराचर स्थित है हे अनघ ! वही धर्म तुम किस कारण कठिन कर्म को करते हो ॥ ९ ॥ यमराज बोले कि हे भामिनि !

शिवजी का जो रूप है उसको मैं देखना चाहता हूं और उसी से मैं तप से युक्त हूं कि पार्वती समेत शिवजी को मैं देखूंगा ॥ १० ॥ और इस कारण कठिन तप करता हूं कि यश पाऊंगा व सुख पाऊंगा और फिर युग युग में मेरी प्रसिद्धि होगी ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ ११ ॥ और कल्प, कल्प में व महाकल्प में प्रसिद्धि होगी हे सुभ्रु ! इसी कारण मैं बड़ा तप करता हूं ॥ १२ ॥ हे भद्रे ! तुम किस कारण आई हो यह यथायोग्य कहो और किस का क्या कार्य है व क्या कारण है इसको सत्य कहने के योग्य हो ॥ १३ ॥ वर्द्धनी बोली कि हे धर्म ! तपस्याही के कारण इन्द्रजी तुम से डर गये हैं उन्हीं ने तप के विघ्न की इच्छा से मुझको यहां पठाया है ॥ १४ ॥

नाहं तपसा युक्तः शिवया सह शङ्करम् ॥ १० ॥ यशः प्राप्स्ये सुखं प्राप्स्ये करोमि च सुदुष्करम् ॥ युगे युगे मम ख्यातिर्भवेदिति मतिर्मम ॥ ११ ॥ कल्पे कल्पे महाकल्पे भूयः ख्यातिर्भवेदिति ॥ एतस्मात्कारणात्सुभ्रूस्तप्यते परमं तपः ॥ १२ ॥ कस्मात्त्वमागता भद्रे कथयस्व यथातथा ॥ किं कार्यं कस्य हेतुश्च सत्यमाख्यातुमर्हसि ॥ १३ ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ तपसैव त्वया धर्म भयभीतो दिवस्पतिः ॥ तेनाहं नोदिता चात्र तपोविघ्नस्य काङ्क्षया ॥ १४ ॥ इन्द्रासनभयाद्भीतहरिणा हरिसन्निधौ ॥ प्रेषिताहं महाभाग सत्यं हि प्रवदाम्यहम् ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ सत्यवाक्येन च तदा तोषितो रविनन्दनः ॥ उवाचैनां महाभाग्यो वरदोहं प्रयच्छ मे ॥ १६ ॥ यमोहं सर्वभूतानां दुष्टानां कर्मकारिणाम् ॥ धर्मरूपो हि सर्वेषां मनुजानां जितात्मनाम् ॥ १७ ॥ स धर्मोऽहं वरारोहे ददामि तव दुर्लभम् ॥ तत्सर्वं प्रार्थय त्वं मे शीघ्रं चाप्सरसां वरे ॥ १८ ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ इन्द्रस्थाने सदा रम्ये सुस्थिरत्वं प्रयच्छ मे ॥ स्वामिन्धर्म

हे महाभाग ! इन्द्रासन के भय से डरे हुए इन्द्र ने मुझको यमराज के समीप पठाया है यह मैं सत्य कहती हूं ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि तब सत्य वचन से सूर्यपुत्र यमराजजी प्रसन्न हुए व इस वर्द्धनी से महाभाग्य धर्मराज ने कहा कि मैं वरदायक हूं मुझ से वर को लीजिये ॥ १६ ॥ कर्म करनेवाले सब दुष्ट प्राणियों के लिये मैं यमराज हूं और सब जितेन्द्रिय पुरुषों के लिये धर्मरूप हूं ॥ १७ ॥ हे वरारोहे ! वही धर्म मैं तुमको दुर्लभ वस्तु को दूंगा हे अप्सरोत्तमे ! तुम उस सब को मुझ से शीघ्रही मांगो ॥ १८ ॥ वर्द्धनी बोली कि हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ, स्वामिन् ! तुम सदैव मनोहर इन्द्रस्थान में मुझ को लोकों के हित के लिये भलीभांति

स्थिरता दीजिये॥ १९ ॥ यमराज बोले कि ऐसाही होवै व उससे उन्होंने यह कहा कि शीघ्रही अन्य वर को मांगिये क्योंकि गान से मैं प्रसन्न हुआ हूं और उत्तम वर को दूंगा ॥ २० ॥ वर्द्धनी बोली कि हे महामते ! इस महाक्षेत्र स्थान में मेरे नाम से प्रसिद्ध सब पापों का नाशक तीर्थ होवै ॥ २१ ॥ और उस में दान, हवन, तप व पठित अक्षय होवै व जो मनुष्य वर्द्धमान नामक तड़ाग को पांच रात्रि तक सेवन करै ॥ २२ ॥ प्रतिदिन तृप्त किये हुए उसके पूर्वज पितर तृप्त होवैं बहुत अच्छा यह उससे कहकर धर्मराजजी चुप होकर स्थित हुए व उन धर्म की तीन प्रदक्षिणा कर व प्रणाम करके वह स्वर्ग को चली गई ॥ २३ ॥ वर्द्धनी बोली कि हे देवेश !

भृतां श्रेष्ठ लोकानां च हिताय वै ॥ १९ ॥ यम उवाच ॥ एवमस्त्विति तां प्राह चान्यं वरय सत्वरम् ॥ ददामि वर मुत्कृष्टं गानेन तोषितोस्म्यहम् ॥ २० ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे मम तीर्थं महामते ॥ भूयाच्च सर्व पापघ्नं मन्नाम्नेति च विश्रुतम् ॥ २१ ॥ तत्र दत्तं हुतं तप्तं पठितं वाऽक्षयं भवेत् ॥ पञ्चरात्रं निषेवेत वर्द्धमानं सरोवर म् ॥ २२ ॥ पूर्वजास्तस्य तुष्येरंस्तर्प्यमाणा दिनेदिने ॥ तथेत्युक्त्वा तु तां धर्मो मौनमाचष्ट संस्थितः ॥ त्रिः परिक्र म्य तं धर्मं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ २३ ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ मा भयं कुरु देवेश यमस्यार्कसुतस्य च ॥ अयं स्वार्थपरो धर्म यशसे च समाचरेत् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ वर्द्धनी पूजिता तेन शक्रेण च शुभानना ॥ साधु साधु महाभागे देवकार्यं कृतं त्वया ॥ २५ ॥ निर्भयत्वं वरारोहे सुखवासश्च ते सदा ॥ यशः सौख्यं श्रियं रम्यां प्राप्स्यसि त्वं शुभान ने ॥ २६ ॥ तथेति देवास्तामूचुर्निर्भयानन्दचेतसा ॥ नमस्कृत्य च शक्रं सा गता स्थानं स्वकं शुभम् ॥ २७ ॥ व्यास

सूर्य के पुत्र यमराज का तुम भय न करो क्योंकि स्वार्थ में परायण ये धर्मराज यश के लिये तप करते हैं ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि उन इन्द्र ने उस उत्तम मुखवाली वर्द्धनी का पूजन किया व यह कहा कि हे महाभागे ! तुमको साधुवाद है क्योंकि तूने देवताओं का कार्य किया ॥ २५ ॥ व हे शुभानने, वरारोहे ! तुमको सदैव अभयता होवै व सुखपूर्वक तुम्हारा निवास होवै और तुम यश, सुख व सुन्दरी लक्ष्मी को पावोगी ॥ २६ ॥ देवताओं ने निर्भय व आनन्द चित्त से उससे यह कहा कि वैसाही होगा और वह वर्द्धनी अप्सरा इन्द्रजी को प्रणामकर अपने उत्तम स्थान को चलीगई ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेन्द्र ! अप्सरा के चलेजाने

पर धर्मराज विधिपूर्वक स्थित हुए व उन्हों ने संसार को दुःखदायक बड़ा भयंकर तप किया ॥ २८ ॥ कि हे राजन् ! सूर्य से तापित ज्येष्ठ महीने में उन्हों ने देवताओं से भी दुस्सह व दुरासद पंचाग्नि साधन किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होने पर यमराज मौन होकर स्थित हुए व सैकड़ों बँबौरि से घिरे हुए वे काष्ठ की नाईं स्थित हुए ॥ ३० ॥ व हे राजन् ! अनेक प्रकार के पक्षियों से वहां घोंसला करने पर उन धर्मराज ने व्रत किया और वे कहीं देख नहीं पड़ते थे ॥ ३१ ॥ इस के अनन्तर अनिन्दित उमापति देवेश शिवजी को स्मरण करते हुए गन्धर्वों समेत देवता व यक्ष उद्विग्नमानस हुए और फिर शिवजी के समीप कैलास पर्वत के शिखर

उवाच ॥ गतेऽप्सरसि राजेन्द्र धर्मस्तस्थौ यथाविधि ॥ तपस्तेपे महाघोरं विश्वस्योद्वेगदायकम् ॥ २८ ॥ पञ्चाग्निसाधनं शुक्रे मासि सूर्येण तापिते ॥ चक्रे सुदुःसहं राजन्देवैरपि दुरासदम् ॥ २९ ॥ ततो वर्षशते पूर्णे अन्तको मौनमास्थितः ॥ काष्ठभूत इवातस्थौ वल्मीकशतसंवृतः ॥ ३० ॥ नानापक्षिगणैस्तत्र कृतनीडे स धर्मराट् ॥ उपविष्टे व्रतं राजन्दृश्यते नैव कुत्रचित् ॥ ३१ ॥ संस्मरन्तोऽथ देवेशमुमापतिमनिन्दितम् ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षाश्चोद्विग्नमानसाः ॥ कैलासशिखरं भूय आजग्मुः शिवसन्निधौ ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्राहि त्राहि महादेव श्रीकण्ठ जगतः पते ॥ त्राहि नो भूतभव्येश त्राहि नो वृषभध्वज ॥ दयालुस्त्वं कृपानाथ निर्विघ्नं कुरु शंकर ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ केनापराधिता देवाः केन वा मानमर्दिताः ॥ मर्त्ये स्वर्गेऽथवा नागे शीघ्रं कथयताचिरम् ॥ ३४ ॥ अनेनैव त्रिशूलेन खट्वाङ्गेनाथवा पुनः ॥ अथ पाशुपतेनैव निहनिष्यामि तं रणे ॥ शीघ्रं वै वदतास्माकमत्रागमन

पै आये ॥ ३२ ॥ देवता बोले कि हे श्रीकण्ठ, जगतपते, देवदेव ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे भूतभव्येश ! हम लोगों की रक्षा कीजिये हे वृषभध्वज ! हमारी रक्षा कीजिये हे दयानाथ, शंकर ! तुम दयालु हो निर्विघ्न कीजिये ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवताओ ! किसने तुमलोगों का अपराध किया है व किसने मानमर्दन किया है मृत्युलोकमें या स्वर्ग में या पातालमें होवै उसको शीघ्रही कहिये देर मत कीजिये ॥ ३४ ॥ क्योंकि इसी त्रिशूल से या खट्वाङ्ग से अथवा पाशुपत अस्त्र से मैं

उसको युद्ध में मारूंगा तुमलोग शीघ्रही हम से यहां आने का कारण कहो ॥ ३५ ॥ देवता बोले कि हे दयासिन्धो, जगदानन्ददायक, देवेश ! इस समय मनुष्य से व नाग से और देवता व दानव से भय नहीं है ॥ ३६ ॥ बरन हे महादेव ! मृत्युलोकमें बड़ेभारी शरीरवाले यमराजजी बड़े भयंकर अपने शरीर को क्लेशित करते हैं यह निश्चय है ॥ ३७ ॥ व हे सदाशिव ! उग्र तपस्या करके आत्मा से आत्मा क्लेशित होता है उससे हे सदाशिव ! हम सब देवता दुःखित होकर तुम्हारे शरण में प्राप्त हुए हैं जो चाहो उसको करो ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले कि देवताओं का वचन सुनकर बैल पै चढ़े हुए वृषध्वज शिवजी अस्त्रों को लेकर व सुन्दर कवच को पहनकर उस

कारणम् ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ कृपासिन्धो हि देवेश जगदानन्दकारक ॥ न भयं मानुषादद्य न नागाद्देवदानवात् ॥ ३६ ॥ मर्त्यलोके महादेव प्रेतनाथो महाकृतिः ॥ आत्मकायं महाघोरं क्लेशयेदिति निश्चयः ॥ ३७ ॥ उग्रेण तपसा कृत्वा क्लिश्येदात्मानमात्मना ॥ तेनात्र वयमुद्विग्ना देवाः सर्वे सदाशिव ॥ शरणं त्वामनुप्राप्ता यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ३८ ॥ सूत उवाच ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा वृषारूढो वृषध्वजः ॥ आयुधान्परिसंगृह्य कवचं सुमनोहरम् ॥ गतवानथ तं देशं यत्र धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अनेन तपसा धर्म संतुष्टं मम मानसम् ॥ वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४० ॥ इच्छसे त्वं यथा कामान्यथा ते मनसि स्थितान् ॥ यं यं प्रार्थयसे भद्र ददामि तव सांप्रतम् ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं संभाषमाणं तु दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ वल्मीकादुत्थितो राजन्गृहीत्वा करसंपुटम् ॥ तुष्टाव वचनैः शुद्धैर्लोकनाथमरिंदमम् ॥ ४२ ॥ धर्म उवाच ॥ ईश्वराय नमस्तुभ्यं नमस्ते योगरूपिणे ॥ नमस्ते तेजो

स्थान को गये जहां कि धर्मराजजी टिके थे ॥ ३९ ॥ महादेवजी बोले कि हे धर्म ! इस तप से मेरा मन प्रसन्न होगया वरदान को कहो ऐसा तीन बार उन शिवजी ने कहा ॥ ४० ॥ जैसे कामों को तुम चाहते हो व जैसे तुम्हारे मन में स्थित हैं हे भद्र ! जिस जिस मनोरथ को तुम चाहते हो उसको इस समय दूंगा ॥ ४१ ॥ व्यास जी बोले कि इस प्रकार कहते हुए लोकनाथ व शत्रुनाशक महेश्वरदेवजी को देखकर बंबौरि से उठे हुए धर्मराज ने हाथों को जोड़कर शुद्ध वचनों से स्तुति किया ॥ ४२ ॥ धर्म बोले कि आप ईश्वर के लिये नमस्कार है व योगरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है तेजोरूपी आपके लिये प्रणाम है व हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम

है ॥ ४३ ॥ व ध्यान करनेवालों के अनुरूप भक्ति से गम्य आपके लिये प्रणाम है व ब्रह्मरूपी आपके लिये नमस्कार है हे विष्णुरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥४४॥ व स्थूल, सूक्ष्म व अणुरूप आपके लिये प्रणाम है व कामरूपी आप सृष्टि, स्थिति तथा संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ४५ ॥ व नित्य, सौम्य; मृड व हरि के लिये प्रणाम है व आतपरूप आपके लिये प्रणाम है तथा शीतकर आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे सृष्टिरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे लोकपाल ! आपके लिये नमस्कार है और उग्र, भीम व शांतरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ अनंतरूप आपके लिये प्रणाम है व विश्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे चन्द्रशेखर ! भस्म

रूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥ ध्यातॄणामनुरूपाय भक्तिगम्याय ते नमः ॥ नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूप नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ नमः स्थूलाय सूक्ष्माय अणुरूपाय वै नमः ॥ नमस्ते कामरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ ४५ ॥ नमो नित्याय सौम्याय मृडाय हरये नमः ॥ आतपाय नमस्तुभ्यं नमः शीतकराय च ॥ ४६ ॥ सृष्टिरूप नमस्तुभ्यं लोकपाल नमोऽस्तु ते ॥ नम उग्राय भीमाय शान्तरूपाय ते नमः ॥ ४७ ॥ नमश्चानन्तरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ नमो भस्माङ्गलिप्ताय नमस्ते चन्द्रशेखर ॥ नमोऽस्तु पञ्चवक्त्राय त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते ॥ ४८ ॥ नमस्ते व्यालभूषाय काष्ठापटधराय च ॥ नमोऽन्धकविनाशाय दक्षपापापहारिणे ॥ कामनिर्दाहिने तुभ्यं त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥ ४९ ॥ चत्वारिंशच्च नामानि मयोक्तानि च यः पठेत् ॥ शुचिर्भूत्वा त्रिकालं तु पठेद्वा शृणुयादपि ॥ ५० ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ब्रह्महा हेमहारी च ह्यथवा वृषलीपतिः ॥ ५१ ॥ स्त्रीबालघातकश्चैव पापी चा

को अंगमें लगाये हुए आपके लिये नमस्कारहै व पंचमुख तथा त्रिनेत्र आपके लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ व सर्पों का भूषण करनेवाले व दिशारूपी वसनों को धारनेवाले आपके लिये प्रणाम है व अन्धक को नाशनेवाले और दक्ष के पाप को नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है हे त्रिपुरारे ! कामदेव को जलानेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ मुझ से कहेहुए चालीस नामोंको जो पढ़ता है और पवित्र होकर जो त्रिकाल पढ़ता या सुनता है ॥ ५० ॥ गोघाती, कृतघ्न, मद्यपी, गुरु की शय्या पै बैठनेवाला, ब्रह्मघाती, सुवर्णहारी या शूद्रा का पति ॥ ५१ ॥ व स्त्री और बालक को मारनेवाला, पापी, असत्यवादी, दुराचारी, चोर व पराई स्त्री से संगम करने

वाला॥५२॥ और दूसरे को कलंक लगानेवाला, वैरी व जीविका को लोप करनेवाला तथा अकार्यकारी, कार्यनाशक, ब्रह्मशत्रु व नीच ब्राह्मण वह सब पापों से छूटजाता है और कैलास को जाता है ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बहुत वचनों से जब धर्मराजने आपही मस्तक से प्रणाम कर बड़ी भक्ति से शिवजी की स्तुति की ॥ ५४ ॥ तब प्रसन्न होतेहुए शिवजी ने उन धर्म से यह उत्तम बचन कहा कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान हो उस वरदान को मांगो ॥ ५५ ॥ यमराज बोले कि हे महाभाग, देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मेरे ऊपर दयाकर चराचर त्रिलोक को कीजिये॥ ५६ ॥ और यह स्थान संसार में मेरे नाम से प्रसिद्ध होवै और अच्छेद्य, अभेद्य व

नृतभाषणः ॥ अनाचारी तथा स्तेयी परदाराभिगस्तथा ॥ ५२ ॥ परापवादी द्वेषी च वृत्तिलोपकरस्तथा ॥ अकार्य कारी कृत्यघ्नो ब्रह्मद्विड्ढाडवाधमः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः कैलासं स च गच्छति ॥५३॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं बहुभि र्वाक्यैर्धर्मराजेन वै मुहुः ॥ ईडितोऽपि महद्भक्त्या प्रणम्य शिरसा स्वयम् ॥ ५४ ॥ तुष्टः शम्भुस्तदा तस्मा उवाचेदं वचः शुभम्॥ वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते॥५५॥ यम उवाच॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश दयां कृत्वा ममोपरि॥ तत्कुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५६॥ मन्नाम्ना स्थानमेतद्धि ख्यातं लोके भवेदिति॥ अच्छेद्यं चाप्यभेद्यं च पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ ५७॥ स्थानं कुरु महादेव यदि तुष्टोऽसि मे भव ॥ व्यास उवाच॥ शिवेन स्थानकं दत्तं काशीतुल्यं तदा नृप ॥ तद्दत्त्वा च पुनः प्राह अन्यं वरय सत्तम ॥ ५८ ॥ धर्म उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश दयां कृत्वा ममोपरि ॥ तं कुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ वरेणैवं यथा ख्यातिं गमिष्यामि युगे युगे ॥ ५९ ॥ ईश्वर

पवित्र तथा पापनाशक ॥ ५७ ॥ स्थान को कीजिये यदि हे महादेव, भव ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो व्यासजी बोले कि हे राजन् ! तब शिवजी ने काशी के समान स्थान को दिया व उसको देकर फिर कहा कि हे सत्तम ! अन्य वरदान को मांगो ॥ ५८ ॥ धर्मराज बोले कि हे महाभाग, देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मेरे ऊपर दया करके उस चराचर समेत त्रिलोक को कीजिये कि जिस प्रकार ऐसे वर से यह स्थान युग युग में प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ५९ ॥ महादेवजी बोले कि हे कीनाश ! कहिये मैं उस सब

तुम्हारे मनोरथ को करूंगा। मैं तपस्या से प्रसन्न हूं इससे चाहेहुए वर को दूंगा ॥ ६० ॥ यमराज बोले कि हे शंकर, देव! यदि मुझको वांछित देते हो तो इस स्थान में तुम सदैव मेरे नाम से होवो ॥ ६१ ॥ व हे महेश्वर, देव! जिस प्रकार चराचर समेत त्रिलोक में धर्मारण्य ऐसी प्रसिद्धि होवै वैसाही कीजिये ॥ ६२ ॥ महादेवजी बोले कि हे देव! धर्मारण्य ऐसा तुम्हारे नाम से स्थापित यह स्थान सदैव युग युग में प्रसिद्ध होगा व और जो कुछ कहिये उसको इस समय मैं करूं ॥ ६३ ॥ यमराज बोले कि दो योजन चौड़ा मेरे नाम से उत्तम तीर्थ होवै जोकि मुक्ति का शाश्वतस्थान व सब प्राणियों को पवित्रकारक होवै ॥ ६४ ॥ और मक्षिका, कीट, पशु, पक्षी,

उवाच ॥ ब्रूहि कीनाश तत्सर्वं प्रकरोमि तवेप्सितम् ॥ तपसा तोषितोऽहं वै ददामि वरमीप्सितम् ॥ ६० ॥ यम उवाच ॥ यदि मे वाञ्छितं देव ददासि तर्हि शङ्कर ॥ अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे मन्नाम्ना भव सर्वदा ॥ ६१ ॥ धर्मारण्य मिति ख्यातिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ यथा संजायते देव तथा कुरु महेश्वर ॥ ६२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ धर्मारण्यमिदं ख्यातं सदा भूयाद्युगे युगे ॥ त्वन्नाम्ना स्थापितं देव ख्यातिमेतद्गमिष्यति ॥ अथान्यदपि यत्किञ्चित्करोम्येव वदस्व तत् ॥ ६३ ॥ यम उवाच ॥ योजनद्वयविस्तीर्णं मन्नाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥ मुक्तेश्च शाश्वतं स्थानं पावनं सर्वदेहिनाम् ॥ ६४ ॥ मक्षिकाः कीटकाश्चैव पशुपक्षिमृगादयः ॥ पतङ्गा भूतवेतालाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ६५ ॥ नारी वाथ नरो वाथ मत्क्षेत्रे धर्मसंज्ञके ॥ त्यजते यः प्रियान्प्राणान्मुक्तिर्भवतु शाश्वती ॥ ६६ ॥ एवमस्त्विति सर्वोपि देवा ब्रह्मादय स्तथा ॥ पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणाः परं हर्षमवाप्नुयुः ॥ ६७ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वपतयो जगुः ॥ ववुः पुण्यास्तथा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६८ ॥ सूत उवाच ॥ यमेन तपसा भक्त्या तोषितो हि सदाशिवः ॥ उवाच वचनं देवं

मृगादिक, पतंग, भूत, वेताल, पिशाच, नाग व राक्षस ॥ ६५ ॥ स्त्री व पुरुष जो धर्मनामक मेरे क्षेत्र में प्रिय प्राणों को छोड़ै उसकी अविनाशिनी मुक्ति होवै ॥ ६६ ॥ ऐसाही होवै यह शिवजी ने कहा और पुष्पवृष्टि को करते हुए ब्रह्मादिक देवता बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ६७ ॥ और देवताओं की दुन्दुभी बजनेलगीं व गंधर्वपति गानेलगे और पवित्र पवन चलने लगे व अप्सराओं के गण नाचनेलगे ॥ ६८ ॥ सूतजी बोले कि यमराज की तपस्या व भक्ति से प्रसन्न होतेहुए सदाशिवजी ने धर्मराज

देवजी से उत्तम व सुन्दर वचन को कहा ॥ ६९ ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञा दीजिये कि जिस प्रकार देवताओं के हित की कामना से मैं शीघ्रही कैलास नामक श्रेष्ठ पर्वत को जाऊं ॥ ७० ॥ यमराज बोले कि हे महेश्वर ! तुम को मेरा स्थान छोड़ना न चाहिये हे देव ! तुम्हारे वचन से यह स्थान कैलास से अधिक होवै ॥ ७१ ॥ शिवजी बोले कि तुमने बहुत अच्छा व योग्य कहा कि एक अंश से मेरी यहां स्थिति होगी और तुम्हारे निर्मल व उत्तम स्थान को मैं नहीं छोडूंगा ॥ ७२ ॥ मेरे नाम से यहां विश्वेश्वर नामक लिंग होगा ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥७३॥ तब शिवजी के वचन से वहां वह अद्भुत लिंग हुआ व उसको देखकर

रम्यं साधुमनोरमम् ॥ ६९ ॥ अनुज्ञां देहि मे तात यथा गच्छामि सत्वरम् ॥ कैलासं पर्वतश्रेष्ठं देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥ यम उवाच ॥ न मे स्थानं परित्यक्तुं त्वया युक्तं महेश्वर ॥ कैलासादधिकं देव जायते वचनादिदम् ॥ ७१ ॥ शिव उवाच ॥ साधु प्रोक्तं त्वया युक्तमेकांशेनात्र मे स्थितिः ॥ न मया त्यजितं साधु स्थानं तव सुनिर्मलम् ॥ ७२ ॥ विश्वेश्वरं महालिङ्गं मन्नाम्नात्र भविष्यति ॥ एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७३ ॥ शिवस्य वचनात्तत्र तदा लिङ्गं तदद्भुतम् ॥ तं दृष्ट्वा च सुरैस्तत्र यथानामानुकीर्त्तनम् ॥ ७४ ॥ स्वं स्वं लिङ्गं तदा सृष्टं धर्मारण्ये सुरोत्तमैः ॥ यस्य देवस्य यल्लिङ्गं तन्नाम्ना परिकीर्तितम् ॥ ७५ ॥ सूत उवाच ॥ धर्मेण स्थापितं लिङ्गं धर्मेश्वरमुपस्थितम् ॥ स्मरणात्पूजनात्तस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७६ ॥ यद्ब्रह्म योगिनां गम्यं सर्वेषां हृदये स्थितम् ॥ तिष्ठते यस्य लिङ्गं तु स्वयम्भुवमिति स्मृतम् ॥ ७७ ॥ भूतनाथं च सम्पूज्य व्याधिभिर्मुच्यते जनः ॥ धर्मवापीं ततश्चैव

वहां उत्तम देवताओंने जिसका जैसा नाम कहाजाता था उसने वैसेही अपने अपने लिंग को उस समय बनाया और जिस देवता का जो लिंगहुआ वह उसके नाम से कहा गया ॥ ७४।७५ ॥ सूतजी बोले कि धर्मजी से स्थापित धर्मेश्वरलिंग उपस्थित हुआ उसके स्मरण व पूजन से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ७६ ॥ और योगियों के प्राप्त होने योग्य जो ब्रह्म सबोंके हृदयमें स्थित है व जिनका स्वयंभुव ऐसा कहा हुआ लिंग स्थित है ॥ ७७ ॥ उन भूतनाथजी को पूजकर मनुष्य रोगों से छूटजाता है

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तदनन्तर वहींपर धर्मराजजी ने सुन्दरी धर्मवापी को किया ॥ ७८ ॥ और करोड़ों तीर्थों का जल लाकर बावली में छोड़दिया सुन्दर यमतीर्थस्वरूप में स्नान करके ॥ ७९ ॥ व शुद्ध चित्तवाले ऋषियों तथा देवताओं के नहाने के लिये उसमें नहाकर व जलको पीकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ८० ॥ और धर्मवापी में नहाकर व धर्मे-श्वर शिवजीको देखकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है और माता के गर्भ में नहीं प्रवेश करता है ॥ ८१ ॥ और उसमें नहाकर व्याधि दोष के नाश के लिये व क्लेश दोष की शांति के लिये जो मनुष्य यमतर्पण करता है ॥ ८२ ॥ कि यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल, दध्न, परमेष्ठी के लिये ॥ ८३ ॥ व वृकोदर, वृक

चक्रे तत्र मनोरमाम् ॥ ७८ ॥ आहत्य कोटितीर्थानां जलं वाप्यां मुमोच ह ॥ यमतीर्थस्वरूपे च स्नानं कृत्वा मनोर मम् ॥ ७९ ॥ स्नानार्थं देवतानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८० ॥ धर्मवाप्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्मेश्वरं शिवम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो न मातुर्गर्भमाविशेत् ॥ ८१ ॥ तत्र स्नात्वा नरो यस्तु करोति यमतर्पणम् ॥ व्याधिदोषविनाशार्थं क्लेशदोषोपशान्तये ॥ ८२ ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्त काय च ॥ वैवस्वताय कालाय दध्नाय परमेष्ठिने ॥ ८३ ॥ वृकोदराय वृकाय दक्षिणेशाय ते नमः ॥ नीलाय चित्रगु प्ताय चित्र वैचित्र ते नमः ॥ ८४ ॥ यमार्थं तर्पणं यो वै धर्मवाप्यां करिष्यति ॥ साक्षतैर्नामभिश्चैतैस्तस्य नोपद्रवो भवेत् ॥ ८५ ॥ एकान्तरस्तृतीयस्तु ज्वरश्चातुर्थिकस्तथा ॥ वेलायां जायते यस्तु ज्वरः शीतज्वरस्तथा ॥ ८६ ॥ पीड यन्ति न चैतस्य यस्यैव मतिरीदृशी ॥ रेवत्यादिग्रहा दोषा डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ८७ ॥ धनधान्यसमृद्धिः स्यात्सं

और दक्षिणेश तुम्हारे लिये नमस्कार है व नील तथा चित्रगुप्त के लिये व हे चित्र, वैचित्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार धर्मवापी में जो मनुष्य अक्षतों समेत इन नामों से यमराज के लिये तर्पण करता है उसके उपद्रव नहीं होता है ॥ ८५ ॥ और एकांतर, तृतीय व चातुर्थिक ज्वर और जो समय में ज्वर व शीतज्वर होता है ॥ ८६ ॥ ये इस मनुष्य को पीड़ित नहीं करते हैं जिसकी ऐसी बुद्धि होती है व रेवती आदिक ग्रहदोष डाकिनी व शाकिनी नहीं होती हैं ॥ ८७ ॥ व धन, धान्य

की समृद्धि होती है और सदैव सन्तान बढ़ती है और स्नान कर जितेन्द्रिय मनुष्य भूतेश्वरजीको पूजकर ॥ ८८ ॥ व अंग समेत रुद्रजप कर व्याधि के दोषों से छूटजाता है अमावस, सोमदिन, व्यतीपात, वैधृति, संक्रांति व ग्रहण में वहां मनुष्यों को श्राद्ध कहा गया है ॥ ८९ ॥ व जो प्रसिद्ध मनुष्य तिलों से मिश्रित जल को देता है उसने हज़ारों वर्ष तक श्राद्ध किया पितर लोग इस रहस्य को कहते हैं ॥ ९० ॥ व इक्कीस बार गया में पिंडदान से व धर्मेश्वर में पितरों को एक बार दियाहुआ श्राद्ध अक्षय होता है ॥ ९१ ॥ धर्मेश्वर से पश्चिम भाग में विश्वेश्वर के मध्य में धर्मवापी ऐसी प्रसिद्ध वह स्वर्गसोपान को देनेवाली है ॥ ९२ ॥ धर्मबुद्धिवाले धर्मराज ने

ततिर्वर्धते सदा ॥ भूतेश्वरं तु सम्पूज्य सुस्नातो विजितेन्द्रियः ॥ ८८ ॥ साङ्गं रुद्रजपं कृत्वा व्याधिदोषात्प्रमुच्यते ॥ अमावास्यां सोमदिने व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ संक्रान्तौ ग्रहणे चैव तत्र श्राद्धं स्मृतं नृणाम् ॥ ८९ ॥ श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥ पानीयमेवापि तिलैर्विमिश्रितं ददाति यो वै प्रथितो मनुष्यः ॥ ९० ॥ एकविंशतिवारैस्तु गयायां पिण्डदानतः ॥ धर्मेश्वरे सकृद्दत्तं पितॄणां चाक्षयं भवेत् ॥ ९१ ॥ धर्मेशात्पश्चिमे भागे विश्वेश्वरान्तरेपि वा ॥ धर्मवापीति विख्याता स्वर्गसोपानदायिनी ॥ ९२ ॥ धर्मेण निर्मिता पूर्वं शिवार्थं धर्मबुद्धिना ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च तर्पिताः पितृदेवताः ॥ ९३ ॥ शमीपत्रप्रमाणं तु पिण्डं दद्याच्च यो नरः ॥ धर्मवाप्यां महापुण्यां गर्भवासं न चाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ कुम्भीपाकान्महारौद्राद्रौरवान्नरकात्पुनः ॥ अन्धतामिस्रकाद्राजन्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९५ ॥ व्यास उवाच ॥ नैकवर्णं च पानीयं धर्मवाप्यां नरोत्तम ॥ ऋतौ मासे च पक्षे च विपरीतं च जायते ॥ ९६ ॥

पुरातन समय शिवजी के लिये उसको बनाया है उसमें नहाकर व जल को पीकर पितर और देवता तृप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ जो मनुष्य महापवित्र धर्मबावली में शमी के पत्ते के प्रमाण भर पिंडको देता है वह गर्भवास को नहीं पाता है ॥ ९४ ॥ और महाभयंकर कुंभीपाक से व रौरव नरक से व हे राजन् ! अंधतामिस्र नरक से मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ व्यासजी बोले कि हे नरोत्तम ! धर्मबावली में अनेक रंगका जल होता है और ऋतु, मास व पक्ष में बदलता है ॥ ९६ ॥

और बर्हिषद, अग्निष्वात्त, आज्यप व सोमपसंज्ञक पितर बावली में तर्पण करने से उत्तम तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ९७ ॥ कुरुक्षेत्रादिक क्षेत्र व अयोध्यादि नगर व सब पुष्करादिक जो मुक्तिस्थान हैं ॥ ९८ ॥ वे सब तुल्य हैं और धर्मकूप अधिक है मंत्र, वेद, यज्ञ, दान व व्रत ॥ ९९ ॥ हे नरेश्वर ! वहां देकर व जपकर ये अक्षय होते हैं और अथर्ववेदसे उपजेहुए जो अभिचार हैं वे भलीभांति सिद्ध होते हैं ॥ १०० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस स्थान में कियेहुए भी वे सब सिद्धि को प्राप्त होते हैं और वह आदि तीर्थ ब्रह्मा, विष्णु व महेश से सेवित है ॥ १ ॥ व बहुतसौम्य सिद्धिस्थान ब्रह्मादिक देवताओं से सेवित है सतयुगमें युगभर तक व त्रेतायुग में पांचलाख वर्षतक ॥ २ ॥

बर्हिषदोऽग्निष्वात्ताश्च आज्यपाः सोमपास्तथा ॥ तृप्तिं प्रयान्ति परमां वाप्यां वै तर्पणेन तु ॥ ९७ ॥ कुरुक्षेत्रादि क्षेत्राणि अयोध्यादिपुरस्तथा ॥ पुष्कराद्यानि सर्वाणि मुक्तिस्थानानि सन्ति वै ॥ ९८ ॥ तानि सर्वाणि तुल्यानि धर्मकूपोऽधिको भवेत् ॥ मन्त्रो वेदास्तथा यज्ञा दानानि च व्रतानि च ॥ ९९ ॥ अक्षयाणि प्रजायन्ते दत्त्वा जप्त्वा नरेश्वर ॥ अभिचाराश्च ये चान्ये सुसिद्धाथर्ववेदजाः ॥ १०० ॥ ते सर्वे सिद्धिमायान्ति तस्मिन्स्थाने कृता अपि ॥ आदितीर्थं नृपश्रेष्ठ काजेशैरुपसेवितम् ॥ १ ॥ सिद्धिस्थानं सुसौम्यं च ब्रह्माद्यैरपि सेवितम् ॥ कृते तु युग पर्यन्तं त्रेतायां लक्षपञ्चकम् ॥ २ ॥ द्वापरे लक्षमेकं तु दिनैकेन फलं कलौ ॥ एतदुक्तं मया ब्रह्मन्धर्मारण्यस्य वर्ण नम् ॥ फलं चैवात्र सर्वं हि उक्तं द्वैपायनेन तु ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मवाक्यं मनोरमम् ॥ दे वानां हितकामाय आज्ञाप्य च यदुक्तवान् ॥ ४ ॥ धर्म उवाच ॥ अस्मिन्क्षेत्रे प्रकुर्वन्ति विष्णुमायाविमोहिताः ॥ पार दार्यं महादुष्टं स्वर्णस्तेयादिकं तथा ॥ ५ ॥ अन्यच्च विकृतं सर्वं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ अन्यक्षेत्रे कृतं पापं धर्मारण्ये

और द्वापर में एकलाख वर्ष से जो फल होता है वह कलियुग में एक दिन से फल होता है हे ब्रह्मन् ! यह धर्मारण्य का वर्णन किया गया और इसमें व्यासजी से सब फल कहा गया है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं सुन्दर धर्म वचन को कहता हूं जोकि हित की कामना के लिये देवताओं को आज्ञा देकर कहा है ॥ ४ ॥ धर्म बोले कि विष्णुजी की माया से मोहित जो मनुष्य इस क्षेत्र में महादुष्ट पराई स्त्री से उपजेहुए व सुवर्ण की चोरी आदिक पाप को करते हैं ॥ ५ ॥ व अन्य सब

विकृत कर्म को करताहुआ मनुष्य नरक को जाता है और अन्य क्षेत्रमें किया हुआ पाप धर्मारण्य में नाश होजाता है ॥ ६ ॥ व धर्मारण्य में किया हुआ पाप वज्रलेप होजाता है जैसे पुण्य वैसेही पाप किया हुआ जो कुछ शुभ, अशुभ पाप है ॥ ७ ॥ वह सब सौ बरस तक नित्य बढ़ता है और कामियों को वह पवित्र क्षेत्र कामदायक है व योगियों को मुक्तिदायक है ॥ ८ ॥ व सदैव धर्मारण्यक्षेत्र सिद्धों को सिद्धिदायक कहा गया है पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनवान् होता है ॥ ६ ॥ पुरातन समय इस पवित्र कथा को धर्मराजने कहा है जो मनुष्य या स्त्री भक्ति से सुनती है व जो इसको सुनाता है उसको हज़ार गऊ का फलहोता है और

विनश्यति ॥ ६ ॥ धर्मारण्ये कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ यथा पुण्यं तथा पापं यत्किञ्चिच्च शुभाशुभम् ॥ ७ ॥ तत्सर्वं वर्द्धते नित्यं वर्षाणि शतमित्युत ॥ कामिनां कामदं पुण्यं योगिनां मुक्तिदायकम् ॥ ८ ॥ सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनवान्भवेत् ॥ ६ ॥ एतदाख्यानकं पुण्यं धर्मेण कथितं पुरा ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा श्रावयेत्तु यः ॥ गोसहस्रफलं तस्य अन्ते हरिपुरं व्रजेत् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येक्षेत्रस्थापनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ॥ यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ॥ १ ॥ धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवंशजाः ॥ अष्टादशसहस्राश्च काजेशैश्च विनिर्मिताः ॥ २ ॥ सदाचाराः पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ तेषां दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पाराशर्य समाख्याहि सदा

अन्त में वह विष्णुपुर को जाता है ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रस्थापनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥

दो॰ । करै गृहस्थाश्रमी जिमि सदाचार को कर्म । सोइ पांच अध्याय महँ कह्यो चरित्र सुपर्म ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त धर्मारण्यनिवासी गृहस्थाश्रमी पुरुष को इस संसार में जो करना चाहिये उसको मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि धर्मारण्यमें ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से रचेहुए शुद्ध वंश में उत्पन्न जो अठारह हज़ार ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ वे उत्तम आचारवाले व पवित्र तथा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और उनके दर्शनही से मनुष्य महापापों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जी बोले कि हे पाराशर्य ! मुझ से उत्तम आचार को कहिये क्योंकि आचार से मनुष्य धर्म को पाता है व आचार से फल को पाता है और आचार से लक्ष्मी को पाता है इससे आचार को मुझ से कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले कि स्थावर, कीट, जलजन्तु, पक्षी, पशु व मनुष्य ये क्रम से धर्मवान् हैं और इनसे देवता धर्मवान् हैं ॥ ५ ॥ हज़ार भाग से पहले व दूसरे क्रमवाले ये सब पाप से मुक्ति में स्थित होकर बड़े ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥ चार प्रकारके भी जन्तुवोंमें प्राणधारी उत्तम हैं व हे नृप ! प्राणधारियों से भी सब बुद्धि से कार्य करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ व बुद्धिमानों से मनुष्य श्रेष्ठ हैं व उनसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणों से भी विद्वान् श्रेष्ठ हैं व विद्वानों से

चारं च मे प्रभो ॥ आचाराद्धर्ममाप्नोति आचाराल्लभते फलम् ॥ आचाराच्छ्रियमाप्नोति तदाचारं वदस्व मे ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ॥ क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥ ५ ॥ सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ॥ सर्व एते महाभागाः पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ ६ ॥ चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोतीव चोत्तमाः ॥ प्राणिभ्योपि नृपश्रेष्ठाः सर्वे बुद्ध्युपजीविनः ॥ ७ ॥ मतिमद्भ्यो नराः श्रेष्ठास्तेभ्यः श्रेष्ठास्तु वाडवाः ॥ विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥ ८ ॥ कृतधीभ्योऽपि कर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः ॥ न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ९ ॥ अन्योन्यपूजकास्ते वै तपोविद्याविशेषतः ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरो यतः ॥ १० ॥ अतो जगत्स्थितं सर्वं ब्राह्मणोऽर्हति नापरः ॥ सदाचारो हि सर्वार्हो नाचाराद्विच्युतः पुनः ॥ ११ ॥ तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशीलिना ॥ विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति यं मुने ॥ १२ ॥ सद्भिर्यस्तं

प्रवीण बुद्धिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ व कृतबुद्धियों से कर्त्ता व कर्त्ताजनों से भी ब्रह्ममें तत्पर मनुष्य श्रेष्ठ हैं व हे भारत ! तीनों लोकों में उनसे अधिक कोई नहीं है ॥ ९ ॥ और तपस्या व विद्या की अधिकता से वे परस्पर पूजक होते हैं क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्मा से सब प्राणियोंका स्वामी बनाया गया है ॥ १० ॥ इस कारण संसार में स्थित सब वस्तु के ब्राह्मण योग्य है अन्य नहीं है और उत्तम आचारवाला ब्राह्मण सब कार्य के योग्य होता है व आचार से रहित योग्य नहीं होता है ॥ ११ ॥ इस कारण सदैव ब्राह्मण को आचार में अभ्यास करना चाहिये हे मुने ! विद्वेष व अनुराग से रहित मनुष्य जिस कार्य को करते हैं ॥ १२ ॥ उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् लोग उस धर्म

के मूल को सदाचार करते हैं क्योंकि लक्षणों से हीन भी भलीभांति आचार में तत्पर ॥ १३ ॥ श्रद्धालु व ईर्षारहित मनुष्य सैकड़ों वर्षतक जीता है व अपने अपने कर्मों में श्रुति, स्मृति से कहेहुए ॥ १४ ॥ धर्ममूल सदाचार को निरालसी पुरुष सेवन करै और संसार में दुराचारपरायण पुरुष निन्दनीय होता है ॥ १५ ॥ और रोगों से तिरस्कृत होता है व सदैव अल्पायु व दुःखी होता है और पराधीन कर्म छोड़ना चाहिये व सदैव अपने वश कार्य को करना चाहिये ॥ १६ ॥ क्योंकि पराधीन दुःखी होता है व अपने वश सुखी होताहै जिस कर्म के करने पर चित्त प्रसन्न होताहै ॥ १७ ॥ वही कर्म करना चाहिये विपरीत कभी न करै जिसलिये नियम व यम पहला धर्म सर्वस्व

सदाचारं धर्ममूलं विदुर्बुधाः ॥ लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः ॥ १३ ॥ श्रद्धालुरनसूयुश्च नरो जीवेत्समाः शतम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं स्वेषु स्वेषु च कर्मसु ॥ १४ ॥ सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ॥ दुराचाररतो लोके गर्हणीयः पुमान्भवेत् ॥ १५ ॥ व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ॥ त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ॥ १६ ॥ दुःखी यतः पराधीनः सदैवात्मवशः सुखी ॥ यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्मा क्रियमाणे प्रसीदति ॥ १७ ॥ तदेव कर्म कर्त्तव्यं विपरीतं न च क्वचित् ॥ प्रथमं धर्म्मसर्वस्वं प्रोक्तं यन्नियमा यमाः ॥ १८ ॥ अतस्तेष्वेव वै यत्नः कर्त्तव्यो धर्ममिच्छता ॥ सत्यं क्षमार्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ॥ १९ ॥ दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश ॥ शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम् ॥ २० ॥ उपोषणोपस्थदण्डो दशैते नियमाः स्मृताः ॥ कामं क्रोधं दमं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च ॥ २१ ॥ अमून्षड्वैरिणोजित्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ शनैः सञ्चिनुयाद्धर्मं वल्मीकं

कहा गया है ॥ १८ ॥ इस कारण धर्म की इच्छावाले पुरुष को उन्हीं में यत्न करना चाहिये और सत्य, क्षमा, ऋजुता, ध्यान, अक्रूरता, अहिंसन ॥ १९ ॥ इन्द्रियनिग्रह, प्रसाद, माधुर्य, मृदुता ये दश यम हैं और पवित्रता, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, पठन व व्रत ॥ २० ॥ उपवास व योनि और लिंग को दंडदेना ये दश नियम कहे गये हैं और काम, क्रोध, दम, मोह, मत्सरता व लोभ ॥ २१ ॥ इन छः वैरियोंको जीतकर मनुष्य सब कहीं विजयी होता है और जैसे बेंबौरि बनानेवाला कीट बेंबौरि

को इकट्ठा करता है वैसेही धीरे २ धर्म को इकट्ठा करै ॥ २२ ॥ और पराई पीड़ा को न करता हुआ पुरुष परलोक में सहाय करनेवाले धर्म को करै क्योंकि रक्षाकिया हुआ धर्महीं परलोक में सहायी होता है ॥ २३ ॥ पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री व बन्धुजनों से अधिक प्राणी अकेला पैदा होता है व अकेलाही मरता है ॥ २४ ॥ और अकेला पुण्य को भोगता है व अकेलाही पाप को भोगता है और शरीर मर जानेपर काठ व ढेले के समान अकेले प्राणी को छोड़कर ॥ २५ ॥ बन्धुलोग विमुख होजाते हैं व धर्म जातेहुए जीव के पीछे जाता है इस कारण इस लोक व परलोक में सहायता करनेवाले धर्म को इकट्ठा करै ॥ २६ ॥ क्योंकि धर्म को सहायक पाकर

शृङ्गवान्यथा ॥ २२ ॥ परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम् ॥ धर्म एव सहायी स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥ २३ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनाधिकः ॥ जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः ॥ २४ ॥ एकलः सुकृतं भुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः ॥ देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैकं काष्ठलोष्टवत् ॥ २५ ॥ बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत् ॥ अतः सञ्चिनुयाद्धर्म्ममत्राऽमुत्र सहायिनम् ॥ २६ ॥ धर्मं सहायिनं लब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तरं तमः ॥ सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः ॥ २७ ॥ अधमानधमांस्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षतां नयेत् ॥ उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीनांश्च वर्जयेत् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ २८ ॥ अनध्ययनशीलं च सदाचारविलङ्घिनम् ॥ सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं बाधतेऽन्तकः ॥ २९ ॥ अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः ॥ तीर्थान्यप्यभिलष्यन्ति सदाचारिसमागमम् ॥ ३० ॥ रजनी

मनुष्य कठिन अन्धकार को नाँघजाता है व विद्वान् मनुष्य नित्य उत्तम उत्तम मनुष्यों से सम्बन्ध करै ॥ २७ ॥ और नीच नीच पुरुषों को छोड़कर वंश को उन्नति में प्राप्त करै और उत्तम उत्तम जनों के समीप जावै व हीनजनों को वर्जित करै तो ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है व पाप से शूद्रता को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ और वेदपाठ न करनेवाले व सदाचार को उल्लंघन करनेवाले तथा आलसी व दुष्ट अन्न को खानेवाले ब्राह्मण को यमराज बाधा करते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण सदैव ब्राह्मण बड़े यत्न से उत्तम आचार का अभ्यास करै क्योंकि उत्तम आचारवाले प्राणी के समागम की तीर्थ भी अभिलाष करते हैं ॥ ३० ॥ रात्रि के अन्त में आधा पहर ब्राह्म समय कहा

जाता है उस समय उठकर विद्वान् सदैव अपने हित को चिन्तन करै ॥ ३१ ॥ पहले गणेशजी को स्मरण करै उसके उपरान्त पार्वती समेत शिवजी को व लक्ष्मी समेत श्रीरंग और कमल से उपजेहुए ब्रह्मा को स्मरण करै ॥ ३२ ॥ व इन्द्रादिक सब देवता व वसिष्ठादिक मुनियों को स्मरण करै और गंगादिक सब नदी व श्रीशैलादिक समस्त पर्वतों को स्मरण करै ॥ ३३ ॥ और क्षीरोदादिक समुद्र व मानसादिक तड़ागों को स्मरण करै और नंदनादिक वन व कामदुघादिक गौवों को स्मरण करै ॥ ३४ ॥ और कल्पवृक्षादिक वृक्ष व सुवर्णादिक धातु तथा उर्वशी आदिक देवांगना व प्रह्लादादिक विष्णु के भक्तोंको स्मरण करै ॥ ३५ ॥ व सब तीर्थों से उत्तमोत्तम

प्रान्तयामार्द्धं ब्राह्मः समय उच्यते ॥ स्वहितं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थाय सर्वदा ॥ ३१ ॥ गजास्यं संस्मरेदादौ तत ईशं सहाम्बया ॥ श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ३२ ॥ इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ३३ ॥ क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च ॥ वनानि नन्दनादीनि धेनूः कामदुघादयः ॥ ३४ ॥ कल्पवृक्षादिवृक्षांश्च धातून्काञ्चनमुख्यतः ॥ दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥ ३५ ॥ जननीचरणौ स्मृत्वा सर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ पितरं च गुरुंश्चापि हृदि ध्यात्वा प्रसन्नधीः ॥ ३६ ॥ ततश्चावश्यकं कर्तुं नैर्ऋतीं दिशमाव्रजेत् ॥ ग्रामाद्धनुःशतं गच्छेन्नगराच्च चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ कर्णोपवीत उदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ॥ ३८ ॥ विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ॥ न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः ॥ ३९ ॥ न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासेव्यभू

माता के चरणों को स्मरण कर पिता व गुरु को हृदय में ध्यानकर प्रसन्नबुद्धि मनुष्य ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त आवश्यक कार्य करने के लिये नैर्ऋत्य दिशा को जावै ग्राम से सौ धनुष व नगर से चार सौ धनुष जावै ॥ ३७ ॥ व तृणों से पृथ्वी को आच्छादित कर और वसन से मस्तक को आच्छादन कर दिन में व प्रातःकाल और संध्या में उत्तर मुख बैठकर यज्ञोपवीत को कर्ण के ऊपर चढ़ाकर ॥ ३८ ॥ मौन होकर मल, मूत्र त्याग करै और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मल मूत्रको त्याग करै और न उठकर न शीघ्र न विप्र, गऊ, अग्नि व पवन के सामने मल, मूत्र को त्याग करै ॥ ३९ ॥ न फाल से जोतेहुए भूमिभाग में न चौराहे में मल, मूत्र त्याग करै

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और दिशाओंके भागों को न देखै न ज्योतिश्चक्र, न आकाश न मल को देखै ॥ ४० ॥ और बायें हाथ से लिंग को उठाकर यत्नवान् मनुष्य उठै इसके उपरान्त मनुष्य कीटों व कंकड़ों से रहित मिट्टी को लेवै ॥ ४१ ॥ परन्तु मूस से खोदी व उच्छिष्ट और बालों से संयुत मिट्टी को न लेवै फिर एक मिट्टी को गुदा में देवै तदनन्तर जल से धोकर ॥ ४२ ॥ फिर पांच बार बायें हाथ से गुदा को धोवै व चरणों में एक एक मिट्टी को देवै और हाथों में तीन मिट्टियोंको देवै ॥ ४३ ॥ इस प्रकार गंधलेप के नाश होनेतक गृहस्थ शौच करै और ब्रह्मचर्यादिक तीनों आश्रमों में क्रम से दूना शौच करै ॥ ४४ ॥ और दिन में कहेहुए शौच से रात्रि में आधा शौच करै और पराये ग्राम

तले ॥ नालोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभो मलम् ॥ ४० ॥ वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकर्करवर्जिताम् ॥ ४१ ॥ विहाय मूषकोत्खातां चोच्छिष्टां केशसंकुलाम् ॥ गुह्ये दद्यान्मृदं चैकां प्रक्षाल्य चाम्बुना ततः ॥ ४२ ॥ पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् ॥ एकैकपादयोर्दद्यात्तिस्रः पाण्योर्मृद स्तथा ॥ ४३ ॥ इत्थं शौचं गृही कुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ॥ क्रमाद्द्वैगुण्यतः कुर्याद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु ॥ ४४ ॥ दिवावि हितशौचाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत् ॥ परग्रामे तदर्धं च पथि तस्यार्धमेव च ॥ ४५ ॥ तदर्धं रोगिणां चापि सुस्थे न्यूनं न कारयेत् ॥ अपि सर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चाप्यगोपमैः ॥ ४६ ॥ आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ॥ आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥ सर्वाश्चाहुतयोऽप्येवं ग्रासाश्चान्द्रायणेपि च ॥ प्रागास्य उद गास्यो वा सूपविष्टः शुचौ भुवि ॥ ४८ ॥ उपस्पृशेद्द्विहीनाभिस्तुषाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च याव

में उसका आधा व मार्ग में उसका आधा शौच करै ॥ ४५ ॥ और उसका आधा रोगियों को शौच करना चाहिये व सुस्थ प्राणी में न्यून शौच न करै और सब नदियों के जल से व पर्वत के समान मिट्टी की राशियों से ॥ ४६ ॥ मरण पर्यन्त शौच करै परन्तु स्वभाव से दुष्ट पुरुष शुद्धि का भागी नहीं होता है व बिन सूखे आँवरों के समान मिट्टी शौच में कही गई हैं ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार सब आहुति व ग्रास भी चान्द्रायण में कहेगये हैं व पूर्व मुख व उत्तर मुख होकर पवित्र भूमि में बैठकर ॥ ४८ ॥ भूसी,

अंगार, अस्थि व भस्म से रहित तथा बहुतही निर्मल व हृदय पर्यन्त गयेहुए जलों से शीघ्रतारहित पुरुष आचमन करै ॥ ४९ ॥ और दृष्टि से पवित्र जलों से ब्राह्मण ब्रह्मतीर्थ से आचमन करै और कंठ में प्राप्त जलों से राजा शुद्ध होता है व तालु में प्राप्त जल से वैश्य शुद्ध होता है ॥ ५० ॥ और स्त्री व शूद्र स्पर्शही करने से पवित्र होते हैं और शिर, शब्द व सकंठ और जल में शिखा को छोड़नेवाला मनुष्य ॥ ५१ ॥ और दोनों चरणों को न धोनेवाला मनुष्य आचमन करके भी अशुद्ध माना गया है और पवित्रता के लिये तीन बार जल को पीकर तदनन्तर इन्द्रियों को पवित्र करै ॥ ५२ ॥ व अँगूठा के मूलस्थान से ओठों को धोवै व जलसे हृदय को

हृद्गाभिरत्वरः ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेन दृष्टिपूताभिराचमेत् ॥ कण्ठगाभिर्नृपः शुध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः॥५०॥ स्त्रीशूद्रावथ संस्पर्शमात्रेणापि विशुध्यतः ॥ शिरः शब्दं सकण्ठं वा जले मुक्तशिखोऽपि वा ॥ ५१ ॥ अक्षालितपद द्वन्द्व आचान्तोऽप्यशुचिर्म्मतः ॥ त्रिः पीत्वाम्बु विशुद्ध्यर्थं ततः खानि विशोधयेत् ॥ ५२ ॥ अङ्गुष्ठमूलदेशेन ह्यधरो ष्ठौ परिमृजेत् ॥ स्पृष्ट्वा जलेन हृदयं समस्ताभिः शिरः स्पृशेत् ॥ ५३ ॥ अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्व्वत्र संस्पृ शेत् ॥ आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ॥ ५४ ॥ स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ॥ सु प्त्वा वासः परीधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ॥ ५५ ॥ प्रमादादशुचिः स्मृत्वा द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ॥ दन्तधावनं प्रकु र्वीत यथोक्तं धर्मशास्त्रतः ॥ आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ ५६ ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवा

स्पर्शकर सब अंगुलियों से मस्तक को स्पर्शकरै ॥ ५३ ॥ व अंगुली के अग्रभागों से कन्धों को स्पर्श करै और जल समेत सब कहीं स्पर्श करै और आचमन कियेहुए मनुष्य गांव के भीतरी मार्ग में जाकर फिर आचमन करै ॥ ५४ ॥ और नहाकर, भोजनकर, जल को पीकर व शुभ कर्मों के प्रारंभ में और सोकर, वसन को पहनकर व अमंगल वस्तु को देखकर ॥ ५५ ॥ व असावधानता से अशुद्ध वस्तु को छूकर दो बार आचमन कर मनुष्य शुद्ध होता है और धर्मशास्त्र में जैसा कहा है वैसेही दंतधावन करै क्योंकि दंतधावन न करके आचमन कियेहुए भी पुरुष अपवित्र होता है ॥ ५६ ॥ परेवा, अमावस, छठि, नवमी व रविवार में दांतों का काष्ठसंयोग सात

पुश्तियों तक जलाता है ॥ ५७ ॥ व दतून के न मिलनेपर और निषिद्ध दिन में मुख की शुद्धि के लिये बारह कुल्ला करना चाहिये ॥ ५८ ॥ व छोटी अंगुली के प्रमाणभर व बकला समेत और बिन कटीहुई बारह अंगुल की प्रमाणभर बिन सूखी हुई दतून करना चाहिये ॥ ५९ ॥ व एक एक अंगुल प्रमाण भर दतून को चबावै और शुद्धि के लिये विशेष कर तीर्थ में प्रातःकाल स्नान कर नित्यकर्म करै ॥ ६० ॥ क्योंकि प्रातःकाल स्नान से सदैव मलिन यह शरीर शुद्ध होता है जो मल दिन रात नव छिद्रों से बहताहै ॥ ६१ ॥ उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप व संपत्ति को बढ़ानेवाला व महापापों का नाशक वह प्राजापत्य के समान कहागया है ॥ ६२ ॥

सरे ॥ दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ५७ ॥ अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे वाथ वासरे ॥ गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ॥ ५८ ॥ कनिष्ठाग्रपरीमाणं सत्वचं निर्व्रणारुजम् ॥ द्वादशाङ्गुलमानं च सार्द्रं स्याद्दन्तधावनम् ॥ ५९ ॥ एकैकाङ्गुलमानं तच्चर्वयेद्दन्तधावनम् ॥ प्रातः स्नानं चरित्वा च शुद्धयै तीर्थे विशेषतः ॥ ६० ॥ प्रातः स्नानाद्यतः शुद्ध्येत्कायोऽयं मलिनः सदा ॥ यन्मलं नवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ॥ प्राजापत्यसमं प्राहुस्तन्महाघविनाशकृत् ॥ ६२ ॥ प्रातः स्नानं हरेत्पापमलक्ष्मीं ग्लानिमेव च ॥ अशुचित्वं च दुःस्वप्नं तुष्टिं पुष्टिं प्रयच्छति ॥ ६३ ॥ नोपसर्प्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित् ॥ दृष्टादृष्टफलं यस्मात्प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥ ६४ ॥ प्रसङ्गतः स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ॥ विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥ ६५ ॥ विशुद्धां मृदमादाय बर्हिषस्तिलगोमयम् ॥ शुचौ देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमा

और प्रातः स्नान पाप, दरिद्रता व उदासीनता को हरता है व अशुद्धि और दुस्स्वप्न को नाशता है व तुष्टि और पुष्टि को देता है ॥ ६३ ॥ व प्रातःकाल नहानेवाले मनुष्य के समीप कभी दुष्ट नहीं जाते हैं व जिसलिये देखा व बिन देखा हुआ फल होता है उसी कारण प्रातः स्नान करै ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! मैं प्रसंग से स्नान की विधि को कहता हूं क्योंकि विद्वान् लोगों ने सामान्य स्नान से विधिस्नान को सौगुना कहा है ॥ ६५ ॥ पवित्र मिट्टी को लेकर और कुश, तिल, गोमय को शुद्ध

स्नान में स्थापन करके आचमन कर तदनन्तर स्नान करै ॥ ६६ ॥ और कुशों को लेकर शिखा को बाँधकर मनुष्य जल के मध्य में पैठे और अपनी शाखा में कही हुई विधि से विधिपूर्वक स्नान करै ॥ ६७ ॥ व इस प्रकार नहाकर बसन को निचोड़ कर धौतवस्त्रों को ग्रहण करै व आचमन कर तदनन्तर कुशों को लियेहुए मनुष्य प्रातःकाल की संध्या करै ॥ ६८ ॥ मन को दृढ़ता से रोंककर प्राणायामों को करता हुआ ब्राह्मण दिन रात में कियेहुए पापों से उसी क्षण मुक्त होजाता है ॥ ६९ ॥ मन को रोंककर यदि जिसने दश या बारह संख्यक प्राणायामों को किया उसने बड़ा तप किया है ॥ ७० ॥ और प्रतिदिन कियेहुए व्याहृती व ॐकार समेत

चरेत् ॥ ६६ ॥ उपग्रही बद्धशिखो जलमध्ये समाविशेत् ॥ स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ ६७॥ स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी ॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्रातःसन्ध्यां कुशान्वितः ॥ ६८ ॥ प्राणायामांश्चरन्विप्रो नियम्य मानसं दृढम् ॥ अहोरात्रकृतैः पापैर्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ६९ ॥ दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि ॥ नियम्य मानसं तेन तदा तप्तं महत्तपः॥ ७० ॥ सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ॥ ७१ ॥ यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ॥ तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसंयमात् ॥ ७२ ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम ॥ ७३ ॥ कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम् ॥ उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ ७४ ॥ यदह्ना कुरुते पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं

सोलह प्राणायाम महीनेभर में गर्भघाती पुरुष को भी पवित्र करते हैं ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि के संयोग से धातुवों के मल जलजाते हैं वैसेही इन्द्रियों से किये हुए दोष प्राणायाम से जलजाते हैं ॥ ७२ ॥ एकाक्षर (ॐकार) परब्रह्म है व प्राणायाम उत्तम तप है व हे नृपोत्तम ! गायत्री से परे अन्य पवित्रकारक वस्तु नहीं है ॥ ७३ ॥ मन, वचन व कर्म से मनुष्य रात्रि में जो पाप करता है प्रातःकाल की संध्या में उठता हुआ मनुष्य उसको प्राणायामों से शोधन करता है ॥ ७४ ॥ और दिन में मनुष्य मन, वचन, शरीर व कर्म से जिस पाप को करता है सायं संध्योपासन करके मनुष्य उसको प्राणायामों से नाश करता है और सायं संध्योपासन

करके दिन में कियेहुए पाप को नाश करता है ॥ ७५ ॥ और जो प्रातःसंध्या व सायंसंध्या की उपासना नहीं करता है वह सब द्विजकर्म से शूद्र की नाईं बाहर करने योग्य है ॥ ७६ ॥ जल के समीप जाकर मनुष्य नित्य कर्म को करै तदनन्तर विधिपूर्वक आचमन करै ॥ ७७ ॥ तदनन्तर आपोहिष्ठा ऐसी तीन ऋचाओं से पृथ्वी, शिर, आकाश व आकाश, पृथ्वी और मस्तक में मार्जन करै ॥ ७८ ॥ और मस्तक, आकाश व भूमि में नव स्थानों में फेंक देवै भूमिशब्द से चरण व आकाश हृदय कहागया है व शिर में शिरशब्द है उनसे मार्जन करै ॥ ७६ ॥ और पश्चिम दिशा व आग्नेय, वायव्य व पूर्व से लगाकर यह ब्राह्मस्नान मंत्रस्नान से भी श्रेष्ठ है क्यों

हन्ति दिवाकृतम् ॥ ७५ ॥ नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ ७६ ॥ अपां समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ॥ तत आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनु पूर्वशः ॥ ७७ ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं तु ततश्चरेत् ॥ भूमौ शिरसि चाकाश आकाशे भुवि मस्तके ॥ ७८ ॥ मस्तके च तथाकाशे भूमौ च नवधा क्षिपेत् ॥ भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयं स्मृतम् ॥ शिरस्येव शिरःशब्दो मार्जनं तैरुदाहृतम् ॥ ७६ ॥ वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यादपि चेन्द्रतः ॥ मन्त्रस्नानादपि परं ब्राह्मं स्नानमिदं परम् ॥ ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥ ८० ॥ सर्वत्र चार्हतामेति देवपूजादिकर्मणि ॥ नक्तंदिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमु पावनाः ॥ ८१ ॥ शतशोऽपि तथा स्नाता न शुद्धा भावदूषिताः ॥ अन्तःकरणशुद्धांश्च तान्विभूतिः पवित्रयेत् ॥ ८२ ॥ किं पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसराः ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु मलैः सर्वैर्विवर्जितः ॥ ८३ ॥ तेन क्रतुशतैरिष्टं

कि जिसने ब्राह्मस्नान से नहाया है वह बाहर व भीतरसे पवित्र होजाता है ॥ ८० ॥ और देवपूजनादिक कर्म में सब कहीं वह पूज्यता को प्राप्त होता है क्योंकि दिन रात जल में डूबकर धीवर क्या पवित्र होते हैं ॥ ८१ ॥ और भाव से दूषित सैकड़ों भांति से नहाकर मनुष्य पवित्र नहीं होते हैं और चित्त से शुद्ध उन मनुष्यों को विभूति पवित्र करती है ॥ ८२ ॥ और भस्म को लपेटे हुए गधे क्या पवित्र कहेजाते हैं उसने सब तीर्थों में नहाया और वह सब मलों से रहित होताहै ॥ ८३ ॥ व उसने

सैकड़ों यज्ञों से पूजन किया कि जिसका चित्त इस संसार में निर्मल है हे मुने ! वही चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है उसको सुनिये ॥ ८४ ॥ कि यदि विश्वेश्वर जी प्रसन्न होते हैं तो वह मन कभी अन्यथा नहीं होता है इसलिये चित्त की शुद्धि के लिये विश्वनाथजी के आश्रित होवै ॥ ८५ ॥ तो इस शरीर को छोड़कर मनुष्य परं-ब्रह्म को प्राप्त होता है तदनन्तर द्रुपदांत ऋचा तक जपकर जल को हाथ से लेकर ॥ ८६ ॥ विधि को जाननेवाला मनुष्य ऋतंच इस मंत्र से अघमर्षण करै और जल में स्नान कर जो मनुष्य तीन बार अघमर्षण मंत्र को जपता है ॥ ८७ ॥ व जल में या स्थलमें जो अघमर्षण करता है उसका पापसमूह वैसेही नाश होजाता है जैसे कि

चेतो यस्येह निर्मलम् ॥ तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने शृणु ॥ ८४ ॥ विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्तदा स्यान्नान्यथा क्वचित् ॥ तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थं काशीनाथं समाश्रयेत् ॥ ८५ ॥ इदं शरीरमुत्सृज्य परंब्रह्माधिगच्छति ॥ द्रुपदान्तं ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ॥ ८६ ॥ कुर्यादृतं च मन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ॥ निमज्ज्याप्सु च यो विद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ॥ ८७ ॥ जले वापि स्थले वापि यः कुर्यादघमर्षणम् ॥ तस्याघौघो विनश्येत यथा सूर्योदये तमः ॥ ८८ ॥ गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥ ८९ ॥ तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसाः ॥ सूर्यतेजः प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वतः ॥ ९० ॥ सहायार्थं च सूर्यस्य यो द्विजो नाञ्जलित्रयम् ॥ क्षिपेन्मन्देहनाशाय सोपि मन्देहतां व्रजेत् ॥ ९१ ॥ प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्य दर्शनम् ॥ उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात् ॥ ९२ ॥ काललोपो न कर्त्तव्यो द्विजेन स्वहितेप्सुना ॥ अर्द्धोदया

सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ८८ ॥ व शिरहीन गायत्री को महाव्याहृतियों पूर्वक व ॐकारपूर्वक जपता व खड़ा हुआ मनुष्य जल की तीन अंजलियों को फेंकै ॥ ८९ ॥ क्योंकि उस वज्र के समान जल से मंदेहा नामक राक्षस शीघ्रही नाश होजाते हैं जोकि पर्वतों के समान सूर्यनारायणके तेजको आच्छादित करते हैं ॥ ९० ॥ व सूर्यनारायण की सहायता के लिये और मंदेहा नामक राक्षसों के विनाश के लिये जो ब्राह्मण तीन अंजलियों को नहीं फेंकता है वह भी मंदेहों के समान होजाता है ॥ ९१ ॥ प्रातःकाल तबतक गायत्री को जपता हुआ मनुष्य खड़ा रहै जबतक कि सूर्य का दर्शन होवै व सायंकाल बैठाहुआ मनुष्य नक्षत्र देखनेतक जपै ॥ ९२ ॥ व अपना

हित चाहनेवाले ब्राह्मण को समय का लोप न करना चाहिये इस कारण अर्धोदय व अर्धास्त के समय में वज्रोदक को फेंके ॥ ९३ ॥ व समय व्यतीत होनेपर विधि से कीगई भी संध्या विफल होती है यही दृष्टान्त बन्ध्या स्त्री के मैथुन के समान है ॥ ९४ ॥ व जल में बायें हाथ को करके ब्राह्मण लोग जिस संध्या को करते हैं वह वृषली संध्या राक्षसगणों को आनन्ददायिनी जानने योग्य है ॥ ९५ ॥ तदनन्तर शाखा में कही हुई विधि से उपस्थान करै उसके उपरान्त हज़ारबार व सौबार गायत्री को जपकर ॥ ९६ ॥ व दशबार गायत्री को जपकर देवीजी के लिये सूर्योपस्थान करै व हज़ार उत्तम, सौ मध्यम व दश अधम ॥ ९७ ॥ गायत्री को जो ब्राह्मण

स्तसमये तस्माद्वज्रोदकं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥ विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ॥ अयमेव हि दृष्टान्तो बन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ ९४ ॥ जले वामकरं कृत्वा या सन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः ॥ वृषली सा परिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ॥ ९५ ॥ उपस्थानं ततः कुर्याच्छाखोक्तविधिना ततः ॥ सहस्रकृत्वो गायत्र्याः शतकृत्वोथवा पुनः ॥ ९६ ॥ दशकृत्वोऽथ देव्यै च कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥ ९७ ॥ गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते ॥ रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमैः कुशैः ॥ ९८ ॥ वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घं प्रदापयेत् ॥ अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यमर्चितम् ॥ ९९ ॥ अर्चितः सविता दत्ते सुतान्पशुवसूनि च ॥ व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि ॥ १०० ॥ अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः ॥ रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा ॥ १ ॥ ततस्तु तर्पणं कुर्यात्स्वशाखोक्तविधानतः ॥ ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ॥ २ ॥ चन्दना

जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता है व लालचंदन मिले हुए जल से व पुष्पों और कुशों से ॥ ९८ ॥ वेदोक्त व शास्त्रोक्त मंत्रों के द्वारा अर्घ को देवै जिसने सूर्य को पूजन किया उसने त्रिलोक को पूजा ॥ ९९ ॥ और पूजे हुए सूर्यनारायणजी पुत्र, पशु व धनों को देते हैं व रोगों को हरते हैं और आयुर्बल को देते हैं व मनोरथों को पूर्ण करते हैं ॥ १०० ॥ व ये सूर्यनारायण रुद्र हैं और ये सूर्य विष्णु हैं व ये सूर्य ब्रह्मरूप हैं और ये सूर्य त्रयीमय हैं ॥ १ ॥ उसके उपरान्त अपनी शाखा में कही हुई विधिसे ब्रह्मादिक सब देवता व मरीचि आदिक मुनियों को तर्पण करै ॥ २ ॥ चंदन, अगुरु, कपूर व सुगंधित पुष्पों व पवित्र जलों से तर्पण करै और तृप्यन्तु यह

कहै ॥ ३ ॥ व यज्ञोपवीत को गले में पहनकर सीधे कुशों को दोनों अँगूठों के मध्य में करके ब्राह्मण यवों से सनकादिक मनुष्यों को तर्पण करै ॥ ४ ॥ व अपसव्य होकर दूने कुशोंसे तिलमिश्रित जलों से कव्यवाडनलादिक दिव्य पितरों को तर्पण करै ॥ ५ ॥ व रविवार तथा शुक्लपक्ष की तेरसि, सप्तमी, रात्रि व संध्या में कल्याण को चाहनेवाला ब्राह्मण कभी तिलों से तर्पण न करै ॥ ६ ॥ व यदि करै तो श्वेतही तिलों से पुण्यवान् ब्राह्मण तर्पण करै पश्चात् नाम कहकर चौदह यमों को तर्पण करै ॥ ७ ॥ तदनन्तर अपने गोत्र को कहकर हर्ष से अपने पितरों को वाम जंघ को झुँकाकर पितृतीर्थ से मौनी ब्राह्मण तर्पण करै ॥ ८ ॥ देवता एक एक अंजली व

गुरुकर्प्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि ॥ तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विति समुच्चरेत् ॥ ३ ॥ सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पयेद्यवैः ॥ अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विजः ॥ ४ ॥ कव्यवाडनलादींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्प्पयेत् ॥ प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥ ५ ॥ रवौ शुक्लेत्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि सन्ध्ययोः ॥ श्रेयोर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्प्पणम् ॥ ६ ॥ यदि कुर्यात्ततः कुर्याच्छुक्लैरेव तिलैः कृती ॥ चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ॥ ७ ॥ ततः स्वगोत्रमुच्चार्य तर्पयेत्स्वान्पितॄन्मुदा ॥ सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यतः ॥ ८ ॥ एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादिकाः ॥ पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्ति स्त्रिय एकैकमञ्जलिम् ॥ ९ ॥ अङ्गुल्यग्रेण वै दैवमार्षमङ्गुलिमूलगम् ॥ ब्राह्ममङ्गुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्राजापतेः ॥ १० ॥ मध्येऽङ्गुष्ठप्रदेशिन्योः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥ ११ ॥ तृप्यन्तु सर्व्वे पितरो मातृमातामहादयः ॥ अन्ये च मन्त्राः प्रोक्ता ये वेदोक्ताः

सनकादिक दो दो अंजली व पितर तीन तीन व स्त्रियां एक एक अंजली को चाहती हैं ॥ ९ ॥ अंगुलियों के अग्रभाग से दैवतीर्थ है व अंगुलियों के मूल में ऋषियों का तीर्थ है व हाथ के बीच में प्रजापति का तीर्थ है व अँगूठा के मूल में ब्रह्मा का तीर्थ है ॥ १० ॥ व अँगूठा और प्रदेशिनी के मध्य में पितरों का तीर्थ कहा जाता है ब्रह्मा से लगाकर स्तंब पर्यन्त देवता, ऋषि, पितर व मनुष्य ॥ ११ ॥ माता व मातामहादिक सब पितर तृप्त होते हैं व वेदोक्त व पुराणों से उपजे हुए जो

मंत्र हैं ॥ १२ ॥ उनसे पितरों को सुखदायक अंगों समेत तर्पण करै तदनन्तर अग्निकार्य (हवन) करके उसके उपरान्त वेदाभ्यास करै ॥ १३ ॥ वेदाभ्यास पांच प्रकार का है एक स्वीकार दूसरा अर्थचिन्तन तीसरा वेदपाठ चौथा तप पांचवां शिष्यों के लिये पढ़ाना है ॥ १४ ॥ हे नृपोत्तम ! मिली वस्तु की रक्षा के लिये व बिन मिली हुई वस्तु के मिलने के लिये यह द्विजों का प्रातःकाल कार्य कहा गया है ॥ १५ ॥ अथवा प्रातःकाल उठकर आवश्यक कार्यकर शौच व आचमन करके दतून को लेकर चर्वण करै ॥ १६ ॥ व सब अंगों को शोधकर प्रातःकाल की संध्या करै और अनेक भांति के शास्त्र व वेदार्थों को पढ़ै ॥ १७ ॥ व बुद्धिसंयुत तथा

पुराणसम्भवाः ॥१२॥ साङ्गं च तर्पणं कुर्यात्पितॄणां च सुखप्रदम् ॥ अग्निकार्यं ततः कृत्वा वेदाभ्यासं ततश्चरेत्॥१३॥ श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽर्थविचारणम् ॥ अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ॥ १४॥ लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्य च लब्धये ॥ प्रातःकृत्यमिदं प्रोक्तं द्विजातीनां नृपोत्तम॥ १५ ॥ अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वा वश्यकमेव च ॥ शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ १६ ॥ विशोध्य सर्वगात्राणि प्रातःसन्ध्यां समाचरेत् ॥ वेदार्थानधिगच्छेद्दै शास्त्राणि विविधान्यपि ॥ १७॥ अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ॥ उपेयादीश्वरं चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥ १८॥ ततो मध्याह्नसिद्ध्यर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ॥ स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥ १९ ॥ देवतां परिपूज्याथ विधिं नैमित्तिकं चरेत् ॥ पवनाग्निं समुज्ज्वाल्य वैश्वदेवं समाचरेत् ॥ २० ॥ निष्पावान्कोद्रवान्माषान्कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ॥ तैलपक्वमपक्वान्नं सर्वं लवणयुक्त्यजेत् ॥ २१ ॥ आढक्यन्नं

हित व पवित्र शिष्यों को पढ़ावै और योगक्षेमादि की सिद्धि के लिये ईश्वर के समीप जावै ॥ १८ ॥ तदनन्तर मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करै व नहाकर विद्वान् मध्याह्नसंध्योपासन करै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त देवता को पूजकर नैमित्तिक विधि करै व पवनाग्निको जलाकर वैश्वदेव कर्म करै ॥ २० ॥ और निष्पाव, कोदौ, उड़द, मटर व चना को त्याग करै व तैल से पक्व और बिन पका हुआ अन्न व नमक से संयुत सब वस्तु को छोड़ देवै ॥ २१ ॥ और अरहर, मसूर व गोलधान्य से उत्पन्न

तथा भोजन से शेष व पर्युषित को वैश्वदेव कर्म में त्याग करै ॥ २२ ॥ कुशों को हाथ में लेकर आचमन व प्राणायाम करके पृषोदिवि इस मंत्रसे अभ्युक्षण करै ॥ २३ ॥ प्रदक्षिण ओर से जल को सब ओर दो बार घुमाकर कुशों को चारों ओर बिछाकर रापोर्द्धदेव इस मंत्र से अग्नि को अपने सामने करै ॥ २४ ॥ व अग्नि को चन्दन, पुष्प और अक्षतों से पूजकर विद्वान् अपनी शाखा में कही हुई विधि से होम करै ॥ २५ ॥ मार्ग चलनेवाला व क्षीण जीविकावाला तथा विद्यार्थी व गुरु को पोषण करने वाला, संन्यासी व ब्रह्मचारी ये छा धर्म के भिक्षुक हैं ॥ २६ ॥ मार्गगामी अतिथि जानने योग्य है व वेदपारगामी अनूचान है ब्रह्मलोक को चाहनेवाले गृहस्थों

मसूरान्नं वर्तुलधान्यसम्भवम् ॥ भुक्तशेषं पर्युषितं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥ २२ ॥ दर्भपाणिः समाचम्य प्राणायामं विधाय च ॥ पृषोदिवीति मन्त्रेण पर्य्युक्षणमथाचरेत् ॥ २३ ॥ प्रदक्षिणं च पर्य्युक्ष्य द्विः परिस्तीर्य वै कुशान् रापोर्द्धदेवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निं स्वसम्मुखे ॥ २४ ॥ वैश्वानरं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा ॥ स्वशाखोक्तप्रकारेण होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २५ ॥ अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेते धर्मभिक्षुकाः ॥ २६ ॥ अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः ॥ मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥ २७ ॥ अपि श्वपाके शुनि वा नैवान्नं निष्फलं भवेत् ॥ अत्रार्थिनि समायाते पात्रापात्रं न चिन्तयेत् ॥ २८ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥ काकानां च कृमीणां च बहिरन्नं किरेद्भुवि ॥ २९ ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्या वै नैर्ऋताश्च ये ॥ प्रतिगृह्णन्त्विमं पिण्डं काका भूमौ मयार्पितम् ॥ ३० ॥ इत्थं भूतबलिं कृत्वा कालं गोदोहमात्रकम् ॥

के ये दोनों मान्य हैं ॥ २७ ॥ और चाण्डाल व कुत्ते में भी अन्न निष्फल नहीं होता है व इस बलिवैश्वदेव कर्म में याचक आने पर पात्र व अपात्र को न विचारै ॥ २८ ॥ कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, कौवा व कीटों को बाहर भूमि में अन्न को फेंक देवै ॥ २९ ॥ ऐन्द्र (पूर्व) वारुण (पश्चिम) वायव्य व नैर्ऋत्य दिशा में जो वर्तमान होवैं वे काक पृथ्वी में मुझ से दिये हुए इस पिंड को ग्रहण करैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार भूतबलि करके गोदोहन समय तक आते हुए अतिथि का मार्ग देख

कर तदनन्तर भोजनागार में पैठे ॥ ३१ ॥ काकबलि को न देकर नित्यश्राद्ध करै व नित्यश्राद्ध में अपनी सामर्थ्य से तीन, दो व एक ब्राह्मण को ॥ ३२ ॥ भोजन करावै व पितृयज्ञ के लिये जल को भरकर देवै और नित्यश्राद्ध नियमादिकों से रहित व विश्वेदेव रहित करै ॥ ३३ ॥ व दक्षिणा से रहित यह श्राद्धदाता व भोजनकर्ता को तृप्तिकारक है इस प्रकार पितृयज्ञ को करके स्वस्थबुद्धि व अनातुर पुरुष ॥ ३४ ॥ उत्तम आसन पै बैठ कर बालकों समेत भोजन करै उत्तम गन्धि, उत्तम मनवाला मनुष्य माला व शुद्ध दो वसनों से संयुत ॥ ३५ ॥ पूर्व मुख या उत्तर मुख बैठ कर पितृसेवित अन्न को भोजन करै और उसके ऊपर व नीचे अन्न

प्रतीक्ष्यातिथिमायातं विशेद्भोज्यगृहं ततः ॥ ३१ ॥ अदत्त्वा वायसबलिं नित्यश्राद्धं समाचरेत् ॥ नित्यश्राद्धेस्व सामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापि वा ॥ ३२ ॥ भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्य वारि च ॥ नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादि विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ दक्षिणारहितं त्वेतद्दातृभोक्तृसुतृप्तिकृत् ॥ पितृयज्ञं विधायेत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥ ३४ ॥ अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ॥ सुगन्धिः सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥ ३५ ॥ प्रागास्य उदगास्यो वा भुञ्जीत पितृसेवितम् ॥ विधायान्नमनग्नं तदुपरिष्टादधस्तथा ॥ ३६ ॥ आपोशानविधानेन कृत्वाश्नीयात्सुधीर्द्विजः ॥ भूमौ बलित्रयं कुर्यादपो दद्यात्तदोपरि ॥ ३७ ॥ सकृच्चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ॥ दद्याज्जठरकुण्डाग्नौ दर्भपाणिः प्रसन्नधीः ॥ ३८ ॥ दर्भपाणिस्तु यो भुङ्क्ते तस्य दोषो न विद्यते ॥ केशकीटादिसम्भूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ॥ ३९ ॥ ततो मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ॥ प्रक्षालितऽव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥ ४० ॥ रौरवेऽ

को आच्छादित करके ॥ ३६ ॥ आपोशान विधि से करके विद्वान् ब्राह्मण भोजन करै और पृथ्वी में तीन बलि करै व उसके ऊपर जलको देवै ॥ ३७ ॥ और एक बार जलको आचमन कर प्रसन्नबुद्धि मनुष्य कुशों को हाथ में लेकर उदररूपी कुण्ड की अग्नि में प्राणादिक पांच आहुतियों को देवै ॥ ३८ ॥ कुशों को हाथ में लियेहुए जो मनुष्य भोजन करता है उसको केश कीटादिकों से उपजा हुआ दोष नहीं होता है इस कारण कुशों समेत मनुष्य भोजन करै ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मौन भोजन करै व दन्तघर्षण न करै और धोने योग्य हाथवाला मनुष्य दाहिने अंगूठा के मूल से ॥ ४० ॥ पापस्थानवाले रौरव नरक में अधोलोकनिवासी उच्छिष्ट जल को चाहनेवाले

पितरों को अक्षय्योदक देवै ॥ ४१ ॥ फिर आचमन कर बुद्धिमान् बड़े यत्न से पवित्र होकर तदनन्तर मुखशुद्धि करके पुराणश्रवणादिकों से ॥ ४२ ॥ शेष दिनको व्यतीत कर तदनन्तर संध्या करै गृहों में सामान्य संध्या होती है व गोशाला में दशगुनी कही गई है ॥ ४३ ॥ व नदी में दश हज़ार संख्यक होती है और शिवजी के समीप अनन्त संध्या होती है असत्य, मदिरा की गन्ध व दिनमें मैथुन और शूद्रस्थान को गांव बाहर कीहुई संध्या पवित्र करती है ॥ ४४ ॥ उद्देशसे यह नित्य विधि कहीगई इस प्रकार करता हुआ द्विज कभी दुःखी नहीं होता है ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसदाचारवर्णनन्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

पुण्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ॥ उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ४१ ॥ पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ॥ मुखशुद्धिं ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः ॥ ४२ ॥ अतिवाह्य दिवाशेषं ततः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ गृहेषु प्राकृता सन्ध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ॥ ४३ ॥ नद्यामयुतसंख्या स्यादनन्ता शिवसन्निधौ ॥ अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ॥ पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥ ४४ ॥ उद्देशतः समाख्यात एष नित्यतनो विधिः ॥ इत्थं समाचरन्विप्रो नावसीदति कर्हिचित् ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये सदाचारवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ उपकाराय साधूनां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ यथा च क्रियते धर्मो यथावत्कथयामि ते ॥ १ ॥ वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् ॥ पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥ २ ॥ पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ॥ कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पितरोऽसुराः ॥ ३ ॥ गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति

दो० । धर्मारण्यनिवासिकर यथा धर्म आचार । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र सुखार ॥ व्यासजी बोले कि गृहस्थाश्रमनिवासी साधुवों के उपकार के लिये जिस प्रकार धर्म किया जाता है उसको मैं यथायोग्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि हे वत्स ! गृहस्थाश्रम में प्राप्त होकर मनुष्य इस सब संसार को पुष्ट करता है उससे मनुष्य लोकों को जीतता है व मनोरथों को पाता है ॥ २ ॥ पितर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट व पतंग, पक्षी, पितर व दैत्य ॥ ३ ॥ ये गृहस्थ ही से जीते हैं व उसी

से तृप्ति को प्राप्त होते हैं व इसका मुख देखते हैं कि यह हमको जल देवैगा ॥ ४ ॥ हे वत्स ! यह त्रयीमयी धेनु सब की आधारभूत है इसमें संसार प्रतिष्ठित है जोकि संसार का कारण है ॥ ५ ॥ व इस धेनु की पृष्ठ (पीठ) ऋग्वेद है व यजुर्वेद मध्यभाग है और सामवेद कुक्षि व स्तन हैं व इष्टापूर्त शृंग हैं और उत्तम सूक्त रोम हैं ॥ ६ ॥ और शान्ति व पुष्टि के कर्म उस धेनु का मल मूत्र है व अक्षररूपी चरणों से प्रतिष्ठित है और पदक्रमरूपी जटाघनों से लोकों की उपजीविका है ॥ ७ ॥ व हे पुत्र ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार व अन्य हन्तकार उस धेनु के चारों स्तनहैं ॥ ८ ॥ स्वाहाकाररूपी स्तन को देवता व स्वधामय स्तन को पितर व मुनि और

च ॥ मुखं वास्य निरीक्षन्ते अपो नो दास्यतीति च ॥ ४ ॥ सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी ॥ अस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥ ५ ॥ ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामकुक्षिपयोधरा ॥ इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा ॥ ६ ॥ शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ॥ उपजीव्यमाना जगतां पदक्रमजटाघनैः ॥ ७ ॥ स्वाहाकारस्वधाकारौ वषट्कारश्च पुत्रक ॥ हन्तकारस्तथैवान्यस्तस्याःस्तनचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ स्वाहाकारस्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम् ॥ मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेश्वराः ॥ ९ ॥ हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् ॥ एवमाप्यायते ह्येषा देवादीनखिलांस्त्रयी ॥ १० ॥ तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽनन्तपापकृत् ॥ स तमस्यन्धतामिस्रे नरके हि निमज्जति ॥ ११ ॥ यस्त्वेनां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥ पाययत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते ॥ १२ ॥ तस्मात्पुत्र मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः ॥ भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा ॥ १३ ॥ तस्मात्स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षि

देवता, भूत व सुरेश्वर वषट्काररूपी स्तन को पीते हैं ॥ ९ ॥ और हन्तकाररूपी स्तनको सदैव मनुष्य पीते हैं इस प्रकार सब देवादिकों को यह वेदत्रयी तृप्त करती है ॥ १० ॥ व उनको नाश करनेवाला जो बहुत पापकारी मनुष्य है वह अन्धतामिस्र नामक अन्ध नरक में मग्न होता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इस गऊ को उचित समय में अपने देवादिक बछड़ों से पिलाता है वह स्वर्ग के लिये सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ इस कारण हे पुत्र ! प्रतिदिन मनुष्य को अपने शरीर की नाईं देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य व भूतों को पोषण करना चाहिये ॥ १३ ॥ उस कारण नहाये हुए सावधान मनुष्य पवित्र होकर ब्रह्मयज्ञ के अन्त समय में जल से देवता, ऋषि व

पितरों का तर्पण करै ॥ १४ ॥ और पुष्प, चन्दन व धूप से देवताओं को पूजकर मनुष्य अग्नि को तृप्त करै तदनन्तर बलियों को देवै ॥ १५ ॥ राक्षसों व भूतों को आकाश में बलि देवै तदनन्तर वैसेही दक्षिण मुख होकर पितरों को बलि देवै ॥ १६ ॥ तदनन्तर सावधानमनवाला विद्वान् गृहस्थ तत्पर होकर जल को लेकर नाम से देवताओं को उद्देश कर उन स्थानों में आचमन कार्य के लिये फेंक देवै इस प्रकार पवित्र होकर गृहस्थ गृह में गृहबलि करके ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर आचमन करके विद्वान् द्वार को देखै तदनन्तर मुहूर्त याने कच्ची दो घड़ी के आठवें भाग तक अतिथि को देखै ॥ १९ ॥ और वहां प्राप्तहुए अतिथि को अर्घ्य, पाद्य जल से

पितृतर्पणम् ॥ यज्ञस्यान्ते तथैवाद्भिः काले कुर्यात्समाहितः ॥ १४ ॥ सुमनोगन्धधूपैश्च देवानभ्यर्च्य मानवः ॥ ततोग्नेस्तर्पणं कुर्याद्दद्याच्चापि बलींस्तथा ॥ १५ ॥ नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ॥ पितॄणां निर्वपेत्तद्द्दक्षिणाभिमुखस्ततः ॥ १६ ॥ गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ॥ ततस्तोयमुपादाय तेष्वेवाचमनक्रियाम् ॥ १७ ॥ स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञो नाम्ना तूद्दिश्य देवताः ॥ एवं गृहबलिं दत्त्वा गृहे गृहपतिः शुचिः ॥ १८ ॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वारावलोकनम् ॥ मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्षेतातिथिं ततः ॥ १९ ॥ अतिथिं तत्र संप्राप्तमर्घ्यपाद्योदकेन च ॥ बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिंचनम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं संपूज्य शक्तितो बुधैः ॥ न पृच्छेत्तत्राचरणं स्वाध्यायं चापि पण्डितः ॥ २१ ॥ शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २२ ॥ तस्मै दत्त्वा तु यो भुङ्क्ते स तु भुङ्क्तेऽमृतं नरः ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति नि

पूजै क्षुधित, आयेहुए थके व मांगते हुए अकिंचन ॥ २० ॥ ब्राह्मण को अतिथि कहते हैं उस अतिथि को शक्ति के अनुसार विद्वानों को पूजना चाहिये उस अतिथि में विद्वान् स्वाध्याय व आचरण को न पूंछै ॥ २१ ॥ बरन उत्तम व अनुत्तम आकारवाले उस अतिथि को ब्रह्मा मानै जिस लिये वह नित्य नहीं स्थित होता है उसी कारण वह अतिथि कहाजाता है ॥ २२ ॥ उसके लिये देकर जो मनुष्य भोजन करता है वह अमृत भोजन करता है और जिसके घर से भंग आश होकर

अतिथि लौट जाता है ॥ २३ ॥ वह उसको पाप देकर व पुण्य को लेकर चला जाता है इस कारण शाकदान या जलदान से भी उसको मनुष्य शक्ति के अनुसार पूजै तो उसीसे वह मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर जी बोले कि ब्राह्म, दैव व आर्षविवाह व प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस व आठवां पैशाच कहाजाता है ॥ २५ ॥ इनकी विधि व कार्य को यथार्थ कहिये और विशेष कर तुम मुझ से गृहस्थों के धर्मों को कहो ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि वर को बुलाकर अलंकार कीहुई कन्या जिस में दीजाती है वह ब्राह्म विवाह है उसका पुत्र इक्कीस पुश्तियों को तारता है ॥ २७ ॥ और यज्ञ में स्थित ऋत्विज् के लिये जो कन्यादान है वह

वर्त्तते ॥ २३ ॥ स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ अपि वा शाकदानेन यद्वा तोयप्रदानतः ॥ पूजयेत्तं नरः शक्त्या तेनैवातो विमुच्यते ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विवाहा ब्राह्मदैवार्षाः प्राजापत्यासुरौ तथा ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चापि पैशाचोष्टम उच्यते ॥ २५ ॥ एतेषां च विधिं ब्रूहि तथा कार्यं च तत्त्वतः ॥ गृहस्थानां तथा धर्मान्ब्रूहि मे त्वं विशेषतः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ स ब्राह्मो वरमाहूय यत्र कन्या स्वलंकृता ॥ दीयते तत्सुतः पूयात्पुरुषानेकविंशतिम् ॥ २७ ॥ यज्ञस्थायर्त्विजे दैवस्तज्जः पाति चतुर्दश ॥ वरादादाय गोद्वन्द्वमार्षस्तज्जः पुनाति षट् ॥ २८ ॥ सहोभौ चरतां धर्मं प्राजापत्यः स ईरितः ॥ वरवध्वोः स्वेच्छया च गान्धर्वोऽन्योन्यमैत्रतः ॥ प्रसह्य कन्याहरणाद्राक्षसो निन्दितः सताम् ॥ २९ ॥ छलेन कन्याहरणात्पैशाचो गर्हितोष्टमः ॥ प्रायः क्षत्रविशोरुक्ता गान्धर्वासुरराक्षसाः ॥ ३० ॥ अष्टम

दैवविवाह है उससे पैदाहुआ पुत्र चौदह पुश्तियों की रक्षा करता है और वर से एक गऊ व एक बैल को लेकर जो विवाह होता है वह आर्ष है उससे पैदाहुआ पुत्र छः पुश्तियों को तारता है ॥ २८ ॥ और तुम दोनों साथही धर्म करो यह कहकर जो कियाजावै वह प्राजापत्य विवाह कहागया है और परस्पर मैत्री से अपनी इच्छा से वर, वधू का विवाह गान्धर्व है और हठ से कन्या को हरने से राक्षसविवाह सज्जनों को निन्दित है ॥ २९ ॥ और छलसे कन्या को हरने से आठवां पैशाचविवाह निन्दित है प्रायः क्षत्रिय व वैश्यों को गान्धर्व, आसुर व राक्षस विवाह कहेगये हैं ॥ ३० ॥ और यह आठवां पिशाचविवाह पापिष्ठ है व पापिष्ठों

को उत्पन्न करनेवाला है समानजातिवाली (ब्राह्मणी) कन्या को हाथ पकड़ना चाहिये और क्षत्रिया को बाण लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ व वैश्या स्त्री को चाबुक व शूद्रा को वस्त्रान्तभाग धारण करना चाहिये असवर्णा स्त्रियों के विषय में यह विधि स्मृति व वेद में कहीगई है ॥ ३२ ॥ और सब सवर्णा स्त्रियों को हाथ पकड़ना चाहिये यह विधि है व धर्म्यविवाह में सौ वर्ष आयुर्बलवाले व धर्मवान् पुत्र पैदा होते हैं ॥ ३३ ॥ व अधर्म्यविवाह से धर्मरहित व मन्दभाग्य तथा निर्धनी व अल्पायु होते हैं और ऋतुसमय में स्त्री का संग करना यह गृहस्थ का उत्तम धर्म है ॥ ३४ ॥ या स्त्रियों के वर को स्मरण कर इच्छा के अनुकूल होवै और दिन में

स्त्वेष पापिष्ठः पापिष्ठानां च सम्भवः ॥ सवर्णया करो ग्राह्यो धार्यः क्षत्रियया शरः ॥ ३१ ॥ प्रतोदो वैश्यया धार्यो वासोन्तः शूद्रया तथा ॥ असवर्णास्वेष विधिः स्मृतौ दृष्टश्च वेदने ॥ ३२ ॥ सवर्णाभिस्तु सर्वाभिः पाणिर्ग्राह्य स्त्वयं विधिः ॥ धर्म्ये विवाहे जायन्ते धर्म्याः पुत्राः शतायुषः ॥ ३३ ॥ अधर्म्याद्धर्म्मरहिता मन्दभाग्यधनायुषः ॥ ऋतुकालाभिगमनं धर्मोयं गृहिणः परः ॥ ३४ ॥ स्त्रीणां वरमनुस्मृत्य यथाकाम्यथवा भवेत् ॥ दिवाभिगमनं पुंसा मनायुष्यं परं मतम् ॥ ३५ ॥ श्राद्धाहःसर्वपर्वाणि न गन्तव्यानि धीमता ॥ तत्र गच्छन्स्त्रियं मोहाद्धर्मात्प्रच्यवते प रात् ॥ ३६ ॥ ऋतुकालाभिगामी यः स्वदारनिरतश्च यः ॥ स सदा ब्रह्मचारी हि विज्ञेयः स गृहाश्रमी ॥ ३७ ॥ आर्षे वि वाहे गोद्वन्द्वं यदुक्तं तन्न शस्यते ॥ शुल्कमण्वपि कन्यायाः कन्याविक्रयपापकृत् ॥ ३८ ॥ अपत्यविक्रयात्कल्पं वसेद्विट

स्त्री का संग करना पुरुषों को बहुतही अनायुष्य मानागया है ॥ ३५ ॥ और श्राद्धदिन में व सब पर्वों में बुद्धिमान् मनुष्य को स्त्री का संग न करना चाहिये क्योंकि उसमें मोह से स्त्री के समीप जाताहुआ पुरुष उत्तम धर्म से च्युत होजाता है ॥ ३६ ॥ और ऋतुसमय में जो स्त्री के समीप जाता है व जो अपनीही स्त्री से स्नेह करता है वह सदैव ब्रह्मचारी व गृहस्थ जानने योग्य है ॥ ३७ ॥ आर्षविवाह में जो दो गौवों का देना कहा है वह उत्तम नहीं होता है क्योंकि कन्या का थोड़ा भी शुल्क (मूल्य धन) कन्याविक्रय का पापकारी होता है ॥ ३८ ॥ और सन्तान को बेंचने से मनुष्य कल्पपर्यन्त विष्ठा व कृमि के भोजन में बसता है इस कारण थोड़ा भी

कन्या का धन मनुष्यों से जीविका के योग्य नहीं होता है ॥ ३९ ॥ वहां विष्णु समेत महालक्ष्मी जी प्रसन्न होकर बसती हैं वाणिज्य, नीचसेवा व वेदोंका न पढ़ना ॥ ४० ॥ निन्दित ब्याह व कर्म का लोप ये वंश में हीनता का कारण हैं और विवाहकी अग्नि में गृहस्थ प्रतिदिन गृह्यकर्म करै ॥ ४१ ॥ व पंचयज्ञ कर्म और प्रतिदिन पाक करै व गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन पंचसूना का कर्म होता है ॥ ४२ ॥ ओखली, चक्की, चुल्ही, जल का घट व मार्जनी (झाडू) उन पांचों वधस्थानों के निकालने के कारणरूप पांच यज्ञ गृहस्थाश्रम के कल्याण को बढ़ानेवाले कहेगये हैं ॥ ४३ ॥ पढ़ना ब्रह्मयज्ञ है व तर्पण पितृयज्ञ है होम दैवयज्ञ है व बलि भूतयज्ञ है और अतिथि

क्रमिभोजने ॥ अतो नाण्वपि कन्याया उपजीव्यं नरैर्धनम् ॥ ३९ ॥ तत्र तुष्टा महालक्ष्मीर्निवसेद्दानवारिणा ॥ वाणिज्यं नीचसेवा च वेदानध्ययनं तथा ॥ ४० ॥ कुविवाहः क्रियालोपः कुले पतनहेतवः ॥ कुर्याद्वैवाहिके चाग्नौ गृह्यकर्म्मान्वहं गृही ॥ ४१ ॥ पञ्चयज्ञक्रियां चापि पक्तिं दैनन्दिनीमपि ॥ गृहस्थाश्रमिणः पञ्चसूनाकर्म दिने दिने ॥ ४२ ॥ कुण्डनी पेषणी चुल्ली ह्युदकुम्भी तु मार्जनी ॥ तासां च पञ्चसूनानां निराकरणहेतवः ॥ क्रतवः पञ्च निर्द्दिष्टा गृहिश्रेयोभिवर्द्धनाः ॥ ४३ ॥ पठनं ब्रह्मयज्ञः स्यात्तर्पणं च पितृक्रतुः ॥ होमो दैवो बलिर्भौत आतिथ्यं नृक्रतुः क्रमात् ॥ ४४ ॥ वैश्वदेवान्तरे प्राप्तः सूर्योढो वातिथिः स्मृतः ॥ अतिथेरादितोप्येते भोज्या नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतं गृही ॥ अदत्त्वान्नं च यो भुङ्क्ते केवलं स्वोदरम्भरिः ॥ ४६ ॥ वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः ॥ सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ॥ ४७ ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु भु

को भोजन देना नरयज्ञ है ये क्रमसे हैं ॥ ४४ ॥ व वैश्वदेवकर्म के मध्य में प्राप्त व सूर्य से लायाहुआ अतिथि कहागया है और अतिथि के पहले भी ये भोजन के योग्य हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ पितर, देवता व मनुष्यों के लिये देकर गृहस्थ अमृत को भोजन करता है व इनको न देकर जो अन्न भोजन करता है वह केवल अपने पेट को भरनेवाला है ॥ ४६ ॥ जो वैश्वदेव से हीन व जो आतिथ्य से रहित हैं वेदों को पढ़ेहुए भी वे द्विज शूद्र जानने योग्य हैं ॥ ४७ ॥ व

वैश्वदेवको न करके जो नीच द्विज भोजन करते हैं इस लोक में वे अन्नहीन होते हैं इसके उपरान्त काकयोनि को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ निरालसी पुरुष वेदोक्त विदित कर्म को नित्य करै यदि शक्ति के अनुसार उसको करता है तो उत्तम गति को पाता है ॥ ४९ ॥ छठि व अष्टमी में पाप क्रम से तैल व मांस में बसता है वैसेही चौदसि व अमावस में क्रमसे क्षुर व योनि में बसता है ॥ ५० ॥ और उदय व अस्त होतेहुए सूर्य को न देखै और मस्तक पै व राहु से ग्रस्त तथा अण्डस्थ सूर्यनारायण को न देखै ॥ ५१ ॥ और जल में अपने रूप को न देखै न कीचड़ में दौड़ै और नग्न स्त्री को न देखै न नग्न होकर जल में प्रवेश करै ॥ ५२ ॥ और देवमन्दिर,

ञते ये द्विजाधमाः ॥ इह लोकेन्नहीनाः स्युः काकयोनिं व्रजन्त्यथो ॥ ४८ ॥ वेदोक्तं विदितं कर्म्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ यदि कुर्याद्यथाशक्ति प्राप्नुयात्सद्गतिं पराम् ॥४९॥ षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापं तैले मांसे सदैव हि ॥ चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां तथैव च क्षुरे भगे ॥ ५० ॥ उदयन्तं न वीक्षेत नास्तं यन्तं न मस्तके ॥ न राहुणोपसृष्टं च नाण्डस्थं वीक्षयेद्रविम् ॥ ५१ ॥ न वीक्षेतात्मनो रूपमप्सु धावेन्न कर्दमे ॥ न नग्नां स्त्रियमीक्षेत न नग्नो जलमाविशेत् ॥ ५२ ॥ देवतायतनं विप्रं धेनुं मधु मृदं तथा ॥ जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तथैव च ॥ ५३ ॥ अश्वत्थं चैत्यवृक्षं च गुरुं जलभृतं घटम् ॥ सिद्धान्नं दधि सिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ५४ ॥ रजस्वलां न सेवेत नाश्नीयात्सह भार्यया ॥ एकवासा न भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने ॥ ५५ ॥ नाशुचिं स्त्रियमीक्षेत तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥ असन्तर्प्य पितॄन्देवान्नाद्यादन्नं च कुत्रचित् ॥ ५६ ॥ पक्कान्नं चापि नो मांसं दीर्घकालं जिजीविषुः ॥ न मूत्रणं व्रजे कुर्यान्न वल्मीके न

ब्राह्मण, गऊ, शहद, मिट्टी, जाति में वृद्ध, अवस्था में वृद्ध व विद्या में वृद्ध ॥ ५३ ॥ व पीपल, यज्ञस्थानवृक्ष, गुरु और जल से भरेहुए घट, सरसों व दही की सिद्धि के लिये जाताहुआ मनुष्य प्रदक्षिणा करै ॥ ५४ ॥ व रजस्वला स्त्री को न सेवन करै और न स्त्री के साथ भोजन करै व एकवसन होकर भोजन न करै और उग्र आसन पै भोजन न करै ॥ ५५ ॥ व तेजको चाहनेवाला द्विजोत्तम अशुद्ध स्त्री को न देखै और पितरों व देवताओं को न तृप्त करके कभी अन्न को न खावै ॥ ५६ ॥ और

दीर्घ काल तक जीने की इच्छावाला मनुष्य पक्कान्न व मांस को न खावै और गोस्थान, बेंबौरि व भस्म में मूत्र न करै ॥ ५७ ॥ और जीव समेत गढ़ों में मूत्र न करै व खड़ा और चलताहुआ भी मनुष्य पेशाब न करै और ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र व गुरुवों को ॥ ५८ ॥ सामने देखताहुआ मनुष्य मल, मूत्र त्याग न करै और मुख से अग्नि को न फूंकै और नग्न स्त्री को न देखै ॥ ५९ ॥ और चरणों को अग्नि में न तपावै न अशुद्ध वस्तु को फेंकै व प्राणियों की हिंसा न करै और दोनों सन्ध्याओं में भोजन न करै ॥ ६० ॥ व प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या में विद्वान् कभी शयन न करै और पिलाती हुई गऊ को न कहै न इन्द्रधनुष

भस्मनि ॥ ५७ ॥ न गर्त्तेषु ससत्त्वेषु न तिष्ठन्न व्रजन्नपि ॥ ब्राह्मणं सूर्यमग्निं च चन्द्रऋक्षगुरूनपि ॥ ५८ ॥ अभिपश्यन्न कुर्वीत मलमूत्रविसर्जनम् ॥ मुखेनोपधमेन्नाग्निं नग्नां नेक्षेत योषितम् ॥ ५९ ॥ नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्तु अशुचि क्षिपेत् ॥ प्राणिहिंसां न कुर्वीत नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ६० ॥ न संविशेच्च सन्ध्यायां प्रातः सायं क्वचिद् बुधः ॥ नाचक्षीत धयन्तीं गां नेन्द्रचापं प्रदर्शयेत् ॥ ६१ ॥ नैकः सुप्यात्क्वचिच्छून्ये न शयानं प्रबोधयेत् ॥ पन्थानं नैकलो यायान्न वार्य्यञ्जलिना पिबेत् ॥ ६२ ॥ न दिवोद्धृतसारं च भक्षयेद्दधि नो निशि ॥ स्त्रीधर्मिणीं नाभिवदेन्नाद्यादातृप्ति रात्रिषु ॥ ६३ ॥ तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत् ॥ श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ ६४ ॥ दातुः श्राद्धफलं नास्ति भोक्ता किल्बिषभुग्भवेत् ॥ न धारयेदन्यभुक्तं वासश्चोपानहावपि ॥ ६५ ॥ न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते ॥ आरोहणं गवां पृष्ठे प्रेतधूमं

को दिखावै ॥ ६१ ॥ व अकेला कभी शून्यस्थान में शयन न करै और न सोतेहुए मनुष्य को जगावै व अकेला मार्ग में न जावै और जल को अंजलि से न पियै ॥ ६२ ॥ और दिन में मठा व रात्रि में दही को न खावै और रजस्वला स्त्री से संभाषण न करै व रात्रियों में तृप्ति पर्यन्त भोजन न करै ॥ ६३ ॥ और नृत्य, गीत व बाजन ये तीनों प्रिय न होवैं व कांस्यपात्र में चरणों को न धुलावै और ज्ञान से वर्जित जो मनुष्य श्राद्ध करके पराये श्राद्ध में भोजन करता है ॥ ६४ ॥ तो दाता को श्राद्ध का फल नहीं होता है व भोजनकर्ता पापभोगी होता है और अन्य से पहनेहुए वसन व पनही को धारण न करै ॥ ६५ ॥ और फूटे बर्तन में न खावै व अग्नि आदि से

दूषित आसन पै न बैठे व गौवों की पीठ पै चढ़ना, प्रेत का धुवां और नदी का किनारा ॥ ६६ ॥ व बालातप और दिन में शयन बहुत दीर्घ समय तक जीने की इच्छावाला पुरुष वर्जित करै और स्नान करके अंग को न पोंछै व मार्ग में चोटी को न छोड़ै ॥ ६७ ॥ और हाथों व पैरों को न कँपावै व पैर से आसन को न खींचै और हाथ से शरीर को न पोंछै न स्नानवाले वस्त्रसे पोंछै ॥ ६८ ॥ और जो शरीर कुत्ता से उच्छिष्ट होता है वह फिर स्नान से शुद्ध होता है और दांत से कभी रोम व नख को न काटै ॥ ६९ ॥ व शुभके लिये नखों से नख का छेदन न करै और जिसको विपत्ति में छोड़ देवै उस कर्म को बड़े यत्न से भी न करै ॥ ७० ॥ और अपने घर

सरित्तटम् ॥ ६६ ॥ बालातपं दिवास्वापं त्यजेद्दीर्घं जिजीविषुः ॥ स्नात्वा न मार्जयेद्गात्रं विसृजेन्न शिखां पथि ॥ ६७ ॥ हस्तौ शिरो न धुनुयान्नाकर्षेदासनं पदा ॥ करेण नो मृजेद्गात्रं स्नानवस्त्रेण वा पुनः ॥ ६८ ॥ शुनोच्छिष्टं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन ॥ ६९ ॥ करजैः करजच्छेदं विवर्जयेच्छुभाय तु ॥ यदापत्त्यां त्यजेत्तन्न कुर्यात्कर्म प्रयत्नतः ॥ ७० ॥ अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्मापि कदाचन ॥ क्रीडेन्नाज्ञैः सहासीत न धर्म्मघ्नैर्न रोगिभिः ॥ ७१ ॥ न शयीत क्वचिन्नग्नः पाणौ भुञ्जीत नैव च ॥ आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालं च जीवति ॥ ७२ ॥ संविशेन्नार्द्रचरणो नोच्छिष्टः क्वचिदाव्रजेत् ॥ शयनस्थो न चाश्नीयान्न पिबेच्च जलं द्विजः ॥ ७३ ॥ सोपानत्को नोपविशेन्न जलं चोत्थितः पिबेत् ॥ सर्व्वमम्लमयं नाद्यादारोग्यस्याभिलाषुकः ॥ ७४ ॥ न निरीक्षेत विण्मूत्रे नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ॥ नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥ ७५ ॥

को भी कभी बिन द्वार न जावै और मूर्खों के साथ व धर्मनाशक तथा रोगियों के साथ क्रीड़ा न करै ॥ ७१ ॥ कभी नग्न न सोवै और हाथ में कभी भोजन न करै व भीगे चरण हाथ व मुखवाला मनुष्य भोजन करता हुआ बहुत समय तक जीता है ॥ ७२ ॥ और भीगे चरणोंवाला मनुष्य कभी शयन न करै व उच्छिष्ट होकर कहीं न जावै व शय्या पै बैठा हुआ द्विज न भोजन करै न जल को पियै ॥ ७३ ॥ और पनहियों समेत न बैठे न उठकर जल को पियै व नीरोगता का अभिलाषी मनुष्य सब खट्टी वस्तु को न खावै ॥ ७४ ॥ व मल, मूत्र को न देखै और उच्छिष्ट होकर शिर को न छुवै व भूसी, अंगार, भस्म, बाल व कपाल के ऊपर न बैठै ॥ ७५ ॥

और धर्म से भ्रष्ट मनुष्यों के साथ निवास पतनही के लिये होता है और कभी शूद्र के लिये ऊंचा आसन व पलँग न देवै ॥ ७६ ॥ क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणता से हीन होजाता है व शूद्र धर्म से हीन होजाता है और शूद्रों को धर्म का उपदेश अपने कल्याण को नाश करता है ॥ ७७ ॥ और द्विजों की सेवा शूद्रों का परम धर्म माना गया है व हाथों से शिर का खुजलाना उत्तम नहीं मानागया है ॥ ७८ ॥ वैदिक मन्त्र को कभी शूद्र के लिये न उपदेश करै क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणता से हीन होजाता है व शूद्र धर्म से रहित होजाता है ॥ ७९ ॥ हाथों से मारना व निन्दा करना और बाल काटना व शास्त्र के विपरीत बर्ताव करना और लोभी से दान को लेकर ॥ ८० ॥

पतितैः सह संवासः पतनायैव जायते ॥ दद्यादूर्ध्वासनं मञ्चं न शूद्राय कदाचन ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्माच्च हीयते ॥ धर्मोपदेशः शूद्राणां स्वश्रेयः प्रतिघातयेत् ॥ ७७ ॥ द्विजशुश्रूषणं धर्म्मः शूद्राणां हि परो मतः ॥ कण्डूयनं हि शिरसः पाणिभ्यां न शुभं मतम् ॥ ७८ ॥ आदिशेद्वैदिकं मन्त्रं न शूद्राय कदाचन ॥ ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्म्माच्च हीयते ॥ ७९ ॥ आताडनं कराभ्यां च क्रोशनं केशलुञ्चनम् ॥ अशास्त्रवर्तनं भूयो लुब्धात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणः स च वै याति नरकानेकविंशतिम् ॥ अकालमेघस्तनिते वर्षर्तौ पांसुवर्षणे ॥ ८१ ॥ महा बालध्वनौ रात्रावनध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ उल्कापाते च भूकम्पे दिग्दाहे मध्यरात्रिषु ॥ ८२ ॥ सन्ध्ययोर्वृषलोपान्ते राज्यहारे च सूतके ॥ दशाष्टकासु भूतायां श्राद्धाहे प्रतिपद्यपि ॥ ८३ ॥ पूर्णिमायां तथाष्टम्यां श्वरुते राष्ट्रविप्लवे ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे कल्पादिषु युगादिषु ॥ ८४ ॥ आरण्यकमधीत्यापि बाणसाम्नोरपि ध्वनौ ॥ अनध्यायेषु चैतेषु

वह ब्राह्मण इक्कीस नरकों को जाता है व बिन समय मेघशब्द होने पर और वर्षा ऋतु में धूलि बरसने पर ॥ ८१ ॥ व रात्रि में महाबालध्वनि में अनध्याय कहेगये हैं और उल्कापात, भूकम्प, दिग्दाह व मध्य रात्रियों में ॥ ८२ ॥ और संध्या व शूद्रके समीप तथा राज्यहरण और सूतक में व दश अष्टकाओं में व चतुर्दशी तथा श्राद्धदिन और परेवा में ॥ ८३ ॥ व पूर्णिमा, अष्टमी व कुत्ता के शब्द में और राज्यभंग में व उपाकर्म और मलमूत्र त्याग और कल्पादिक व युगादिक तिथियों में ॥ ८४ ॥ व वनपर्व

को पढ़कर और बाण व सामवेद की भी ध्वनि में इन अनध्यायों में कभी न पढ़ै ॥ ८५ ॥ और चतुर्दशी, अष्टमी व अमावस, पौर्णमासी में सदैव ब्रह्मचारी होवै क्योंकि इन तिथियों में परस्त्रीगमन अनायुर्बलकारक होताहै इससे उसको व शत्रुवों का सेवन दूर से त्याग करै ॥ ८६ ॥ और पहले की ऋद्धियों से रहित अपना को अपमान न करावै क्योंकि सदैव उद्यमी पुरुषों को लक्ष्मी और विद्या दुर्लभ नहीं होती हैं ॥ ८७ ॥ और सत्य व प्रिय वचन कहै परन्तु अप्रिय सत्य न कहै व प्रिय असत्यको भी न कहै यही धर्म कियागया है ॥ ८८ ॥ व वचनवेग, मनवेग और जिह्वा का वेग वर्जित करै व गुह्य इन्द्रियों में उपजेहुए जो लोम हैं उनके स्पर्श से मनुष्य अशुद्ध होता

चाधीयीत न वै क्वचित् ॥ ८५ ॥ भूताष्टम्योः पञ्चदश्योर्ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥ अनायुष्यकरं चेह परदारोपसर्पणम् ॥ तस्मात्तद्दूरतस्त्याज्यं वैरिणां चोपसेवनम् ॥ ८६ ॥ पूर्वर्द्धिभिः परित्यक्तमात्मानं नावमानयेत् ॥ सदोद्यमवतां य स्माच्छ्रियो विद्या न दुर्लभाः ॥ ८७ ॥ सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥ प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते ॥ ८८ ॥ वाचोवेगं मनोवेगं जिह्वावेगं च वर्जयेत् ॥ गुह्यजान्यपि लोमानि तत्स्पर्शादशुचिर्भवेत् ॥ ८९ ॥ पाद धौतोदकं मूत्रमुच्छिष्टान्युदकानि च ॥ निष्ठीवनं च श्लेष्माणं गृहाद्दूरं विनिःक्षिपेत् ॥ ९० ॥ अहर्निशं श्रुतेर्जाप्या च्छौचाचारनिषेवणात् ॥ अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्वजन्म स्मरेद्द्विजः ॥ ९१ ॥ वृद्धान्प्रयत्नाद्वन्देत दद्यात्तेषां स्वमास नम् ॥ विनम्रकन्धरो भूयादनुयायात्ततश्च तान् ॥ ९२ ॥ श्रुतिभूदेवदेवानां नृपसाधुतपस्विनाम् ॥ पतिव्रतानां नारी णां निन्दां कुर्यान्न कर्हिचित् ॥ ९३ ॥ उद्धृत्य पञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये ॥ श्रद्धया पात्रमासाद्य यत्किञ्चि

है ॥ ८९ ॥ व पैर धोने का जल, मूत्र और उच्छिष्ट जल व थूंक और कफ को घर से दूर फेंक देवै ॥ ९० ॥ व दिन रात वेद के जप से और शौच व आचार के सेवन से व बिन द्रोहवाली बुद्धि से ब्राह्मण पूर्व जन्म को स्मरण करता है ॥ ९१ ॥ वृद्धलोगों को बड़े यत्न से प्रणाम करै व उनको अपना आसन देवै व नम्रकन्ध होवै तदनन्तर उनके पीछे जावै ॥ ९२ ॥ और वेद, ब्राह्मण, देवता, राजा, साधु, तपस्वी और पतिव्रता स्त्रियों की कभी निन्दा न करै ॥ ९३ ॥ और पराये जलाशय में पांच मिट्टी के ढेलों

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को उखाड़कर स्नान करै व देश और समय में पात्र को पाकर श्रद्धा से जो कुछ धन विधि से दिया जाता है वह अनन्तत्व के लिये समर्थ होता है और पृथ्वी को देने-वाला मण्डलाध्यक्ष होता है व अन्नदायक सब कहीं सुखी होता है ॥ ९४।९५ ॥ व जलदाता उत्तम रूपवान् होता है और अन्नदायक पुष्ट होता है व दीपदायक निर्मल नेत्रवान् होता है और गऊ को देनेवाला सूर्यलोक को जाता है ॥ ९६ ॥ व सुवर्ण को देनेवाला दीर्घायु होता है और तिलदायक उत्तम सन्तानवाला होताहै व मन्दिर देनेवाला बहुत ऊंचे राजमन्दिरों का स्वामी होता है व वस्त्रदेनेवाला चन्द्रमा के लोक का भागी होता है ॥ ९७ ॥ व अश्व को देनेवाला नर दिव्यदेह होताहै और बैल

दीयते वसु ॥ ९४ ॥ देशे काले च विधिना तदानन्त्याय कल्पते ॥ भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्र सुखितोऽन्नदः ॥ ९५ ॥ तोयदाता सुरूपः स्यात्पुष्टश्चान्नप्रदो भवेत् ॥ प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदातार्यमलोकभाक् ॥ ९६ ॥ स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्याच्च सुप्रजः ॥ वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशो वस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक् ॥ ९७ ॥ हयप्रदो दिव्यदेहो लक्ष्मीवान्वृषभप्रदः ॥ सुभार्यः शिबिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च ॥ ९८ ॥ श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति ॥ स्वर्गिणौ तावुभौ स्यातां पततोऽश्रद्धया त्वधः ॥ ९९ ॥ अनृतेन क्षरेद्यज्ञस्तपो विस्मयतः क्षरेत् ॥ क्षरेत्कीर्तिर्विना दानमायुर्विप्रापमानतः ॥ १०० ॥ गन्धं पुष्पं कुशा गावः शाकं मांसं पयो दधि ॥ मणिमत्स्यगृहं धान्यं ग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ १ ॥ मधूदकं फलं मूलमेधांस्यभयदक्षिणा ॥ अभ्युद्यतानि ग्राह्याणि त्वेतान्यपि निकृष्टतः ॥ २ ॥ दासनापित

को देनेवाला धनवान् होताहै और पालकी देनेवाला नर उत्तम स्त्रीवाला होताहै व उत्तम शय्या को देनेवाला भी सुभार्य होताहै ॥ ९८ ॥ व श्रद्धा से जो मनुष्य लेता है और जो श्रद्धा से देता है वे दोनों स्वर्गी होते हैं और अश्रद्धा से दोनों नरक में पड़ते हैं ॥ ९९ ॥ असत्य से यज्ञ नाश होजाता है व विस्मय से तप भ्रष्ट होताहै और बिन दान यश नष्ट होजाताहै व आयुर्बल ब्राह्मण के अपमान से नाश होजाताहै ॥ १०० ॥ सुगन्ध,पुष्प, कुश, गऊ, शाक, मांस, दूध और दही व मणि, मछली व घर और अन्न इन उपस्थित वस्तुवों को ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥ व शहद, जल, फल, मूल, इन्धन और अभय दक्षिणाहीन से प्राप्त ये भी वस्तुवें ग्रहण करने योग्य हैं ॥ २ ॥ और

कहार, नाई, गोपाल, कुलमित्र, अर्धसीरी (अपनी भूमिका कृषीकर्ता) और आत्मनिवेदक (अपने आश्रित) शूद्रवर्ग में भी ये सम्बन्ध के कारण भोजन करने योग्य अन्नवाले कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार धर्मारण्यनिवासी जनों का यह श्रुतियों व स्मृतियों में कहा हुआ धर्म कहा गया ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसदाचारलक्षणवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा पितर सब मनुज के तृप्त होत ततकाल । कह्यो सात अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ व्यासजी बोले कि धर्मबावली में प्राप्त होकर जो पितरों का

गोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥ भोज्यान्नाः शूद्रवर्गेमी तथात्मविनिवेदकः ॥ ३ ॥ इत्थमाचारधर्मोयं धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ श्रुतिस्मृत्युक्तधर्मोऽयं युधिष्ठिर निवेदितः ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसदाचारलक्षणवर्णनन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ सम्प्राप्य धर्मवाप्यां च यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ तृप्तिं प्रयान्ति पितरो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १ ॥ पितरश्चात्र पूज्याश्च स्वर्गता ये च पूर्वजाः ॥ पिण्डांश्च निर्वपेत्तेषां प्राप्येमां मुक्तिदायिकाम् ॥ २ ॥ त्रेतायां पञ्चदिवसे द्वापरे त्रिदिनेन तु ॥ एकचित्तेन यो विप्राः पिण्डं दद्यात्कलौयुगे ॥ ३ ॥ लोलुपा मानवा लोके सम्प्राप्ते तु कलौयुगे ॥ परदाररता लोकाः स्त्रियोऽतिचपलाः पुनः ॥ ४ ॥ परद्रोहरताः सर्वे नरनारीनपुंसकाः ॥ परनिन्दापरा नित्यं परच्छि

तर्पण करता है उसके पितर तबतक तृप्ति को प्राप्त होते हैं जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ १ ॥ और यहां पितर पूजने योग्य हैं व जो पूर्वज पितर स्वर्ग में प्राप्त होते हैं उनको इस मुक्तिदायिनी बावली को प्राप्त होकर पिण्ड देवै ॥ २ ॥ त्रेता में पांच दिन व द्वापर में तीन दिनों से जो फल होता है हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य कलियुग में सावधानचित्त से पिण्ड को देता है उसको वही फल होता है ॥ ३ ॥ कलियुग प्राप्त होने पर संसार में मनुष्य लोभी होते हैं व पराई स्त्रियों में मनुष्य स्नेह करते हैं और फिर स्त्रियां बहुत चंचल होती हैं ॥ ४ ॥ और पुरुष, स्त्री व नपुंसक सब पराये द्रोह में परायण होते हैं और सदैव पराई निन्दा में परायण व पराये छिद्र के

देखनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ व जो अन्य को दुःख करते हैं और जो कलही व मित्रभेदी होते हैं वे सब शुद्धता को प्राप्त होते हैं ऐसा आपही ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने कहा है ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! यह धर्मारण्य का वर्णन कहागया व शिवजी ने इस में जो फल कहा है वह कहागया ॥ ७ ॥ कि वचन, मन व शरीर से शुद्ध और पराई स्त्री से विमुख होते हैं व द्रोहरहित, समदर्शी, शुद्ध और माता, पिता में परायण होते हैं ॥ ८ ॥ व अचंचल, लोभरहित व दान धर्म में परायण होते हैं और जो आस्तिक, धर्मज्ञ व स्वामी की भक्ति में परायण होते हैं ॥ ९ ॥ और जो स्त्री पतिव्रता होती है व जो पति की सेवा में परायण होती है व जो मनुष्य अहिंसक,

द्रोपदर्शकाः ॥ ५ ॥ परोद्वेगकरा नूनं कलहा मित्रभेदिनः॥ सर्वे ते शुद्धतां यान्ति काजेशाः स्वयमब्रुवन् ॥ ६ ॥ एतदुक्तं महाभाग धर्मारण्यस्य वर्णनम् ॥ फलं चैवात्र सर्वं हि यदुक्तं शूलपाणिना ॥ ७ ॥ वाङ्मनःकायशुद्धाश्च परदारपराङ्मुखाः ॥ अद्रोहाश्च समाः शुद्धा मातापितृपरायणाः ॥ ८ ॥ अलौल्या लोभरहिता दानधर्मपरायणाः ॥ आस्तिकाश्चैव धर्मज्ञाः स्वामिभक्तिरताश्च ये ॥ ९ ॥ पतिव्रता तु या नारी पतिशुश्रूषणे रता ॥ अहिंसका आतिथेयाः स्वधर्मनिरताः सदा ॥ १० ॥ शौनक उवाच ॥ शृणु सूत महाभाग सर्वधर्मविदांवर ॥ गृहस्थानां सदाचारः श्रुतश्च त्वन्मुखान्मया ॥ ११ ॥ एकं मनेप्सितं मेद्य तत्कथयस्व सूतज ॥ पतिव्रतानां सर्वासां लक्षणं कीदृशं वद ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ पतिव्रता गृहे यस्य सफलं तस्य जीवनम् ॥ यस्याङ्गच्छायया तुल्या यत्कथा पुण्यकारिणी ॥ १३ ॥ पतिव्रतास्त्वरुन्धत्या सावित्र्याप्यनसूयया ॥ शाण्डिल्या चैव सत्या च लक्ष्म्या च शतरूपया ॥ १४ ॥ मेनया च

अतिथिपूजक और सदैव अपने धर्म में परायण होते हैं ॥ १० ॥ शौनकजी बोले कि हे सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ, महाभाग, सूतजी ! मैंने तुम्हारे मुखसे गृहस्थों का सदाचार सुना ॥ ११ ॥ परन्तु इस समय मेरा एक मनोरथ है उसको कहिये कि हे सूतज ! सब पतिव्रताओं का कैसा लक्षण है उसको कहिये ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि जिसके घर में पतिव्रता होती है उसका जीवन सफल होता है और जिसके अंग की छायाके समान जिसकी कथा पुण्यकारिणी होती है ॥ १३ ॥ और पतिव्रता स्त्रियां अरुन्धती, सावित्री, अनसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी व शतरूपा के समान होती हैं ॥ १४ ॥ और मेना, सुनीति, संज्ञा व स्वाहा के समान होती हैं मुनि ने

पतिव्रताओं के धर्मों को कहा है ॥ १५ ॥ कि स्वामी के भोजन करने पर जो भोजन करती है व स्वामी के स्थित होने पर जो स्थित होती है व सोने पर जो सोती है और पहले जो जागती है ॥ १६ ॥ व पति के विदेश में स्थित होनेपर जो अपना अलंकार नहीं करती है और कार्य के लिये कहीं भी जाने पर जो सब भूषणों से वर्जित होती है ॥ १७ ॥ व इसके आयुर्बल के बढ़ने के लिये जो पति का नाम नहीं लेती है व कभी अन्य पुरुष का नाम भी जो नहीं लेती है ॥ १८ ॥ और खींची हुई भी जो गाली नहीं देती है व मारेजाने पर भी जो प्रसन्न होती है व इस कर्म को करो ऐसा कहने पर जो यह कहती है कि हे स्वामिन् ! मैंने इस कार्य

सुनीत्या च संज्ञया स्वाहया समाः ॥ पतिव्रतानां धर्मा हि मुनिना च प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ भुङ्क्ते भुक्ते स्वामिनि च तिष्ठति त्वनुतिष्ठति ॥ विनिद्रिते या निद्राति प्रथमं परिबुध्यति ॥ १६ ॥ अनलङ्कृतमात्मानं देशान्ते भर्तरि स्थिते ॥ कार्यार्थे प्रोषिते क्वापि सर्व्वमण्डनवर्जिता ॥ १७ ॥ भर्तुर्नाम न गृह्णाति ह्यायुषोऽस्य हि वृद्धये ॥ पुरुषान्तरनामापि न गृह्णाति कदाचन ॥ १८ ॥ आकृष्टापि च नाक्रोशेत्ताडितापि प्रसीदति ॥ इदं कुरु कृतं स्वामिन्मन्यतामिति वक्ति च ॥ १९ ॥ आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वरम् ॥ किमर्थं व्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् ॥ २० ॥ न चिरं तिष्ठति द्वारि न द्वारमुपसेवते ॥ अदातव्यं स्वयं किञ्चित्कर्हिचिन्न ददात्यपि ॥ २१ ॥ पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् ॥ नियमोदकबर्हींषि पत्रपुष्पाक्षतादिकम् ॥ २२ ॥ प्रतीक्षमाणा च वरं यथाकालोचितं हि यत् ॥ तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विग्नातिहृष्टवत् ॥ २३ ॥ सेवते भर्त्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् ॥ दूरतो वर्ज्जये

को किया ऐसा जानिये ॥ १९ ॥ और बुलाई हुई जो घर के कार्यों को छोड़कर शीघ्रता समेत जाती व यह कहती है कि हे नाथ ! मैं किस लिये बुलाई गई उस प्रसाद को कीजिये ॥ २० ॥ और बहुत देर तक जो द्वार पै खड़ी नहीं होती है व द्वार को जो नहीं सेवती है और न देने योग्य किसी वस्तु को जो स्वयं कभी नहीं देती है ॥ २१ ॥ व न कहने पर नियम जल, कुश व पत्र, पुष्प और अक्षतादिक उस सब पूजन के सामान को जो स्त्री आपही इकट्ठा करती है ॥ २२ ॥ व वर की इच्छा करती हुई जो निरालसी स्त्री समय के अनुकूल जो कुछ होता है उस सब को बड़ी प्रसन्नता से स्थापित करती है ॥ २३ ॥ व पति के उच्छिष्ट प्रिय अन्न व

फलादिक को जो सेवती है और यह समाज व उत्साह के दर्शन को जो दूर से वर्जित करती है ॥ २४ ॥ और तीर्थयात्रादिक व विवाहादि के देखने के लिये जो नहीं जाती है व सुखसे सोते व सुखसे बैठे और इच्छा के अनुकूल रमण करते हुए ॥ २५ ॥ पति को जो विघ्न में भी कभी नहीं उठाती है व रजस्वला होकर तीन रात्रियों तक जो अपना मुख नहीं दिखाती है ॥ २६ ॥ और जबतक नहाकर शुद्ध न होवै तबतक जो अपने वचन को नहीं सुनाती है व भलीभांति नहाई हुई जो पति का मुख देखती है अन्य किसी के मुखको नहीं देखती है अथवा मन में पति को ध्यान कर सूर्यनारायण को जो देखती है ॥ २७ ॥ व हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर,

देषा समाजोत्सवदर्शनम् ॥ २४ ॥ न गच्छेत्तीर्थयात्रादिविवाहप्रेक्षणादिषु ॥ सुखसुप्तं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ॥ २५ ॥ अन्तरायेऽपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित् ॥ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ २६ ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नात्वा न शुध्यति ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् ॥ अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ २७ ॥ हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥ कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ २८ ॥ केशसंस्कारकं चैव करकर्णादिभूषणम् ॥ भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ॥ २९ ॥ भर्तृविद्वेषिणीं नारीं नैषा सम्भाषते क्वचित् ॥ नैकाकिनी क्वचिद्भूयान्न नग्ना स्नाति च क्वचित् ॥ ३० ॥ नोलूखले न मुशले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि ॥ न यन्त्रके न देहल्यां सती चोपविशेत्क्वचित् ॥ ३१ ॥ विना व्यवायसमयात्प्रागल्भ्यं न क्वचिच्चरेत् ॥ यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती सदा ॥ ३२ ॥ इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः ॥ इयमेव च पूजा च भर्तु

कज्जल, वसन, ताम्बूल व उत्तम मांगल्य का आभरण ॥ २८ ॥ व बालों का संस्कार और हाथ व कान आदि का भूषण पति का आयुर्बल चाहती हुई वह पतिव्रता स्त्री दूर न करै ॥ २९ ॥ और यह स्त्री पति से वैर करनेवाली स्त्री से कभी वार्तालाप न करै व कभी अकेली न होवै व नग्न होकर कभी स्नान न करै ॥ ३० ॥ और पतिव्रता स्त्री कभी उलूखल, मूसल व करछुलि पै न बैठै और पत्थर, यन्त्र व देहली पै न बैठै ॥ ३१ ॥ व मैथुन समय के सिवा कभी धृष्टता न करै और जहां जहां पति की रुचि होवै वहां सदैव प्रेम करै ॥ ३२ ॥ स्त्रियों का यही व्रत है व यही परम धर्म है और यही पूजा है कि पति का वचन उल्लंघन न

करै ॥ ३३ ॥ व नपुंसक और दुष्टदशा में प्राप्त तथा रोगी व वृद्ध और सुस्थिर व दुःस्थिर भी एक पति को उल्लंघन न करै ॥ ३४ ॥ और घी, नमक व हींग आदिक न होने पर भी पतिव्रता स्त्री पति से यह न कहै कि नहीं है और लोहे के पात्रों में भोजन न करै ॥ ३५ ॥ और तीर्थ स्नान की इच्छावाली स्त्री पति के चरणोदक को पियै और शिव व विष्णुजीसे भी अधिक स्त्री को पति होताहै ॥ ३६ ॥ जो स्त्री पति को उल्लंघनकर व्रत व उपवासका नियम करती है वह पति का आयुर्बल हरती है व मरकर नरक को जाती है ॥ ३७ ॥ और क्रोधमें तत्पर जो स्त्री कहने पर प्रत्युत्तर देती है वह गांव में कुत्ती होती है व निर्जन वन में शृगाली होती है ॥ ३८ ॥ और स्त्रियों को

वाक्यं न लङ्घयेत् ॥ ३३ ॥ क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा ॥ सुस्थिरं दुःस्थिरं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥ ३४ ॥ सर्पिर्लवणहिङ्ग्वादिक्षयेऽपि च पतिव्रता ॥ पतिं नास्तीति न ब्रूयादायसीषु न भोजयेत् ॥ ३५ ॥ तीर्थस्नानार्थिनी चैव पतिपादोदकं पिबेत् ॥ शङ्करादपि वा विष्णोःपतिरेवाधिकः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ॥ ३७ ॥ उक्ता प्रत्युत्तरं दद्यान्नारी या क्रोधतत्परा ॥ सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥ ३८ ॥ स्त्रीणां हि परमश्चैको नियमः समुदाहृतः ॥ अभ्यर्च्य चरणौ भर्तुर्भोक्तव्यं कृतनिश्चया ॥ ३९ ॥ उच्चासनं न सेवेत न व्रजेत्परवेश्मसु ॥ तत्र पारुष्यवाक्यानि ब्रूयान्नैव कदाचन ॥ ४० ॥ गुरूणां सन्निधौ वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वाह्वयेत् ॥ ४१ ॥ या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ॥ उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥ ४२ ॥ ताडिता ताडयेच्चेत्तं सा व्याघ्री वृषदंशिका ॥ कटाक्षयति याऽन्यं वै केकराक्षी तु सा

एक उत्तम नियम कहागया है कि पति के चरणों को पूजकर भोजन करना चाहिये व निश्चय कियेहुई स्त्री ॥ ३९ ॥ ऊंचे आसन पै न बैठे व पराये घरों को न जावै और वहां कठोरवचनों को कभी न कहै ॥ ४० ॥ और गुरुवों के समीप उच्चस्वर से न बोलै और न किसी को पुकारै ॥ ४१ ॥ और जो निर्बुद्धिनी स्त्री पति को छोड़कर एकान्त में जाती है वह क्रूरा वृक्ष के खोढ़र में सोनेवाली उलूकिनी होती है ॥ ४२ ॥ व मारी हुई जो स्त्री उस पति को मारती है वह वृषदंशिका (बिलारी) व व्याघ्री

होती है और जो अन्य पुरुष को कटाक्ष से देखती है वह केकराक्षी (कुदृष्टिवाली) होती है ॥ ४३ ॥ और जो पति को छोड़कर केवल मीठी वस्तु को खाती है वह ग्राम में सूकरी होती है या बगुली व विष्ठा को खानेवाली होती है ॥ ४४ ॥ और जो स्त्री हुंकार व त्वंकार कर अप्रिय बोलती है वह निश्चय कर गूंगी होती है व जो सदैव सौति से ईर्षा करती है वह बार २ दुर्भगा होती है और जो पति से दृष्टि को छिपाकर अन्य किसी को देखती है ॥ ४५ ॥ वह कानी, विमुख व कुरूपिणी होती है और बाहर से आतेहुए पति को शीघ्रता समेत जो स्त्री जल, आसन, तांबूल, व्यजन व पादसंवाहनादिक ॥ ४६ ॥ व सुन्दर वचन तथा पसीना को दूर करने से

भवेत् ॥ ४३ ॥ या भर्तारं परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ॥ ग्रामे सा सूकरी भूयाद्वल्गुली वाथ विड्भुजा ॥ ४४ ॥ हुन्त्वङ्कृत्याप्रियं ब्रूते मूका सा जायते खलु ॥ या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनः पुनः ॥ दृष्टिं विलुप्य भर्तुर्या कश्चिदन्यं समीक्षते ॥ ४५ ॥ काणा च विमुखा वापि कुरूपापि च जायते ॥ बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरिता च जलासनैः ॥ ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैव पादसंवाहनादिभिः ॥ ४६ ॥ तथैव चारुवचनैः स्वेदसन्नोदनैः परैः ॥ या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ॥ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ॥ ४७ ॥ अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ ४८ ॥ जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् ॥ भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ॥ ४९ ॥ अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवा स्यादमङ्गला ॥ विधवादर्शनात्सिद्धिः क्वापि जातु न जायते ॥ ५० ॥ विहाय मातरं चैकां सर्वा मङ्गल

जो प्रसन्न होती हुई स्त्री पति को प्रसन्न करती है उसने त्रिलोक को प्रसन्न किया पिता व भाई और पुत्र प्रमाणभर वस्तु को देता है ॥ ४७ ॥ और अमित के देनेवाले पति को कौन स्त्री नहीं पूजती है पतिही देवता है व पति गुरु है और पतिही धर्म, तीर्थ व व्रत हैं इस कारण सब को छोड़ कर केवल पति को पूजै ॥ ४८ ॥ जैसे जीव से रहित शरीर क्षणभर में अशुद्ध होजाता है वैसेही पति से रहित स्त्री भली भांति नहाई हुई भी सदैव अशुद्ध होती है ॥ ४९ ॥ व सब अमंगलों से विधवा अमंगल होती है और विधवा के दर्शन से कहीं भी सिद्धि नहीं होती है ॥ ५० ॥ एक माता को छोड़कर सब विधवा स्त्रियां मंगल से रहित होती हैं इससे विद्वान्

सर्प के समान उनका आशीर्वाद भी छोड़देवे ॥ ५१ ॥ कन्या के विवाह समय में ब्राह्मण यह कहाते हैं कि जीते व मरेहुए भी पतिकी स्त्री सहचरी होवे ॥ ५२ ॥ घरसे श्मशान को जातेहुए पति के पीछे जो स्त्री हर्ष से जाती है वह पग २ पै निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ का फल पाती है ॥ ५३ ॥ सर्प को पकड़नेवाला मनुष्य जैसे बिल से सर्प को बल से ऊपर खींचलेता है वैसेही पतिव्रता स्त्री यमदूतों से पति को लेकर स्वर्ग को जाती है ॥ ५४ ॥ और उस पतिव्रता स्त्री को देखकर यम-दूत भगजाते हैं व सूर्य तपते हैं व अग्नि भी जलती है ॥ ५५ ॥ और पतिव्रता का तेज देखकर सब तेज काँपते हैं जितनी अपने रोमों की संख्या होती है उतने

वर्जिताः ॥ तदाशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशीविषोपमाम् ॥ ५१ ॥ कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः ॥ भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोपि वा ॥ ५२ ॥ अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५३ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत्सती ॥ ५४ ॥ यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम् ॥ तपनस्तप्यते नूनं दहनोपि च दह्यते ॥ ५५ ॥ कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः ॥ यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोटचयुतानि च ॥ ५६ ॥ भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥ धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः ॥ ५७ ॥ धन्यः स च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ५८ ॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ॥ पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्र च दुःखिताः ॥ ५९ ॥ पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् ॥ सा तीर्थभूमिर्म्मा

करोड़ दशहज़ार वर्षोंतक ॥ ५६ ॥ पति के साथ रमण करती हुई पतिव्रता स्त्री स्वर्ग का सुख भोगती है संसार में वह माता धन्य है व यह पिता धन्य है ॥ ५७ ॥ और वह श्रीमान् धन्य है कि जिनके घर में पतिव्रता स्त्री होती है व पतिव्रता के प्रभाव से तीन पुश्तियां पिताके वंश की व तीन माता के वंश की और तीन पति के वंश की स्वर्ग के सुखों को भोगती हैं ॥ ५८ ॥ और शीलभंग से दुष्टचरित्रवाली स्त्रियां पिता, माता व पति की तीन पुश्तियों को नरक में डालती हैं व इस लोक और पर-लोक में दुःखित होती हैं ॥ ५९ ॥ और जहां जहां पतिव्रता का चरण पृथ्वी को छूता है वह तीर्थ की भूमि मानने योग्य है व इसमें पृथ्वी को भार नहीं होता है बरन पवित्र-

कारक होताहै ॥ ६० ॥ व सूर्यनारायण भी डरतेहुए पतिव्रता का स्पर्श करते हैं और चन्द्रमा व गन्धर्व भी अपनी पवित्रता के लिये पतिव्रता का स्पर्श करते हैं अन्यथा नहीं स्पर्श करते हैं ॥ ६१ ॥ और जल सदैव पतिव्रता का स्पर्श चाहते हैं व हमारा पापनाश होगा इस कारण गायत्री पतिव्रता का स्पर्श करती है और वह गायत्री पापनाशिनी होती है ॥ ६२ ॥ रूप व लावण्य से गर्वित स्त्रियां क्या घर घरमें नहीं हैं परन्तु विश्वेश्वरजी की भक्तिही से पतिव्रता स्त्री मिलती है ॥ ६३ ॥ स्त्री गृहस्थ की जड़ है व स्त्री सुख की मूल है और स्त्री धर्म के फल के लिये होती है व स्त्री संतान की वृद्धि के लिये होती है ॥ ६४ ॥ और स्त्री से परलोक व यह लोक दोनों जीतेजाते हैं और

न्येति नात्र भारोऽस्ति पावनः ॥ ६० ॥ बिभ्यत्पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि ॥ सोमो गन्धर्व एवापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥ ६१ ॥ आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ॥ गायत्र्यघविनाशो नो पातिव्रत्येन साऽघनुत् ॥ ६२ ॥ गृहेगृहे न किं नार्य्यो रूपलावण्यगर्विताः ॥ परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥ ६३ ॥ भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ॥ भार्या धर्मफलायैव भार्या सन्तानवृद्धये ॥ ६४ ॥ परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ॥ देवपित्रतिथीनां च तृप्तिः स्याद्भार्यया गृहे ॥ गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता॥६५॥ यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ॥ तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत् ॥ ६६ ॥ पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ॥ तस्माद्भूशयनं कार्य्यं पतिसौख्यसमीहया ॥ ६७ ॥ नैवाङ्गोद्वर्त्तनं कार्य्यं स्त्रिया विधवया कचित् ॥ गन्धद्रव्यस्य सम्भोगो नैव कार्य्यस्तया कचित् ॥ ६८ ॥ तर्प्पणं प्रत्यहं कार्य्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ॥ तत्पि

स्त्री से घर में देवता, पितर व अतिथियों की तृप्ति होती है और जिसके घर में पतिव्रता होती है वह गृहस्थ जानने योग्य है ॥ ६५ ॥ जैसे गङ्गास्नान से शरीर पवित्र होता है वैसेही पतिव्रता को देखकर मन्दिर पवित्र होताहै ॥ ६६ ॥ और पलंग पर सोनेवाली विधवा स्त्री पति को नरक में डालती है इस कारण पति के सुखकी इच्छावाली स्त्री को पृथ्वी में शयन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ विधवा स्त्री को कभी अंग में उबटन न लगाना चाहिये और उसको कभी सुगन्धित वस्तु का संभोग न करना चाहिये ॥ ६८ ॥ और प्रतिदिन कुश व तिलोदक से पति को तर्पण करना चाहिये और उसके पति को व उसके भी पति को नामगोत्रादिपूर्वक तर्पण करना

चाहिये ॥ ६९ ॥ और पति की बुद्धि से विष्णु का पूजन करना चाहिये अन्यथा न करना चाहिये व विष्णुरूपधारी पति को विष्णु ध्यान करै ॥ ७० ॥ और संसार में जो जो पति को बहुत प्रिय होवै पति की तृप्ति की इच्छा से उस उस वस्तु को गुणवान् ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ७१ ॥ और वैशाख व कातिक महीने में विशेष नियमों को करै कि स्नान, दान व तीर्थयात्रा और बार २ पुराण का श्रवण करै ॥ ७२ ॥ वैशाख में जल के घट व कार्त्तिक में घृत के दिया देना चाहिये व माघ में धान्य और तिलों का दान स्वर्गलोक में विशेष होता है ॥ ७३ ॥ और विष्णुदेवजी के निमित्त वैशाख में पौशाला करना चाहिये व झारी देना चाहिये और खस, व्यजन,

तुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ॥ ६९ ॥ विष्णोः सम्पूजनं कार्यं पतिबुद्ध्या न चान्यथा ॥ पतिमेव सदा ध्यायेद्विष्णुरूपधरं हरिम् ॥ ७० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यद्यत्पत्युः समीहितम् ॥ तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रीणनकाम्यया ॥ ७१ ॥ वैशाखे कार्त्तिके मासे विशेषनियमांश्चरेत् ॥ स्नानं दानं तीर्थयात्रां पुराणश्रवणं मुहुः ॥ ७२ ॥ वैशाखे जलकुम्भाश्च कार्त्तिके घृतदीपिकाः ॥ माघे धान्यतिलोत्सर्गः स्वर्गलोके विशिष्यते ॥ ७३ ॥ प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका ॥ उशीरं व्यजनं छत्रं सूक्ष्मवासांसि चन्दनम् ॥ ७४ ॥ सकर्पूरं च ताम्बूलं पुष्पदानं तथैव च ॥ जलपात्राण्यनेकानि तथा पुष्पगृहाणि च ॥ ७५ ॥ पानानि च विचित्राणि द्राक्षारम्भाफलानि च ॥ देयानि द्विजमुख्येभ्यः पतिर्मे प्रीयतामिति ॥ ७६ ॥ ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयादेकान्नमथवा पुनः ॥ वृन्ताकं सूरणं चैव शूकशिम्बीं च वर्जयेत् ॥ ७७ ॥ कार्त्तिके वर्ज्जयेत्तैलं कांस्यं चापि विवर्जयेत् ॥ कार्त्तिके मौननियमे चारुघण्टां प्रदापयेत् ॥ ७८ ॥

छत्र व रेशमी वस्त्र व चंदन देना चाहिये ॥ ७४ ॥ और कर्पूर समेत, ताम्बूल व पुष्पदान तथा अनेक जलपात्र व अनेक पुष्पगृह ॥ ७५ ॥ व विचित्र पान और मुनक्का व केला के फल इस लिये मुख्य ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये कि मेरा पति प्रसन्न होवै ॥ ७६ ॥ कार्त्तिक में यवान्न व एक अन्न को खावै और वृन्ताक (भांटा), ज़िमींक़न्द व केंवाच को वर्जित करै ॥ ७७ ॥ और कार्त्तिक में तैल व कांस्य को भी वर्जित करै और कार्त्तिक में मौन के नियम में सुन्दर घण्टा को देवै ॥ ७८ ॥

और पत्ते में खानेवाला मनुष्य घृत से पूर्ण कांस्यपात्र को देवै व भूमिशय्या के व्रत में रजाई समेत नम्रशय्या को देना चाहिये ॥ ७९ ॥ व फल के त्याग में फल देना चाहिये और रस के त्याग में वही रस देना चाहिये और अन्न के त्याग में वही धान्य देवै अथवा शाली कहेगये हैं और अलंकार समेत व सुवर्ण समेत गऊ को यत्न से देवै ॥ ८० ॥ एक ओर सब दान व एक ओर दीपदान होता है और कार्त्तिक में दीपदान के फल के अन्य कर्म सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ८१ ॥ इत्यादिक विधवाओं के नियम कहेगये हैं हे राजन्! उनको यह फल होता है अन्य जनों को किसी प्रकार नहीं होता है ॥ ८२ ॥ धर्मवापी को प्राप्त

पत्रभोजी कांस्यपात्रं घृतपूर्णं प्रयच्छति ॥ भूमिशय्याव्रते देया शय्या श्लक्ष्णा सतूलिका ॥ ७९ ॥ फलत्यागे फलं देयं रसत्यागे च तद्रसः ॥ धान्यत्यागे च तद्धान्यमथवा शालयः स्मृताः ॥ धेनुं दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्कारां सकाञ्चनाम् ॥ ८० ॥ एकतः सर्वदानानि दीपदानं तथैकतः ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८१ ॥ इत्यादिविधवानां च नियमाः सम्प्रकीर्तिताः ॥ तेषां फलमिदं राजन्नान्येषां च कदाचन ॥ ८२ ॥ धर्मवापीं समासाद्य दानं दद्याद्विचक्षणः ॥ कोटिधा वर्द्धते नित्यं ब्रह्मणो वचनं यथा ॥ ८३ ॥ तिलधेनुं च यो दद्याद्धर्मेश्वरपुरः स्थितः ॥ तिलसंख्यानि वर्षाणि स्वर्गे लोके महीयते ॥ ८४ ॥ धर्मक्षेत्रे तु सम्प्राप्य श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः ॥ तस्य संवत्सरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ ये चान्ये पूर्वजाः स्वर्गे ये चान्ये नरकौकसः ॥ ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ८६ ॥ तान्सर्वान्धर्मकूपे वै श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ अत्र प्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥ तेन ते

होकर चतुर मनुष्य दान देवै तो नित्य कोटिगुना बढ़ता है जैसा कि ब्रह्मा का वचन है ॥ ८३ ॥ व धर्मेश्वरपुर में स्थित जो मनुष्य तिल की गऊ को देता है वह तिल संख्यक वर्षोंतक स्वर्गलोक में पूजा जाता है ॥ ८४ ॥ व धर्मक्षेत्र में प्राप्त होकर जो निरालसी पुरुष श्राद्ध को देवै उसके पितर वर्षभरतक निश्चयकर तृप्त होते हैं ॥ ८५ ॥ व जो अन्य पूर्वज पितर स्वर्ग में होवैं और जो अन्य नरकगामी होवैं व जो तिर्यक्ता को प्राप्त हुए हैं और जो भूतादिकों में स्थित हैं ॥ ८६ ॥ उन सबों को विधिपूर्वक

धर्मकूप के समीप श्राद्ध देवै और इस श्राद्ध में मनुष्य पृथ्वी में जो अन्न डालते हैं उससे वे पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं जो कि पिशाचत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८७ ॥ व हे पुत्र ! जिन मनुष्यों का स्नानवस्त्र से उपजाहुआ जल पृथ्वी में गिरता है उस जल से उनकी तृप्ति होती है जो कि वृक्षत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८८ ॥ और जो यवों के किनुका पृथ्वी में गिरते हैं उनसे उनकी तृप्ति होती है जो कि देवत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८९ ॥ व पिंडों के उठाने पर जो यवों के किनुका पृथ्वी में गिरते हैं उनसे उनकी तृप्ति होती है जोकि पाताल को प्राप्त हुए हैं ॥ ९० ॥ और वर्ण, आश्रम के आचार व कर्म से रहित व संस्कारहीन जो पुरुष मरे हैं वे इस श्राद्ध में

तृप्तिमायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥ ८७॥ येषां तु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक ॥ तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥ ८८ ॥ या वै यवानां कणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये तु देवत्वमागताः॥८९॥ उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु यवान्नकणिका भुवि ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये च पातालमागताः ॥ ९०॥ ये वा वर्णाश्रमाचारक्रियालोपा ह्यसंस्कृताः॥ विपन्नास्ते भवन्त्यत्र सम्मार्जनजलाशिनः ॥ ९१ ॥ भुक्त्वा वाचमनं यच्च जलं पतति भूतले ॥ ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ॥ ९२ ॥ एवं यो यजमानश्च यच्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥ क्वचिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरस्पृष्ट एव च ॥ ९३ ॥ ये चान्ये नरके जातास्तत्र योन्यन्तरं गताः॥ प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् ॥ ९४॥ अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यैः श्राद्धं यत्क्रियते नरैः ॥ तृप्यन्ति तेन चण्डालपुल्कसादिषु योनिषु॥९५॥एव

शुद्धि करने के जल को पीते हैं ॥ ९१ ॥ और भोजन करके जो द्विजों के आचमन का जल पृथ्वी में गिरता है उससे वे अन्य पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ९२ ॥ इस प्रकार जो यजमान होता है व उन ब्राह्मणों का जो कहीं शुद्ध या अशुद्ध जल डाला जाता है ॥ ९३ ॥ हे वत्स ! उससे उस श्राद्ध में वे तृप्त होते हैं जोकि भली भांति श्राद्ध कर्मवाले जनों के अन्य पितर नरक में प्राप्त हैं व जो अन्य योनियों में प्राप्त हैं ॥ ९४ ॥ व मनुष्य अन्याय से इकट्ठा किये हुए द्रव्यों से जो श्राद्ध करते हैं उससे चाण्डाल व पुल्कसादिक योनियों में तृप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! इस प्रकार उससे अनेक बन्धु लोग तृप्त होते हैं और यदि श्राद्ध करने की असामर्थ्य होवै

तो शाकों से भी श्राद्ध होता है ॥ ९६ ॥ इस लिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक जो श्राद्ध करता है तो श्राद्ध करते हुए उस मनुष्य का वंश कभी दुःखित नहीं होता है ॥ ९७ ॥ यदि सब पाप किया गया है तो निश्चय कर पाप बढ़ता है और पाप करता हुआ मनुष्य भयंकर नरकमें पचताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९८ ॥ हे नृपोत्तम ! जैसे पुण्य वैसेही पाप धर्मारण्यमें किया हुआ वह सब शुभाशुभ कर्म निश्चयकर बढ़ता है ॥ ९९ ॥ कामिक व कामदायक तथा योगियों को मुक्तिदायक देव व सिद्धों को सदैव सिद्धिदायक धर्मारण्य कहा गया है ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधर्माचारवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

माप्यायिता वत्स तेन चानेकबान्धवाः ॥ श्राद्धं कर्तुमशक्तिश्चेच्छाकैरपि हि जायते ॥ ९६ ॥ तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ॥ कुरुते कुर्वतः श्राद्धं कुलं क्वचिन्न सीदति ॥ ९७ ॥ पापं यदि कृतं सर्वं पापं च वर्द्धते ध्रुवम् ॥ कुर्वाणो नरके घोरे पच्यते नात्र संशयः ॥ ९८ ॥ यथा पुण्यं तथा पापं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ तत्सर्वं वर्द्धते नूनं धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ९९ ॥ कामिकं कामदं देवं योगिनां मुक्तिदायकम् ॥ सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येधर्माचारवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्यकथां पुण्यां श्रुत्वा तृप्तिर्न मे विभो ॥ यदा यदा कथयसि तदा प्रोत्सहते मनः ॥ अतः परं किमभवत्परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पार्थ महापुण्यां कथां स्कन्दपुराणजाम् ॥ स्थाणुनोक्तां च स्कन्दाय धर्मारण्योद्भवां शुभाम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थस्य फलदां सर्वोपद्रवनाशिनीम् ॥ कैलासशिखरासीनं देवदेवं

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र कहँ देवन कीन पयान । सोइ आठ अध्यायमें अहै चरित सुखदान ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे विभो ! धर्मारण्य की पवित्र कथा को सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है और ज्यों ज्यों तुम कहते हो वैसेही मेरा मन उत्साह करता है इसके उपरान्त क्या हुआ है यह मुझ को बड़ा आश्चर्य है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे पार्थ ! स्कन्दपुराण से उपजी हुई महापवित्र कथा को सुनिये शिवजी ने जिस धर्मारण्य से उपजीहुई उत्तम कथाको स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा है ॥ २ ॥ वह सब तीर्थ के फल को देनेवाली व सब उपद्रवों को नाशनेवाली है कैलास पर्वत के शिखर पै बैठे हुए जगद्गुरु देवदेव, पञ्चमुख, दशभुज, त्रिशूलधारी व

त्रिनेत्र ॥ ३ ॥ और कपाल व खट्वांग को हाथ में लिये तथा नागों का यज्ञोपवीत पहने और गणों से घिरे हुए वहां देवताओं व दैत्यों से नमस्कृत ॥ ४ ॥ और अनेक प्रकार के रूप व गुणों से गीत तथा नारदादिकों से संयुत और गंधर्वों व अप्सराओं से सेवित वहां बैठे हुए उन महादेवजी को प्रणाम कर पुत्र ने कहा ॥ ५ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे स्वामिन् ! इन्द्रादिक व ब्रह्मादिक सब देवता केवल तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे तुम्हारे द्वार पै आये हैं हे देव ! मुझको क्या आज्ञा देतेहो उसको मैं तुम्हारे आगे करूं ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले कि स्वामिकार्त्तिकेयजी का वचन सुनकर शिवजी आसन से उठे और बैल पर न चढ़े व उस समय उन्होंने जाने की इच्छा

जगद्गुरुम् ॥ पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ ३ ॥ कपालखट्वाङ्गकरं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ गणैः परिवृतं तत्र सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ४ ॥ नानारूपगुणैर्गीतं नारदप्रमुखैर्युतम् ॥ गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं तमुमापतिम् ॥ तत्रस्थं च महादेवं प्रणिपत्याब्रवीत्सुतः ॥ ५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ स्वामिन्निन्द्रादयो देवा ब्रह्माद्याश्चैव सर्वशः ॥ तव द्वारे समायातास्त्वद्दर्शनैकलालसाः ॥ किमाज्ञापयसे देव करवाणि तवाग्रतः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ स्कन्दस्य वचनं श्रुत्वा आसनादुत्थितो हरः ॥ वृषभं न समारूढो गन्तुकामोऽभवत्तदा ॥ ७ ॥ गन्तुकामं शिवं दृष्ट्वा स्कन्दो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ किं कार्यं देव देवानां यत्त्वमाहूयसे त्वरम् ॥ वृषं त्यक्त्वा कृपासिन्धो कृपास्ति यदि मे वद ॥ ९ ॥ देवदानवयुद्धं वा किं कार्यं वा महत्तरम् ॥ १० ॥ शिव उवाच ॥ शृणुष्वैकाग्रमनसा येनाहं व्यग्रचेतसः ॥ अस्ति स्थानं महापुण्यं धर्म्मारण्यं च भूतले ॥ ११ ॥ तत्रापि गन्तुकामोऽहं देवैः सह षडानन ॥ १२ ॥ स्कन्द

किया ॥ ७ ॥ व जाने की इच्छावाले शिवजी को देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने यह वचन कहा ॥ ८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे देव ! देवताओं का क्या कार्य है जोकि तुम बैलको छोड़कर शीघ्रता से बुलाये जाते हो हे दयासिन्धो ! यदि मेरे ऊपर दया होवै तो उसको कहिये ॥ ९ ॥ कि देवताओं या दानवों का युद्धहै अथवा बड़ा भारी क्या कार्य है ॥ १० ॥ शिवजी बोले कि जिससे मैं व्यग्रचित्त हूं उस को सावधान मन से सुनिये कि पृथ्वी में महापवित्र धर्मारण्य स्थान है ॥ ११ ॥ हे षडानन ! देवताओं समेत मैं वहां जाना चाहता हूं ॥ १२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे महादेव ! तुम वहां जाकर इस समय क्या करोगे हे जगन्नाथ ! उस सब

कार्य को मुझ से संपूर्णता से कहिये ॥ १३ ॥ शिवजी बोले कि हे पुत्र! मन के आनन्द का कारण व सृष्टि व पालन करनेवाले सब वृत्तान्तरूप वचन को पहले से सुनिये ॥ १४ ॥ कि प्रलय होने पर जब सब संसार अन्धकार से घिरगया तब निर्गुण व अव्यय एक ब्रह्मबीज हुआ है ॥ १५ ॥ और पहले गुणोंसे वह बनाया गया जोकि महद्द्रव्य कहा जाता है ॥ १६ ॥ चराचर नाश होने पर जब महाकल्प प्राप्त हुआ तब जलरूपी जगन्नाथजी लीला से रमण करने लगे ॥ १७ ॥ और बहुत समय बीतने पर उनने पृथ्वी आदिक तत्त्वों से दश हज़ार शाखाओं से सुन्दर वृक्षको उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ जोकि बड़े भारी फलों से पूर्ण व स्कन्धों तथा कांडादिकों से

उवाच ॥ तत्र गत्वा महादेव किं करिष्यसि साम्प्रतम् ॥ तन्मे ब्रूहि जगन्नाथ कृत्यं सर्वमशेषतः ॥ १३ ॥ शिव उवाच ॥ श्रूयतां वचनं पुत्र मनसोह्लादकारणम् ॥ आदितः सर्ववृत्तानां सृष्टिस्थितिकरं महत् ॥ १४ ॥ परन्तु प्रलये जाते सर्वतस्तमसा वृतम् ॥ आसीदेकं तदा ब्रह्म निर्गुणं बीजमव्ययम् ॥ १५ ॥ निर्मितं वै गुणैरादौ महद्द्रव्यं प्रचक्ष्यते ॥ १६ ॥ महाकल्पे च सम्प्राप्ते चराचरे क्षयं गते ॥ जलरूपी जगन्नाथो रममाणस्तु लीलया ॥ १७ ॥ चिरकाले गते सोपि पृथिव्यादिसुतत्त्वकैः ॥ वृक्षमुत्पादयामासायुतशाखामनोरमम् ॥ १८ ॥ फलैर्विशालैराकीर्णं स्कन्धकाण्डादिशोभितम् ॥ फलौघाढ्यो जटायुक्तो न्यग्रोधो विटपो महान् ॥ १९ ॥ बालभावं ततः कृत्वा वासुदेवो जनार्दनः ॥ शेतेऽसौ वटपत्रेषु विश्वं निर्मातुमुत्सुकः ॥ २० ॥ स नाभिकमले विष्णोर्जातो ब्रह्मा हि लोककृत् ॥ सर्वं जलमयं पश्यन्नानाकारमरूपकम् ॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोद्वेगाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ इदमाह तदा पुत्र किं करोमीति

शोभित था वह फलसमूह से संयुत और जटायुक्त बड़ाभारी बरगद का वृक्ष हुआ ॥ १९ ॥ तब संसार को रचने की उत्कंठावाले ये जनार्दन विष्णुजी बालक होकर बरगद के पत्तों पै सोने लगे ॥ २० ॥ और विष्णुजी की नाभि से उपजे हुए कमल में लोकों को रचनेवाले वे ब्रह्मा उत्पन्न हुए व सब जलमय देखकर और अनेक प्रकार के आकारवाले व अरूप ॥ २१ ॥ उन विष्णुजी को यकायक देखकर हे पुत्र! लोकों के पितामह ब्रह्मा ने उद्वेग से इस निश्चित वचन को कहा कि मैं क्या

करूं ॥ २२॥ तब आकाशमें दैवसे वह आकाशवाणी उत्पन्न हुई कि हे विधे, धातः ! जिस प्रकार मेरा दर्शन होवै उसी प्रकार तप करो ॥ २३ ॥ वहां उस वचन को सुन कर लोकों के पितामह ब्रह्माने बहुत कठिन व भयंकर तप किया ॥ २४ ॥ तब बाल रूप से हँसते हुए उन दयालु लक्ष्मीपति विष्णुजी ने बाललीला से मधुरवचन को कहा ॥ २५ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे पुत्र ! इस समय तुम ब्रह्माण्डगोलक करो और पाताल, पृथ्वी, सिंधु, सागर व वन को बनावो ॥ २६ ॥ और जो वृक्ष व पर्वत हैं और द्विपद, पशु, पक्षी, गंधर्व, सिद्ध, यक्ष व राक्षसों को रचो ॥ २७ ॥ और व्याघ्रादिक जो जीव हैं उन चौरासी लक्ष योनियों को बनावो उद्भिज्ज, स्वेदज, जरायुज

निश्चितम् ॥ २२ ॥ खे जजान ततो वाणी दैवात्सा चाशरीरिणी ॥ तपस्तप विधे धातर्यथा मे दर्शनं भवेत् ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रातप्यत तपो घोरं परमं दुष्करं महत् ॥ २४ ॥ प्रहसन्स तदा बालरूपेण कमलापतिः ॥ उवाच मधुरां वाचं कृपालुर्बाललीलया ॥ २५ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ पुत्र त्वं विधिना चाद्य कुरु ब्रह्माण्डगोलके ॥ पातालं भूतलं चैव सिन्धुसागरकाननम् ॥ २६ ॥ वृक्षाश्च गिरयो ये वै द्विपदाः पशवस्तथा ॥ पक्षिणश्चैव गन्धर्वाः सिद्धा यक्षाश्च राक्षसाः ॥ २७ ॥ श्वापदाद्याश्च ये जीवाश्चतुराशीतियोनयः ॥ उद्भिज्जाः स्वेदजाश्चैव जरायुजास्तथाण्डजाः ॥ २८ ॥ एकविंशतिलक्षाणि एकैकस्य च योनयः ॥ कुरु त्वं सकलं चाशु इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ब्रह्मणा निर्मितं सर्वं ब्रह्माण्डं च यथोदितम् ॥ २९ ॥ यस्मिन्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः ॥ स्थाणुः सुरगुरुर्भानुः प्रचेताः परमेष्ठिनः ॥ ३० ॥ यथा दक्षो दक्षपुत्रास्तथा सप्तर्षयश्च ये ॥ ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥ ३१ ॥ पुरुषश्चा

व अंडज ॥ २८ ॥ एक एक की इक्कीस इक्कीस लक्ष जो योनि हैं उन सबको तुम शीघ्रही बनावो यह कहकर विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये और जैसा कहा गया वैसे ही सब ब्रह्माण्ड को ब्रह्मा ने बनाया ॥ २९ ॥ कि जिसमें एक प्रभु ब्रह्माजी व सुरगुरु सदाशिव, सूर्य और प्रचेता ये सब ब्रह्मा से उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ जिस प्रकार दक्ष व दक्षपुत्र उत्पन्न हुए वैसेही जो सप्तर्षि हैं वे पैदा हुए तदनन्तर इक्कीस प्रजापति हुए ॥ ३१ ॥ और अप्रमेय पुरुष उत्पन्न हुआ इस प्रकार वंशवाले ऋषि लोग कहते

हैं और विश्वेदेवा, आदित्य, वसु व अश्विनीकुमार ॥ ३२ ॥ और यक्ष, पिशाच, साध्य, पितर, गुह्यक उत्पन्न हुए तदनन्तर आठ निर्मल विद्वान् उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ व सब गुणों से संयुत बहुतसे राजर्षि उत्पन्न हुए और स्वर्ग, जल, पृथ्वी, पवन और दिशा ॥ ३४ ॥ व संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष और दिन रात क्रमसे पैदा हुए व कला, काष्ठा, मुहूर्त्तादिक, निमेषादिक व लवादिक ॥ ३५॥ और नक्षत्रों समेत ग्रहचक्र युग व मन्वन्तरादिक और अन्य भी जो था वह सब लोक का साक्षी उत्पन्न हुआ ॥३६॥ और जो कुछ यह चराचर चक्र देख पड़ता है हे पुत्र ! युग का नाश प्राप्त होनेपर वह संसार फिर नाश होजाता है ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! जैसे ऋतु में ऋतुके चिह्न और

प्रमेयश्च एवं वंश्यर्षयो विदुः ॥ विश्वेदेवास्तथादित्या वसवश्चाश्विनावपि ॥ ३२ ॥ यक्षाः पिशाचाः साध्याश्च पितरो गुह्यकास्तथा ॥ ततः प्रसूता विद्वांसो ह्यष्टौ ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३३ ॥ राजर्षयश्च बहवः सर्वे समुदिता गुणैः ॥ द्यौरापः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥ ३४ ॥ संवत्सरार्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात् ॥ कलाकाष्ठामुहूर्ता दिनिमेषादिलवास्तथा ॥ ३५ ॥ ग्रहचक्रं सनक्षत्रं युगा मन्वन्तरादयः ॥ यच्चान्यदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिक म् ॥ ३६ ॥ यदिदं दृश्यते चक्रं किञ्चित्स्थावरजङ्गमम् ॥ पुनः संक्षिप्यते पुत्र जगत्प्राप्ते युगक्षये ॥ ३७ ॥ यथर्तावृतु लिङ्गानि नामरूपाणि पर्यये ॥ दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा वत्सयुगादिकम् ॥ ३८ ॥ शिव उवाच ॥ अतः परं प्र वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ब्रह्मणश्च तथा पुत्र वंशस्यैवानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदि ताः षण्महर्षयः ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ४० ॥ मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपाच्चरमाः प्रजाः ॥ प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ४१ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा ॥ क्रोधा प्रोवा वसिष्ठा

नाम व रूप देख पड़ते हैं वेही वे और युगादिक सब युग प्राप्त होने पर होताहै ॥ ३८॥ शिवजी बोले कि हे पुत्र ! इसके उपरान्त मैं पुराण की उत्तम कथा को कहता हूं व ब्रह्मा के वंश के वंश को कहता हूं ॥ ३९ ॥ कि ब्रह्माके छः मानसी पुत्र महर्षिलोग उत्पन्नहुए कि मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह व क्रतुजी उत्पन्न हुए॥ ४०॥ व मरीचि के कश्यप पुत्र हुए और कश्यप की पिछली प्रजा बड़े ऐश्वर्यवाली तेरह कन्या उत्पन्न हुईं ॥ ४१ ॥ कि अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा,

ग्रोवा, वसिष्ठा, विनता व कपिला ॥ ४२ ॥ और कण्डू व सुनेत्रा इन तेरह कन्याओं को उस समय कश्यपजी के लिये दिया व अदितिमें उत्तम मुखवाले बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ और सूर्य से धर्मराज उत्पन्न हुए व उन्होंने पहले इस स्थान को बनाया है हे स्कन्द ! धर्मराज से बनाये हुए अति उत्तम धर्मारण्य को देखकर मैंने धर्मारण्य ऐसा कहा जोकि पुण्यदायक है ॥ ४४ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे महेश्वर ! धर्मारण्य के परमपावन कथानक को मैं सुना चाहताहूं उस सब को कहिये ॥ ४५ ॥ महादेव जी बोले कि इन्द्रादिक सब देवता ब्रह्मा के साथ चलैं और मैं वहां पापनाशक क्षेत्र को जाऊंगा ॥ ४६ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे शशिशेखर ! मैं भी उसको

च विनता कपिला तथा ॥ ४२ ॥ कण्डूश्चैव सुनेत्रा च कश्यपाय ददौ तदा ॥ अदित्यां द्वादशादित्याः सञ्जाता हि शुभाननाः ॥ ४३ ॥ सूर्याद्वै धर्मराड् जज्ञे तेनेदं निर्मितं पुरा ॥ धर्मेण निर्मितं दृष्ट्वा धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ धर्मारण्यमिति प्रोक्तं यन्मया स्कन्द पुण्यदम् ॥ ४४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ धर्मारण्यस्य चाख्यानं परमं पावनं तथा ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कथयस्व महेश्वर ॥ ४५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इन्द्राद्याः सकला देवा अन्वयुर्ब्रह्मणा सह ॥ अहं वै तत्र यास्यामि क्षेत्रं पापनिषूदनम् ॥ ४६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामि तं द्रष्टुं शशिशेखर ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ ततः स्कन्दस्तथा रुद्रः सूर्यश्चैवानिलोऽनलः ॥ सिद्धाश्चैव सगन्धर्वास्तथैवाप्सरसः शुभाः ॥ ४८ ॥ पिशाचा गुह्यकाः सर्व इन्द्रो वरुण एव च ॥ नागाः सर्वाः समाजग्मुः शुक्रो वाचस्पतिस्तथा ॥ ४९ ॥ ग्रहाः सर्वे सनक्षत्रा वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः ॥ अन्तरिक्षचराः सर्वे ये चान्ये नगवासिनः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं परया मुदा ॥ मन्त्रणार्थं तदा राजन् विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ५१ ॥ गत्वा तस्मिंश्च वैकुण्ठे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ध्यात्वा मुहूर्तमाचष्ट विष्णुं प्रति

देखने के लिये जाऊंगा ॥ ४७ ॥ सूतजी कहते हैं कि तदनन्तर स्कन्द, रुद्र, सूर्य, पवन व अग्नि, सिद्ध व गन्धर्वों समेत उत्तम अप्सरा ॥ ४८ ॥ और पिशाच व सब गुह्यक, इन्द्र, वरुण और सब नाग आये व शुक्र और बृहस्पतिजी आये ॥ ४९ ॥ और नक्षत्रों समेत सब ग्रह व आठ वसु और ध्रुवादिक व सब आकाशचारी और जो अन्य पर्वतनिवासी थे ॥ ५० ॥ वे और सब ब्रह्मादिक देवता हे राजन् ! बड़े हर्ष से अमित तेजवाले विष्णुजी के बुलाने के लिये उस समय वैकुंठ को गये ॥ ५१ ॥ व उस

वैकुंठ में जाकर लोकपितामह ब्रह्माजी ने थोड़ी देर तक विचारकर प्रसन्न होकर विष्णुजी से कहा ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे कृष्ण, कृष्ण, महाबाहो, दयालो, परमेश्वर ! तुम्हीं संसार को रचनेवाले व तुम्हीं हरनेवाले और तुम्हीं संसार के पिता हो ॥ ५३ ॥ हे सौम्य ! विष्णुरूपी आप के लिये नमस्कार है हे गरुडध्वज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कमलाकान्त ! ब्रह्मरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ व मत्स्यरूपी विश्वरूप आप के लिये नमस्कार है व दैत्यों को नाशनेवाले तथा भक्तों को अभय देनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ५५ ॥ व कंस को नाशनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और बल दैत्य को जीतनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है

सुहर्षितः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो कृपालो परमेश्वर ॥ स्रष्टा त्वं चैव हर्ता त्वं त्वमेव जगतः पिता ॥ ५३ ॥ नमस्ते विष्णवे सौम्य नमस्ते गरुडध्वज ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥ ५४ ॥ नमस्ते मत्स्यरूपाय विश्वरूपाय वै नमः ॥ नमस्ते दैत्यनाशाय भक्तानामभयाय च ॥ ५५ ॥ कंसघ्नाय नमस्तेस्तु बलदैत्य जिते नमः ॥ ब्रह्मणैवं स्तुतश्चासीत्प्रत्यक्षोऽसौ जनार्द्दनः ॥ ५६ ॥ पीताम्बरो घनश्यामो नागारिकृतवाहनः ॥ चतुर्भुजो महातेजाः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ५७ ॥ स्तूयमानः सुरैः सर्वैः स देवोऽमितविक्रमः ॥ विद्याधरैस्तथा नागैः स्तूयमानश्च सर्वशः ॥ ५८ ॥ उत्तस्थौ स तदा देवो भास्करामितदीप्तिमान् ॥ कोटिरत्नप्रभाभास्वन्मुकुटादिविभूषितः ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येविष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मा से इस प्रकार स्तुति कियेहुए ये विष्णुजी नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ५६ ॥ पीताम्बर व मेघों के समान श्याम तथा गरुड़जी पै सवार, चतुर्भुज व महातेजस्वी और शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले ॥ ५७ ॥ उन अमित पराक्रमी विष्णुदेवजी की सब देवताओं ने स्तुति की व विद्याधरों और सब नागों ने स्तुति की ॥ ५८ ॥ तब अमित सूर्यों के समान प्रकाशमान व करोड़ों रत्नों की प्रभा से प्रकाशमान मुकुटादिकों से भूषित वे विष्णुदेवजी उठपड़े ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जौन गोत्र देवी अहैं और प्रवर के नाम । सोइ नवें अध्याय में अहै चरित अभिराम ॥ व्यासजी बोले कि हे राजशार्दूल ! पवित्र व उत्तम कथानक को सुनिये कि स्तुति कियेहुए जगदीशजी ने इस वचन को कहा ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठो ! तुम सबलोग किस लिये आये हो क्या पृथ्वी में कुशल है और तुमलोगों को कहां से भय प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा ने उन विष्णुजी से यह वचन कहा कि चराचर समेत त्रिलोक में हम लोगों को भय नहीं है ॥ ३ ॥ मैं कुछ कहने के लिये केवल तुम्हारे समीप आया हूं उसको मैं तुमसे कहता हूं इस मेरे वचन को सुनिये ॥ ४ ॥ कि पुरातनसमय

व्यास उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल पुण्यमाख्यानमुत्तमम् ॥ स्तूयमानो जगन्नाथ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमर्थमागताः सर्वे ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ॥ पृथिव्यां कुशलं कच्चित्कुतो वो भयमागतम् ॥ २ ॥ ततः प्रोवाच वै हृष्टो ब्रह्मा तं केशवं वचः ॥ न भयं विद्यतेऽस्माकं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३ ॥ एकविज्ञापनार्थाय आगतोऽहं तवान्तिके ॥ तदहं सम्प्रवक्ष्यामि तदेतच्छृणु मे वचः ॥ ४ ॥ परं तु पूर्वं धर्मेण स्थापितं तीर्थमुत्तमम् ॥ तद्द्रष्टुकामोऽहं देव त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ५ ॥ तत्र त्वं देवदेवेश गमने कुरु मानसम् ॥ यथा सत्तीर्थतां याति धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ साधुसाधु महाभाग त्वर्य्यतां तत्र माचिरम् ॥ ममापि चित्तं तत्रैव तद्दर्शनेस्ति लालसम् ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ तार्क्ष्यमारुह्य गोविन्दस्तत्रागाच्छीघ्रमेव हि ॥ ततो धर्मेण ते देवाः सेन्द्राः सर्षिगणास्तथा ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या दृष्टा दूरान्मुमोद च ॥ धर्मराजोपि तान्दृष्ट्वा देवान्विष्णुपुरोगमान् ॥ ९ ॥ आगतः स्वाश्रमात्तत्र

धर्म ने उत्तम तीर्थ को स्थापित किया है हे जनार्दन, देव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं उसको देखना चाहताहूं ॥ ५ ॥ हे देवदेवेश ! वहां जाने के लिये तुम मन करो जिस भांति कि अति उत्तम धर्मारण्य उत्तम तीर्थता को प्राप्त होवै ॥ ६ ॥ विष्णुजी बोले कि हे महाभाग ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा वहां जाने के लिये शीघ्रता कीजिये व मेरा भी चित्त वहीं उसके दर्शन में लालची है ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि गरुड़ पै चढ़कर विष्णुजी वहां शीघ्रही गये तदनन्तर धर्मराज ने इन्द्र समेत उन देवताओं व ऋषिगणों को ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को दूर से देखा व प्रसन्नहुए और विष्णु आदिक उन देवताओं को देखकर धर्मराज भी ॥ ९ ॥ पूजनको लेकर

अपने आश्रम से वहां उन देवताओं के सामने आये व पूजनादिक को लेकर शीघ्र ही आसन से उठे व उन्होंने पृथक् पृथक् एक एक की पूजा किया ॥ १० ॥ और वहां सूर्यपुत्र धर्मराज ने विधिपूर्वक उन देवताओं का पूजन किया व आसनों पै बिठाकर बड़ीभारी पूजाकरके उन्हों ने यह कहा ॥ ११ ॥ यमराज बोले कि हे देवकीसुत ! तुम्हारी प्रसन्नता की विधि से व शिवजी की दया से यह क्षेत्र तीर्थरूप होगया ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी के आने से आज मेरा जन्म सफल होगया व आज मेरा तप सफल हुआ व आज मेरा स्थान सफल होगया ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले कि उस समय इस प्रकार स्तुति कियेहुए विष्णुजी मधुर वचन को

पूजां प्रगृह्य तत्पुरः॥ आसनादुत्थितः शीघ्रं सपर्याद्यं प्रगृह्य च ॥ एकैकस्य चकाराथ पूजां चैव पृथक्पृथक् ॥ १० ॥ चकार पूजां विधिवत्तेषां तत्रार्कनन्दनः ॥ आसनेषूपवेश्याथ पूजां कृत्वा गरीयसीम् ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ तीर्थरूपमिदं क्षेत्रं प्रसादाद्देवकीसुत ॥ त्वत्तोषविधिना चाद्य कृपया च शिवस्य च ॥ १२ ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ अद्य मे सफलं स्थानं काजेशानां समागमात् ॥१३॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुतस्तदा विष्णुः प्रोवाच मधुरं वचः॥ तुष्टोऽस्मि धर्मराजेन्द्र अहं स्तोत्रेण ते विभो ॥ १४ ॥ किञ्चित्प्रार्थय मत्तोऽहं करोमि तव वाञ्छितम्॥ यत्तेऽस्त्यभीप्सितं तुभ्यं तद्ददामि न संशयः ॥ १५ ॥ यम उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश वाञ्छितं कुरुषे यदि ॥ धर्मारण्ये महापुण्ये ऋषीणामाश्रमान्कुरु ॥ १६ ॥ वसन्ति वाडवा यत्र यजन्ति चैव याज्ञिकाः ॥ वेदनिर्घोषसंयुक्तं भाति तत्तीर्थमुत्तमम् ॥ १७॥ अब्राह्मणमिदं तीर्थं पीडयिष्यन्ति जन्तवः॥ तस्मात्त्वं वाडवाञ्छौरे समानय ऋषीन्बहून् ॥ धर्मारण्यं

बोले कि हे धर्मराजेन्द्र, विभो ! मैं तुम्हारे स्तोत्र से प्रसन्न होगया हूं ॥ १४ ॥ मुझ से कुछ मांगिये मैं तुम्हारा मनोरथ करूंगा जो तुमको प्रिय होगा उसको मैं दूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ यमराज बोले कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो व यदि मनोरथ करते हो तो महापवित्र धर्मारण्य में ऋषियों के आश्रमों को कीजिये ॥ १६ ॥ जहां कि ब्राह्मण बसते हैं व यज्ञकर्ता यज्ञ करते हैं वेद शब्द से संयुत वह उत्तम तीर्थ शोभित है ॥ १७ ॥ बिन ब्राह्मणवाले इस तीर्थ को प्राणी

पीड़ित करेंगे इस कारण हे शौरे ! तुम बहुत से ब्राह्मणों व ऋषियों को लावो जिस प्रकार कि धर्मारण्य तीर्थ चराचर समेत त्रिलोक में शोभित होवै ॥ १८ ॥ तदनन्तर सहस्रलोचन व सहस्रमस्तक तथा सहस्रचरणोंवाले धर्मप्रिय विष्णुजी ने उस समय हज़ारों रूप किया और जिस स्थान में उत्तम आचार व उत्तम नियम वाले जो ब्राह्मण थे ॥ १९ ॥ और जो सब धर्मों में प्रवीण तथा सब शास्त्रों में चतुर थे और तपस्या व ज्ञान में जो बहुत प्रसिद्ध थे और जो ब्रह्मयज्ञ में परायण थे वे सब अठारह हज़ार ऋषिलोग स्थापित कियेगये ॥ २० ॥ और वहां ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनायेहुए बहुत आश्रमों में उन देवताओं ने अनेक देशों से लाकर

यथा भाति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १८ ॥ ततो विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रशीर्षः सहस्रपात् ॥ सहस्रशस्तदा रूपं कृतवा न्धर्मवत्सलः ॥ यस्मिन्स्थाने च ये विप्राः सदाचाराः शुभव्रताः ॥ १९ ॥ अशेषधर्मकुशलाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ तपोज्ञाने महाख्याता ब्रह्मयज्ञपरायणाः ॥ स्थापिता ऋषयः सर्वे सहस्राण्यष्टादशैव तु ॥ २० ॥ नानादेशात्समा नीय स्थापितास्तत्र तैः सुरैः ॥ आश्रमांश्च बहूंस्तत्र काजेशैरपि निर्मितान् ॥ २१ ॥ धर्मोपदेशात्कृष्णेन ब्रह्मणा च शिवेन च ॥ स्वेस्वे स्थाने यथायोग्ये स्थापयामास केशवः ॥२२॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना ब्राह्मणा वे दपारगाः ॥ स्थापिताः सपरीवाराः पुत्रपौत्रसमावृताः ॥ २३ ॥ शिष्यैश्च बहुभिर्युक्ता अग्निहोत्रपरायणाः ॥ तेषां स्था नानि नामानि यथावच्च वदस्व मे ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ २५ ॥ महा त्मनां ब्राह्मणानामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ तेषां वै पुत्रपौत्राणां नामानि च वदाम्यहम् ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिगोत्राणि

स्थापित किया ॥ २१ ॥ धर्मोपदेश के लिये कृष्ण, ब्रह्मा व शिवजी से बनायेहुए अपने अपने यथायोग्य स्थान में विष्णुजी ने उन ब्राह्मणों को स्थापित किया ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि किस वंश में उपजेहुए वेदपारगामी ब्राह्मण परिवार समेत व पुत्रों और पौत्रों से संयुत स्थापित कियेगये ॥ २३ ॥ जो कि बहुत से शिष्यों से संयुत व अग्निहोत्र में परायण थे उनके स्थानों व नामों को मुझसे यथायोग्य कहिये ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपोत्तम ! धर्मारण्यनिवासी लोगों को सुनिये ॥ २५ ॥ उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों व महात्मा ब्राह्मणों के पुत्रों व पौत्रों के नामों को मैं कहताहूं ॥ २६ ॥ हे पांडवर्षभ ! ब्राह्मणों के चौबीस गोत्र हुए उनकी शाखा

व प्रशाखा और पुत्र, पौत्रादिक हुए ॥ २७ ॥ और सैकड़ों व हज़ारों पुत्र पैदा हुए चौबीस मुख्य गोत्रों के नामों को मैं तुमसे कहताहूं और ब्राह्मणों के जो ऋषि कहे गये हैं उन प्रवरों को सुनिये ॥ २८ ॥ कि भारद्वाज, वत्स, कौशिक, कुश, शांडिल्य, काश्यप, गौतम व छांधन ॥ २९ ॥ और जातूकर्ण्य, वत्स, वसिष्ठ, धारण, आत्रेय, भांडिल व इसके उपरान्त लौकिक ॥ ३० ॥ कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल, मौषक, पुण्यासन, पराशर व उसके उपरान्त कौंडिन्य ॥ ३१ ॥ और गांगासन ये चौबीस प्रवर हैं जामदग्न्य गोत्र के पांचही प्रवर हैं ॥ ३२ ॥ कि भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हे राजन्! ये पांच प्रवर लोकों में प्रसिद्ध हैं ॥ ३३ ॥

द्विजानां पाण्डवर्षभ ॥ तेषां शाखाः प्रशाखाश्च पुत्रपौत्रादयस्तथा ॥ २७ ॥ जज्ञिरे बहवः पुत्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ चतुर्विंशतिमुख्यानां नामानि प्रवदामि ते ॥ द्विजानामृषयः प्रोक्ताः प्रवराणि तथा शृणु ॥ २८ ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः कुश एव च ॥ शाण्डिल्यः काश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ २९ ॥ जातूकर्ण्यस्तथा वत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा ॥ आत्रेयो भाण्डिलश्चैव लौकिकाश्च इतः परम् ॥ ३० ॥ कृष्णायनोपमन्युश्च गार्ग्यमुद्गलमौषकाः ॥ पुण्यासनः पराशरः कौण्डिन्यश्च ततः परम् ॥ ३१ ॥ तथा गाङ्गासनश्चैव प्रवराणि चतुर्विंशतिः ॥ जामदग्न्यस्य गोत्रस्य प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ३२ ॥ भार्गवश्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ पञ्चैते प्रवरा राजन्विख्याता लोकविश्रुताः ॥ ३३ ॥ एवं गोत्रसमुत्पन्ना वाडवा वेदपारगाः ॥ द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानाक्रतुक्रियापराः ॥ ३४ ॥ गुणेन संहिता आसन् षट्कर्मनिरताश्च ये ॥ एवंविधा महाभागा नानादेशभवा द्विजाः ॥ ३५ ॥ गाङ्गासनं द्वितीयं च प्रवराः पञ्च एव हि ॥ भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वजामदग्न्यसंयुताः ॥ आत्रेयोऽर्चनानसश्च श्यावास्येति तृतीयकः ॥ ३६ ॥ अ

इस प्रकार गोत्रों में उत्पन्न ब्राह्मण वेदों के पारगामी हुए और ब्राह्मणों के पूजनकर्म से संयुक्त व अनेक भांति के यज्ञकर्म में परायण हुए ॥ ३४ ॥ जो छः कर्मों में परायणहुए वे गुण से संयुतहुए इस प्रकार के अनेक देशों में उत्पन्न ब्राह्मण बड़े ऐश्वर्यवान् हुए ॥ ३५ ॥ और दूसरा गांगासन गोत्रहै उसके पांचही प्रवर हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जामदग्न्य हैं व आत्रेय, अर्चनानस व तीसरा श्यावास्य है ॥ ३६ ॥ इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण दुष्ट व कुटिलगामी होते हैं और धनी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व धर्मनिष्ठ तथा वेदों व वेदांगों के पारगामी होते हैं ॥ ३७ ॥ व सब दान और भोग में परायण और श्रौत, स्मार्त कर्म से संमत होते हैं और मांडव्य गोत्र में पांच
प्रवरों से संयुत जानने योग्य हैं ॥ ३८ ॥ कि भार्गव, च्यावन, अत्रि, आप्नुवान् व और्व हैं इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में परायण होते हैं ॥ ३९ ॥
और रोगी, लोभी, दुष्ट और यज्ञ करने व कराने में परायण होते हैं व हे कुरुसत्तम! मांडव्य गोत्रवाले सब वेदकर्म में परायण होते हैं ॥ ४० ॥ और गार्ग्य के वंश में
जो पैदा हुए उनके तीन प्रवर हुए अंगिरा, अम्बरीष और तीसरे यौवनाश्व हुए ॥ ४१ ॥ व इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण उत्तम आचारवाले और सत्यवादी हुए और शांत,

स्मिन्गोत्रे भवा विप्रा दुष्टाः कुटिलगामिनः ॥ धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ३७ ॥ दानभोगरताः सर्वे श्रौ
तस्मार्तेषु सम्मताः ॥ माण्डव्यगोत्रे विज्ञेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ३८ ॥ भार्गवश्च्यावनोऽत्रिश्चाप्नुवानौर्वस्तथैव च ॥
अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३९ ॥ रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रिया
पराः सर्वे माण्डव्याः कुरुसत्तम ॥ ४० ॥ गार्ग्यस्य गोत्रे ये जातास्तेषां तु प्रवरास्त्रयः ॥ अङ्गिराश्चाम्बरीषश्च यौवनाश्व
स्तृतीयकः ॥ ४१ ॥ अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्नाः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्द्धनाश्च कुचैलि
नः ॥ ४२ ॥ सङ्गवात्सल्ययुक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ॥ वत्सगोत्रे द्विजा भूप प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ४३ ॥ भार्गव
श्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ एभिस्तु पञ्चभिः ख्याता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ४४ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीला
श्च धर्मपुत्रैः सुसंयुताः ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाः सर्वकर्मसु ॥ ४५ ॥ सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः ॥

भिन्नवर्ण, निर्धनी व कुवस्त्र को धारनेवाले हुए ॥ ४२ ॥ और संग व वत्सलता से संयुत और वेद शास्त्रों में निश्चल हैं व हे राजन्! वत्सगोत्र में जो ब्राह्मण हुए
उनके भी पांचही प्रवर हुए ॥ ४३ ॥ भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए और इन पांचों से ब्रह्मस्वरूपी ब्राह्मण प्रसिद्ध हुए ॥ ४४ ॥ जो कि शांत, दांत,
सुशील व धर्मपुत्रोंसे संयुत हुए और वेदपाठसे हीन व सब कर्मोंमें प्रवीण हुए ॥ ४५ ॥ और स्वरूपवान् तथा उत्तम आचारवाले व सब धर्मों में निष्ठित हुए और सब

ब्राह्मण दानधर्म में परायण व अन्नदायक तथा जलदायक हुए ॥ ४६ ॥ और दयालु, सुशील व सब प्राणियों के हित में तत्पर हुए व हे राजन्! कश्यपगोत्रवाले ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ४७ ॥ कि काश्यप, आपवत्सार व तीसरा नैध्रुव हुआ और वे वेदों को जाननेवाले, गौर रंग, नैष्ठिक व यज्ञकारक हुए ॥ ४८ ॥ और वे प्रिय निवासवाले तथा महाप्रवीण और सदैव गुरुवों की भक्ति में परायण हुए व प्रतिष्ठा और मानवान् व सब प्राणियों के हित में परायण हुए ॥ ४९ ॥ और कश्यप वंशवाले ब्राह्मण महायज्ञों को करते हैं व धारीणसगोत्रमें उपजे हुए ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ५० ॥ कि अगस्ति, दर्विश्वेता व दध्यवाहन संज्ञक हैं और इस गोत्र

दानधर्मरताः सर्वे अन्नदा जलदा द्विजाः ॥ ४६ ॥ दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ काश्यपा ब्राह्मणा राजन्प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ४७ ॥ काश्यपश्चापवत्सारो नैध्रुवश्च तृतीयकः ॥ वेदज्ञा गौरवर्णाश्च नैष्ठिका यज्ञकारकाः ॥ ४८ ॥ प्रियवासा महादक्षा गुरुभक्तिरताः सदा ॥ प्रतिष्ठामानवन्तश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ ४९ ॥ यजन्ते च महायज्ञान्काश्यपेया द्विजातयः ॥ धारीणसगोत्रजाश्च प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५० ॥ अगस्तिदर्विश्वेताश्वदध्यवाहनसंज्ञकाः ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता धर्मकर्मसमाश्रिताः ॥ ५१ ॥ कर्मक्रूराश्च ते सर्वे तथैवोदरिणस्तु ते ॥ लम्बकर्णा महादंष्ट्रा द्विजा धनपरायणाः ॥ ५२ ॥ क्रोधिनो द्वेषिणश्चैव सर्वसत्त्वभयङ्कराः ॥ लौगाक्षसोद्भवा ये वै वाडवाः सत्यसंश्रिताः ॥ ५३ ॥ प्रवराश्च त्रयस्तेषां तत्त्वज्ञानस्वरूपकाः ॥ कश्यपश्चैव वत्सश्च वसिष्ठश्च तृतीयकः ॥ ५४ ॥ सदाचारास्तु विख्याता वैष्णवा बहुवृत्तयः ॥ रोमभिर्बहुभिर्व्याप्ताः कृष्णवर्णास्तु वाडवाः ॥ ५५ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च

में जो उत्पन्न हुए वे धर्म के कर्म में आश्रित हुए ॥ ५१ ॥ और कर्म से क्रूर वे सब ब्राह्मण बड़े पेटवाले और लंबे कान तथा बड़ी डाढ़ोंवाले व धन से संयुत होते हैं ॥ ५२ ॥ और क्रोधी, वैरी व सब प्राणियों को भयकारक होते हैं और लौगाक्षसगोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हुए वे सत्य में स्थितहुए ॥ ५३ ॥ उनके तत्त्वज्ञान स्वरूप वाले तीन प्रवर हुए कश्यप, वत्स व तीसरा वसिष्ठ है ॥ ५४ ॥ और वे ब्राह्मण उत्तम आचारवाले तथा वैष्णव और बहुत जीविकाओंवाले होते हैं व बहुतरोमों से व्याप्त और काले रंग के होते हैं ॥ ५५ ॥ और शांत, दांत, सुशील व सदैव अपनी स्त्रियों में परायण होते हैं और जो कुशिक गोत्र में उत्पन्नहुए वे तीन प्रवरों से संयुत

हुए ॥ ५६ ॥ विश्वामित्र, देवरात और औदल ये तीन प्रवर हुए और इस गोत्र में जो उत्पन्न हुए वे दुर्बल व दीनमानस हुए ॥ ५७ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व सुरूपवान् हुए और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर हुए ॥ ५८ ॥ व उपमन्यु के गोत्रमें उपजेहुए ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए वसिष्ठ, भरद्वाज व इन्द्रप्रमद ये तीन प्रवर हैं ॥५९॥ व इस गोत्र में जो ब्राह्मण हुए वे क्रूर व कुटिलगामी हुए और दूषण व वैरी तथा तुच्छ व सब के संग्रह में तत्पर हुए ॥ ६० ॥ व झगड़ा उत्पन्न करने में प्रवीण और धनी व मानी हुए व सदैवही दुष्ट और दुष्टों का संग करनेवाले हुए ॥ ६१ ॥ और रोगी, दुर्बल व वृत्ति के उपकल्प से रहित हुए और वात्स्य गोत्र में उपजेहुए

स्वदारनिरताः सदा ॥ कुशिकसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५६ ॥ विश्वामित्रो देवरात औदलश्च त्रयश्च ये ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥५७॥ असत्यभाषिणो विप्राः सुरूपा नृपसत्तम ॥ सर्व्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ ५८ ॥ उपमन्युसगोत्रेयाः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ वसिष्ठश्च भरद्वाजस्त्विन्द्रप्रमद एव वा ॥ ५९ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये विप्राः क्रूराः कुटिलगामिनः ॥ दूषणा द्वेषिणस्तुच्छाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥ ६० ॥ कलहोत्पादने दक्षा धनिनो मानिनस्तथा ॥ सर्वदैव प्रदुष्टाश्च दुष्टसङ्गरतास्तथा ॥ ६१ ॥ रोगिणो दुर्बलाश्चैव वृत्त्युपकल्पवर्जिताः ॥ वात्स्यगोत्रे भवा विप्राः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ६२ ॥ भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः स्थूलाश्च बहुबुद्धयः ॥ ६३ ॥ सर्वकर्मरताश्चैव सर्वधर्मेषु निश्चलाः ॥ वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥६४॥ सदाचाराः सुरूपाश्च बुद्धितो दीर्घदर्शिनः॥ वात्स्यायनसगोत्रेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ६५ ॥ भार्ग

ब्राह्मण पांच प्रवरों से संयुत हुए ॥ ६२ ॥ भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए हैं और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण मोटे व बहुत बुद्धिवाले हुए ॥ ६३ ॥ व सबकर्मों में परायण तथा सब धर्मों में निश्चल हुए और वेद शास्त्रार्थ में निपुण व यज्ञकरने और यज्ञ कराने में रत हैं ॥ ६४ ॥ व उत्तम आचारवाले और स्वरूपवान् तथा बुद्धि से दीर्घदर्शी होते हैं और वात्स्यायन गोत्रवाले ब्राह्मण पांच प्रवरों से संयुत होते हैं ॥ ६५ ॥ कि भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए हे भारत ! इनके

पूर्वोक्त प्रवर तुमसे कहेगये ॥ ६६ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हुए वे सदैव पाकयज्ञ में परायण हुए और लोभी, क्रोधी व बहुत प्रजाओंवाले उत्पन्न होते हैं ॥ ६७ ॥ और स्नान, दानादि में परायण तथा सदैव जितेंद्रिय होते हैं व हज़ारों बावली, कूप और तड़ागों के करनेवाले हुए व व्रतशील, गुणज्ञ, मूर्ख और वेदों से रहित हुए ॥ ६८ ॥ और कौशिकवंश में जो उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए कि विश्वामित्र, अघमर्षी व तीसरा कौशिक हुआ ॥ ६९ ॥ और इस गोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हुए वे ब्रह्मज्ञ हुए और शांत, दांत, सुशील व सब धर्मों में परायण हुए ॥ ७० ॥ और वे द्विजोत्तम पुत्ररहित, रूक्ष व तेजसे हीन हुए और भारद्वाज गोत्रवाले ब्राह्मण

वच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ पूर्वोक्ताः प्रवराश्चास्य कथितास्तव भारत ॥ ६६ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाताः पाकयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ ६७ ॥ स्नानदानादिनिरताः सर्वदा च जितेन्द्रियाः ॥ वापीकूपतडागानां कर्तारश्च सहस्रशः ॥ व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ६८ ॥ कौशिकवंशे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ विश्वामित्रोऽघमर्षी च कौशिकश्च तृतीयकः ॥ ६९ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च सर्वधर्मपरायणाः ॥ ७० ॥ अपुत्रिणस्तथा रूक्षास्तेजोहीना द्विजोत्तमाः ॥ भारद्वाजसगोत्रेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ७१ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तु सैन्यसः ॥ गार्ग्यश्चैवेति विज्ञेयाः प्रवराः पञ्च एव च ॥ ७२ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः ॥ ७३ ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वधर्मपरायणाः ॥ काश्यपगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ७४ ॥ काश्यप

पांच प्रवरों से संयुत हुए ॥ ७१ ॥ कि आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, सैन्यस व गार्ग्य ये पांच प्रवर जानने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ और इस गोत्र में जो ब्राह्मण पैदाहुए वे धनी व उत्तमहुए और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा द्विजों की भक्ति में परायण हुए ॥ ७३ ॥ और सब ब्रह्मभोज्य में परायण तथा सब धर्मों में तत्पर हुए और जो काश्यपगोत्र में पैदा हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ७४ ॥ काश्यप, आपवत्सार व रैभ्य ये तीनों प्रसिद्ध हैं और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण लाल नेत्रोंवाले व क्रूर

दृष्टि होते हैं ॥ ७५ ॥ व सब जिह्वाकी चंचलता में रत होते हैं और वे सब परमार्थ करनेवाले होते हैं और ये निर्धनी, रोगी व चोर और असत्यवादी होते हैं ॥ ७६ ॥ और सब शास्त्रार्थ को जाननेवाले व वेदों और स्मृतियों से रहित होते हैं और शुनकवंशों में जो उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण ध्यान में परायण हुए ॥ ७७ ॥ और तपस्वी, योगी व वेदों तथा वेदांगों के पारगामी हुए और साधु व उत्तम आचारवाले तथा विष्णुजी की भक्ति में परायण हुए ॥ ७८ ॥ व छोटे शरीरवाले और भिन्न रंग व बहुत स्त्रियोंवाले द्विजोत्तम दयालु, उदार, शांत व ब्रह्मभोज्य में परायण हुए ॥ ७९ ॥ व शौनकवंशों में जो उत्पन्न हैं वे तीन प्रवरों से संयुत हैं भार्गव, शौनहोत्र व

श्चापवत्सारो रैभ्येति विश्रुतास्त्रयः ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्रा रक्ताक्षाः क्रूरदृष्टयः ॥ ७५ ॥ जिह्वालौल्यरताः सर्वे सर्वे ते पारमार्थिनः ॥ निर्धना रोगिणश्चैते तस्करानृतभाषिणः ॥ ७६ ॥ शास्त्रार्थवेदिनः सर्वे वेदस्मृतिविवर्जिताः ॥ शुनकेषु च ये जाता विप्रा ध्यानपरायणाः ॥ ७७ ॥ तपस्विनो योगिनश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ७८ ॥ ह्रस्वकाया भिन्नवर्णा बहुरामा द्विजोत्तमाः ॥ दयालाः सरलाः शान्ता ब्रह्मभोज्यपरायणाः ॥ ७९ ॥ शौनकसेषु ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ भार्गवशौनहोत्रेति गात्स्र्यप्रमद इति त्रयः ॥ ८० ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहा नृप ॥ महोत्कटा महाकायाः प्रलम्बाश्च मदोद्धताः ॥ ८१ ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ बहुभुजो मानिनो दक्षा रागद्वेषोपवर्जिताः ॥ ८२ ॥ सुवस्त्रभूषारूपा वै ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ वसिष्ठगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ८३ ॥ वसिष्ठो भारद्वाजश्च इन्द्रप्रमद एव च ॥ अस्मिन्गोत्रे

गात्स्र्यप्रमद ये तीनों प्रवर हैं ॥ ८० ॥ हे राजन्! इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण दुस्सह हैं और बड़े उग्र व बड़े शरीरवाले तथा लंबे व मदसे उद्धत हैं ॥ ८१ ॥ और क्लेशरूप व कालेरंगवाले तथा सब शास्त्रों में प्रवीण और बहुत भोजन करनेवाले, मानी, दक्ष और राग, द्वेष से रहित हैं ॥ ८२ ॥ व सुवस्त्र भूषणरूपी वे ब्राह्मण ब्रह्मवादी हुए और जो वसिष्ठगोत्र में उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ८३ ॥ जो कि वसिष्ठ, भारद्वाज व इन्द्रप्रमद हैं व इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण वेदों व

वेदांगों के पारगामी हुए ॥ ८४ ॥ और याज्ञिक, यज्ञशील, सुस्वर व सुखी, वैरी, धनवान् और पुत्रवान् व गुणवान् हुए ॥ ८५ ॥ व हे राजन्! विशालहृदय व शूर और शत्रुनाशक हुए व गौतम के गोत्र में जो पैदाहुए वे पांचही प्रवर हुए ॥ ८६ ॥ कि कौत्स, गार्ग्य, प्रवाह, देवल और असित हुए व इस गोत्र में जो उत्पन्नहुए वे बड़े पावन ब्राह्मण हुए ॥ ८७ ॥ और सब परोपकारी व श्रुतियों तथा स्मृतियों में परायण हुए और बगुले की नाईं बैठनेवाले और कुटिल व छल की वृत्ति में तत्पर हुए ॥ ८८ ॥ व अनेकप्रकार के शास्त्रार्थ में निपुण तथा अनेकभांति के आभूषणों से भूषित हुए और वृक्षादिकों के कर्म में प्रवीण व बहुत क्रोधवाले और रोगी

भवा विप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ८४ ॥ याज्ञिका यज्ञशीलाश्च सुस्वराः सुखिनस्तथा ॥ द्वेषिणो धनवन्तश्च पुत्रिणो गुणिनस्तथा ॥ ८५ ॥ विशालहृदया राजञ्छूराः शत्रुनिबर्हणाः ॥ गौतमसगोत्रे ये जाताः प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ८६ ॥ कौत्सगार्ग्यप्रवाहाश्च असितो देवलस्तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता विप्राः परमपावनाः ॥ ८७ ॥ परोपकारिणः सर्वे श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ बकासनाश्च कुटिलाश्छद्मवृत्तिपरास्तथा ॥ ८८ ॥ नानाशास्त्रार्थनिपुणा नानाभरणभूषिताः ॥ वृक्षादिकर्मकुशला दीर्घरोषाश्च रोगिणः ॥ ८९ ॥ आङ्गिरसगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ९० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यसम्भाषिणस्तथा ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ ९१ ॥ महाव्रताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ९२ ॥ दीर्घदर्शिमहातेजोमहामायाविमोहिताः ॥ शाण्डिलसगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयु

हुए ॥ ८९ ॥ व जो आंगिरस गोत्र में उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरोंसे संयुत हुए आंगिरस, अंबरीष व तीसरा यौवनाश्व है ॥ ९० ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी हैं और जितेन्द्रिय व स्वरूपवान् तथा थोड़ा भोजन करनेवाले और उत्तम मुखवाले हैं ॥ ९१ ॥ और महाव्रतवाले व पुराणों के जाननेवाले तथा महादानों में परायण हुए और वैररहित व लोभ से संयुत व वेदपाठ में तत्परहुए ॥ ९२ ॥ और दूरदर्शी तथा बड़ी तेजोवती महामाया से मोहित हुए और जो शांडिलस गोत्र में

उत्पन्नहुए वे तीन प्रवरों से संयुत हैं ॥ ९३ ॥ असित, देवल व तीसरा शांडिल है इस गोत्र में द्विजोत्तम बड़े ऐश्वर्यवान् व कूबरे होते हैं ॥ ९४ ॥ और नेत्ररोगी, बड़े दुष्ट, बड़े दानी व आयुर्बल से हीन होते हैं और झगड़ा पैदा करने में प्रवीण तथा सबके संग्रह में तत्पर होते हैं ॥ ९५ ॥ और मलीन, मानी व ज्योतिःशास्त्र में चतुर होते हैं और जो आत्रेय गोत्र में उत्पन्न हैं वे पांच प्रवरों से संयुत हैं ॥ ९६ ॥ कि आत्रेय, अर्चनानस, श्यावाश्व, आंगिरस और अत्रि हैं व इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण सूर्य के समान तेजस्वी हैं ॥ ९७ ॥ और धर्मारण्य में टिकेहुए वे सब चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और उत्तम आचारवाले तथा महाप्रवीण व श्रुतियों

ताः ॥ ९३ ॥ असितो देवलश्चैव शाण्डिलस्तु तृतीयकः ॥ अस्मिन्गोत्रे महाभागाः कुब्जाश्च द्विजसत्तमाः ॥ ९४ ॥ नेत्ररोगी महादुष्टा महात्यागा अनायुषः ॥ कलहोत्पादने दक्षाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥ ९५ ॥ मलिना मानिनश्चैव ज्योतिःशास्त्रविशारदाः ॥ आत्रेयसगोत्रे ये जाताः पञ्चप्रवरसंयुताः ॥ ९६ ॥ आत्रेयोऽर्चनानसश्यावाश्वावाङ्गिरसोऽत्रिकः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता द्विजास्ते सूर्यवर्चसः ॥ ९७ ॥ चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ सदाचारा महादक्षाः श्रुतिशास्त्रपरायणाः ॥ ९८ ॥ याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः ॥ धर्मज्ञा दानशीलाश्च निर्मलाश्च महोत्सुकाः ॥ ९९ ॥ तपःस्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपरायणाः ॥ १०० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व महाबाहो धर्मारण्यकथामृतम् ॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापाद्धोराद्ब्रह्मवधादपि ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथामेतां सुदुर्लभाम् ॥ २ ॥ यक्षरक्षःपिशाचाद्या उद्वेजयन्ति वाडवान् ॥ जृम्भकोनाम यक्षोऽभूद्धर्म्मारण्यसमी

और शास्त्रों में प्रवीण हैं ॥ ९८ ॥ और यज्ञकर्ता तथा उत्तम आचारवाले और सत्य व शौच में परायण हैं और धर्मज्ञ व दानी, निर्मल और बड़े उत्कंठित होतेहैं ॥ ९९ ॥ और तपस्या व निज वेदपाठ में परायण तथा न्याय धर्म में तत्पर हैं ॥ १०० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाबाहो ! धर्मारण्य के कथारूपी अमृत को कहिये कि जिसको सुनकर मनुष्य भयङ्कर ब्रह्मघात पाप सेभी छूटजाता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं इस दुर्लभ कथा को कहता हूं ॥ २ ॥ कि यक्ष,

राक्षस व पिशाचादिक ब्राह्मणों को पीडित करते थे धर्मारण्य के समीप जृंभकनामक यक्ष हुआ है ॥ ३ ॥ वह नित्य धर्मारण्य में बसनेवाले द्विजों को पीड़ित करताथा तदनन्तर उन द्विजोत्तमों ने देवताओं से कहा ॥ ४ ॥ कि हे देवताओ ! यक्ष व राक्षसादिकों से हमलोग दुःखित कियेजाते हैं इस कारण उनके भयसे हमलोग इस समय उत्तम स्थान को त्यागदेवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ तदनन्तर गन्धर्वों समेत देवताओं ने वहां सिद्धों और श्रीमातृ आदिक उत्तम योगिनियों को स्थापित किया ॥ ६ ॥ लोकों के हितकी कामना से ब्राह्मणों की रक्षा के लिये उस समय गोत्रों में एक एक योगिनी स्थापित कीगई ॥ ७ ॥ जिस गोत्र के रक्षण व पालन में जो

पतः ॥ ३ ॥ उद्वेजयति नित्यं स धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ततस्तैश्च द्विजाग्र्यैस्तु देवेभ्यो विनिवेदितम् ॥ ४ ॥ यक्ष रक्षादिना चैव परिभूता वयं सुराः ॥ त्यक्ष्यामोऽद्य वरं स्थानं तद्भयान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ ततो देवैः सगन्धर्वैः स्थापिता स्तत्र भूमिषु ॥ सिद्धाश्च वरयोगिन्यः श्रीमातृप्रभृतयस्तथा ॥ ६ ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणां लोकानां हितकाम्यया ॥ गोत्रान्प्रति तथैकैका स्थापिता योगिनी तदा ॥ ७ ॥ यस्य गोत्रस्य या शक्ती रक्षणे पालने क्षमा ॥ सा तस्य कुलदे वीति साक्षात्तत्र बभूव ह ॥ ८ ॥ श्रीमाता तारणी देवी आशापूरी च गोत्रपा ॥ इच्छाऽऽर्तिनाशिनी चैव पिप्पली वि करावशा ॥ ९ ॥ जगन्माता महामाता सिद्धा भट्टारिका तथा ॥ कदम्बा विकरा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ १० ॥ मातङ्गी च महादेवी वाणी च मुकुटेश्वरी ॥ भद्री चैव महाशक्तिः संहारी च महाबला ॥ ११ ॥ चामुण्डा च महा देवी इत्येता गोत्रमातरः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः स्थापितास्तत्र रक्षणे ॥ १२ ॥ ताः पूजयन्ति विप्रेन्द्राः स्वधर्मनिर

शक्ति समर्थ हुई वह वहां उस गोत्र की साक्षात् कुलदेवी हुई ॥ ८ ॥ श्रीमाता व तारणी देवी और गोत्र की रक्षा करनेवाली आशापूरी तथा इच्छार्तिनाशिनी, पिप्पली, विकरावशा ॥ ९ ॥ व जगन्माता, महामाता, सिद्धा, भट्टारिका, कदंबा, विकरा, मीठा, सुपर्णा व वसुजा ॥ १० ॥ और मातंगी, महादेवी, वाणी, मुकुटेश्वरी व भद्री, महाशक्ति, संहारी और महाबला ॥ ११ ॥ चामुंडा और महादेवी ये गोत्रमातृका वहां ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से रक्षा करने में स्थापित कीगई ॥ १२ ॥ अपने

धर्म में तत्पर द्विजेन्द्र सदैव उनको पूजते हैं तबसे लगाकर योगिनियों से अपने अपने समय में सुरक्षित ॥ १३ ॥ पुत्रों व पौत्रों से घिरेहुए ब्राह्मण स्वस्थता को प्राप्तहुए तदनन्तर हर्ष से पूर्ण मनवाले गंधर्वों समेत अमृतभोजी देवता उत्तम विमानों पै चढ़कर वैकुंठ में चलेगये ॥ १४ ॥ व हे राजन्! सौ वर्ष बीतने पर ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी धर्मारण्य को देखने के लिये कौतुक से स्मरण कर ॥ १५ ॥ हे राजन् ! प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर उत्तम विमानपै चढ़कर अप्सरागणों से सेवित व गंधर्वों से गायेजाते हुए व वंदियों से स्तुति कियेजातेहुए वे आये हे राजन्! उस स्थान में ब्राह्मण लोग बहुत से समिधा, पुष्प व कुशों को लेने के लिये ॥ १६ । १७ ॥ उन

ताः सदा ॥ ततः प्रभृति योगिनीभिः स्वेस्वे काले सुरक्षिताः ॥ १३ ॥ वाडवाः स्वस्थतां जग्मुः पुत्रपौत्रैः समावृताः ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ विमानवरमारूढा जग्मुर्नाकेऽमृताशनाः ॥ १४ ॥ गते वर्षशते राजन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ स्मृत्वा तु धर्मारण्यस्य प्रेक्षणार्थं कुतूहलात् ॥ १५ ॥ समाजग्मुस्तदा राजन्प्रभाते उदिते रवौ ॥ विमानवरमारुह्य अप्सरोगणसेविताः ॥ १६ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानास्ते स्तूयमानाः प्रबोधकैः ॥ तत्र स्थाने द्विजा राजन्समित्पुष्पकुशान्बहून् ॥ १७ ॥ आश्रमांस्तान्परित्यज्य गताः सर्वे दिशो दश ॥ तमाश्रमपदं दृष्ट्वा शून्यं चैव महेश्वरः ॥ १८ ॥ उवाच वाक्यं धर्मज्ञः क्लिश्यन्ते वाडवा विभो ॥ शुश्रूषार्थं हि शुश्रूषून्कल्पयामीति मे मतिः ॥ १९ ॥ श्रुत्वा तु वचनं शम्भोर्देवदेवो जनार्दनः ॥ सत्यं सत्यमिति प्रोच्य ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥ भोभो ब्रह्मन्द्विजातीनां शुश्रूषार्थं प्रकल्पय ॥ सृष्टिर्हि शाश्वतीवाद्य द्विजौघोपि सुखी भवेत् ॥ विष्णोर्वाक्यमभिश्रुत्य ब्रह्मा

आश्रमों को छोड़कर सब दशो दिशाओं को चले गये तब उस आश्रम स्थान को शून्य देखकर महेश्वर ॥ १८ ॥ धर्मज्ञ ने विष्णुजी से यह वचन कहा कि हे विभो ! ब्राह्मण दुःखी होते हैं इस कारण सेवा के लिये सेवकों को कल्पित करूं ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ १९ ॥ शिवजीका वचन सुनकर देवदेव विष्णुजीने सत्य है सत्य है यह कहकर ब्रह्मा से यह कहा ॥ २० ॥ कि हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मणों की सेवा के लिये इस समय सनातनी सृष्टि की नाईं कल्पित करो कि जिस से द्विजगण भी सुखी होवै

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विष्णुजी का वचन सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ॥ २१ ॥ कामधेनु को स्मरण किया और स्मरणही से उसी क्षण वह कामधेनु उस पवित्र धर्मारण्य में आ-गई ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❀ ॥

दो० । कामधेनु से प्रकट भे यथा वणिज सबलोग । सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सुखभोग ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! धर्मारण्य में जैसा उत्तम वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये मैं कहताहूं जो यह कि सब पापराशियों का नाशक है ॥ १ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मा से प्रेरित विष्णु व शिवजी ने कामधेनु को बुलाया व उससे

लोकपितामहः ॥ २१ ॥ सस्मार कामधेनुं वै स्मरणेनैव तत्क्षणे ॥ आगता तत्र साधेनुर्धर्मारण्ये पवित्रके ॥ १२२ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥

व्यास उवाच॥ शृणु राजन्यथावृत्तं धर्म्मारण्ये शुभं गतम्॥ यदिदं कथयिष्यामि अशेषाघौघनाशनम् ॥ १ ॥ अजेशेन तदा राजन्प्रेरितेन स्वयम्भुवा ॥ कामधेनुः समाहूता कथयामास तां प्रति ॥ २ ॥ विप्रेभ्योऽनुचरान्देहि एकैकस्मै द्विजातये ॥ द्वौ द्वौ शुद्धात्मकौ चैवं देहि मातः प्रसीद मे ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वा महाधेनुः खुरेणोल्लेखयद्धराम् ॥ हुङ्कारात्तस्या निष्क्रान्ताः शिखासूत्रधरा नराः ॥ ४ ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वणिजश्च महाबलाः ॥ सोपवीता महा दक्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ५ ॥ द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते तपोन्विताः ॥ पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिका ब्रह्मसेवकाः ॥ ६ ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ तपोऽध्ययनदानेषु सर्वकालेप्यतीन्द्रियाः ॥ ७ ॥

कहा ॥ २ ॥ कि हे मातः ! ब्राह्मणों के लिये सेवकों को दीजिये याने एक एक ब्राह्मण के लिये शुद्धचित्तवाले दो दो सेवकों को दीजिये मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ३ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर महाधेनु ने खुर से पृथ्वी को लिखा और उसके हुंकार से शिखासूत्रधारी छत्तीसहज़ार बड़े बलवान् वणिज् निकले जोकि यज्ञोपवीत समेत व बड़े प्रवीण और सब शास्त्रों में चतुर थे ॥ ४ । ५ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति से संयुत वे ब्रह्मण्य और तपस्या से संयुत व पुराणों के जाननेवाले तथा उत्तम आचारवाले और धार्मिक व ब्रह्मसेवक थे ॥ ६ ॥ स्वर्ग में देवता भी धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हैं कि तपस्या, पठन व दान में वे सबसमय में भी इन्द्रियों को जीते हैं॥ ७ ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हे राजन्! एक एक ब्राह्मण के लिये दो दो सेवक दिये गये और जिस ब्राह्मण का पहले जो गोत्र कहागया है ॥ ८ ॥ उसके सेवक का भी परस्पर वह गोत्र हुआ इस व्यवस्था को करके वहां भूमियों में द्विजोंने निवास किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में देवताओं ने सेवकों को शिष्यता दी और ब्रह्मा ने उनके हित के लिये सब कहा ॥ १० ॥ कि तुम लोग इनका वचन करो और जो मनोरथ हो उसको देवो व प्रतिदिन समिधा, पुष्प और कुशादिकों को लेआवो ॥ ११ ॥ और इनकी आज्ञा से वर्तमान होवो कभी अपमान मत करो और जातक, नामकरण व उत्तम अन्नप्राशन ॥ १२ ॥ व मुंडन, यज्ञोपवीत और महानाम्न्यादिक जो क्रिया कर्मादिक व व्रत, दान

एकैकस्मैद्विजायैव दत्तं ह्यनुचरद्वयम् ॥ वाडवस्य च यद्गोत्रं पुरा प्रोक्तं महीपते ॥ ८ ॥ परस्परं च तद्गोत्रं तस्य चानुचरस्य च ॥ इति कृत्वा व्यवस्थां च न्यवसंस्तत्र भूमिषु ॥ ९ ॥ ततश्च शिष्यता देवैर्दत्ता चानुचरान्भुवि ॥ ब्रह्मणा कथितं सर्वं तेषामनुहिताय वै ॥ १० ॥ कुरुध्वं वचनं चैषां ददध्वं च यदिच्छितम् ॥ समित्पुष्पकुशादीनि आनयध्वं दिने दिने ॥ ११ ॥ अनुज्ञयैषां वर्तध्वं मावज्ञां कुरुत कचित् ॥ जातकं नामकरणं तथान्नप्राशनं शुभम् ॥ १२ ॥ क्षौरं चैवोपनयनं महानाम्न्यादिकं तथा ॥ क्रियाकर्मादिकं यच्च व्रतं दानोपवासकम् ॥ १३ ॥ अनुज्ञयैषां कर्तव्यं काजेशा इदमब्रुवन् ॥ अनुज्ञया विनैषां यः कार्यमारभते यदि ॥ १४ ॥ दर्शं वा श्राद्धकार्यं वा शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ दारिद्र्यं पुत्रशोकं च कीर्तिनाशं तथैव च ॥ १५ ॥ रोगैर्निपीड्यते नित्यं न कचित्सुखमाप्नुयुः ॥ तथेति च ततो देवाः शक्राद्याः सुरसत्तमाः ॥ १६ ॥ स्तुतिं कुर्वन्ति ते सर्वे कामधेनोः पुरः स्थिताः ॥ कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १७ ॥

और उपवास ॥ १३ ॥ इनकी आज्ञा से करना चाहिये ब्रह्मा, विष्णु व महेशने ऐसा कहा और बिन इनकी आज्ञा जो कार्य का प्रारंभ करैगा ॥ १४ ॥ दर्श श्राद्धकार्य या शुभ व अशुभ जो कार्य करैगा वह दारिद्र्य, पुत्रशोक व कीर्तिनाश को पावैगा ॥ १५ ॥ और वह नित्य रोगों से निपीडित होगा व कभी वे सुखको न पावैंगे बहुत अच्छा ऐसा उन्होंने कहा तदनन्तर इन्द्रादिक वे सुरश्रेष्ठ सब देवता कामधेनु के आगे स्थित होकर स्तुति करनेलगे व उस समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवदेवता कृतार्थ हुए ॥ १६ ॥ १७ ॥

हे अनघे ! तुम सब देवताओं की माता हो व तुम यज्ञका कारण हो और सब तीर्थों के मध्य में तुम तीर्थ हो हे अनघे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जिसके मस्तक में चन्द्रमा, सूर्य, अरुण व शिवजी हैं व जिसके हुंकार में सरस्वती है व सब नाग जिसके कंबल स्थान में हैं ॥ १९ ॥ और जिस के खुर के पिछले भाग में गंधर्व व चारों वेद हैं और मुख के अग्रभाग में सब तीर्थ व स्थावर और जंगम हैं ॥ २० ॥ ऐसे बहुत वचनों से प्रसन्न कीहुई वह कामधेनु हर्षित हुई तब उसने यह कहा कि मैं क्या करूं ॥ २१ ॥ देवता बोले कि हे मातः ! आप भगवती ने इन सब उत्तम सेवकों को रचा व हे महाभागे ! तुम्हारी प्रसन्नता से ब्राह्मण

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम् ॥ त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे ॥ १८ ॥ शशिसूर्यारुणा यस्या ललाटे वृषभध्वजः ॥ सरस्वती च हुङ्कारे सर्वे नागाश्च कम्बले ॥ १९ ॥ खुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥ मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥ २० ॥ एवंविधैश्च बहुशो वचनैस्तोषिता च सा ॥ सुप्रसन्ना तदा धेनुः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥ देवा ऊचुः ॥ सृष्टाः सर्वे त्वया मातर्देव्यैतेऽनुचराः शुभाः ॥ त्वत्प्रसादान्महाभागे ब्राह्मणाः सुखिनोऽभवन् ॥ २२ ॥ ततोऽसौ सुरभी राजन्गता नाकं यशस्विनी ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तत्रैवान्तरधुस्ततः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अभार्यास्ते महातेजा गोजा अनुचरास्तथा ॥ उद्वाहिताः कथं ब्रह्मन्सुतास्तेषां कदाऽभवन् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ परिग्रहार्थं वै तेषां रुद्रेण च यमेन च ॥ गन्धर्वकन्या आहृत्य दारास्तत्रोपकल्पिताः ॥ २५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ को वा गन्धर्वराजासौ किन्नामा कुत्र वा स्थितः ॥ कियन्मात्रास्तस्य कन्याः कि

लोग सुखी हुए ॥ २२ ॥ व हे राजन् ! तदनन्तर कामधेनु स्वर्ग को चलीगई और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवता वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महातेजा, ब्रह्मन् ! गऊ से उपजे हुए वे अनुचर (वैश्य) स्त्रीविहीन थे फिर कैसे ब्याहेगये और किस समय उनके पुत्र हुए ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि उन वैश्यों के विवाह के लिये रुद्र व यमराज ने गंधर्वों की कन्याओं को हरकर वहां स्त्रियों को कल्पित किया ॥ २५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले यह कौन गंधर्वराज था व इस

का क्या नाम था और यह कहां स्थित था और किस आचारवाली उसकी कितनी कन्या थीं इसको मुझसे कहिये ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृप ! विश्वावसु ऐसा प्रसिद्ध गंधर्वों का राजा था उसके मन्दिर में साठहज़ार कन्या थीं ॥ २७ ॥ उसका आकाश में घर था और उत्तम गंधर्वनगर था व गंधर्व से उपजी हुई उत्तम कन्या स्वरूपवती और युवावस्था में स्थित थीं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! शिवजी के गण उत्तम मुखवाले नन्दी व भृंगी ने पहले देखी हुई उन कन्याओं को शिवजी से कहा ॥ २९ ॥ कि हे विभो, महादेव ! पुरातन समय गंधर्वनगर में विश्वावसु के घर में मैंने हज़ारों कन्याओं को देखा है ॥ ३० ॥ हे शिवजी ! उनको बलसे

माचारा ब्रवीहि मे ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ विश्वावसुरितिख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥ षष्टिकन्यासहस्राणि आसते तस्य वेश्मनि ॥ २७ ॥ अन्तरिक्षे गृहं तस्य गन्धर्वनगरं शुभम् ॥ यौवनस्थाः सुरूपाश्च कन्या गन्धर्वजाः शुभाः ॥ २८ ॥ रुद्रस्यानुचरौ राजन्नन्दी भृङ्गी शुभाननौ ॥ पूर्वदृष्टाश्च ताः कन्याः कथयामासतुः शिवम् ॥ २९ ॥ दृष्टाः पुरा महादेव गन्धर्वनगरे विभो ॥ विश्वावसुगृहे कन्या असंख्याताः सहस्रशः ॥ ३० ॥ ता आनीय बलादेव गोभुजेभ्यः प्रयच्छ भोः ॥ एवं श्रुत्वा ततो देवस्त्रिपुरघ्नः सदाशिवः ॥ ३१ ॥ प्रेषयामास दूतं तु विजयं नाम भारत ॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते विश्वावसुररिन्दमः ॥ ३२ ॥ उवाच वचनं चैव पथ्यं चैव शिवेरितम् ॥ धर्मारण्ये महाभाग काजेशेन विनिर्मिताः ॥ ३३ ॥ स्थापिता वाडवास्तत्र वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तेषां वै परिचर्यार्थं कामधेनुश्च प्रार्थिता ॥ ३४ ॥ तया कृताः शुभाचारा वणिजस्ते त्वयोनिजाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारास्ते महाबलाः ॥ ३५ ॥ शिवेन प्रेषितोऽहं

लाकर वैश्यों को दीजिये ऐसा सुनकर तदनन्तर त्रिपुरविनाशक सदाशिवजी ने ॥ ३१ ॥ हे भारत ! विजय नामक दूतको पठाया और जहां शत्रुनाशक विश्वावसु था वहां उसने जाकर ॥ ३२ ॥ शिवजी से कहे हुए पथ्य वचन को कहा कि हे महाभाग ! धर्मारण्य में ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से रचेहुए ॥ ३३ ॥ वेदवेदांग के पारगामी ब्राह्मण वहां स्थापित हैं और उनकी सेवा के लिये कामधेनु की प्रार्थना कीगई ॥ ३४ ॥ व उसने उत्तम आचारवाले अयोनिज बनियों को बनाया है वे बड़े बलवान् छत्तीस हज़ार कुमार हैं ॥ ३५ ॥ शिवजी से पठाया हुआ मैं तुम्हारे समीप कन्या के लिये आया हूं हे महाभाग ! कन्या को दीजिये दीजिये ऐसा उसने

कहा ॥ ३६ ॥ गंधर्व बोला कि हे महामते! संसार में सब देवताओं व गंधर्वों को छोड़कर कैसे मनुष्यों को कन्या देऊं ॥ ३७ ॥ उसका वचन सुनकर उस समय विजय लौट आया व उसने बड़े भारी गंधर्वचरित्र को कहा ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर भगवान् सदाशिवजी क्रोधित हुए और त्रिशूल को हाथ में लिये हुए सदाशिवजी बैलपै सवार हुए ॥ ३९ ॥ व हज़ारों भूत, प्रेत और पिशाचादिकों से घिरे तदनन्तर देवता, नाग, भूत, वेताल व खेचर ॥ ४० ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर वे हज़ारों लोग आये और उस सेना के चलने पर बड़ाभारी हाहाकार हुआ ॥ ४१ ॥ और पृथ्वी देवी काँपनेलगी व दिक्पाल भय से विकल हुए तब भयंकर व अशांत पवन चलनेलगे

वै त्वत्समीपमुपागतः ॥ कन्यार्थं हि महाभाग देहि देहीत्युवाच ह ॥ ३६ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ देवानां चैव सर्वेषां गन्धर्वाणां महामते ॥ परित्यज्य कथं लोके मानुषाणां ददामि वै ॥ ३७ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य निवृत्तो विजयस्तदा ॥ कथयामास तत्सर्वं गन्धर्वचरितं महत् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः कोपसमाविष्टो भगवाँल्लोकशङ्करः ॥ वृषभे च समारूढः शूलहस्तः सदाशिवः ॥ ३९ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सहस्रैरावृतः प्रभुः ॥ ततो देवास्तथा नागा भूतवेताल खेचराः ॥ ४० ॥ क्रोधेन महताविष्टाः समाजग्मुः सहस्रशः ॥ हाहाकारो महानासीत्तस्मिन्सैन्ये विसर्पति ॥ ४१ ॥ प्रकम्पिता धरादेवी दिशापाला भयातुराः ॥ घोरा वातास्तदाऽशान्ताः शब्दं कुर्वन्ति दिग्गजाः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ तदागतं महासैन्यं दृष्ट्वा भयविलोलितम् ॥ गन्धर्वनगरात्सर्वे विनेशुस्ते दिशो दश ॥ ४३ ॥ गन्धर्वराजो नगरं त्यक्त्वा मेरुं गतो नृप ॥ ताः कन्या यौवनोपेता रूपौदार्यसमन्विताः ॥ ४४ ॥ गृहीत्वा प्रददौ सर्वा वणिग्भ्यश्च तदा नृप ॥ वेदोक्तेन विधानेन तथा वै देवसन्निधौ ॥ ४५ ॥ आज्यभागं तदा दत्त्वा गन्धर्वाय गवात्मजाः ॥ देवानां पूर्व

और दिग्गज शब्द करनेलगे ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले कि भय से चंचल व आई हुई सब सेना को देखकर गंधर्वनगर से वे सब दशो दिशाओं को भगगये ॥ ४३ ॥ व हे राजन्! गंधर्वों का राजा विश्वावसु नगर को छोड़कर सुमेरुगिरि पै चलागया तब हे राजन्! यौवन से युक्त व रूप, उदारता से संयुत उन सब कन्याओं को लेकर बनियों के लिये देदिया तब शिवदेवजी के समीप वेदोक्त विधि से ॥ ४४ । ४५ ॥ गंधर्व के लिये आज्यभाग को देकर गऊ के पुत्र वणिजों ने पूर्वज देवता व सूर्य और

चन्द्रमा को ॥ ४६ ॥ व यमराज और मृत्यु के लिये घृतभाग को दिया और घृतभागों को देकर विधिपूर्वक उन वणिजों ने उत्तम व्रतवाली कन्याओं का ब्याह किया ॥ ४७ ॥ तबसे लगाकर गांधर्व विवाह प्राप्त होनेपर आजभी सब देवादिक आज्य (घृत) भाग को ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥ और छत्तीसहज़ार जो कुमार कहे गये हैं उनके सैकड़ों व हज़ारों पुत्र, पौत्र हुए ॥ ४९ ॥ इसी कारण वे सब दासत्व में कियेगये व बड़े वीर क्षत्रिय सेवकता में कियेगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर हे राजन्! सब देवता जैसे आये थे वैसेही चलेगये व देवताओं के जानेपर वे सब ब्राह्मण इस स्थान में बसने लगे ॥ ५१ ॥ हे राजन्! पुत्रों व पौत्रों से संयुत व सबकहीं से निडर ब्राह्मण

जानां च सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ४६ ॥ यमाय मृत्यवे चैव आज्यभागं तदा ददुः ॥ दत्त्वाज्यभागान्विधिवद्वव्रिरे ते शुभव्रताः ॥ ४७ ॥ ततः प्रभृति गान्धर्वविवाहे समुपस्थिते ॥ आज्यभागं प्रगृह्णन्ति अद्यापि सर्वतो भृशम् ॥ ४८ ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारा ये निवेदिताः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४९ ॥ अत एव हि ते सर्वे दासत्वे हि विनिर्मिताः ॥ क्षत्रियाश्च महावीराः किङ्करत्वे हि निर्मिताः ॥ ५० ॥ ततो देवास्तदा राजञ्जग्मुः सर्वे यथातथा ॥ गते देवे द्विजाः सर्वे स्थानेऽस्मिन्निवसन्ति ते ॥ ५१ ॥ पुत्रपौत्रयुता राजन्निवसन्त्यकुतोभयाः ॥ पठन्ति वेदान्वेदज्ञाः क्वचिच्छास्त्रार्थमुद्गिरन् ॥ ५२ ॥ केचिद्विष्णुं जपन्तीह शिवं केचिज्जपन्ति हि ॥ ब्रह्माणं च जपन्त्येके यमसूक्तं हि केचन ॥ ५३ ॥ यजन्ति याजकाश्चैव अग्निहोत्रमुपासते ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारैश्च सुव्रत ॥ ५४ ॥ शब्दैरापूर्यते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ वणिजश्च महादक्षा द्विजशुश्रूषणोत्सुकाः ॥ ५५ ॥ धर्मारण्ये शुभे दिव्ये ते

बसते हैं व वेदों को जाननेवाले वे वेदों को पढ़ते हैं और कभी शास्त्रार्थ को कहते हैं ॥ ५२ ॥ यहां कोई शिवजी को जपते हैं व कोई विष्णुजी को जपते हैं और कोई ब्रह्मा को जपते हैं व कोई यमसूक्त को जपते हैं ॥ ५३ ॥ और याजक लोग यज्ञ करते हैं व अग्निहोत्र की उपासना करते हैं व हे सुव्रत! स्वाहाकार, स्वधाकार और वषट्कार शब्दों से चराचर समेत सब त्रिलोक पूर्ण होता है और ब्राह्मणों की सेवा में उत्कंठित जो बड़े दक्ष वणिज् हैं ॥ ५४ । ५५ ॥ भलीभांति निष्ठित वे लोग उत्तम व दिव्य

धर्मारण्य में बसते हैं और अन्न, पानादिक व समिधा, कुश और फलादिक सब वस्तु को ॥ ५६ ॥ गऊ के पुत्र उन वणिजों ने ब्राह्मणों के लिये पूर्ण किया ॥ ५७ ॥ और पुष्पोपहार का इकट्ठा करना व स्नान और वस्त्रादिकों का धोना तथा पत्थरआदिक का निर्माण और मार्जनादिक उत्तम कर्मों को ॥ ५८ ॥ और कुट्टन व पीसना आदिक काम को वणिजों की स्त्रियां करनेलगीं व ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी के वचन से वे उन ब्राह्मणों की सेवा करनेलगे ॥ ५९ ॥ तब हर्ष में तत्पर सब ब्राह्मण स्वस्थ हो गये और दिन, रात्रि व सन्ध्याओं में ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिकों की उपासना करनेलगे ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

वसन्ति सुनिष्ठिताः ॥ अन्नपानादिकं सर्वं समित्कुशफलादिकम् ॥ ५६ ॥ आपूरयन्द्विजातीनां वणिजस्ते गवात्मजाः ॥ ५७ ॥ पुष्पोपहारनिचयं स्नानवस्त्रादिधावनम् ॥ उपलादिकनिर्माणं मार्जनादिशुभक्रियाः ॥ ५८ ॥ वणिक्स्त्रियः प्रकुर्वन्ति कण्डनं पेषणादिकम् ॥ शुश्रूषन्ति च तान्विप्रान्काजेशवचनेन हि ॥ ५९ ॥ स्वस्था जातास्तदा सर्वे द्विजा हर्षपरायणाः ॥ काजेशादीनुपासन्ते दिवारात्रौ हि सन्ध्ययोः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये वणिक्परिग्रहवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ अतः परं किमभवद्ब्रवीतु द्विजसत्तम ॥ त्वद्वचनामृतं पीत्वा तृप्तिर्नास्ति मम प्रभो ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ किञ्चिद्गते काले युगान्तसमये सति ॥ त्रेतादौ लोलजिह्वाक्ष अभवद्राक्षसेश्वरः ॥ २ ॥ तेन विद्रा

भाषाटीकायांवणिक्परिग्रहवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । लोलजिह्व राक्षसहिं जिमि हन्यो विष्णु सुरनाथ । गेरहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम, प्रभो! इसके उपरान्त क्या हुआ उसको कहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीकर मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त कुछ समय बीतने पर जब युगांत समय हुआ तब त्रेतायुग के आदि में लोलजिह्वाक्ष नामक राक्षसेश्वर हुआ ॥ २ ॥ उसने चराचर समेत सब त्रिलोक को भगादिया व सबलोकों को जीतकर वह धर्मारण्य में

आया ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणों से सेवित उस पवित्र व सुंदर धर्मारण्य को देखकर ब्राह्मणों के वैर से उसी ने उत्तम पुर को जलादिया ॥ ४ ॥ और जलते हुए नगर को देखकर द्विजोत्तम लोग भग गये और वे धर्मारण्यनिवासी लोग जैसे आये थे वैसेही चले गये ॥ ५ ॥ तब श्रीमातादिक देवियां राक्षस से क्रोधित हुईं और शब्द से डरवाकर राक्षस को मारनेलगीं ॥ ६ ॥ तब उत्तम त्रिशूल को धारनेवाली व शंख, चक्र और गदा को धारनेवाली सैकड़ों व हज़ारों देवियां प्राप्तहुईं ॥ ७ ॥ कोई कमंडलु को धारे थीं व अन्य चाबुक और तलवार को धारण किये थीं और कोई फसरी व अंकुश को धारे थीं और कोई तलवार व खेटक अस्त्र को धारण किये थीं ॥ ८ ॥ कोई

वितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ जित्वा स सकलाँल्लोकान्धर्मारण्ये समागतः ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा सकलं पुण्यं रम्यं द्विजनिषेवितम् ॥ ब्रह्मद्वेषाच्च तेनैव दाहितं च पुरं शुभम् ॥ ४ ॥ दह्यमानं पुरं दृष्ट्वा प्रणष्टा द्विजसत्तमाः ॥ यथागतं प्रजग्मुस्ते धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ५ ॥ श्रीमाताद्यास्तदा देव्यः कोपिता राक्षसेन वै ॥ घातयन्त्येव शब्देन तर्जयित्वा च राक्षसम् ॥ ६ ॥ समुच्छ्रितास्तदा देव्यः शतशोऽथसहस्रशः ॥ त्रिशूलवरधारिण्यः शङ्खचक्रगदाधराः ॥ ७ ॥ कमण्डलुधराः काश्चित्कशाखड्गधराः पराः ॥ पाशाङ्कुशधरा काचित्खड्गखेटकधारिणी ॥ ८ ॥ काचित्परशुहस्ता च दिव्यायुधधरा परा ॥ नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नाभिशोभिताः ॥ ९ ॥ राक्षसानां विनाशाय ब्राह्मणानां हिताय च ॥ आजग्मुस्तत्र यत्रास्ते लोलजिह्वो हि राक्षसः ॥ १० ॥ महादंष्ट्रो महाकायो विद्युज्जिह्वो भयङ्करः ॥ दृष्ट्वा ता राक्षसो घोरं सिंहनादमथाकरोत् ॥ ११ ॥ तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् ॥ आपूरिता दिशः सर्वाः

परशु को हाथ में लिये थी व अन्य दिव्य अस्त्र को धारण किये थी अनेक प्रकार के आभूषणों से भूषित व अनेकभांति के रत्नों से शोभित देवियां ॥ ९ ॥ राक्षसों के नाश व ब्राह्मणों के हित के लिये वहां आईं जहां कि लोलजिह्व राक्षस था ॥ १० ॥ बड़ी दाढ़ोंवाले व बड़े शरीर तथा भयंकर व बिजली के समान जिह्वावाले उस राक्षस ने उन देवियों को देखकर भयंकर सिंहनाद किया ॥ ११ ॥ उस बड़ेभारी शब्द से त्रिलोक डरगया और सब दिशा पूर्ण होगईं व अनेक समुद्र क्षोभित

होगये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस समय धर्मारण्य में बड़ा कोलाहल हुआ उसको सुन कर इन्द्रजी ने कुबेर को पठाया ॥ १३ ॥ कि यह क्या है तुम जाकर देखकर उस को मुझसे कहिये उनके उस वचन को सुनकर कुबेरजी गये ॥ १४ ॥ और वहां श्रीमाता व लोलजिह्व का बड़ाभारी युद्ध देखकर जैसा देखा व जैसाहुआ था वैसा उन कुबेर ने इन्द्रजी के आगे कहा ॥ १५ ॥ कि यहां से गया हुआ लोलजिह्व तीनों लोकों को पीड़ित करता है उस वचन को सुनकर इन्द्रजी ने विष्णुजी से कहकर पृथ्वी को आये ॥ १६ ॥ व देवताओं को भी दुर्लभ वह सुन्दर नगर जला दियागया और वहां ब्राह्मण न देखपड़े क्योंकि वे दशों दिशाओं को चलेगये ॥ १७ ॥ और

क्षुभितानेकसागराः ॥ १२ ॥ कोलाहलो महानासीद्धर्मारण्ये तदा नृप ॥ तच्छ्रुत्वा वासवेनाथ प्रेषितो नलकूबरः ॥ १३ ॥ किमिदं पश्य गत्वा त्वं दृष्ट्वा मह्यं निवेदय॥ तत्तस्य वचनं श्रुत्वा गतो वै नलकूबरः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तत्र महायुद्धं श्रीमातालोलजिह्वयोः ॥ यथादृष्टं यथाजातं शक्राग्रे स न्यवेदयत् ॥ १५ ॥ उद्वेजयति लोकांस्त्रीन्धर्मारण्यमितो गतः ॥ तच्छ्रुत्वा वासवो विष्णुं निवेद्य क्षितिमागमत् ॥ १६ ॥ दाहितं तत्पुरं रम्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ न दृष्टा वाडवास्तत्र गताः सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ श्रीमाता योगिनी तत्र कुरुते युद्धमुत्तमम्॥ हाहाभूता प्रजा सर्वा इतश्चेतश्च धावति ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवो हि गृहीत्वा च सुदर्शनम् ॥ सत्यलोकात्तदा राजन्समागच्छन्महीतले ॥ १९ ॥ धर्मारण्यं ततो गत्वा तच्चक्रं प्रमुमोच ह ॥ लोलजिह्वस्तदा रक्षो मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २० ॥ त्रिशूलेन ततो भिन्नः शक्तिभिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ हन्यमानस्तदा रक्षः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ २१ ॥ ततो देवाः सग

श्रीमाता योगिनी वहां उत्तम युद्ध को करती है और सब प्रजा हाहाभूत होगई व इधर उधर दौड़ती है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तब उस वचन को सुनकर विष्णुजी सुदर्शन चक्र को लेकर सत्यलोक से पृथ्वी में आये ॥ १९ ॥ तदनन्तर धर्मारण्य में जाकर विष्णुजी ने उस चक्र को छोड़ा तब लोलजिह्व राक्षस मूर्च्छित होकर गिरपड़ा ॥ २० ॥ तदनन्तर त्रिशूल से भिन्न व शक्तियों से माराहुआ वह क्रोध से मूर्च्छित राक्षस उस समय प्राणों को छोड़कर स्वर्ग को चलागया ॥ २१ ॥ तदनन्तर हर्ष से पूर्ण मन

वाले गंधर्वों समेत देवता सत्यलोक से आकर उन जगदीश विष्णुजी की स्तुति किया ॥ २२ ॥ और उस नगर को उजड़ाहुआ देखकर विष्णुजी वचन बोले कि ऋषियों के आश्रम में वे सब ब्राह्मण कहां हैं ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! गंधर्वों समेत देवताओं ने वेग से इधर उधर भगेहुए ब्राह्मणों को ढूंढ़कर यह कहा ॥ २४ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! हमलोगों का वचन सुनिये कि अधम राक्षस को विष्णुदेवजी ने मारा व चक्र से काटडाला ॥ २५ ॥ उस वचन को सुनकर बड़े हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले सब ब्राह्मण उस समय आये व हे राजन् ! अपने अपने स्थान में पैठ गये ॥ २६ ॥ तब श्रीपति विष्णुजी के लिये सुन्दर वचन कहागया कि जिसलिये

न्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ तुष्टुवुस्तं जगन्नाथं सत्यलोकात्समागताः ॥ २२ ॥ उद्वसं तत्समालोक्य विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ क्व च ते ब्राह्मणाः सर्वे ऋषीणामाश्रमे पुनः ॥ २३ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा इतस्ततः पलायितान् ॥ संशोध्य तरसा राजन्ब्राह्मणानिदमब्रुवन् ॥ २४ ॥ श्रूयतां नो वचो विप्रा निहतो राक्षसाधमः ॥ वासुदेवेन देवेन चक्रेण निरकृन्तत ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ समाजग्मुस्तदा राजन्स्वस्वस्थाने समाविशन् ॥ २६ ॥ श्रीकान्ताय तदा राजन्वाक्यमुक्तं मनोरमम् ॥ यस्मात्त्वं सत्यलोकाच्च आगतोऽसि जगत्प्रभुः ॥ स्थापितं च पुरं चेदं हिताय च द्विजात्मनाम् ॥ २७ ॥ सत्यमन्दिरमिति ख्यातं ततो लोके भविष्यति ॥ कृते युगे धर्मारण्यं त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवेन तथेति प्रतिपद्य च ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे पुत्रपौत्रसमन्विताः ॥ २९ ॥ सपत्नीकाः सानुचरा यथापूर्वं न्यवात्सिषुः ॥ तपोयज्ञक्रियाद्येषु वर्तन्तेऽध्ययनादिषु ॥ ३० ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं धर्म वै सत्य

संसार के स्वामी तुम सत्यलोक से आये व ब्राह्मणों के हित के लिये यह पुर स्थापित कियागया ॥ २७ ॥ उस कारण संसार में सत्यमंदिर ऐसा प्रसिद्ध होगा सतयुग में धर्मारण्य व त्रेता में सत्यमन्दिर नाम होगा ॥ २८ ॥ उस वचन को सुनकर विष्णुजी बहुत अच्छा यह कहकर चलेगये तदनन्तर पुत्रों व पौत्रों से संयुत उन सब ब्राह्मणों ने ॥ २९ ॥ स्त्रियों समेत व सेवकों समेत पहले की नाईं निवास किया और वे तपस्या व यज्ञ कर्मादिकों में और पठनादिक कर्मों में वर्तमान हुए ॥ ३० ॥ हे धर्म !

इस प्रकार तुमसे सत्यमंदिर के विषय में सब वृत्तान्त कहागया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिरसंस्थापनवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । जिमि गणेश उत्पत्ति किय पारवती महरानि । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित सुखदानि ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओं ने रक्षा के लिये सत्यमन्दिर को स्थापन किया उसी कारण वह आदि पुरी सत्य नामक है ॥ १ ॥ उसके पूर्व में धर्मेश्वर देव व दक्षिण में गणाधिप और पश्चिम में सूर्य व उत्तर में

मन्दिरे ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येलोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिरसंस्थापनवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ ततो देवैर्नृपश्रेष्ठ रक्षार्थं सत्यमन्दिरम् ॥ स्थापितं तत्तदाद्यैव सत्याभिख्या हि सा पुरी ॥ १ ॥ पूर्वे धर्मेश्वरो देवो दक्षिणेन गणाधिपः ॥ पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयम्भुवः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गणेशः स्थापितः केन कस्मात्स्थापितवानसौ ॥ किन्नामासौ महाभाग तन्मे कथय माचिरम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिकारणम् ॥ ४ ॥ समये मिलिताः सर्वे देवता मातरस्तथा ॥ धर्मारण्ये महाराज स्थापितश्चैडिकासुतः ॥ ५ ॥ आदौ देवैर्नृपश्रेष्ठ भूमौ वै सत्ययोषिताम् ॥ प्राकारश्चाभवत्तत्र पताकाध्वजशोभितः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणायत

स्वयंभुवजी स्थापित हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! गणेश को किस ने स्थापित किया व इसने किस कारण स्थापित किया व इनका क्या नाम है इसको मुझसे शीघ्रही कहिये ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले कि इस समय मैं गणेशजी की उत्पत्ति का कारण कहता हूं ॥ ४ ॥ कि हे महाराज ! किसी समय सब देवता व मातृका मिलीं तब हे नृपश्रेष्ठ ! पहले देवताओं ने पृथ्वी में सत्यमंदिर की स्त्रियों के लिये धर्मारण्य में चंडिकाजी के पुत्र गणेशजी को थापा और वहां पताकाओं व ध्वजों से शोभित प्राकार (छहरदिवाली) हुआ ॥ ५ । ६ ॥ और वहां उस ब्राह्मणों के निवासस्थान के मध्य प्राकारमंडल के बीच में ईंटों से बहुत शोभित पीठ बनाया

गया ॥ ७ ॥ और बाहरी द्वारों समेत शुद्ध चार गांव के भीतरी मार्ग बनायेगये पूर्व में धर्मेश्वर व दक्षिण में गणनायक ॥ ८ ॥ व पश्चिम में सूर्यनारायण और उत्तर में स्वयंभुवजी स्थापित कियेगये वह धर्मेश्वर की उत्पत्ति का चरित्र तुम्हारे आगे कहागया ॥ ९ ॥ इस समय मैं गणेशजीकी उत्पत्ति का कारण कहताहूं कि किसी समय पार्वतीजी ने शरीर में उबटन लगाया ॥ १० ॥ व उससे उत्पन्न मलको देखकर और अपने अंग से उपजेहुए मल को हाथ में धरकर तदनन्तर मूर्ति को बनाकर स्वरूप को देखा ॥ ११ ॥ व उस मूर्ति में जीवको प्राप्त करके पार्वतीजी ने जब देखा तब वह उनके आगे उठ खड़ाहुआ और उसने माता से कहा कि मैं तुम्हारी आज्ञा

ने तत्र प्राकारमण्डलान्तरे ॥ तन्मध्ये रचितं पीठमिष्टकाभिः सुशोभितम् ॥ ७ ॥ प्रतोल्यश्च चतस्रो वै शुद्धा एव सतोरणाः ॥ पूर्वे धर्मेश्वरो देवो दक्षिणे गणनायकः ॥ ८ ॥ पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयम्भुवः ॥ धर्मेश्वरोत्पत्तिवृत्तमाख्यातं तत्तवाग्रतः ॥ ९ ॥ अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिहेतुकम् ॥ कदाचित्पार्वती गात्रोद्वर्त्तनं कृतवत्यभूत् ॥ १० ॥ मलं तज्जनितं दृष्ट्वा हस्ते धृत्वा स्वगात्रजम् ॥ प्रतिमां च ततः कृत्वा सुरूपं च ददर्श ह ॥ ११ ॥ जीवं तस्यां च सञ्चार्य उदतिष्ठत्तदग्रतः ॥ मातरं स तदोवाच किं करोमि तवाज्ञया ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यावत्स्नानं करिष्यामि तावत्त्वं द्वारि तिष्ठ मे ॥ आयुधानि च सर्वाणि परश्वादीनि यानि तु ॥ १३ ॥ त्वयि तिष्ठति मद्द्वारे कोऽपि विघ्नं करोतु न ॥ एवमुक्तो महादेव्या द्वारेऽतिष्ठत्स सायुधः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवो महादेवो जगाम ह ॥ आभ्यन्तरे प्रवेष्टुं च मतिं दध्रे महेश्वरः ॥ १५ ॥ द्वारस्थेन गणेशेन प्रवेशोदायि तस्य न ॥ ततः क्रुद्धो महादेवः परस्परमयु

से क्या करूं ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि फरसा आदिक जो अस्त्र हैं उनको लेकर तुम जबतक मैं स्नानकरूं तबतक तुम मेरे द्वार पै स्थित होवो ॥ १३ ॥ और मेरे द्वार पै तुम्हारे स्थित होनेपर कोई विघ्न न करै महादेवी से ऐसा कहाहुआ वह पुत्र अस्त्रों समेत द्वारपै खड़ाहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर में सदाशिवदेवजी आये और उन महादेवजी ने भीतर पैठने की इच्छा किया ॥ १५ ॥ और द्वारपै खड़ेहुए गणेशजीने उन शिवजी को पैठने न दिया तदनन्तर क्रोधित महादेवजी परस्पर युद्ध करने

लगे ॥ १६ ॥ और परस्पर मारने की इच्छावाले दोनों ने परस्पर युद्ध करके तदनन्तर गणेशजी ने महादेवजी के उत्तम व श्रेष्ठ मस्तक में उत्तम परशु को मारा ॥ १७ ॥ तदनन्तर महादेवजी ने त्रिशूल को उठाकर मारा व त्रिशूल से मस्तक को काट डाला और वह शिर पृथ्वी में गिर पड़ा ॥ १८ ॥ उस गिरे हुए पुत्र को देख कर पार्वतीजी रोनेलगीं तब उनके गिरने पर वहां बड़ा भारी हाहाकार हुआ ॥ १९ ॥ और पार्वतीजी को दुःखित देखकर देवदेव शिवजी ने विचार किया कि मैंने यह वृथा कार्य क्या किया ॥ २० ॥ इसी अवसर में वहां उन्हों ने गजासुर को देखा और उस महादैत्य को देख कर सब लोकों में एकही पूजित शिवजी ने ॥ २१ ॥

ध्यत ॥ १६ ॥ युद्धं कृत्वा ततश्चोभौ परस्परवधैषिणौ ॥ परशुं जघ्निवान्देवललाटे परमे शुभम् ॥ १७ ॥ ततो देवो महादेवः शूलमुद्यम्य चाहनत् ॥ शिरश्चिच्छेद शूलेन तद्भूमौ निपपात ह ॥ १८ ॥ तन्दृष्ट्वा पतितं पुत्रं पार्वती प्ररुरोद ह ॥ हाहाकारो महानासीत्तदा तत्र निपातिते ॥ १९ ॥ पार्वतीं विकलां दृष्ट्वा देवदेवो महेश्वरः ॥ चिन्तयामास देवोऽपि किं कृतं वा मुधा मया ॥ २० ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र गजासुरमपश्यत ॥ तं दृष्ट्वा च महादैत्यं सर्वलोकैकपूजितः ॥ २१ ॥ जघ्निवांस्तच्छिरो गृह्य पार्वत्या कृतमर्भकम् ॥ उत्तस्थौ सगणस्तत्र महादेवस्य सन्निधौ ॥ २२ ॥ ततो नाम चकारास्य गजानन इति स्फुटम् ॥ सुराः सर्वे च सम्हृष्टा हर्षिता मुनयस्तथा ॥ २३ ॥ स्तुवन्ति स्तुतिभिः शश्वत्कुटुम्बकुशलङ्करम् ॥ विपुष्णाति कुटुम्बं यो मोदकार्थं समर्चके ॥ २४ ॥ दक्षिणस्यां प्रतोल्यां तमेकदन्तं च पीवरम् ॥ आर्चयच्च महादेवं स्वयम्भूः सुरपूजितम् ॥ २५ ॥ जटिलं वामनं चैव नागयज्ञोपवीतकम् ॥ त्र्यक्षं चैव महा

उसको मारा व पार्वतीजी से बनाये हुए पुत्र के मस्तक के ऊपर उसके शिर को लेकर धर दिया और वहां महादेवजी के समीप वह गण उठ खड़ा हुआ ॥ २२ ॥ तदनन्तर शिवजी ने इनका गजानन ऐसा प्रकट नाम किया और प्रसन्न होते हुए सब देवताओं व मुनियों ने मिल कर ॥ २३ ॥ सदैव कुटुम्ब का कुशल करनेवाले गणेशजी की स्तुतियों से स्तुति किया जो गणेशजी लड्डुओं के लिये पूजक के निमित्त कुटुम्ब को पालन करते हैं ॥ २४ ॥ उन सुरपूजित व स्थूल गणेशदेवजी को दक्षिण के भीतरी मार्ग में शिवजी ने पूजन किया ॥ २५ ॥ जटाधारी, वामन व नागों का यज्ञोपवीत पहने त्रिनेत्र, महाकाय व हाथ में कुठार को धारण

किये॥ २६॥ और हाथ में कमल को लिये, समस्त विघ्नों के नाशक व लोकों की रक्षा के लिये नगर से दक्षिण ओर टिके हुए॥ २७॥ बहुतही प्रसन्न और सिद्धि, बुद्धि से पूजित, सिंदूर की शोभा के समान व पैने अंकुश को धारण किये और उत्तम कमलपुष्पों से पूजित उन उत्तम गणेशजी को इन्द्रजी ने प्रणाम कर तदनन्तर देवताओं ने बड़ी भक्ति से स्तुति किया॥ २८। २९॥ देवता बोले कि सुरेश्वर आपके लिये नमस्कार है व गणों के स्वामी के लिये प्रणाम है हे महादेवाधिदैवत, गजानन! तुम्हारे लिये नमस्कार है॥ ३०॥ हे गणाध्यक्ष! भक्तिप्रिय देव तुम्हारे लिये प्रणाम है इन उत्तम स्तोत्रों से जब गणेशजी की स्तुति कीगई तब प्रसन्न होते हुए इन

कार्यं करध्वजकुठारकम्॥ २६॥ दधानं कमलं हस्ते सर्वविघ्नविनाशनम्॥ रक्षणाय च लोकानां नगराद्दक्षिणाश्रितम्॥ २७॥ सुप्रसन्नं गणाध्यक्षं सिद्धिबुद्धिनमस्कृतम्॥ सिन्दूराभं सुरश्रेष्ठं तीव्राङ्कुशधरं शुभम्॥ २८॥ शतपुष्पैः शुभैः पुष्पैरर्चितं ह्यमराधिपः॥ प्रणम्य च महाभक्त्या तुष्टुवुस्तं सुरास्ततः॥ २९॥ देवा ऊचुः॥ नमस्तेस्तु सुरेशाय गणानां पतये नमः॥ गजानन नमस्तुभ्यं महादेवाधिदैवत॥ ३०॥ भक्तिप्रियाय देवाय गणाध्यक्ष नमोस्तु ते॥ इत्येतैश्च शुभैः स्तोत्रैः स्तूयमानो गणाधिपः॥ सुप्रीतश्च गणाध्यक्षः तदाऽसौ वाक्यमब्रवीत्॥ ३१॥ गणाध्यक्ष उवाच॥ तुष्टोऽहं वः सुरा ब्रूत वाञ्छितं च ददामि वः॥ ३२॥ देवा ऊचुः॥ त्वमत्रस्थो महाभाग कुरु कार्यं च नः प्रभो॥ धर्मारण्ये च विप्राणां वणिग्जननिवासिनाम्॥ ३३॥ ब्रह्मचर्यादियुक्तानां धार्मिकाणां गणेश्वर॥ वर्णाश्रमेतराणां च रक्षिता भव सर्वदा॥ ३४॥ त्वत्प्रसादान्महाभाग धनसौख्ययुता द्विजाः॥ भवन्तु सर्वे

गणेशजी ने यह वचन कहा॥ ३१॥ गणेशजी बोले कि हे देवताओ! मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हूं कहिये मैं तुम लोगों को वांछित दूंगा॥ ३२॥ देवता बोले कि हे महाभाग, प्रभो! यहां टिके हुए तुम हमलोगों का कार्य करो और धर्मारण्य में ब्राह्मणों व वणिग्जन निवासियों के॥ ३३॥ व हे गणेश्वर! ब्रह्मचर्यादि से संयुत धार्मिकों के व वर्णों और आश्रमों के इतर लोगों के सदैव रक्षक होवो॥ ३४॥ व हे महाभाग! तुम्हारी प्रसन्नता से ब्राह्मण सदैव धन व सुख से संयुत होवैं और

वणिज् बड़े बलवान् होवैं ॥ ३५ ॥ व हे देव ! जब तक चन्द्रमा, सूर्य व पृथ्वी रहै तबतक तुमको इनकी रक्षा करना चाहिये ऐसाही होगा यह उन गणनायक महेश्वरजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और हर्ष को प्राप्त देवता गणेशजी को पूजनेलगे तदनन्तर देवता प्रसन्नता से संयुत होकर पुष्प, धूपादिक व तर्पण से पूजन किया ॥ ३७ ॥ व संसार में जो अन्य मनुष्य थे उन्होंने विघ्न न होने के लिये पूजन किया ॥ ३८ ॥ और विवाह, उत्सव व यज्ञों में पहले वे पूजित होते हैं और धर्मारण्य में उपजेहुए सब ब्राह्मणों के ऊपर वे सदा प्रसन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सततं वणिजश्च महाबलाः ॥ ३५ ॥ रक्षितव्यास्त्वया देव यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ एवमस्त्विति सोवादीद्गणनाथो महेश्वरः ॥ ३६ ॥ देवाश्च हर्षमापन्नाः पूजयन्ति गणाधिपम् ॥ ततो देवा मुदा युक्ताः पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ ३७ ॥ ये चान्ये मनुजा लोके निर्विघ्नार्थं ह्यपूजयन् ॥ ३८ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु पूर्वमाराधितो भवेत् ॥ धर्मारण्योद्भवानां च प्रसन्नः स्यात्स सर्वदा ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच ॥ शम्भोश्च पश्चिमे भागे स्थापितः कश्यपात्मजः ॥ तत्रास्ति तन्महाभाग रविक्षेत्रं तदुच्यते ॥ १ ॥ तत्रोत्पन्नौ महादिव्यौ रूपयौवनसंयुतौ ॥ नासत्यावश्विनौ देवौ विख्यातौ गदनाशनौ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पितामह महाभाग कथयस्व प्रसादतः ॥ उत्पत्तिरश्विनोश्चैव मृत्युलोके च तत्कथम् ॥ ३ ॥ रविलोकात्कथं सूर्यो धरायामवतारितः ॥ एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ यच्छ्रुत्वा हि महाभाग सर्वपापैः

दो० । जिमि अश्विनीकुमार की भई अहै उत्पत्ति । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित व्युत्पत्ति ॥ व्यासजी बोले कि हे महाभाग ! शिवजी के पश्चिम भाग में कश्यपजी के पुत्र सूर्यनारायणजी थापे गये हैं वहां पर वह रविक्षेत्र कहा जाता है ॥ १ ॥ वहां महादिव्य व रूप, यौवन से संयुत अश्विनीकुमार देवजी उत्पन्न हुए जोकि रोगनाशक प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, पितामह ! अश्विनीकुमार की जो उत्पत्ति हुई वह मृत्युलोक में कैसे हुई इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ सूर्यलोक से सूर्यनारायणजी ने कैसे पृथ्वी में अवतार लिया इस सब को बड़े यत्न से प्रसन्नता से कहिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर

मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले कि हे नरशार्दूल, भूप ! तुमने ऊर्ध्वलोक के कथानक को बहुत अच्छा पूंछा जिसको सुनकर मनुष्य सब रोग से छूट जाता है विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा को सूर्यनारायण ने ब्याहा ॥ ६ ॥ और सूर्यनारायण को देखकर संज्ञा जिस लिये सदैव अपने नेत्रों को मूंद लेती थी उस कारण क्रोध संयुत सूर्यनारायणजी ने संज्ञा से यह वचन कहा ॥ ७ ॥ सूर्यनारायण बोले कि जिस लिये मुझ को देख कर तुम सदैव अपने नेत्रों को मूंदती हो उस कारण हे मूढे ! तुम्हारे प्रजाओं को दंड देनेवाले यमराज उत्पन्न होवैंगे॥ ८ ॥ तदनन्तर उन संज्ञा ने भय से विकल व चंचलता से सूर्यनारायणजी को देखा फिर

प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया भूप ऊर्ध्वलोककथानकम् ॥ यच्छ्रुत्वा नरशार्दूल सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ विश्वकर्म्मसुता संज्ञा अंशुमद्रविणा वृता ॥ ६ ॥ सूर्यं दृष्ट्वा सदा संज्ञा स्वाक्षिसंयमनं व्यधात् ॥ यतस्ततः सरोषोऽर्कः संज्ञां वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ सूर्य उवाच ॥ मयि दृष्टे सदा यस्मात्कुरुषे स्वाक्षिसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यते मूढे प्रजासं यमनो यमः ॥ ८ ॥ ततः सा चपलं देवी ददर्श च भयाकुलम् ॥ विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ॥ ९ ॥ यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना ॥ तस्माद्विलोलितां संज्ञे तनयां प्रसविष्यसि ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्तस्यास्तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै ॥ यमश्च यमुना येयं विख्याता सुमहानदी ॥ ११ ॥ सा च संज्ञा रवेस्तेजो महद्दुःखेन भामिनी ॥ असहन्तीव सा चित्ते चिन्तयामास वै तदा ॥ १२ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व गतायाश्च निर्वृतिः ॥ भवेन्मम कथं भर्तुः कोपमर्कस्य नश्यति ॥ १३ ॥ इति सञ्चिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा ॥ साधु मेने महाभागा पितृ

चंचल नेत्रोंवाली उस संज्ञा को देखकर सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ९ ॥ कि जिस लिये तुमने इस समय मुझ को देखने पर चंचल दृष्टि किया उस कारण हे संज्ञे ! चंचल कन्या को पैदा करोगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर उस पति के शाप से उस संज्ञा के यमराज व यमुनाजी उत्पन्न हुई जो कि यह महानदी प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥ सूर्यनारायण के तेज को बड़े दुःख से न सहती हुई सी उस संज्ञा ने उस समय चित्त में विचार किया ॥ १२ ॥ कि क्या करूं और कहां जाऊं व कहां जाने से मुझको सुख होगा और सूर्यनारायण का क्रोध कैसे नाश होगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार बहुतभांति से विचार कर तब प्रजापति की कन्या महाऐश्वर्यवती संज्ञा ने

पिता का आश्रय उत्तम माना व उसने उस पिता के आश्रय को माना ॥ १४॥ तदनन्तर पिता के घर को जाने के लिये बुद्धि करके वह यशस्विनी सूर्यनारायण की स्त्री ने अपनी छाया को बुलाकर ॥ १५ ॥ उससे यह कहा कि तुमको सूर्यनारायण के यहां मेरे समान टिकना चाहिये और लड़कों व सूर्यनारायण में भलीभांति वर्तमान होना चाहिये ॥ १६ ॥ व तुम दुष्ट वचन को न कहना जैसा कि मेरा बहुत संमत है व हे अनघे! तुम इस प्रकार यह कहना कि मैं वही संज्ञा हूं॥१७॥ छायासंज्ञा बोली कि बाल पकड़ने तक व शाप देने तक मैं वैसा वचन करूंगी और जब तक बालों को न खींचेंगे तबतक मैं वैसाही कहूंगी ॥ १८ ॥ ऐसा कही

संश्रयमाप सा ॥ १४ ॥ ततः पितृगृहं गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छायामाहूयात्मनस्तु सा देवी दयिता रवेः ॥१५॥ तां चोवाच त्वया स्थेयमत्र भानोर्यथा मया ॥ तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यं तथा रवौ ॥ १६ ॥ न दुष्टमपि वाच्यं ते यथा बहुमतं मम ॥ सैवास्मि संज्ञाहमिति वाच्यमेवं त्वयानघे ॥ १७ ॥ छायासंज्ञोवाच ॥ आकेशग्रहणाच्चाहमा शापाच्च वचस्तथा ॥ करिष्ये कथयिष्यामि यावत्केशापकर्षणात् ॥ १८ ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः ॥ ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकिल्बिषम् ॥ १९ ॥ बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्म्मणा ॥ तस्थौ पितृगृहे सा तु किञ्चित्कालमनिन्दिता ॥ २० ॥ ततः प्राह स धर्मज्ञः पिता नातिचिरोषिताम् ॥ विश्वकर्मा सुतां प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥ २१ ॥ त्वां तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि ॥ मुहूर्त्तेन समानि स्युः किं तु धर्मो विलुप्यते ॥ २२ ॥ बान्धवेषु चिरं वासो न नारीणां यशस्करः ॥ मनोरथो बान्धवानां भार्या पतिगृहे स्थिता ॥ २३ ॥ सा त्वं त्रैलोक्य

हुई वह देवी पिता के घर को चली गई और वहां उसने तपसे नष्ट पापोंवाले विश्वकर्माजी को देखा ॥ १९ ॥ और उन विश्वकर्मा ने भी बहुत आदर से पूजन किया और कुछ समय तक वह अनिन्दित संज्ञा पिता के घर में टिकी ॥ २० ॥ तदनन्तर उस धर्मज्ञ पिता विश्वकर्मा ने बहुत दिन न बसी हुई कन्या से बहुत मानपूर्वक प्रेम से यह कहा ॥ २१ ॥ कि हे वत्से! तुम को देखते हुए मेरे बहुत से दिन मुहूर्त के समान होते हैं परन्तु धर्म लुप्त होता है ॥ २२ ॥ क्योंकि बंधुवों में स्त्रियों का बहुत दिन बसना यशकारक नहीं होता है और बन्धुवों का यह मनोरथ होता है कि स्त्री पति के घर में स्थित होवै ॥ २३ ॥ हे पुत्रिके! सो तुम त्रिलोकनाथ सूर्य पति

के साथ समागम को प्राप्त हुई हो इससे पिता के घर में बहुत दिन बसने के योग्य नहीं हो ॥ २४ ॥ इस लिये तुम पति के घर को जावो मैं देखा गया व मुझ से तुम पूजी गई हे शुभेक्षणे ! देखने के लिये तुम फिर आइयेगा ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुने ! यह कही हुई वह संज्ञा बहुत अच्छा यह कहकर व पिता को पूजकर उत्तरकुरुवों को चली गई ॥ २६ ॥ और सूर्य के ताप को न चाहती व उनके तेज से डरती हुई उस संज्ञा ने वहां भी घोड़ी का रूप धारण कर तप किया ॥ २७ ॥ और संज्ञा है यही मानते हुए सूर्यनारायण ने दूसरी स्त्री में दो पुत्र व एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ और छाया ने जिस प्रकार अपने पुत्रों में प्रेम से

नाथेन भर्त्रा सूर्येण सङ्गता॥ पितुर्गृहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ॥ २४ ॥ अतो भर्तृगृहं गच्छ दृष्टोऽहं पूजिता च मे ॥ पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभेक्षणे ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा क्षिप्रं तथेत्युक्त्वा च वै मुने ॥ पूजयित्वा तु पितरं सा जगामोत्तरान्कुरून् ॥ २६ ॥ सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती ॥ तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी ॥ २७ ॥ संज्ञामित्येव मन्वानो द्वितीयायां दिवस्पतिः ॥ जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ॥ २८ ॥ छाया स्वतनयेष्वेव यथा प्रेम्णाध्यवर्तत ॥ तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चाप्यवर्तत ॥ लालनासु च भोज्येषु विशेषमनुवासरम् ॥ २९ ॥ मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चाक्षमत् ॥ ताडनाय ततः कोपात्पादस्तेन समुद्यतः ॥ तस्याः पुनः क्षान्तमना नतु देहे न्यपातयत् ॥ ३० ॥ ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं नृप ॥ किञ्चित्प्रस्फुरमाणोष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ॥ ३१ ॥ पत्न्यां पितुर्मयि यदि पादमुद्यच्छसे बलात् ॥ भुवि तस्मादयं पादस्तवा

वर्तमान हुई उस प्रकार संज्ञा की कन्या व पुत्रों में प्यार व भोज्यादिक में विशेषता से प्रतिदिन न वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ इसके उस कर्म को मनु ने सहलिया परन्तु यमराज ने उस का कर्म नहीं सहा तब उन यमराज ने मारने के लिये पैर को उठाया फिर क्षमा मनवाले उन्हों ने उसके शरीर में नहीं मारा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे राजन् ! कुछ कांपते हुए ओंठ व चलते हुए हस्तरूपी पल्लवोंवाली छाया संज्ञा ने क्रोध से उन यमराज को शापदिया ॥ ३१ ॥ कि यदि पिता की स्त्री मुझ में तुम बल

से पैर को उठाते हो तो उस कारण आजही तुम्हारा यह पांव पृथ्वी में गिरपड़ै ॥ ३२॥ इस शाप को सुनकर यमराज माता में बहुत शंकित हुए और पिता के समीप जाकर उन्हों ने प्रणामपूर्वक कहा ॥ ३३ ॥ कि हे पिताजी ! यह बड़ाभारी आश्चर्य कहीं नहीं देखा गया है कि माता पुत्र में प्यार को छोड़ कर शाप देती है ॥ ३४ ॥ जैसा कि मेरी माता ने कहा है यह मेरी माता नहीं है क्योंकि निर्गुणी भी पुत्रों में माता निर्गुणी नहीं होती है ॥ ३५ ॥ यमराज का यह वचन सुनकर अन्धकार नाशक भगवान् सूर्यनारायण ने छायासंज्ञा को बुलाकर यह पूंछा कि वह संज्ञा कहां गई ॥ ३६ ॥ उसने कहा कि हे विभावसो ! मैं विश्वकर्मा की संज्ञा नामक कन्या

द्यैव पतिष्यति ॥ ३२ ॥ इत्याकर्ण्य यमः शापं मातर्यतिविशङ्कितः ॥ अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ ३३ ॥ तातैतन्महदाश्चर्यमदृष्टमिति च क्वचित् ॥ माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ॥ ३४ ॥ यथा माता ममाचष्ट नेयं माता तथा मम ॥ निर्गुणेष्वपि पुत्रेषु न माता निर्गुणा भवेत् ॥ ३५ ॥ यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः ॥ छायासंज्ञामथाहूय पप्रच्छ क्व गतेति च ॥ ३६ ॥ सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो ॥ पत्नी तव त्वया पत्यान्येतानि जनितानि मे ॥ ३७ ॥ इत्थं विवस्वतस्तां तु बहुशः पृच्छतो यदा ॥ नाचचक्षे तदा क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥ ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वते ॥ विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम् ॥ ३९ ॥ ततः सम्पूजयामास त्वष्टा त्रैलोक्यपूजितम् ॥ भास्वन्किं रहितः शक्त्या निजगेहमुपागतः ॥ ४० ॥ संज्ञां पप्रच्छ तं

हूं और तुम्हारी स्त्री हूं व तुमसे मैंने इन पुत्रों व कन्याओं को पैदा किया है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उससे बहुत पूंछते हुए सूर्यनारायणजी से जब उसने नहीं कहा तब क्रोधित होते हुए सूर्यनारायण उसको शाप देने के लिये उद्यत हुए ॥ ३८ ॥ तब उसने सूर्यनारायण से जैसा वृत्तान्त था वैसा कहा और प्रयोजन को जानकर भगवान् सूर्यनारायणजी विश्वकर्मा के घर को गये ॥ ३९ ॥ तदनन्तर त्वष्टा ने त्रिलोकपूजित सूर्यनारायण की पूजा किया व कहा कि हे भास्वन् ! क्या संज्ञा शक्ति से रहित तुम अपने घर को आये हो ॥ ४० ॥ सूर्य ने उन विश्वकर्मा से संज्ञा को पूंछा व यथार्थ जाननेवाले उन्हों ने उनसे कहा कि हे रवे ! आप से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पठाई हुई वह संज्ञा यहां मेरे घर को आई थी ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त समाधि में स्थित सूर्यनारायणजी ने उत्तरकुरुवों में घोड़ी के रूप को धारनेवाली तप करतीहुई संज्ञा को देखा ॥ ४२ ॥ कि सूर्य के तेज को न सहती हुई व उससे बहुतही पीड़ित संज्ञा अग्नि के समान अपने छायारूपी रूप को छोड़ कर ॥ ४३ ॥ उसने धर्मारण्य में आकर बड़ा कठिन तप किया व हे राजन् ! छाया के पुत्र शनैश्चर व अन्य यमराज को देखकर ॥ ४४ ॥ उसी समय सूर्यनारायण दुष्ट पुत्रों को देखकर विस्मित हुए व उसको जानने के लिये क्षण भर ध्यान कर व उस कारण को जानकर ॥ ४५ ॥ कि किरणों की उष्णता से जले हुए शरीरवाली उस पतिव्रता ने तपस्या किया है

तस्मै कथयामास तत्त्ववित् ॥ आगता सेह मे वेश्म भवतः प्रेषिता रवे ॥ ४१ ॥ दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् ॥ तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ॥ ४२ ॥ असह्यमाना सूर्यस्य तेजस्तेनातिपीडिता ॥ वह्न्याभनिजरूपं तु छायारूपं विमुच्य च ॥ ४३ ॥ धर्मारण्ये समागत्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ छायापुत्रं शनिं दृष्ट्वा यमं चान्यं च भूपते ॥ ४४ ॥ तदैव विस्मितः सूर्यो दुष्टपुत्रौ समीक्ष्य च ॥ ज्ञातुं दध्यौ क्षणं ध्यात्वा विदित्वा तच्च कारणम् ॥ ४५ ॥ घृणयौष्ण्याद्दग्धदेहा सा तपस्तेपे पतिव्रता ॥ येन मां तेजसा सह्यं द्रष्टुं नैव शशाक ह ॥ ४६ ॥ पञ्चाशद्वायनेतीते गत्वा कौ तप आचरत् ॥ प्रद्योतनो विचार्यैवं गतः शीघ्रं मनोजवः ॥ ४७ ॥ धर्मारण्ये वरे पुण्ये यत्र संज्ञा स्थिता तपः ॥ आगतं तं रविं दृष्ट्वा वडवा समजायत ॥ ४८ ॥ सूर्यपत्नी यदा संज्ञा सूर्यश्चाश्वस्ततोऽभवत् ॥ ताभ्यां सहाभूत्संयोगो घ्राणे लिङ्गं निवेश्य च ॥ ४९ ॥ तदा तौ च समुत्पन्नौ युगलावश्विनौ भुवि ॥ प्रादुर्भूतं जलं तत्र दक्षिणेन खु

क्योंकि तेज से असह्य मुझ को वह देखने के लिये समर्थ न हुई ॥ ४६ ॥ और पचास वर्ष बीतने पर पृथ्वी में जाकर उसने तप किया ऐसा विचार कर मन के समान वेगवाले सूर्यनारायणजी शीघ्रही वहां गये ॥ ४७ ॥ जहां कि पवित्र व श्रेष्ठ धर्मारण्यपुर में संज्ञा तपस्या करने के लिये स्थित थी और आये हुए उन सूर्य को देखकर सूर्य की स्त्री संज्ञा जब घोड़ी होगई तब सूर्यनारायण अश्व होगये और नासिका में लिंग को प्रवेश कर उन दोनों का समागम हुआ ॥ ४८ । ४९ ॥ तब

वे दोनों अश्विनीकुमार पृथ्वी में उत्पन्न हुए और दाहिने खुर से वहां जल उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥ पृथ्वी का भाग विदीर्ण होने पर वहां कुंड उत्पन्न हुआ और फिर दूसरा कुंड पिछले अर्ध चरण से उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ इस कुंड में मुनि ने उत्तरवाहिनी काशी का व कुरुक्षेत्रादि का फल कहा है व गंगा और सात पुरियों का फल कहा है ॥ ५२ ॥ और तप्तकुंड में मनुष्य उस फल को पाता है इसमें सन्देह नहीं है और उसी में स्नान करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५३ ॥ और फिर शरीर कुष्ठादिरोगों से पीडित नहीं होता है हे भूप ! यह तुम से अश्विनीकुमार की उत्पत्ति का कारण कहा गया ॥ ५४ ॥ हे भूपते ! तब वहां ब्रह्मादिक देवता

रेण च ॥ ५० ॥ भूमिभागे विदलिते तत्र कुण्डं समुद्भवौ ॥ द्वितीयं तु पुनः कुण्डं पश्चार्धचरणोद्भवम् ॥ ५१ ॥ उत्तरवाहिन्याः काश्याः कुरुक्षेत्रादि वै तथा ॥ गङ्गापुरीसप्तफलं कुण्डेऽत्र मुनिनोदितम् ॥ ५२ ॥ तत्फलं समवाप्नोति तप्तकुण्डे न संशयः ॥ स्नानं विधाय तत्रैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५३ ॥ न पुनर्जायते देहः कुष्ठादिव्याधिपीडितः ॥ एतत्ते कथितं भूप दस्रांशोत्पत्तिकारणम् ॥ ५४ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवा आगतास्तत्र भूपते ॥ दत्त्वा संज्ञावरं शुभ्रं चिन्तितादधिकं हि तैः ॥ ५५ ॥ स्थापयित्वा रविं तत्र बकुलाख्यवनाधिपम् ॥ आनर्चुस्ते तदा संज्ञां पूर्वरूपाऽभवत्तदा ॥ ५६ ॥ स्थापिता तत्र राज्ञी च कुमारौ युगलौ तदा ॥ एतत्तीर्थफलं वक्ष्ये शृणु राजन्महामते ॥ ५७ ॥ आदिस्थानं कुरुश्रेष्ठ देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ रविकुण्डे नरः स्नात्वा श्रद्धायुक्तो जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ तारयेत्स पितॄन्सर्वान्महानरकगानपि ॥ श्रद्धया यः पिबेत्तोयं सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ५९ ॥ स्वल्पं वापि बहुवापि सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ सप्तम्यां रविवारेण

आये और चिन्तित से अधिक संज्ञा को उत्तम वर को उन्हों ने देकर ॥ ५५ ॥ और वहां बकुल नामक वन के स्वामी सूर्यनारायण को थापकर उस समय उन्हों ने संज्ञा को पूजा तब वह पहले के समान रूपवती हुई ॥ ५६ ॥ व उस समय वहां रानी और दोनों कुमार थापे गये हे महामते, राजन् ! इस तीर्थ के फल को मैं कहता हूं सुनिये ॥ ५७ ॥ कि हे कुरुश्रेष्ठ ! आदिस्थान देवताओं को भी दुर्लभ है और रविकुंड में श्रद्धायुक्त व जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर ॥ ५८ ॥ वह मनुष्य महा नरक में प्राप्त भी सब पितरों को तारता है और पितरों व देवताओं को श्रद्धा से भलीभांति तर्पण कर जो जल को पीता है ॥ ५९ ॥ थोड़ा या बहुत वह सब कोटि

गुना होता है और रविवार सप्तमी में चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ ६० ॥ जिन्हों ने रविकुंड में स्नान किया है वे गर्भगामी नहीं होते हैं और संक्रान्ति, व्यतीपात व वैधृत योग व पर्वों में ॥ ६१ ॥ और शुक्ल व कृष्णपक्ष में पूर्णमासी और अमावस में जो रविकुंड में नहाता है वह करोड़ यज्ञों के फल को पाता है ॥ ६२ ॥ व सावधान चित्त से जो मनुष्य बकुलार्कजी को पूजता है वह उत्तम स्थान को तबतक पाता है जबतक कि सूर्यनारायण तपते हैं ॥ ६३ ॥ और उसकी लक्ष्मी निश्चयकर स्थिर होती है व संतान और सुख को वह पाता है और सूर्यनारायण के प्रसाद से शत्रुवर्ग नाश को प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ और अग्नि से व व्याघ्र और हाथी से उसको

ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ६० ॥ रविकुण्डे च ये स्नाता न ते वै गर्भगामिनः ॥ संक्रान्तौ च व्यतीपाते वैधृतेषु च पर्वसु ॥ ६१ ॥ पूर्णमास्याममावास्यां चतुर्द्दश्यां सितासिते ॥ रविकुण्डे च यः स्नातः क्रतुकोटिफलं लभेत् ॥ ६२ ॥ पूजयेद्बकुलार्कं च एकचित्तेन मानवः ॥ स याति परमं धाम स यावत्तपते रविः ॥ ६३ ॥ तस्य लक्ष्मीः स्थिरा नूनं लभते सन्ततिं सुखम् ॥ अरिवर्गः क्षयं याति प्रसादाच्च दिवस्पतेः ॥ ६४ ॥ नाग्नेर्भयं हि तस्य स्यान्न व्याघ्रान्न च दन्तिनः ॥ न च सर्प्पभयं क्वापि भूतप्रेतादिभिर्न हि ॥ ६५ ॥ बालग्रहाश्च सर्वेऽपि रेवती वृद्धरेवती ॥ ते सर्वे नाशमायान्ति बकुलार्के नमस्कृते ॥ ६६ ॥ गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनं धान्यं तथैव च ॥ अविच्छेदो भवेद्वंशो बकुलार्के नमस्कृते ॥ ६७ ॥ काकबन्ध्या च या नारी अनपत्या मृतप्रजा ॥ बन्ध्या विरूपिता चैव विषकन्याश्च याः स्त्रियः ॥ ६८ ॥ एवं दोषैः प्रमुच्यन्ते स्नात्वा कुण्डे च भूपते ॥ सौभाग्यस्त्रीसुतांश्चैव रूपं चाप्नोति सर्वशः ॥ ६९ ॥ व्याधिग्रस्तोऽपि यो

भय नहीं होती है व कभी सर्प का डर नहीं होता है और भूत, प्रेतादिकों की भय नहीं होती है ॥ ६५ ॥ और सब बालग्रह व रेवती तथा वृद्धरेवती वे सब बकुलार्कजी का नमस्कार करने पर नाश होजाते हैं ॥ ६६ ॥ और उसके गऊ बढ़ती हैं और धन व धान्य बढ़ती है व बकुलार्कजी का प्रणाम करने पर वंश नहीं नाश होता है ॥ ६७ ॥ और जो स्त्री काकबन्ध्या व संतानहीन और मृतवत्सा होती है व जो बन्ध्या और कुरूपिणी होती है व जो स्त्रियां विषकन्या होती हैं ॥ ६८ ॥ हे भूपते ! कुंड में नहाकर वे ऐसे दोषों से छूट जाती हैं और सौभाग्य स्त्री व सुख इस सब को मनुष्य पाता है ॥ ६९ ॥ और जो मनुष्य रोगग्रस्त भी होता है वह कुंड में नहाकर

छा महीने में सब रोग से छूट जाता है ॥ ७० ॥ और रविक्षेत्र में जो नीलोत्सर्ग विधि को करता है उस के पितर कल्प पर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥ व हे पुत्र ! इस क्षेत्र में जो कन्यादान करता है विवाह से पवित्र चित्तवाला वह ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ७२ ॥ व गोदान, शय्या, मूंगा, अश्व, दासी, भैंसी व सुवर्ण से संयुत तिल को इस क्षेत्र में देवै ॥ ७३ ॥ व हे भारत ! इस क्षेत्र में तिलों की गऊ, पनही, छतुरी और शीतत्राणादिक वस्तु को देवै ॥ ७४ ॥ और लक्ष होम व रुद्र तथा रुद्रातिरुद्र जो कुछ श्रद्धा से संयुत मनुष्य उस स्थान में देता है ॥ ७५ ॥ हे तात ! एक एक का फल कहता हूं उसको यथार्थ सुनिये कि दान से मनुष्य इस लोक व पर-

मर्त्यः षण्मासाच्चैव मानवः ॥ रविकुण्डे च सुस्नातः सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ ७० ॥ नीलोत्सर्गविधिं यस्तु रविक्षेत्रे करोति वै ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ७१ ॥ कन्यादानं च यः कुर्यादस्मिन्क्षेत्रे च पुत्रक ॥ उद्वाह परिपूतात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७२ ॥ धेनुदानं च शय्यां च विद्रुमं च हयं तथा ॥ दासीं च महिषीञ्चैव तिलं काञ्चन संयुतम् ॥ ७३ ॥ धेनुं तिलमयीं दद्यादस्मिन्क्षेत्रे च भारत ॥ उपानहौ च छत्रं च शीतत्राणादिकं तथा ॥ ७४ ॥ लक्ष होमं तथा रुद्रं रुद्रातिरुद्रमेव च ॥ तस्मिन्स्थाने च यत्किंचिद्ददाति श्रद्धयान्वितः ॥ ७५ ॥ एकैकस्य फलं तात वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ दानेन लभते भोगानिह लोके परत्र च ॥ ७६ ॥ राज्यं च लभते मर्त्यः कृत्वोद्वाहं तु मानुषाः ॥ जायातो धर्मकामार्थाः प्राप्यन्ते नात्र संशयः ॥ ७७ ॥ पूजया लभते सौख्यं भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ सप्तम्यां रवियुक्तायां बकुलार्कं स्मरेत्तु यः ॥ ७८ ॥ ज्वरादेः शत्रुतश्चैव व्याधेस्तस्य भयं न हि ॥ ७९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ बकु

लोक में सुखों को पाता है ॥ ७६ ॥ व राज्य को मनुष्य पाता है और विवाह करके स्त्री से धर्म, काम व अर्थ मिलते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७७ ॥ और पूजन से सुख को पाता है व जन्म जन्म में सुख होता है और रविवार संयुत सप्तमी तिथि में जो बकुलार्कजी को स्मरण करता है ॥ ७८ ॥ उसको ज्वरादिक से व शत्रु और व्याधि से भय नहीं होती है ॥ ७९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे कहनेवालों में श्रेष्ठ, मुने ! सूर्य का बकुलार्क ऐसा नाम कैसे हुआ इसको तुम यथार्थ कहने के योग्य

हो ॥ ८० ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेन्द्र ! जब संज्ञा ने एक चित्त से सूर्य के लिये बकुल (मौलसिरी) वृक्ष के नीचे पति के तेज की शांति के लिये तप किया है ॥ ८१ ॥ तब सूर्यनारायण को प्रकट देख कर वह घोड़ी होगई और बकुल के समीप सूर्यनारायणजी बहुतही शांत होगये ॥ ८२ ॥ और तब रानी संज्ञा ने दो दिव्य व सुंदर पुत्रों को पैदा किया उसी से इन सूर्यनारायण का बकुलार्क ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ८३ ॥ वहां जो स्नान करता है उसको रोग पीडित नहीं करता है और वह धर्म, अर्थ व काम को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८४ ॥ और छः महीने में वह मनुष्य सिद्धि को पाता है व मोक्ष को पाता है हे महाराज ! यह

लार्केति वै नाम कथं जातं रवेर्मुने ॥ एतन्मे वदतां श्रेष्ठ तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ यदा संज्ञा च राजेन्द्र सूर्यार्थं चैकचेतसा ॥ तेपे बकुलवृक्षाधः पत्युस्तेजः प्रशान्तये ॥ ८१ ॥ प्रादुर्भावं रवेर्दृष्ट्वा वडवा समजायत ॥ अत्यन्तं गोपतिः शान्तो बकुलस्य समीपतः ॥ ८२ ॥ सुषुवे च तदा राज्ञी सुतौ दिव्यौ मनोहरौ ॥ तेनास्य प्रथितं नाम बकुलार्केति वै रवेः ॥ ८३ ॥ यस्तत्र कुरुते स्नानं व्याधिस्तस्य न पीडयेत् ॥ धर्ममर्थं च कामं च लभते नात्र संशयः ॥ ८४ ॥ षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति मोक्षं च लभते नरः ॥ एतदुक्तं महाराज बकुलार्कस्य वैभवम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येबकुलार्कमाहात्म्यकथनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ कृपासिन्धो महाभाग सर्वव्यापिन्सुरेश्वर ॥ कदा ह्यत्र तपस्तप्तं विष्णुनामिततेजसा ॥ १ ॥ स्कन्दाय कथितं चैव शर्वेण च महात्मना ॥ आनुपूर्व्येण सर्वं हि कथयस्व त्वमेव हि ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु

बकुलार्क का प्रभाव कहा गया ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबकुलार्कमाहात्म्यकथनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो० । तप संयुत श्रीविष्णु ढिग गये देव मिलि साथ । चौदहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, दयासिंधो, सर्वव्यापिन्, सुरेश्वर ! यहां पर अमित तेजवाले विष्णुजीने कब तप किया है ॥ १ ॥ व महात्मा शिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा है उस सब को तुम क्रम से कहो ॥ २ ॥ व्यासजी

बोले कि हे वत्स, नृपोत्तम ! मैं जो कहता हूं उसको सुनिये कि इस धर्मारण्य में एक समय अमित तेजवाले विष्णुजी ने तप किया है ॥ ३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि देवसर नामक कैसे हुआ व पंपा, चंपा, गया कैसे काशी से अधिक हुई व विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि यहां नारायणदेवजी ने देवताओं के तीन सौ वर्ष तक बहुत कठिन तप किया है तब वे उत्तम मुखवाले हुए हैं ॥ ५ ॥ हे पुत्र ! उस महाप्रकाशवान् सिद्धस्थान में अश्वमुखवाले महाविष्णु देवजी ने स्वरूप के लिये तप किया है ॥ ६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि इस समय तुम मुझ से उस कारण को कहो कि जिस से महाशत्रु हयशीर्षा नामक दैत्य

वत्स प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्ये नृपोत्तम ॥ एकदात्र तपस्तप्तं विष्णुनाऽमिततेजसा ॥ ३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं देव सरोनाम पम्पा चम्पा गया तथा ॥ वाराणस्यधिका चैव कथमश्वमुखो हरिः ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्र नारायणो देवस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षशतं त्रीणि जातः सुष्ठ्वाननश्च सः ॥ ५ ॥ तपस्तेपे महाविष्णुः सुरूपार्थं च पुत्र क ॥ वाजिमुखो हरिस्तत्र सिद्धस्थाने महाद्युते ॥ ६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कारणं ब्रूहि नोद्य त्वमश्वाननः कथं हरिः ॥ महारिपोश्च हन्ता च देवदेवो जगत्पतिः ॥ ७ ॥ यस्य नाम्ना महाभाग पातकानि बहून्यपि ॥ विलीयन्ते तु वेगेन तमः सूर्योदये यथा ॥ ८ ॥ श्रूयन्ते यस्य कर्माणि अद्भुतान्यद्भुतानि वै ॥ सर्वेषामेव जीवानां कारणं परमेश्वरः ॥ ९ ॥ प्राणरूपेण यो देवो हयरूपः कथं भवेत् ॥ सर्वेषामपि तन्त्राणामेकरूपः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥ भक्तिगम्यो धर्मभाजां सुखरूपः सदा शुचिः ॥ गुणातीतोऽपि नित्योऽसौ सर्वगो निर्गुणस्तथा ॥ ११ ॥ स्रष्टासौ पालको हन्ता अव्यक्तः

को मारकर देवदेव जगदीशजी अश्वमुख हुए हैं ॥ ७ ॥ व हे महाभाग ! जैसे सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है वैसेही बहुत से भी पाप जिनके नाम से शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ ८ ॥ व जिसके कर्म बहुत अद्भुत सुने जाते हैं और जो परमेश्वर सबही जीवों का कारण हैं ॥ ९ ॥ और जो प्राणरूप से हैं वे विष्णु देवजी कैसे अश्वरूप हुए और सब तंत्रों के भी जो एक रूप कहे गये हैं ॥ १० ॥ और जो भक्तिगम्य व धर्म करनेवालों के सदैव सुखरूप व पवित्र हैं और गुणों से परे भी जो ये विष्णुजी नित्य व सर्वव्यापी और निर्गुणी हैं ॥ ११ ॥ और रचनेवाले व पालक तथा नाशक व अव्यक्त हैं ये सब प्राणियों के अनुकूल व महातेजस्वी विष्णु

जी किस कारण अश्वमुख हुए ॥ १२ ॥ और देवता, वृक्षादिक, नाग व पर्वत जिन के रोम से उत्पन्न हुए हैं और प्रत्येक कल्प में जिनके शरीर से सब संसार उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ वही संसार को उत्पन्न करनेवाले और वही अत्यन्त कारण हैं जो कि नाश को प्राप्त सब विद्याओं व यज्ञों को फिर ले आये ॥ १४ ॥ और उन्होंने वेद के लिये उद्यम किया व इस हयग्रीव नामक दुष्ट दैत्य को मारा है ऐसे महाविष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ १५ ॥ और जिन्हों ने पीठ पै लीला से रत्नगर्भा (पृथ्वी) को धारण किया और जिन्हों ने चराचर संसार को कार्य से स्थापित किया ॥ १६ ॥ वे विश्वरूप देवजी कैसे अश्वमुख हुए और वाराहरूप करके जिन्हों

सर्वदेहिनाम् ॥ अनुकूलो महातेजाः कस्मादश्वमुखोऽभवत् ॥ १२ ॥ यस्य रोमोद्भवा देवा वृक्षाद्याः पन्नगा नगाः ॥ कल्पे कल्पे जगत्सर्वं जायते यस्य देहतः ॥ १३ ॥ स एव विश्वप्रभवः स एवात्यन्तकारणम् ॥ येनानीताः पुनर्विद्या यज्ञाश्च प्रलयं गताः ॥ १४ ॥ घातितो दुष्टदैत्योऽसौ वेदार्थं कृत उद्यमः ॥ एवमासीन्महाविष्णुः कथमश्वमुखोऽभवत् ॥ १५ ॥ रत्नगर्भा धृता येन पृष्ठदेशे च लीलया ॥ कृत्वा व्यवस्थितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १६ ॥ स देवो विश्वरूपो वै कथं वाजिमुखोऽभवत् ॥ हिरण्याक्षस्य हन्ता यो रूपं कृत्वा वराहजम् ॥ १७ ॥ सुपवित्रं महातेजाः प्रविश्य जलसागरे ॥ उद्धृता च मही सर्वा ससागरमहीधरा ॥ १८ ॥ उद्धृता च मही नूनं दंष्ट्राग्रे येन लीलया ॥ कृत्वा रूपं वराहं च कपिलं शोकनाशनम् ॥ १९ ॥ स देवः कथमीशानो हयग्रीवत्वमागतः ॥ प्रह्लादार्थे स चेशानो रूपं कृत्वा भयावहम् ॥ २० ॥ नारसिंहं महादेवं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ पर्वताग्निसमुद्रस्थं ररक्ष भक्तसत्तमम् ॥ २१ ॥

ने हिरण्याक्ष को मारा ॥ १७ ॥ और बहुत पवित्र वाराहरूप को करके बड़े तेजस्वी वे विष्णुजी समुद्रों व पर्वतों समेत सब पृथ्वी को ऊपर ले आये ॥ १८ ॥ और जिन्हों ने वराहरूप करके लीला से दाढ़ के अग्रभाग से पृथ्वी को उठा लिया व शोकनाशक कपिलरूप को किया ॥ १९ ॥ वे विष्णुदेवजी कैसे हयग्रीव हुए और प्रह्लाद के लिये उन विष्णुजी ने सब दुष्टों को मना करनेवाले व भयनाशक नारसिंह महादेवरूप करके पर्वत, अग्नि व समुद्र में भी स्थित उत्तम भक्त की रक्षा की ॥ २० ॥ २१ ॥

और दुष्ट हिरण्यकशिपु को जिन्हों ने संध्या में मारा व इन्द्रासन पै इन्द्रजी को बिठाल कर प्रह्लाद को सुख देनेवाले ॥ २२ ॥ नृसिंहरूप को वे विष्णुजी निश्चय कर प्रह्लाद के लिये प्राप्त हुए व ये विष्णुजी उस समय विरोचन के पुत्र बलि के आगे याचक हुए ॥ २३ ॥ और अश्वमेध यज्ञ में जो बलि से पूजे गये और जिन्हों ने तीन पग करके भूर्लोक व भुवर्लोक और स्वर्गलोक को हरलिया ॥ २४ ॥ और जिन्हों ने विश्वरूप से बलि को पाताल में पठाया और जिन्हों ने पृथ्वीतल में इक्कीसबार क्षत्रियों को मारकर ॥ २५ ॥ बड़े पराक्रम से पृथ्वी को ब्राह्मणों के लिये दिया व जिन्हों ने हैहय राजा को व माता को मारडाला ॥ २६ ॥ व विश्वामित्रजी

हिरण्यकशिपुं दुष्टं जघान रजनीमुखे ॥ इन्द्रासने च संस्थाप्य प्रह्लादस्य सुखप्रदम् ॥ २२ ॥ प्रह्लादार्थे च वै नूनं नृसिंहत्वमुपागतः ॥ विरोचनसुतस्याग्रे याचकोऽसावभूत्तदा ॥ २३ ॥ यज्ञे चैवाश्वमेधे वै बलिना यः समर्चितः ॥ हृता वसुमती तस्य त्रिपदीकृतरोदसी ॥ २४ ॥ विश्वरूपेण वै येन पाताले क्षपितो बलिः ॥ त्रिःसप्तवारं येनैव क्षत्रियानवनीतले ॥ २५ ॥ हत्वाऽददाच्च विप्रेभ्यो महीमतिमहौजसा ॥ घातितो हैहयो राजा येनैव जननी हता ॥ २६ ॥ येन वै शिशुनोर्व्यां हि घातिता दुष्टचारिणी ॥ राक्षसी ताडका नाम्नी कौशिकस्य प्रसादतः ॥ २७ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु येन लीलानृदेहिना ॥ चतुर्द्दशसहस्राणि घातिता राक्षसा बलात् ॥ २८ ॥ हता शूर्पणखा येन त्रिशिराश्च निपातितः ॥ सुग्रीवं बालिनं हत्वा सुग्रीवेण सहायवान् ॥ २९ ॥ कृत्वा सेतुं समुद्रस्य रणे हत्वा दशाननम् ॥ धर्म्मारण्यं समासाद्य ब्राह्मणानन्वपूजयत् ॥ ३० ॥ शासनं द्विजवर्येभ्यो दत्त्वा ग्रामान्बहूंस्तथा ॥ स्नात्वा चैव धर्म्मवाप्यां सुदानान्यद

के प्रसाद से जिन बालकने दुष्ट काम करनेवाली ताड़का नामक राक्षसी को मारा ॥ २७ ॥ और लीला से मनुजशरीरधारी जिन विष्णुजी ने विश्वामित्रजी के यज्ञ में चौदह हज़ार राक्षसों को बल से मारा ॥ २८ ॥ और जिन्हों ने शूर्पणखा को मारा व त्रिशिरा को मारा और सुन्दरी ग्रीवावाले बालि को मारकर सुग्रीव के साथ सहायवान् होकर ॥ २९ ॥ समुद्र के मध्य में सेतु बनाकर समर में दशानन (रावण) को मारकर जिन्हों ने धर्मारण्य को आकर ब्राह्मणों को पूजन किया ॥ ३० ॥ और

श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये शिक्षा व बहुत से ग्रामों को देकर व धर्मवापी में नहाकर उत्तम दान व गौवों को दिया ॥ ३१ ॥ व साधुवों का पालन कर दुष्टों को दंड देने के लिये जिन के अन्य भी ऐसेही कर्म पृथ्वी में सुने गये हैं ॥ ३२ ॥ वे विष्णुदेवजी लीला से कर्म करके कैसे अश्वमुख हुए हैं और यादववंश में उत्पन्न होकर जिन्हों ने पूतना व शकटादिक को मारा ॥ ३३ ॥ और अरिष्टासुर, केशी, वृकासुर व बकासुर, शकटासुर, तृणावर्त व धेनुकासुर को जिन्हों ने मारा है ॥ ३४ ॥ और मल्ल, कंस व जरासंध को जिन्हों ने मारा है वे कालयवन को मारनेवाले विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए और समर में तारकासुर को मारकर व अयुतषट्पुर को नाश

दाद्गवाम् ॥ ३१ ॥ साधूनां पालनं कृत्वा निग्रहाय दुरात्मनाम् ॥ एवमन्यानि कर्म्माणि श्रुतानि च धरातले ॥ ३२ ॥ स देवो लीलया कृत्वा कथं चाश्वमुखोऽभवत् ॥ यो जातो यादवे वंशे पूतनाशकटादिकम् ॥ ३३ ॥ अरिष्टदैत्यः केशी च वृकासुरबकासुरौ ॥ शकटासुरो महासुरस्तृणावर्तश्च धेनुकः ॥ ३४ ॥ मल्लश्चैव तथा कंसो जरासन्धस्तथैव च ॥ कालयवनस्य हन्ता च कथं वै स हयाननः ॥ तारकासुरं रणे जित्वा अयुतषट्पुरं तथा ॥ ३५ ॥ कन्याश्चोद्वाहिता येन सहस्राणि च षड् दश ॥ अमानुषाणि कृत्वेत्थं कथं सोऽश्वमुखोऽभवत् ॥ ३६ ॥ त्राता यः सर्वभक्तानां हन्ता सर्वदुरात्मनाम् ॥ धर्मस्थापनकृत्सोऽपि कल्किर्विष्णुपदे स्थितः ॥ ३७ ॥ एतद्वै महदाश्चर्य्यं भवता यत्प्रकाशितम् ॥ एतदाचक्ष्व मे सर्वं कारणं त्रिपुरान्तक ॥ ३८ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ साधु पृष्टं महाबाहो कारणं तस्य वच्म्यहम् ॥ हयग्रीवस्य कृष्णस्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ पुरा देवैः समारब्धो यज्ञो नूनं धरातले ॥ वेदमन्त्रैराह्व

कर ॥ ३५ ॥ जिन्हों ने सोलह हज़ार कन्याओं का ब्याह किया इस प्रकार अमानुष कर्मों को करके विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए ॥ ३६ ॥ व सब भक्तों के जो रक्षक हैं और सब दुष्टों के जो नाशक हैं धर्म को स्थापन करनेवाले वे कल्किजी विष्णुपद में स्थित हुए ॥ ३७ ॥ हे त्रिपुरान्तक ! आपने जो इस बड़े भारी आश्चर्य को प्रकाशित किया इस सब कारण को मुझ से कहिये ॥ ३८ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे महाबाहो ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा मैं उसका कारण कहता हूं तुम सावधान मन होकर हयग्रीव विष्णुजी का चरित्र सुनो ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय पृथ्वी में देवताओं ने यज्ञ का प्रारंभ किया और वेदमंत्रों से बुलाने के लिये

सब रुद्रादिक देवता ॥ ४० ॥ अपने स्थान क्षीरसागर में व वैकुंठ में गये और पाताल में भी फिर जाकर उन्हों ने श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं पाया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर मोह से संयुत सब देवता इधर उधर दौड़नेलगे तब उन्हों ने ब्रह्मरूपी विष्णुजी को नहीं देखा ॥ ४२ ॥ और इन्द्रादिक वे सब देवता विचारनेलगे कि ये महाविष्णु जी कहां गये और किस यत्न से देख पड़ैंगे ॥ ४३ ॥ बृहस्पति देवजी को मस्तक से प्रणामकर देवताओं ने आदर से कहा कि हे देवदेव ! महाविष्णुजी को प्रसन्नता से कहिये ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि मैं यह नहीं जानता हूं कि किस कार्य से योगीश व अच्युत महात्मवान् विष्णुजी योगारूढ़ हुए हैं ॥ ४५ ॥ क्षण भर अपने

यितुं सर्वे रुद्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥ वैकुण्ठे च गताः सर्वे क्षीराब्धौ च निजालये ॥ पातालेऽपि पुनर्गत्वा न विदुः कृष्णद र्शनम् ॥४१॥ मोहाविष्टास्ततः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः ॥ नैव दृष्टस्तदा तैस्तु ब्रह्मरूपो जनार्दनः ॥ ४२ ॥ विचारयन्ति ते सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ क्व गतोऽसौ महाविष्णुः केनोपायेन दृश्यते ॥ ४३ ॥ प्रणम्य शिरसा देवं वागीशं प्रोचुरा दरात् ॥ देवदेव महाविष्णुं कथयस्व प्रसादतः ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ न जाने केन कार्येण योगारूढो महात्म वान् ॥ योगरूपोऽभवद्विष्णुर्योगीशो हरिरच्युतः ॥ ४५ ॥ क्षणं ध्यात्वा स्वमात्मानं धिषणेन ख्यापितो हरिः ॥ तत्र सर्वे गता देवा यत्र देवो जगत्पतिः ॥ ४६ ॥ तदा दृष्टो महाविष्णुर्ध्यानस्थोऽसौ जनार्दनः ॥ ध्यात्वा कृत्यसमा कारं सशरं दैत्यसूदनम् ॥४७॥ समाधिस्थं ततो दृष्ट्वा बोधोपायं प्रचक्रमे ॥ आह तांश्च तदा वम्रयो धनुर्गुणं प्रयत्न तः॥ छेत्स्यन्ति चेत्तच्छब्देन प्रबुध्येत हरिः स्वयम् ॥ ४८ ॥ देवा ऊचुः ॥ गुणभक्षं कुरुध्वं वै येनासौ बुध्यते हरिः ॥

चित्त में ध्यान करके बृहस्पतिजी ने विष्णुजी को कहा और वहां सब देवता गये जहां कि जगदीश देवजी थे ॥ ४६ ॥ तब ध्यान में स्थित इन महाविष्णु जनार्दन जी को देखा और कार्य के समान आकारवाले बाण समेत दैत्यसूदन विष्णुजी को ॥ ४७ ॥ समाधि में स्थित देखकर बोध करने का यत्न किया व उन से तब कहा कि वंम्री[1] नामक कीट यदि बड़े यत्न से धनुष के गुण को काटैं तो उसके शब्द से आपही विष्णुजी जगपड़ैंगे ॥ ४८ ॥ देवता बोले कि हे वम्रियो ! तुम धनुष के

१ पुस्तक व वस्त्रादि को काटनेवाला कीट।

गुण को भक्षण करो कि जिस से ये विष्णुजी बोधित होवैं क्योंकि यज्ञ के चाहनेवाले हमलोग विष्णु प्रभु को बोध कराते हैं ॥ ४६ ॥ वम्री बोलीं कि निद्राभंग, कथाछेद व स्त्री पुरुषों की मित्रता का भंग करना और बालक व माता का भेद करनेवाला मनुष्य नरक को जाता है ॥ ५० ॥ बड़े बलवान् जगदीश विष्णुजी समाधि में स्थित हैं व योग में आरूढ़ हैं उन श्रीविष्णुजी का हम विघ्न न करैंगी ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे वम्रियो ! यदि देवकार्य किया जावै तो आप सबों को सर्वभक्षत्व होगा इससे वैसा करना चाहिये कि जिस प्रकार यज्ञ की सिद्धि होवै हे वत्स ! तब वह वम्रीशा फिर बोली ॥ ५२ ॥ वम्री बोली कि हे ब्रह्मन् ! मलय पवन

क्रत्वर्थिनो वयं वम्र्यः प्रभुं विज्ञापयामहे ॥ ४९ ॥ वम्र्यच ऊचुः ॥ निद्राभङ्गं कथाच्छेदं दम्पत्योर्मैत्रभेदनम् ॥ शिशुमातृविभेदं वा कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ ५० ॥ योगारूढो जगन्नाथः समाधिस्थो महाबलः॥ तस्य श्रीजगदीशस्य विघ्नं नैव तु कुर्महे ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भवतां सर्वभक्षत्वं देवकार्यं क्रियेत चेत् ॥ कर्तव्यं च ततो वम्र्यो यज्ञसिद्धिर्यथा भवेत् ॥ वम्रीशा सा तदा वत्स पुनरेवमुवाच ह ॥ ५२ ॥ वम्र्युवाच ॥ दुःखसाध्यो जगन्नाथो मलयानिलसन्निभः ॥ कथं वा बोध्यतां ब्रह्मन्नस्माभिः सुरपूजितः ॥ ५३ ॥ नैव यज्ञेन मे कार्यं सुरैश्चैव तथैव च ॥ सर्वेषु यज्ञकार्येषु भागं ददतु मे सुराः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रदास्यामो वयं वम्र्यै भागं यज्ञेषु सर्वदा ॥ यज्ञाय दत्तमस्माभिः कुरुष्वैवं वचो हि नः ॥ ५५ ॥ तथेति विधिनाप्युक्तं वम्री चोद्यममाश्रिता ॥ गुणभक्षादिकं कर्म तया सर्वं कृतं नृप ॥ ५६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अशक्या बोधने देवा गुणभङ्गे समाधिषु ॥ एतदाश्चर्यं विप्रर्षे सत्यं सत्यवतीसुत ॥ ५७ ॥ व्यास उवाच ॥

के समान विष्णुजी दुःख से साधन करने योग्य हैं तो वे देवपूजित विष्णुजी कैसे हम से बोधित किये जावैं ॥ ५३ ॥ यज्ञोंसे व देवताओं से मेरा कार्य नहीं है हे देवताओ ! सब यज्ञकार्यों में मुझको भाग दीजिये ॥ ५४ ॥ देवता बोले कि वम्री के लिये हमलोग सदैव यज्ञों में भाग देवैंगे व यज्ञ के लिये हम सबों ने भाग दिया इस प्रकार तुम हमारा वचन करो ॥ ५५ ॥ वम्री ने भी बहुत अच्छा ऐसा कहा और वह उद्यम में आश्रित हुई व हे राजन् ! उसने गुणभक्षादिक सब कर्म को किया ॥ ५६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे सत्यवतीसुत, ब्रह्मर्षे ! इन विष्णुजी की समाधियों में बोधन और गुणभंग में जो देवता समर्थ न हुए यह सत्य आश्चर्य है ॥ ५७ ॥ व्यासजी

बोले कि सब देवता विष्णुजी का धनुष खींचने के लिये व्यग्रचित्त हुए परन्तु मैं यह नहीं जानता हूं कि किस कार्य से सब देवता विष्णुजी की माया से मोहित हुए॥ ५८॥ और वे प्रसन्न होतीहुई वम्री विष्णुजी के आगे बँबौरि बनानेलगीं तदनन्तर धनुष के सिरे में पर्वत के समान बँबौरि होगई॥ ५६॥ और उस पंच के खाने पर उसी क्षण जब दूषित हुई तब धनुष की कोटि समेत पंच की चोट से कटा हुआ वह मस्तक स्वर्ग को चला गया ॥ ६० ॥ और मस्तक कटजाने पर वे देवता बहुतही विकलमनवाले हुए और सब ओर से मस्तक को देखने के लिये वे सब दौड़नेलगे ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

व्यग्रचित्ताः सुराः सर्वे आक्रष्टुं हरिकार्मुकम्॥ न जाने केनकार्येण विष्णुमायाविमोहिताः ॥ ५८ ॥ मुदितास्ताः प्रकुर्वन्ति वल्मीकं चाग्रतो हरेः॥ कोटिपार्श्वे ततो नीतं वल्मीकं पर्वतोपमम्॥ ५६॥ गुणे च भक्षिते तस्मिंस्तत्क्षणादेव दूषिते॥ ज्याघातकोटिभिः सार्द्धं शीर्षं छित्त्वा दिवंगतम्॥ ६० ॥ गते शीर्षे च ते देवा भृशमुद्विग्नमानसाः॥ धावन्ति सर्वतः सर्वे शिरआलोकनाय ते॥ ६१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येविष्णुशिरोनाशोनामचतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच॥ न पश्यन्ति यदा शीर्षं ब्रह्माद्यास्तु सुरास्तदा॥ किं कुर्म इति हेत्युक्त्वा ज्ञानिनस्ते व्यचिन्तयन्॥ १॥ उवाच विश्वकर्माणं तदा ब्रह्मा सुरान्वितः॥ २॥ ब्रह्मोवाच॥ विश्वकर्मंस्त्वमेवासि कार्यकर्ता सदा विभो॥ शीघ्रमेव कुरु त्वं वै वक्त्रं सान्द्रं च धन्विनः॥ ३॥ नमस्कृत्य तदा तस्मै स्तुतोऽसौ देववर्द्धकिः॥ उवाच परया भक्त्या

भाषाटीकायांविष्णुशिरोनाशोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो०। सूर्य अश्व शिर छेद करि लग्यो विष्णु को माथ। पंद्रहवें अध्याय में सोई उत्तम गाथ॥ व्यासजी बोले कि जब ब्रह्मादिक देवताओं ने मस्तक को नहीं देखा तब हम क्या करेंगे ऐसा कहकर उन ज्ञानियों ने विचार किया॥ १॥ और उस समय देवताओं समेत विश्वकर्मा से कहा ॥ २ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे विभो, विश्वकर्मन्! तुम्हीं सदैव कार्य करनेवाले हो इससे धनुषधारी विष्णुजी के मुख को तुम शीघ्रही करो॥ ३ ॥ तब उन ब्रह्माजी के लिये प्रणाम कर स्तुति किये हुए ये

विश्वकर्माजी कमल से उपजेहुए ब्रह्मा से बड़ी भक्ति से बोले कि अनेक भांति के देवता यह कहते हैं कि अश्व का शिर शीघ्रही काटो ॥ ४ ॥ यज्ञ भाग से रहित मुझ से बार २ क्यों मांगा जाता है हे देव ! देवताओं समेत मैं यज्ञभाग को पाऊं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरवर्द्धके ! मैं सब यज्ञों में तुमको भाग दूंगा व हे वीर ! वेदों को जाननेवालों से तुम पहले पूजे जावोगे ॥ ६ ॥ हे अमरवर्द्धके ! तब तक उन विष्णुजी के शिर को लगाइये विश्वकर्मा ने देवताओं से यह कहा कि शिर को लाइये ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! सब देवता यह कहनेलगे कि वह नहीं है और मध्याह्न होने पर सूर्यनारायण आकाश में रथ पै स्थित थे ॥ ८ ॥ तब सब देवता

ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ अश्वकायं निकृन्ताशु वदन्ति विविधाः सुराः ॥ ४ ॥ यज्ञभागविहीनं मां याच्यते किं पुनः पुनः ॥ यज्ञभागमहं देव लभेयैवं सुरैः सह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके ॥ सोमे त्वं प्रथमं वीर पूज्यसे श्रुतिकोविदैः ॥ ६ ॥ तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धत्स्वामरवर्द्धके ॥ विश्वकर्माब्रवीद्देवानानयध्वं शिरस्त्विति ॥ ७ ॥ तन्नास्तीति सुराः सर्वे वदन्ति नृपसत्तम ॥ मध्याह्ने तु समुद्भूते रथस्थो दिवि चांशुमान् ॥ ८ ॥ दृष्टं तदा सुरैः सर्वै रथादश्वमथानयन् ॥ छित्त्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनो हरेः ॥ ९ ॥ कबन्धे योजयामास विश्वकर्मातिचातुरः ॥ दृष्ट्वा तं देवदेवेशं सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेऽस्तु जगद्बीज नमस्ते कमलापते ॥ नमस्तेऽस्तु सुरेशान नमस्ते कमलेक्षण ॥ ११ ॥ त्वं स्थितिः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सताम् ॥ त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥ त्वमोङ्कारो वषट्कारः स्वधा स्वाहा चतुर्विधा ॥ आद्यस्त्वं च सुरेशान त्वमे

देखे हुए अश्व को रथ से ले आये व हे भूपाल ! मस्तक को काटकर सूर्यनारायण के अश्व के कबंध से ॥ ९ ॥ बड़े चतुर विश्वकर्मा ने विष्णुजी के शिररहित शरीर में युक्त किया और उन देवदेवेश विष्णुजी को देखकर स्तुति करनेलगे ॥ १० ॥ देवता बोले कि हे जगद्बीज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे लक्ष्मीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे सुरेशान ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे कमलेक्षण ! आप के लिये प्रणाम है ॥ ११ ॥ सब प्राणियों की स्थिति तुम्हीं हो व सज्जनों के रक्षक तुम्हीं हो व हे हयग्रीव ! सब दुष्टों को मारनेवाले तुम्हीं हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ और ॐकार, वषट्कार, स्वाहा व स्वधा चार प्रकार के तुम्हीं हो व हे

सुरेशान ! प्रथम तुम्हीं हो व सदैव रक्षक तुम्हीं हो ॥१३॥ और यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, द्रव्य, होता व हवन तुम्हीं हो व हे देव ! तुम्हारे लिये हवन किया जाता है और रक्षक व मित्र तुम्हीं हो ॥१४॥ और करालरूपी काल तुम्हीं हो और सूर्य व चन्द्रमा तुम्हीं हो और अग्नि व वरुण तुम्हीं हो व काल को नाशनेवाले तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ और तीनों गुण तुम्हीं हो व गुणों से रहित तुम्हीं हो और गुणों का स्थान तुम्हीं हो व सब जंतुवों में रक्षक तुम्हीं हो ॥ १६ ॥ और स्त्री व पुरुष में दो भांति तुम्हीं हो व पशु, पक्षी और मनुष्यों समेत चौरासी लक्षणोंवाला चार प्रकार का कुल तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ व हे हरे ! दिनान्त, पक्षान्त, मासान्त, वर्ष व युग तुम्हीं हो और

व शरणं सदा ॥ १३ ॥ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ॥ त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥ १४ ॥ कालः करालरूपस्त्वं त्वं वार्कः शीतदीधितिः ॥ त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वं च कालक्षयङ्करः ॥ १५ ॥ गुणत्रयं त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ॥ गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ॥ १६ ॥ स्त्रीपुंसोश्च द्विधा त्वं च पशुपक्ष्यादिमानवैः ॥ चतुर्विधं कुलं त्वं हि चतुराशीतिलक्षणम् ॥ १७ ॥ दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायनं युगम् ॥ कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे ॥ १८ ॥ एवंविधैर्महादिव्यैःस्तूयमानः सुरैर्नृप ॥ सन्तुष्टःप्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमर्थमिह सम्प्राप्ताः सर्वे देवगणा भुवि ॥ किमेतत्कारणं देवाः किं नु दैत्यप्रपीडिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ॥ त्वद्दर्शनपराः सर्वे पश्यामो वै दिशो दश ॥ २१ ॥ त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ॥ योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥ २२ ॥ वम्री च नोदिता

कल्पान्त, महान्त व कालान्त तुम्हीं हो ॥ १८ ॥ हे नृप ! ऐसे महादिव्य स्तोत्रों से स्तुति कियेहुए प्रभु विष्णुजी ने प्रसन्न होकर सब देवताओं के आगे कहा ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओ ! यहां पृथ्वी में तुमलोग सब देवताओं के गण किसलिये प्राप्त हुए हो यह क्या कारण है क्या दैत्यों से पीड़ित हुए हो ॥ २० ॥ देवता बोले कि दैत्य का भय नहीं हुआ है हमलोग यज्ञकर्म के उत्कंठित हैं और तुम्हारे दर्शन में परायण हम सब दशो दिशाओं को देखते हैं ॥ २१ ॥ और हम सब तुम्हारी माया से मोहित हैं व व्यग्रचित्तवाले तथा भय से विकल हैं और हमलोगों ने तुम्हारे योगारूढस्वरूप को देखा ॥ २२ ॥ व हे ईश्वर ! तुम्हारे जागरण के

लिये हमलोगों ने वम्री नामक कीट को पठाया तदनन्तर तुम्हारा अपूर्व शिर कट गया ॥ २३ ॥ हे प्रभो, विष्णो ! बड़े चतुर विश्वकर्मा ने सूर्य के घोड़े का शिर लाकर लगाया है इस कारण हयग्रीव हो ॥ २४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे सब देवताओ ! मैं प्रसन्न हूं तुमलोगों को प्रिय वर दूंगा और संसार का स्वामी मैं हयग्रीव देवदेव हूं ॥ २५ ॥ और यह रूप न भयङ्कर है न कुरूप है बरन देवताओं से भी सेवित है व हे देवताओ ! प्रसन्न कराया हुआ हयानन ऐसा मैं वरदायक हुआ हूं ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि यज्ञ करनेपर तदनन्तर ब्रह्माजी प्रसन्नचित्त से वम्री व विश्वकर्माजी के लिये यज्ञभाग को देकर ॥ २७ ॥ व यज्ञान्त में सुरश्रेष्ठ विश्वकर्माजी को प्रणाम

स्माभिर्जागराय तवेश्वर ॥ ततश्चापूर्वमभवच्छिरश्छिन्नं बभूव ते ॥ २३ ॥ सूर्याश्वशीर्षमानीय विश्वकर्मातिचातुरः ॥ समधत्त शिरो विष्णो हयग्रीवोऽस्यतः प्रभो ॥ २४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तुष्टोऽहं नाकिनः सर्वे ददामि वरमीप्सितम् ॥ हयग्रीवोऽस्म्यहं जातो देवदेवो जगत्पतिः ॥ २५ ॥ न रौद्रं न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् ॥ जातोऽहं वरदो देवा हयाननेति तोषितः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ॥ यज्ञभागं ततो दत्त्वा वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ॥ २७ ॥ यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ एतच्च कारणं विद्धि हयाननो यतो हरिः ॥ २८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्त्वतः ॥ विवरे विवरे रोम्णां वर्तन्ते च पृथक्पृथक् ॥ २९ ॥ ब्रह्माण्डानि सहस्राणि दृश्यन्ते च महाद्युते ॥ न वेत्ति वेदो यत्पारं शीर्षघातो हि वै कथम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु त्वं पाण्डवश्रेष्ठ कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ईश्वरस्य चरित्रं हि नैव वेत्ति चराचरे ॥ ३१ ॥ एकदा ब्रह्मसभायां

कर स्वर्ग को चलेगये इस कारण को जानिये कि जिससे विष्णुजी हयग्रीव हुए हैं ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि जिन्होंने एक पग से सब पृथ्वी को नापलिया व हे महाद्युते ! जिनके रोमों के प्रत्येक छिद्र में हज़ारों ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं व पृथक् २ देख पड़ते हैं व वेद भी जिनका पार नहीं पाता है उनके शिरश्छेद को कैसे जानैं ॥ २९।३० ॥ व्यासजी बोले कि हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम पुराण की उत्तम कथाको सुनो ईश्वरके चरित्रको चराचर संसार में कोई नहीं जानता है ॥ ३१ ॥ एक समय

ब्रह्मा की सभा में इन्द्र समेत देवता गये सब भूर्लोकादिक व स्थावर और जङ्गम ॥ ३२ ॥ व देवता और सब ब्रह्मर्षि ब्रह्मा को प्रणाम करने के लिये गये और उस सभा में सम्मति के कारण विष्णु भी आगये ॥ ३३ ॥ तब विशेषकर गर्वित ब्रह्माने भी यह वचन कहा कि हे देवताओ ! सुनिये कि तीनों देवताओं के मध्य में कौन बड़ा भारी कारण है ॥ ३४ ॥ हे देवताओ ! ब्रह्मा, शिव व विष्णुजी के मध्य में सत्य कहिये उस वचन को सुनकर देवता विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ३५ ॥ तदनन्तर देवताओं ने कहा कि हमलोग देवता यह नहीं जानते हैं तब सुरेश्वर विष्णुजी से ब्रह्मा की स्त्री ने कहा कि तीनों देवताओं के मध्य में मुझ से श्रेष्ठ को कहिये ॥ ३६ ॥

गता देवाः सवासवाः ॥ भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ॥ ३२ ॥ देवा ब्रह्मर्षयः सर्वे नमस्कर्त्तुं पितामहम् ॥ विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायां मन्त्रकारणात् ॥ ३३ ॥ ब्रह्माचापि विगर्विष्ठ उवाचेदं वचस्तदा ॥ भो भो देवाः शृणुध्वं कस्त्रयाणां कारणं महत् ॥ ३४ ॥ सत्यं ब्रुवन्तु वै देवा ब्रह्मेशविष्णुमध्यतः ॥ तां वाचं च समाकर्ण्य देवा विस्मयमागताः ॥ ३५ ॥ ऊचुश्चैव ततो देवा न जानीमो वयं सुराः ॥ ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रति सुरेश्वरम् ॥ त्रयाणामपि देवानां महान्तं च वदस्व मे ॥ ३६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विष्णुमायाबलेनैव मोहितं भुवनत्रयम् ॥ ततो ब्रह्मोवाच चेदं न त्वं जानासि भो विभो ॥ ३७ ॥ नैव मुह्यन्ति ते मायाबलेन नैवमेव च ॥ गर्वहिंसापरो देवो जगद्भर्ता जगत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृताः खिलाः ॥ ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धः प्रस्फुरिताननः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणु मे वचः ॥ सभायां येन वक्त्रेण वचनं समुदीरितम् ॥ ४० ॥ तच्छीर्षं पतताद्दाशु चाल्प

विष्णुजी बोले कि विष्णुजी की माया के बल से त्रिलोक मोहित है तदनन्तर ब्रह्माने कहा कि हे विभो ! तुम यह नहीं जानतेहो ॥ ३७ ॥ और तुम्हारी माया के बल से देवता नहीं मोहित होते हैं इस प्रकार गर्व की हिंसा में तत्पर न होवो कि संसार का स्वामी व संसार का पालन करनेवाला देवता मैं हूं ॥ ३८ ॥ और विष्णु की माया से घिरेहुए सब देवता तुमको ज्येष्ठ नहीं जानते हैं तदनन्तर रोष से कंपित मुखवाले उन क्रोधित ब्रह्मा ने ॥ ३९ ॥ कोप से यह वचन कहा कि हे विष्णो ! मेरा वचन सुनिये कि सभा में जिस मुख से वचन कहा गया ॥ ४० ॥ वह मस्तक थोड़ेही समय में शीघ्रही गिरपड़ै तदनन्तर सब हाहाकार होगया और इन्द्र समेत व ऋषियों

सहित ॥ ४१ ॥ सुरोत्तमों ने विष्णुजी से क्षमापन कराया और विष्णुजी उस वचनको सुनकर यह बोले कि सत्य सत्य यह होगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बड़े तेजस्वी सुरेश्वर विष्णुजी ने तीर्थ को उत्पन्न करने के कारण उस धर्मारण्य में तप किया और अश्वशिरवाले मुख को देखकर हयग्रीव विष्णुजी ने ॥ ४३ ॥ हे महाभाग, भारत ! ब्रह्मा समेत ऐसा तप किया कि जिस को अन्य कोई नहीं करसक्ता है तब अपनाही से स्वयं प्रसन्न होगये ॥ ४४ ॥ और विष्णुकी माया से मोहित व विष्णुजी के आगे खड़े हुए तप से संयुत ब्रह्मा ने भी तीन सौ वर्षतक तप किया ॥ ४५ ॥ और देवदेव जगदीशजी ने यज्ञ के लिये प्रसन्न होकर कहा कि हे ब्रह्मन् ! इस समय तुम्हारी

कालेन वै पुनः ॥ ततो हाहाकृतं सर्वं सेन्द्राः सर्षिपुरोगमाः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माणं क्षमयामासुर्विष्णुं प्रति सुरोत्तमाः ॥ विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं भविष्यति ॥ ४२ ॥ ततो विष्णुर्महातेजास्तीर्थस्योत्पादनेन च ॥ तपस्तेपे तु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वरः ॥ अश्वशीर्षं मुखं दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्द्दनः ॥ ४३ ॥ तपस्तेपे महाभाग विधिना सह भारत ॥ न शक्यं केनचित्कर्त्तुमात्मनात्मैव तुष्टवान् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् ॥ तिष्ठन्नेव पुरो विष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ॥ ४५ ॥ यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ॥ ब्रह्मंस्ते मुक्तताद्यास्ति मम मायाप्यदुःसहा ॥४६॥ ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्द्दनः ॥ उवाच मधुरां वाचं सर्वेषां हितकारणात् ॥ ४७ ॥ अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ विधिविष्णुमयं चैतद्भवत्वेतन्न संशयः ॥ ४८ ॥ तीर्थस्य महिमा राजन्हयशीर्षस्तदा हरिः ॥ शुभाननो हि संजातः पूर्वेणैवाननेन तु ॥ ४९ ॥ कन्दर्पकोटिलावण्यो जातः कृष्णस्तदा नृप ॥ ब्रह्मापि तपसा युक्तो

मुक्तता है और मेरी माया भी तुमको दुस्सह न होगी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने वरको पाया व प्रसन्नचित्तवाले विष्णुजी ने सबों के हित के कारण मधुर वचन को कहा ॥ ४७ ॥ कि यहां पुण्यरूप पापनाशक महाक्षेत्र हुआ और ब्रह्मा व विष्णुमय यह तीर्थ होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ व तीर्थ की महिमा होगी हे राजन् ! उस समय हयग्रीव विष्णुजी पहले के मुखके समान उत्तम मुखवाले होगये ॥ ४९ ॥ व हे नृप ! श्रीकृष्णजी उस समय करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर होगये और देवताओं

के तीन सौ वर्षतक ब्रह्मा भी तपसे संयुत हुए ॥ ५० ॥ और सावित्री ने वहां तप किया जहां कि विष्णुजी की माया बाधा नहीं करती है और माया से ब्रह्मा का जो पांचवां शिर शार्दूल (व्याघ्र) का सा किया गया था ॥ ५१ ॥ वह धर्मारण्य में सुन्दर किया गया जिस को पुरातन समय शिवजी ने काटा था विष्णुजी उन के लिये वरको देकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये ॥ ५२ ॥ व हे अरिंदम! ब्रह्माजी वहां मुक्तेश नामक शिवदेवजी के मोक्षतीर्थ को व त्रिलोचनजी को थापकर ॥ ५३ ॥ देवताओं में श्रेष्ठ वे ब्रह्मा भी देवताओं से सेवित अपने स्थान को चलेगये और वहां तर्पण से तृप्त कियेहुए प्रेत स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ और उसके स्नान

दिव्यं वर्षशतत्रयम् ॥ ५० ॥ सावित्र्या च कृतं यत्र विष्णुमाया न बाधते ॥ मायया तु कृतं शीर्षं पञ्चमं शार्दुलस्य वा ॥ ५१ ॥ धर्मारण्ये कृतं रम्यं हरेण च्छेदितं पुरा ॥ तस्मै दत्त्वा वरं विष्णुर्जगामादर्शनं ततः ॥ ५२ ॥ स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थं चैव त्रिलोचनम् ॥ मुक्तेशंनाम देवस्य मोक्षतीर्थमरिंदम ॥ ५३ ॥ गतः सोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थानं सुरसेवितम् ॥ तत्र प्रेता दिवं यान्ति तर्पणेन प्रतर्पिताः ॥ ५४ ॥ अश्वमेधफलं स्नाने पाने गोदानजं फलम् ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ ५५ ॥ स्नानार्थमत्रागच्छन्ति देवताः पितरस्तथा ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे मुक्तेशं पूजयेत्तु यः ॥ ५६ ॥ स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देवं जनार्द्दनम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥ भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ॥ अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥ ५८ ॥ एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि ॥ तद्दोषं नाशयेन्नूनं प्रजाप्तिप्रतिबन्धकम् ॥ ५९ ॥ मोक्षेश्वरप्रसादेन

में अश्वमेध यज्ञ का फल है व जल पीने में गोदान से उपजा हुआ फल है और पुष्करादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां ॥ ५५ ॥ व देवता और पितर स्नान के लिये यहां आते हैं कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिका नक्षत्र योग में जो मुक्तेशजी को पूजताहै ॥ ५६ ॥ व सुन्दर देवसर में नहाकर तथा जनार्दनजी को प्रणामकर जो मनुष्य भक्ति से ऐसा करता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ५७ ॥ और चाहे हुए सुखों को भोगकर वह विष्णुलोक को जाता है और यदि अपुत्रिणी, काकबंध्या, मृतवत्सा व मृतप्रजा स्त्री होवै ॥ ५८ ॥ तो विधिपूर्वक एकवसन स्त्री पुरुष नहाकर पुत्रप्राप्ति के प्रतिबन्धकरूप उस दोषको निश्चयकर नाश करता है ॥ ५९ ॥ और मोक्षेश्वर के

प्रसाद से पुत्रों व पौत्रादिकों को बढ़ाता है अथवा सत्य से संयुत स्त्री भी यदि एक चित्त से बांसे के पात्र में फलों को धरकर देती है तो वह दोष से छूटजाती है व हे नृप! देवता अग्निष्टोम के फल को पाते हैं ॥ ६० । ६१ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व महेश धर्मारण्य में देवसर में त्रिकाल स्नानकर उत्तम तपस्या करते हैं ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वहां देवताओं ने मोक्षेश्वर शिवजी को स्थापन किया है और वहां सांग जप करके फिर स्तन को पीनेवाला नहीं होता है ॥ ६३ ॥ हे महाराज! ऐसा क्षेत्र त्रिलोक में प्रसिद्ध है और श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य पितरों का श्राद्ध करता है ॥ ६४ ॥ वह सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को तारता है और बड़ा सुन्दर देवसर

पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् ॥ दद्याद्वैकेन चित्तेन फलानि सत्यसंयुता ॥ ६० ॥ निधाय वंशपात्रेऽपि नारी दोषात्प्रमुच्यते ॥ प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्टोमफलं नृप ॥ ६१ ॥ वेधा हरिर्हरश्चैव तप्यन्ते परमं तपः ॥ धर्मारण्ये त्रिसन्ध्यं च स्नात्वा देवसरस्यथ ॥ ६२ ॥ तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ॥ तत्र साङ्गं जपं कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ६३ ॥ एवं क्षेत्रं महाराज प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितॄणां श्रद्धयान्वितः ॥ ६४ ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ देवसरो महारम्यं नानापुष्पैः समन्वितम् ॥ श्यामं सकलकह्लारैर्विविधैर्जलजन्तुभिः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः सेवितं सुरमानुषैः ॥ सिद्धैर्यक्षैश्च मुनिभिः सेवितं सर्वतः शुभम् ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं तत्सरः ख्यातं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ॥ तस्य रूपं प्रकारं च कथयस्व यथातथम् ॥ ६७ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ यस्य संकीर्तनान्नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६८ ॥ अतिस्वच्छतरं शीतं गङ्गोदकसमप्रभम् ॥

अनेक भांति के पुष्पों से संयुत है व सब कमल और जलजन्तुओं से श्याम है ॥ ६५ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व महेशादिकों से तथा देवताओं व मनुष्यों से सेवित है व सिद्धों, यक्षों तथा मुनियों से सेवित और सब ओर से उत्तम है ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम! उस स्थान में वह तड़ाग कैसा प्रसिद्ध है उसका रूप व प्रकार यथायोग्य कहिये ॥ ६७ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर! बहुत अच्छा बहुत अच्छा आपने पूंछा जिसका कीर्तन करने से मनुष्य निश्चय कर सब पापों से छूटजाता है ॥ ६८ ॥ हे नृपोत्तम! उसका जल बहुतही निर्मल, ठण्ढा व गंगाजल के समान प्रभावान् और पवित्र, मधुर तथा स्वादिष्ठ

है ॥ ६९ ॥ और वह महाविशाल, गंभीर व मनोहर देवखात है और वह गंभीर लहरी आदिकों से व फेन और भँवरों से संयुत है ॥ ७० ॥ व मछली, मेढक, कछुवा और मकरों से संयुत है और शंख व शुक्ति आदिकों से युक्त तथा राजहंसों से शोभित है ॥ ७१ ॥ और बरगद व पकरिया के वृक्षों से युक्त व पीपल और आम्रों से घिरा है और चकई, चकवा से संयुत तथा बगुला, सारस व टिट्टिभ पक्षियों से युक्त है ॥ ७२ ॥ और सुन्दर व बहुत सुगन्ध से युक्त तथा कमलों से शोभित है और सब पक्षियों से सेवित तथा सारस आदिकों से सुशोभित है ॥ ७३ ॥ व हे राजन् ! देवताओं समेत मुनियों और ब्राह्मणों व मनुष्यों से सेवित तथा दुःखनाशक

पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तम ॥ ६९ ॥ महाविशालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम् ॥ लहर्यादिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ॥ ७० ॥ झषमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम् ॥ शङ्खशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ॥ ७१ ॥ वटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाम्रैश्च वेष्टितम् ॥ चक्रवाकसमोपेतं बकसारसटिट्टिभैः ॥ ७२ ॥ कमनीयप्रगन्धाढ्यं शतपत्रैः सुशोभितम् ॥ सेव्यमानं द्विजैः सर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ॥ ७३ ॥ सदेवैर्मुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप ॥ सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७४ ॥ अनादिनिधनोपेतं सेवितं सिद्धमण्डलैः ॥ स्नानादिभिः सर्वदैव तत्सरो नृपसत्तम ॥ ७५ ॥ विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गं च तत्तटे ॥ प्रेता नैव कुले तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ७६ ॥ कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिना तत्र भूपते ॥ ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलोके यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७७ ॥ महिषीं गृहदासीं च सुरभीं सुतसंयुताम् ॥ हेम विद्यां तथा भूमिं रथांश्च गजवाससी ॥ ७८ ॥ ददाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥ देवखातस्य मा

व समस्त पातकों का विनाशक है ॥ ७४ ॥ और हे नृपोत्तम ! आदि अन्त रहित तथा सिद्ध मंडलों से सदैव ही वह तड़ाग स्नानादिकों से सेवित है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य उसके किनारे पै विधि से नीलोत्सर्ग करता है उसके कुल में चौदह इन्द्र पर्यन्त प्रेत नहीं होते हैं ॥ ७६ ॥ व हे भूपते ! वहां विधि से जो कन्यादान करते हैं वे प्रलय पर्यन्त ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं ॥ ७७ ॥ और भैंसी, गृह, दासी और बछड़ा से संयुत गऊ, सुवर्ण, विद्या, भूमि, रथ और हाथी व वस्त्रों को ॥ ७८ ॥ जो वहां

श्रद्धा से देता है वह अक्षय स्वर्ग को पाता है और इस देवखात (बिन खोदे हुए तड़ाग) का माहात्म्य जो शिवजी के समीप पढ़ता है वह दीर्घ आयुर्बल व सुखको पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥ व हे युधिष्ठिर ! जो स्त्री या पुरुष इस अद्भुत माहात्म्य को सुनता है उस के वंश में कल्पान्त में भी कल्याण होता है ॥ ८० ॥ यह सब हयग्रीव का कारण कहा गया व सब पापों के नाश के लिये उस तीर्थ का प्रभाव कहा गया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांहयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

हात्म्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥ दीर्घमायुस्तथा सौख्यं लभते नात्र संशयः ॥ ७९ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ॥ कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ॥ ८० ॥ एतत्सर्वं मयाख्यातं हयग्रीवस्य कारणम् ॥ प्रभावस्तस्य तीर्थस्य सर्वपापापनुत्तये ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये हयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ रक्षसां चैव दैत्यानां यक्षाणामथ पक्षिणाम् ॥ भयनाशाय काजेशैर्धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ १ ॥ शक्तिः संस्थापिता नूनं नानारूपा ह्यनेकशः ॥ तासां स्थानानि नामानि यथारूपाणि मे वद ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पार्थ महाबाहो धर्ममूर्ते नृपोत्तम ॥ स्थाने वै स्थापिता शक्तिः काजेशैश्चैव गोत्रपा ॥ ३ ॥ श्रीमाता मदारिका यां शान्ता नन्दापुरे वरे ॥ रक्षार्थं द्विजमुख्यानां चतुर्दिक्षु स्थिताश्च ताः ॥ ४ ॥ युक्ताश्चैव सुरैः सर्वैः स्वस्वस्थाने

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र में जिमि आनन्दा शक्ति । थपी सोलहें में सोई अहै चरित की उक्ति ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि राक्षस, दैत्य, यक्ष व पक्षियों के सकाश से धर्मारण्यनिवासियों के भय के नाश के लिये ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने ॥ १ ॥ निश्चय कर अनेक रूपवाली अनेक शक्तियों को स्थापन किया है उनके स्थान व नामों को जैसे रूप हों वैसे कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाबाहो, धर्ममूर्ते, नृपोत्तम, पार्थ ! उस स्थान में ब्रह्मा, विष्णु व महेश से गोत्रपा शक्ति थापी गई है ॥ ३ ॥ और मदारिका में श्रीमाता व उत्तम नंदापुर में शांता है मुख्य ब्राह्मणों की रक्षा के लिये वे चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥ ४ ॥ व हे नृपोत्तम ! सब

देवताओं ने अपने अपने स्थान में युक्त किया है और वन के मध्य में ब्राह्मणों की रक्षा के लिये सब शक्तियां स्थित हैं ॥ ५ ॥ व हे महाराज ! सावित्री ऐसी प्रसिद्ध वह शिवा हुई है और दैत्यों के विनाश के लिये देवताओं ने ज्ञानजा शक्ति को स्थापित किया है ॥ ६ ॥ और गात्रायी व पक्षिणी देवी और छत्रजा, द्वारवासिनी, शीहोरी व जो चूटसंज्ञक है और पिप्पलाशापुरी व अन्य बहुतसी शक्तियां भय से रक्षा करने में स्थापित कीगई हैं ॥ ७ ॥ और पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में देवताओं ने उस शक्ति को स्थापन किया है और वह अनेक प्रकार के अस्त्रों को धारण किये व अनेक आभूषणों से भूषित है ॥ ८ ॥ और वह अनेक प्रकार की सवा-

नृपोत्तम ॥ वनमध्ये स्थिताः सर्वा द्विजानां रक्षणाय वै ॥ ५ ॥ सा बभूव महाराज सावित्रीतिप्रथा शिवा ॥ असुराणां व धार्थाय ज्ञानजा स्थापिता सुरैः ॥ ६ ॥ गात्रायी पक्षिणी देवी छत्रजा द्वारवासिनी ॥ शीहोरी चूटसंज्ञा या पिप्पला शापुरी तथा ॥ अन्याश्च बहवश्चैव स्थापिता भयरक्षणे ॥ ७ ॥ प्रतीच्योदीच्यां याम्यां वै विबुधैः स्थापिता हि सा ॥ नानायुधधरा सा च नानाभरणभूषिता ॥ ८ ॥ नानावाहनमारूढा नानारूपधरा च सा ॥ नानाकोपसमायुक्ता नाना भयविनाशिनी ॥ ९ ॥ स्थाप्या मातर्यथास्थाने यथायोग्या दिशोदश ॥ गरुडेन समारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ १० ॥ सिंहारूढा शुद्धरूपा वारुणी पानदर्पिता ॥ खड्गखेटकबाणाढ्यैः करैर्भाति शुभानना ॥ ११ ॥ रक्तवस्त्रावृता चैव पीनोन्नतपयोधरा ॥ उद्यदादित्यबिम्बाभा मदाघूर्णितलोचना ॥ १२ ॥ एवमेषा महादिव्या कार्जेशैः स्थापिता

रियों पै सवार व अनेक भांति के रूपों को धारण किये है व अनेक भांति के क्रोध से संयुत व अनेक भांति के भय को नाशनेवाली है ॥ ९ ॥ और यथायोग्य स्थान व यथायोग्य दशो दिशाओं में मातृका स्थापन करने योग्य हैं व उत्तम त्रिशूल को धारण किये वे गरुड़ पै चढ़ी हैं ॥ १० ॥ व शुद्धरूपवाली वह शक्ति सिंह पै सवार और मदिरा पीने से गर्वित है व खड्ग, खेटक और बाण से संयुत हाथों से उत्तम मुखवाली वह शोभित है ॥ ११ ॥ और लाल वसन को पहने व कठोर तथा ऊंचे स्तनोंवाली है और उदय होते हुए सूर्यबिम्ब के समान तथा मद से घूर्णित नेत्रोंवाली है ॥ १२ ॥ उस समय यह महादिव्य शक्ति सत्यमंदिर में बसनेवाले

सब जंतुवों की रक्षा के लिये स्थापित कीगई है ॥ १३ ॥ हे नृपोत्तम ! स्तुति कीहुई व पूजीहुई वह देवी सदैव सब चाहे हुए मनोरथों को देती है ॥ १४ ॥ और धर्मारण्य से पश्चिम में उत्तम छत्रजा शक्ति स्थापित कीगई है और कितेक शक्तियों से संयुत वहां स्थित वह शक्ति ब्राह्मणों की रक्षा करती है ॥ १५ ॥ भयंकर रूप में स्थित होकर वे शक्तियां राक्षसों के मारने के लिये व ब्राह्मणों के अभय के लिये इस प्रकार के अस्त्रों को धारण करती हैं ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! उसके आगे जल से पूर्ण उत्तम तड़ाग को उसने किया है इस तड़ाग में स्नानादिक व तर्पण करके ॥ १७ ॥ पिंडदानादिक सब कर्म अक्षय होता है और पृथ्वी में जो दिव्य जलांजलियों को

तदा ॥ रक्षार्थं सर्वजन्तूनां सत्यमन्दिरवासिनाम् ॥ १३ ॥ सा देवी नृपशार्दूल स्तुता संपूजिता सदा ॥ ददाति सकलान्कामान्वाञ्छितान्नृपसत्तम ॥ १४ ॥ धर्मारण्यात्पश्चिमतः स्थापिता छत्रजा शुभा ॥ तत्रस्था रक्षते विप्रान्कियच्छक्तिसमन्विता ॥ १५ ॥ भैरवं रूपमास्थाय राक्षसानां वधाय च ॥ धारयन्त्यायुधानीत्थं विप्राणामभयाय च ॥ १६ ॥ सरश्चकार तस्याग्रे उत्तमं जलपूरितम् ॥ सरस्यस्मिन्महाभाग कृत्वा स्नानादितर्पणम् ॥ १७ ॥ पिण्डदानादिकं सर्वमक्षयं चैव जायते ॥ भूमौ क्षिप्ताञ्जलीन्दिव्यान्धूपदीपादिकं सदा ॥ १८ ॥ तस्य नो बाधते व्याधिः शत्रूणां नाश एव च ॥ बलिदानादिकं तत्र कुर्याद्भूयः स्वशक्तितः ॥ १९ ॥ शत्रवो नाशमायान्ति धनं धान्यं विवर्धते ॥ आनन्दा स्थापिता राजञ्छक्त्यंशा च मनोरमा ॥ २० ॥ रक्षणार्थं द्विजातीनां माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ शुक्लाम्बरधरा दिव्या हेमभूषणभूषिता ॥ २१ ॥ सिंहारूढा चतुर्हस्ता शशाङ्ककृतशेखरा ॥ मुक्ताहारलतोपेता पीनोन्नतपयोधरा ॥ २२ ॥ अक्ष

देता है व जो सदैव धूप दीपादिक करता है ॥ १८ ॥ उसको रोग पीडा नहीं करता है और शत्रुवों का नाशही होता है फिर अपनी शक्ति से वहां जो बलिदानादिक कर्म करता है ॥ १९ ॥ उसके शत्रु नाश होते हैं और धन व धान्य बढ़ता है हे राजन् ! सुन्दरी आनंदा नामक शक्त्यंश ब्राह्मणों की रक्षा के लिये स्थापित कीगई है हे भूपते ! उसका माहात्म्य सुनिये कि श्वेत वसन को धारण किये व सुवर्ण के भूषण से भूषित वह दिव्य शक्ति ॥ २० । २१ ॥ जिसके चार हाथ हैं व चन्द्रमा को जो मस्तक में धारण किये है वह सिंह पै सवार व मुक्ताहार की लता से संयुत तथा कठोर व ऊंचे स्तनोंवाली है ॥ २२ ॥ और रुद्राक्ष की माला व तल-

वार को हाथ में लिये तथा गुण व तोमर अस्त्र को धारण किये है व सुगंधित तथा दिव्य वसनों को पहने और दिव्य मालाओं से भूषित है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उस नगर में पहले आनंदा नामक सात्त्विकी शक्ति स्थित हुई है उस को कपूर व लाल चन्दन से पूजै ॥ २४ ॥ और शहद, घी व शक्कर समेत उत्तम खीर से भोजन करावै हे राजन् ! पार्वतीजी की प्रीति के लिये कुमारी का पूजनकरै ॥ २५ ॥ हे नृपोत्तम ! वहां जप, हवन, दान व ध्यान वह सब अक्षय होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ व हे नृपोत्तम ! उस स्थान में त्रिगुण करने पर तिगुनी वृद्धि होती है और निश्चय कर साधक के धन व स्त्री आदिक संपदा होती हैं ॥ २७ ॥ और न हानि होती है

मालासिहस्ता च गुणतोमरधारिणी ॥ दिव्यगन्धाम्बरधरा दिव्यमालाविभूषिता ॥ २३ ॥ सात्त्विकी शक्तिरानन्दा स्थिता तस्मिन्पुरे पुरा ॥ पूजयेत्तां च वै राजन्कर्पूरारक्तचन्दनैः ॥ २४ ॥ भोजयेत्पायसैः शुभ्रैर्मध्वाज्यसितया सह ॥ भवान्याः प्रीतये राजन्कुमार्याः पूजनं तथा ॥ २५ ॥ तत्र जप्तं हुतं दत्तं ध्यातं च नृपसत्तम ॥ तत्सर्वं चाक्षयं तत्र जायते नात्र संशयः ॥ २६ ॥ त्रिगुणे त्रिगुणा वृद्धिस्तस्मिन्स्थाने नृपोत्तम ॥ साधकस्य भवेन्नूनं धनदारादि सम्पदः ॥ २७ ॥ न हानिर्न च रोगश्च न शत्रुर्न च दुष्कृतम् ॥ गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनधान्यादिसङ्कुलम् ॥ २८ ॥ न शाकिन्या भयं तस्य न च राज्ञश्च वैरिणः ॥ न च व्याधिभयं चैव सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २९ ॥ विद्याश्चतुर्द्दशा स्यैव भासन्ते पठिता इव ॥ सूर्यवद्द्योतते भूमावानन्दामाश्रितो नरः ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येआनन्दास्थापनवर्णनन्नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

न रोग होता है न शत्रु और न पाप होता है और उसके गाइयां बढ़ती हैं व धन, धान्यादि से संयुत होता है ॥ २८ ॥ और उसको शाकिनी की भय नहीं होती व राजा और शत्रु व रोग की भय नहीं होती है और वह सब कहीं विजयवान् होता है ॥ २९ ॥ और इसको पढ़ी हुई सी चौदह विद्या भासित होती हैं और आनन्दा के आश्रित मनुष्य पृथ्वी में सूर्य के समान प्रकाशित होता है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामानन्दास्थापनवर्णनं नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । थापित है देवी यथा श्रीमाता इमि नाम । सत्रहवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! दक्षिण में बड़ी बलवती शांता देवी स्थापित है वह विचित्र वसन को धारण किये व वनमाला से भूषित है ॥ १ ॥ हे महाराज ! मधुकैटभ को नाशनेवाली वह तामसी शक्ति है हे नृपोत्तम ! विष्णुजी ने वहां शिवजी की स्त्री को स्थापित किया है ॥ २ ॥ और आठ भुजाओंवाली वह सुन्दरी मेघों के समान श्याम व मनोहारिणी है और काले वसन को पहने हुई वह देवी व्याघ्र की सवारी पै स्थित है ॥ ३ ॥ और व्याघ्र के चर्म को पहने व दिव्य भूषणों से भूषित है और वह उत्तम देवी घंटा, त्रिशूल, रुद्राक्षमाला व कमंडलु

व्यास उवाच ॥ दक्षिणे स्थापिता राजञ्छान्ता देवी महाबला ॥ सा विचित्राम्बरधरा वनमालाविभूषिता ॥ १ ॥ तामसी सा महाराज मधुकैटभनाशिनी ॥ विष्णुना तत्र वै न्यस्ता शिवपत्नी नृपोत्तम ॥ २ ॥ सा चैवाष्टभुजा रम्या मेघश्यामा मनोरमा ॥ कृष्णाम्बरधरा देवी व्याघ्रवाहनसंस्थिता ॥ ३ ॥ द्वीपिचर्मपरीधाना दिव्याभरणभूषिता ॥ घण्टात्रिशूलाक्षमालाकमण्डलुधरा शुभा ॥ ४ ॥ अलङ्कृतभुजा देवी सर्वदेवनमस्कृता ॥ धनं धान्यं सुतान्भोगान्स्वभक्तेभ्यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥ पूजयेत्कमलैर्दिव्यैः कर्पूरागरुचन्दनैः ॥ तदुद्देशेन तत्रैव पूजयेद्द्विजसत्तमान् ॥ ६ ॥ कुमारीर्भोजयेदन्नैर्विविधैर्भक्तिभावतः ॥ धूपैर्दीपै फलैः रम्यैः पूजयेच्च सुरादिभिः ॥ ७ ॥ मांसैस्तु विविधैर्दिव्यैरथवा धान्यपिष्टजैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्धान्यैः पायसैर्वटकैस्तथा ॥ ८ ॥ ओदनैः कृशरापूपैः पूजयेत्सुसमाहितः ॥ स्तुतिपाठेन तत्रै

को धारण किये है ॥ ४ ॥ और भूषित भुजाओंवाली वह देवी सब देवताओं से नमस्कृत है और अपने भक्तों के लिये वह धन, धान्य, पुत्र व सुखों को देती है ॥ ५ ॥ और दिव्य कमलों से व कपूर, अगुरु और चंदन से पूजै व उनके उद्देश से वहीं द्विजोत्तमों को पूजै ॥ ६ ॥ व अनेक भांति के अन्नों से भक्ति, भाव से कुमारियों को पूजै और धूप, दीप व सुन्दर फलों से और मदिरादिकों से पूजै ॥ ७ ॥ व अनेक भांति के दिव्य मांसों से व धान्य के पिसान से उपजे हुए व्यंजनों से और अनेक प्रकार के अन्य धान्यों से व पायस और वटक (बरा नामक व्यंजन) से पूजै ॥ ८ ॥ और सावधान होता हुआ मनुष्य भात व तिलौदन और पुवों से पूजै और स्तुतिपाठ

से वहीं सुन्दर शक्ति के स्तोत्रों से जो आराधन करै ॥ ६ ॥ उस के शत्रु नाश होजाते हैं और वह सब कहीं विजयी होता है और समर, राजकुल व द्यूत में जय व मंगल को पाता है ॥ १० ॥ व हे महाराज ! सौम्य व शांत जो कुलमातृका थापी गई है वह श्रीमाता प्रसिद्ध है हे भूपते ! उसका माहात्म्य सुनिये ॥ ११ ॥ कि हे नृपसत्तम ! वहां जो कुलमाता महाशक्ति है उस कुमारी ब्रह्मपुत्री को ब्रह्माने रक्षा के लिये किया है ॥ १२ ॥ और वह स्थानमाता नाम से श्रीमाता देवी प्रसिद्ध है और वह त्रिरूपा ब्राह्मणों की रक्षा के लिये निर्माण कीगई है ॥ १३ ॥ और कमंडलु को धारण किये वह देवी घंटा के आभूषण से भूषित है व हे राजन् ! रुद्राक्ष

व शक्तिस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥ ६ ॥ रिपवस्तस्य नश्यन्ति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ रणे राजकुले द्यूते लभते जयमङ्गलम् ॥ १० ॥ सौम्या शान्ता महाराज स्थापिता कुलमातृका ॥ श्रीमाता सा प्रसिद्धा च माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ ११ ॥ कुलमाता महाशक्तिस्तत्रास्ते नृपसत्तम ॥ कुमारी ब्रह्मपुत्री सा रक्षार्थं विधिना कृता ॥ १२ ॥ स्थानमाता च सा देवी श्रीमाता साभिधानतः ॥ त्रिरूपा सा द्विजातीनां निर्मिता रक्षणाय च ॥ १३ ॥ कमण्डलुधरा देवी घण्टाभरणभूषिता ॥ अक्षमालायुता राजञ्छुभा सा शुभरूपिणी ॥ १४ ॥ कुमारी चादिमाता च स्थानत्राणकरापि च ॥ दैत्यघ्नी कामदा चैव महामोहविनाशिनी ॥ १५ ॥ भक्तिगम्या च सा देवी कुमारी ब्रह्मणः सुता ॥ रक्ताम्बरधरा साधुरक्तचन्दनचर्चिता ॥ १६ ॥ रक्तमाल्या दशभुजा पञ्चवक्त्रा सुरेश्वरी ॥ चन्द्रावतंसिका माता सुरासुरनमस्कृता ॥ १७ ॥ साक्षात्स

की माला से संयुत वह उत्तम शक्ति कल्याणरूपिणी है ॥ १४ ॥ और कुमारी व आदिमाता वह स्थान की रक्षा करनेवाली है और दैत्यों को नाशनेवाली व कामदायिनी तथा महामोह को नाशनेवाली है ॥ १५ ॥ और वह भक्ति से सुलभ कुमारी देवी ब्रह्मा की कन्या लाल वसन को धारण किये व उत्तम लाल चन्दन से पूजित है ॥ १६ ॥ और लाल मालाओं को पहने दश भुजाओंवाली सुरेश्वरी देवी पांच मुखोंवाली है और चन्द्रमा का शिरोभूषण किये वह माता देवताओं व दैत्यों से नमस्कृत है ॥ १७ ॥ और साक्षात् सरस्वतीरूपिणी वह ब्रह्मा से रक्षा के लिये कीगई है और महापवित्र वह ॐकारा ब्रह्मा, विष्णु व शिव जी से बनाई गई

है ॥ १८ ॥ और ऋषियों से व सिद्ध, यक्षादिक, देवता, नाग व मनुष्यों से प्रणाम करने योग्य दोनों चरणोंवाली वह उनके लिये मन से चाहे हुए पदार्थ को देती है ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणों के हित के लिये स्थान की रक्षा करती है और जैसे औरस पुत्रों की माता रक्षा करती है वैसेही वह उत्तम गुणों से रक्षा करती है ॥ २० ॥ और श्रीमाता कुलदेवता देवी पालन करती है व स्तुति कीहुई वह शक्ति सदैव सब उपद्रवों को नाश करती है ॥ २१ ॥ और विवाह, यज्ञोपवीत, सीमंत व शुभकर्म में श्रीमाता स्मरण से सब विघ्नों को नाश करनेवाली है ॥ २२ ॥ सब भक्तकार्यों में श्रीमाता सदैव पूजी जाती हैं और जैसे गणेश देव को पूजकर कर्म को प्रारंभ

रस्वतीरूपा रक्षार्थं विधिना कृता ॥ ॐकारा सा महापुण्या काजेशेन विनिर्मिता ॥ १८ ॥ ऋषिभिः सिद्धयक्षादिसुरप न्नगमानवैः ॥ प्रणम्याङ्घ्रियुगा तेभ्यो ददाति मनसेप्सितम् ॥ १९ ॥ पालयन्ती च संस्थानं द्विजातीनां हिताय वै ॥ यथौरसान्सुतान्माता पालयन्तीह सद्गुणैः ॥ २० ॥ अथ पालयती देवी श्रीमाता कुलदेवता ॥ उपद्रवाणि स र्वाणि नाशयेत्सततं स्तुता ॥ २१ ॥ सर्वविघ्नोपशमनी श्रीमाता स्मरणेन हि ॥ विवाहे चोपवीते च सीमन्ते शुभक र्मणि ॥ २२ ॥ सर्वेषु भक्तकार्येषु श्रीमाता पूज्यते सदा ॥ यथा लम्बोदरं देवं पूजयित्वा समारभेत् ॥ २३ ॥ कार्यं शुभं सर्वमपि तथा श्रीमातरं नृप ॥ यत्किञ्चिद्भोजनं त्वत्र ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥ २४ ॥ अथवा विनिवेद्यं च क्रिय ते यत्परस्परम् ॥ अनिवेद्य च तां राजन्कुर्वाणो विघ्नमेष्यति ॥ २५ ॥ तस्मात्तस्यै निवेद्याथ ततः कर्म समारभेत् ॥ तद्वरेणाखिलं कर्म अविघ्नेन हि सिध्यति ॥ हेमन्ते शिशिरे प्राप्ते पूजयेद्धर्मपुत्रिकाम् ॥ २६ ॥ हेमपत्रे समालिख्य

करै ॥ २३ ॥ वैसेही हे नृप ! श्रीमाताजी को पूजकर कार्य को प्रारंभ करै और जो कुछ भोजन यहां ब्राह्मणों के लिये मनुष्य देता है ॥ २४ ॥ अथवा जो परस्पर निवे- दन किया जाता है हे राजन् ! उसको न देकर कर्म करता हुआ मनुष्य विघ्न को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ इसलिये उसके लिये निवेदन करके तदनन्तर कर्म को प्रारंभ करै और उसके वर से सब कर्म निर्विघ्नता से सिद्ध होता है और हेमंत व शिशिर प्राप्त होने पर धर्मपुत्रिका को पूजै ॥ २६ ॥ और सुवर्ण के पत्र या चांदी के पत्र में

लिखकर पूजन करावै व हे राजन् ! श्रीमाता के लिये उत्तम पादुका को निवेदन करै ॥ २७ ॥ और तिल व आमलों से मिश्रित जलों से नहाकर पवित्र होकर वस्त्रों व पुष्पों से तथा सुन्दर दुकूलों से पूजन करै ॥ २८ ॥ और उत्तम चंदन, कुंकुम व सिंदूरादिकों से लेपन करै और कपूर, अगुरु व कस्तूरी से मिले हुए कीचड़ से लेपन करै ॥ २९ ॥ और कर्णिकार व सुर्ख़ कर्मूल और श्वेत तथा लाल कनैर के पुष्पों से और चंपक, केतकी व दुपहरी के पुष्पों से ॥ ३० ॥ और यक्षकर्दम व संपूर्ण बिल्वपत्रों से तथा पलाश व चमेली के पुष्पों से और उड़द से उपजे हुए बरों से व पुवा, भात, दालि व शाकसमूहों से प्रसन्न करै ॥ ३१ ॥ व धूप, दीपादिपूर्वक जगदम्बिका

राजते वाथ कारयेत् ॥ पादुकां चोत्तमां राजञ्छ्रीमातायै निवेदयेत् ॥ २७ ॥ स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा तिलामलकमिश्रितैः ॥ वासोभिः सुमनोभिश्च दुकूलैः सुमनोहरैः ॥ २८ ॥ लेपयेच्चन्दनैः शुभ्रैः कुङ्कुमैः सिन्दुरादिकैः ॥ कर्पूरागुरुकस्तूरीमिश्रितैः कर्दमैस्तथा ॥ २९ ॥ कर्णिकारैश्च कह्लारैः करवीरैः सितारुणैः ॥ चम्पकैः केतकीभिश्च जपाकुसुमकैस्तथा ॥ ३० ॥ यक्षकर्दमकैश्चैव बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥ पालाशजातिपुष्पैश्च वटकैर्माषसम्भवैः ॥ पूपभक्तादिदालीभिस्तोषयेच्छाकसञ्चयैः ॥ ३१ ॥ धूपदीपादिपूर्वं तु पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥ तद्धियैव कुमारीर्वै विप्रानपि च भोजयेत् ॥ पायसैर्घृतयुक्तैश्च शर्करामिश्रितैर्नृप ॥ ३२ ॥ पक्कान्नैर्मोदकाद्यैश्च तर्पयेद्भक्तिभावतः ॥ तर्प्यमाणे द्विजैकस्मिन्सहस्रफलमश्नुते ॥ ३३ ॥ दैत्यानां घातकं स्तोत्रं वाचयेच्च पुनः पुनः ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा स्तौति श्रीमातरं तु यः ॥ ३४ ॥ तस्य तुष्टा वरं दद्यात्स्नापिता पूजिता स्तुता ॥ अनिष्टानि च सर्वाणि नाशयेद्धर्मपुत्रिका ॥ ३५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रा

जी को पूजै व हे नृप ! उन्हीं की बुद्धि से कुमारी व ब्राह्मणों को भी घृतसंयुत व शर्करा से मिश्रित खीर से भोजन करावै ॥ ३२ ॥ और पक्वान्न व लड्डू आदिकों से भक्तिभाव से तृप्त करै तो एक ब्राह्मण को तृप्त करने से मनुष्य हज़ार ब्राह्मणों के फल को पाता है ॥ ३३ ॥ और दैत्यों के घातक (सप्तशती) स्तोत्र को बार २ पाठ करावै और एकाग्रमन होकर जो श्रीमाताजी की स्तुति करता है ॥ ३४ ॥ उसको स्नान, पूजन व स्तुति कीहुई प्रसन्न देवी वर देती हैं और धर्म की कन्या वह सब अरिष्टों को नाश करती है ॥ ३५ ॥ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनी होता है व राज्य को चाहनेवाला मनुष्य राज्य को पाता है और विद्यार्थी उस विद्या

को पाता है ॥ ३६ ॥ व लक्ष्मी को चाहनेवाला मनुष्य लक्ष्मी को पाता है व स्त्री की इच्छा करनेवाला पुरुष उस स्त्री को पाता है सरस्वती जी के प्रसाद से इस सब को मनुष्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ और सरस्वती जी के प्रसाद से पुरुष अन्त में जो देवताओं को भी दुर्लभ है उस सनातन स्थान को पाता है ॥ ३८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीमातामाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । मातंगीकर चरित अरु कर्णाटक वृत्तान्त । अठरहवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदान्त ॥ शिवजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, स्कन्द ! सुनिये जोकि उसने अद्भुत

न्निर्धनो धनवान्भवेत् ॥ राज्यार्थी लभते राज्यं विद्यार्थी लभते च ताम् ॥ ३६ ॥ श्रियोर्थी लभते लक्ष्मीं भार्यार्थी लभते च ताम् ॥ प्रसादाच्च सरस्वत्या लभते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ अन्ते च परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ प्राप्नोति पुरुषो नित्यं सरस्वत्याः प्रसादतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीमातामाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

रुद्र उवाच ॥ शृणु स्कन्द महाप्राज्ञ ह्यद्भुतं यत्कृतं तया ॥ धर्मारण्ये महादुष्टो दैत्यः कर्णाटकाभिधः ॥ १ ॥ सततं हि समागत्य दम्पत्योर्विघ्नमाचरत् ॥ तं दृष्ट्वा तद्भयाल्लोकः प्रदुद्राव निरन्तरम् ॥ २ ॥ त्यक्त्वा स्थानं गताः सर्वे वणिजो वाडवादयः ॥ मातङ्गीरूपमास्थाय श्रीमात्रा त्वनया सुत ॥ ३ ॥ हतः कर्णाटकोनाम राक्षसो द्विजघातकः ॥ तदा सर्वेऽपि वै विप्रा हृष्टास्ते तेन कर्मणा ॥ ४ ॥ स्तुवन्ति पूजयन्ति स्म वणिजो भक्तितत्पराः ॥ वर्षे वर्षे प्रकु

किया है धर्मारण्य में कर्णाटक नामक महादुष्ट दैत्य था ॥ १ ॥ वह सदैव स्त्री पुरुषों के समीप आकर विघ्न करता था उसको देखकर मनुष्य सदैव उसके भय से भगता था ॥ २ ॥ और स्थान को छोड़कर सब वणिज् व ब्राह्मणादिक चले गये व हे पुत्र ! इस श्रीमाता ने हथिनी का रूप धरकर ॥ ३ ॥ कर्णाटक नामक द्विजघाती राक्षस को मारडाला तब वे सब ब्राह्मण उस कर्म से प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ व भक्ति में तत्पर वणिजों ने उनकी स्तुति व पूजन किया और प्रतिवर्ष में वे उत्तम श्रीमाता

का पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ सब उत्तम कर्मों में जो पहले उसको पूजता है हे पुत्र ! तब से लगाकर वह विघ्न को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि यह दुष्ट महादैत्य कौन है व किस वंश में पैदा हुआ है व हे सुव्रत, तात ! उसने क्या क्या कर्म किया है उस सब को कहिये ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं कर्णाटक का कर्म कहता हूं जोकि देवताओं व दानवों को दुस्सह था और बल से गर्वित था ॥ ८ ॥ वह दुष्टकर्मी व दुराचारी और बड़ी दाढ़ों व बड़ी भुजाओंवाला था और सब लोकों को जीतकर वह त्रिलोक में जाता आता था ॥ ९ ॥ हे नृप ! जहां देवता व ऋषिलोग थे वहां जाकर वह महादैत्य छल से या बल से विघ्न

र्वन्ति श्रीमातापूजनं शुभम् ॥ ५ ॥ शुभकार्येषु सर्वेषु प्रथमं पूजयेत्तु ताम् ॥ न स विघ्नं प्रपश्येत तदाप्रभृति पुत्रक ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कोऽसौ दुष्टो महादैत्यः कस्मिन्वंशे समुद्भवः ॥ किं किं तेन कृतं तात सर्वं कथय सुव्रत ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कर्णाटकविचेष्टितम् ॥ देवानां दानवानां यो दुःसहो वीर्यदर्पितः ॥ ८ ॥ दुष्टकर्मा दुराचारो महादंष्ट्रो महाभुजः ॥ जित्वा च सकलाँल्लोकांस्त्रैलोक्ये च गतागतः ॥ ९ ॥ यत्र देवाश्च ऋषयस्तत्र गत्वा महासुरः ॥ छद्मना वा बलेनैव विघ्नम्प्रकुरुते नृप ॥ १० ॥ न वेदाध्ययनं लोके भवेत्तस्य भयेन च ॥ कुर्वते वाडवा देवा न च सन्ध्याद्युपासनम् ॥ ११ ॥ न क्रतुर्वर्तते तत्र न चैव सुरपूजनम् ॥ देशे देशे च सर्वत्र ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ १२ ॥ तीर्थे तीर्थे च सर्वत्र विघ्नं प्रकुरुतेऽसुरः ॥ परन्तु शक्यते नैव धर्मारण्ये प्रवेशितुम् ॥ १३ ॥ भयाच्छक्त्याश्च श्रीमातुर्दानवो विक्लवस्तदा ॥ केनोपायेन तत्रैव गम्यते त्विति चिन्तयन् ॥ १४ ॥ विघ्नं करिष्ये

करता था ॥ १० ॥ उसके भय से संसार में वेदपाठ नहीं होता था और ब्राह्मण देवता संध्यादिकों की उपासना नहीं करते थे ॥ ११ ॥ और वहां न यज्ञ होता था न देवपूजन होता था और देश देश व ग्राम ग्राम और पुर पुर में सब कहीं ॥ १२ ॥ और प्रत्येक तीर्थ में वह दैत्य सर्वत्र विघ्न करताथा परन्तु धर्मारण्य में नहीं पैठसक्ता था ॥ १३ ॥ तब श्रीमाता शक्ति के भयसे वह दानव विकल हुआ और यह चिन्तन करता रहा कि किस यत्न से वहां जाना होगा ॥ १४ ॥ और यज्ञ में कर्मों के अधि-

ष्ठाता व वेदाध्ययन करनेवाले महात्मा ब्राह्मणों का मैं किस प्रकार विघ्न करूं ॥ १५ ॥ दूर से वेदपाठ से उपजे हुए शब्द को सुनकर वह दानव वज्र से मारे हुए हाथी की नाईं व्यथित होता था ॥ १६ ॥ और कोप से दांतों से दांतों को घिसता हुआ वह श्वासों को छोड़ता था और दोनों हाथों को पीसता व अपने ओठों को काटता हुआ वह ॥ १७ ॥ हे मारिष ! इधर उधर उन्मत्त की नाईं घूमता था जैसे सन्निपात के दोष से मनुष्य भयंकर होता है ॥ १८ ॥ वैसेही धर्मारण्य के समीप में प्राप्त वह दानव भयंकर था और भय से संयुत वह दूरही से घूमता व भगता था ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणों के विवाहसमय में ब्राह्मण का रूप धरकर वह दुर्धर्ष दानव वहां जाकर

हि कथं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ वेदाध्ययनकर्तॄणां यज्ञे कर्माधितिष्ठताम् ॥ १५ ॥ वेदाध्ययनजं शब्दं श्रुत्वा दूरात्स दानवः ॥ विव्यथे स यथा राजन्वज्राहत इव द्विपः ॥ १६ ॥ निःश्वासान्मुमुचे रोषाद्दन्तैर्दन्तांश्च घर्षयन् ॥ दशमानो निजावोष्ठौ पेषयंश्च करावुभौ ॥ १७ ॥ उन्मत्तवद्विचरत इतश्चेतश्च मारिष ॥ सन्निपातस्य दोषेण यथा भवति मानवः ॥ १८ ॥ तथैव दानवो घोरो धर्मारण्यसमीपगः ॥ भ्रमते द्रवते चैव दूरादेव भयान्वितः ॥ १९ ॥ विवाहकाले विप्राणां रूपं कृत्वा द्विजन्मनः ॥ तत्रागत्य दुराधर्षो नीत्वा दाम्पत्यमुत्तमम् ॥ २० ॥ उत्पपात महीपृष्ठाद्गगने सोऽसुराधमः ॥ स्वयं च रमते पापो द्वेषाज्जातिस्वभावतः ॥ २१ ॥ एवं च बहुशः सोऽथ धर्मारण्याच्च दम्पती ॥ गृहीत्वा कुरुते पापं देवानामपि दुःसहम् ॥ २२ ॥ विघ्नं करोति दुष्टोऽसौ दम्पत्योः सततं भुवि ॥ महाघोरतरं कर्म कुर्वंस्तस्मिन्पुरे वरे ॥ २३ ॥ तत्रोद्विग्ना द्विजाः सर्वे पलायन्ते दिशो दश ॥ गताः सर्वे भूमिदेवास्त्यक्त्वा स्थानं

उत्तम स्त्री, पुरुषों को लेकर ॥ २० ॥ वह नीच दानव पृथ्वी से आकाश में उड़जाता था और वैर से व जाति के स्वभाव से वह पापी आपही रमण करता था ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह धर्मारण्य से बहुत से स्त्री पुरुषों को पकड़कर देवताओं के भी दुस्सह पाप को करता था ॥ २२ ॥ और सदैव पृथ्वी में यह दुष्ट स्त्री पुरुषों का विघ्न करता था और उस श्रेष्ठ नगर में बहुतही भयंकर कर्म करता था ॥ २३ ॥ और दुःखित होते हुए सब ब्राह्मण वहां भगने लगे और सब ब्राह्मण सुन्दर स्थान को छोड़कर

चले गये ॥ २४ ॥ व जहां जहां महातीर्थ था वहां वहां ब्राह्मण चले गये हे नृपोत्तम ! उस समय वह नगर उजाड़ होगया ॥ २५ ॥ और वहां वेदपाठ व यज्ञ नहीं होता था और कर्णाट के भयसे विकल मनुष्य वहां नहीं टिकते थे ॥ २६ ॥ हे महायशाः, राजन् ! तदनन्तर यथायोग्य सम्मति कहने के लिये सब ब्राह्मण और वणिज् एक ठिकाने मिले ॥ २७ ॥ और श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग कर्णाट के मारने के यत्न की सम्मति करने लगे और उनके विचार करने पर दैव से आकाशवाणी उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ कि सब दैत्यों को नाश करनेवाली व सब उपद्रवों को नाशनेवाली तथा सब दुःखों को हरनेवाली श्रीमाता को आराधन करो ॥ २९ ॥ उसको

मनोरमम् ॥ २४ ॥ यत्र यत्र महत्तीर्थं तत्र तत्र गता द्विजाः ॥ उद्वसं तत्पुरं जातं तस्मिन्काले नृपोत्तम ॥ २५ ॥ न वेदा ध्ययनं तत्र न च यज्ञः प्रवर्तते ॥ मनुजास्तत्र तिष्ठन्ति न कर्णाटभयार्दिताः ॥ २६ ॥ द्विजाः सर्वे ततो राजन्वणिज श्च महायशाः ॥ एकत्र मिलिताः सर्वे वक्तुं मन्त्रं यथोचितम् ॥ २७ ॥ कर्णाटस्य वधोपायं मन्त्रयन्ति द्विजर्षभाः ॥ विचार्यमाणे तैर्दैवाद्वाग्जाता चाशरीरिणी ॥ २८ ॥ आराधयत श्रीमातां सर्वदुःखापहारिणीम् ॥ सर्वदैत्यक्षयकरीं सर्वोपद्रवनाशनीम् ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे हर्षव्याकुललोचनाः ॥ श्रीमातां तु समागत्य गृहीत्वा बलिमुत्त मम् ॥ ३० ॥ मधु क्षीरं दधि घृतं शर्करा पञ्चधारया ॥ धूपं दीपं तथा चैव चन्दनं कुसुमानि च ॥ ३१ ॥ फलानि विवि धान्येव गृहीत्वा वाडवा नृप ॥ धान्यं तु विविधं राजन्भक्ष्यापूपा घृताचिताः ॥ ३२ ॥ कुल्माषा वटकाश्चैव पायसं घृतमिश्रितम् ॥ सोहालिका दीपिकाश्च सार्द्राश्च वटकास्तथा ॥ ३३ ॥ राजिकाभिश्च संलिप्ता नवच्छिद्रसमन्विताः ॥

सुनकर सब ब्राह्मणलोग हर्ष से विकल नयनोंवाले हुए और श्रीमाता के समीप जाकर व उत्तम बलि को लेकर ॥ ३० ॥ शहद, दूध, दधि, घी, शक्कर इस पंच- धारा समेत व धूप, दीप, चन्दन और पुष्पों को लेकर ॥ ३१ ॥ व हे राजन् ! अनेक प्रकार के फलों को लेकर ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार का अन्न व घृत से पूर्ण भात व पुवा ॥ ३२ ॥ और कुल्माष (खिचड़ी), बरा व घी से मिली हुई खीर, सोहारी, दीपिका और भीगे बरा ॥ ३३ ॥ जोकि राई से संलिप्त व नव छिद्रों से संयुत तथा

चंद्रबिम्बके समान गोल वहां बनायेगये थे ॥ ३४ ॥ पंचामृत व सुगंधित जलसे नहवाकर उन ब्राह्मणोंने धूप, दीप व नैवेद्यों से भगवती को प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ हे राजन्! कपूर समेत नीराजन पुष्प, दीप व उत्तम चंदनों से सब उपद्रवों को नाशनेवाली श्रीमाता प्रसन्न कराई गई ॥ ३६ ॥ संसार की माता वे सौम्य और वरदायिनी ब्राह्मी श्रीमाता तीन रूपों को धरकर त्रिलोक को पालन करती हैं ॥ ३७ ॥ व हे धर्मात्मन्! त्रयीरूप से वे भगवतीजी सत्यमंदिर की रक्षा करती हैं जितेन्द्रिय व चित्त को जीते हुए जो द्विजोत्तम लोग इकट्ठा हुए ॥ ३८ ॥ उन सबोंने माता को पूजन किया व चंदनादिक से प्रसन्न किया और उन्होंने ब्रह्मकन्या के आगे स्थित होकर

चन्द्रबिम्बप्रतीकाशा मण्डकास्तत्र कल्पिताः ॥ ३४ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा गन्धोदकेन च ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यै स्तोषयामासुरीश्वरीम् ॥ ३५ ॥ नीराजनैः सकर्पूरैः पुष्पैर्दीपैः सुचन्दनैः ॥ श्रीमाता तोषिता राजन्सर्वोपद्रवनाशनी ॥ ३६ ॥ श्रीमाता च जगन्माता ब्राह्मी सौम्या वरप्रदा॥ रूपत्रयं समास्थाय पालयेत्सा जगत्त्रयम् ॥ ३७ ॥ त्रयीरूपेण धर्मात्मन्रक्षते सत्यमन्दिरम् ॥ जितेन्द्रिया जितात्मानो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ ३८ ॥ तैः सर्वैरर्चिता माता चन्दनाद्येन तोषिता ॥ स्तुतिमारेभिरे तत्र वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ एकचित्तेन भावेन ब्रह्मपुत्र्याः पुरः स्थिताः॥३९॥ विप्रा ऊचुः ॥ नमस्ते ब्रह्मपुत्र्यास्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणि॥ नमस्ते जगतां मातर्नमस्ते सर्वगे सदा ॥ ४० ॥ क्षुन्निद्रा त्वं तृषा त्वं च क्रोधतन्द्रादयस्तथा ॥ त्वं शान्तिस्त्वं रतिश्चैव त्वं जया विजया तथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यै स्त्वं प्रपन्ना सुरेश्वरि ॥ सावित्री श्रीरुमा चैव त्वं च माता व्यवस्थिता ॥ ४२ ॥ ब्रह्मविष्णुसुरेशानास्त्वदाधारे

भक्ति से सावधान चित्त करके वचन, मन, शरीर व कर्म से स्तुति करनेका प्रारंभ किया ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि आप ब्रह्मकन्या को प्रणाम है व हे ब्रह्मचारिणि! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे लोकों की माता! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे सर्वगे! तुम्हारे लिये सदैव नमस्कार है ॥ ४० ॥ क्षुधा व निद्रा तुम्हींहो और तृषा (प्यास) तुम्हीं हो व क्रोध और आलस्यादिक तुम्हीं हो और तुम शांति हो व तुम्हीं रति हो और जया व विजया तुम्हीं हो ॥ ४१ ॥ हे सुरेश्वरि! ब्रह्मा, विष्णु व महेशादिक तुम्हारी शरण में प्राप्त होते हैं और सावित्री, लक्ष्मी, उमा तुम्हीं हो व माता तुम्हीं हो ॥ ४२ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्र तुम्हारे ही आधार में स्थित हैं हे धृति, पुष्टि-

स्वरूपिणि, जगन्मातः ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ हे ज्योतिःस्वरूपिणि ! रति, क्रोधा, महामाया व छाया तुम्हीं हो व हे देवि ! सदैव कार्य व कारण को देने
वाली तुम सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली हो ॥ ४४ ॥ हे महाविद्ये, महाज्ञानमये, अनघे ! पृथ्वी, अग्नि, पवन, जल व आकाश तुम्हीं हो तुम्हारे लिये प्रणाम
है ॥ ४५ ॥ हे महाद्युते ! देवरूपिणी ह्रींकारी तुम्हीं हो व क्लींकारी तुम्हीं हो और आदि, मध्य व अन्तवाली तुम्हीं हो हम सबों की इस महाभयसे रक्षा करिये ॥ ४६ ॥
यह महापापी दुष्टात्मा दैत्य इस समय बाधा करता है रक्षारूपिणी तुम एकही हमलोगों की कुलदेवता हो ॥ ४७ ॥ हे महादेवि ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे महे-

ठ्यवस्थिताः ॥ नमस्तुभ्यं जगन्मातर्धृतिपुष्टिस्वरूपिणि ॥ ४३ ॥ रतिः क्रोधा महामाया छाया ज्योतिःस्वरूपिणि ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकृद्देवि कार्यकारणदा सदा ॥ ४४ ॥ धरा तेजस्तथा वायुः सलिलाकाशमेव च ॥ नमस्तेऽस्तु महाविद्ये
महाज्ञानमयेऽनघे ॥ ४५ ॥ ह्रीङ्कारी देवरूपा त्वं क्लीङ्कारी त्वं महाद्युते ॥ आदिमध्यावसाना त्वं त्राहि चास्मान्महा
भयात् ॥ ४६ ॥ महापापो हि दुष्टात्मा दैत्योऽयं बाधतेऽधुना ॥ त्राणरूपा त्वमेका च अस्माकं कुलदेवता ॥ ४७ ॥
त्राहि त्राहि महादेवि रक्ष रक्ष महेश्वरि ॥ हन हन दानवं दुष्टं द्विजानां विघ्नकारकम् ॥ ४८ ॥ एवं स्तुता तदा देवी
महामाया द्विजन्मभिः ॥ कर्णाटस्य वधार्थाय द्विजातीनांहिताय च ॥ प्रत्यक्षा साऽभवत्तत्र वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४९ ॥
श्रीमातोवाच ॥ केन वै त्रासिता विप्राः केन वोद्वेजिताः पुनः ॥ तस्याहं कुपिता विप्रा नयिष्ये यमसादनम् ॥ ५० ॥
क्षीणायुषं नरं वित्त येन यूयं निपीडिताः ॥ ददामि वो द्विजातिभ्यो यथेष्टं वक्तुमर्हथ ॥ ५१ ॥ भक्त्या हि भवतां

श्वरि ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ब्राह्मणों का विघ्न करनेवाले दुष्ट दानव को मारिये मारिये ॥ ४८ ॥ उस समय ब्राह्मणों से इस प्रकार स्तुति कीहुई महामाया
देवी कर्णाट के वध के लिये व ब्राह्मणों के हित के लिये वहां प्रत्यक्ष हुई और वरदान मांगिये यह बोली ॥ ४९ ॥ श्रीमाता बोली कि हे ब्राह्मणो ! किससे तुम भीत हुए
हो व किसने तुम लोगों को दुःख दिया है हे ब्राह्मणो ! क्रोधित होकर मैं उसको यममन्दिर को पठाऊं ॥ ५० ॥ जिसने तुमलोगों को पीडित किया है उस मनुष्य
को क्षीण आयुर्बलवाला जानिये मैं आप तुमलोगों ब्राह्मणों को उसको दूंगी जैसा प्रिय हो वैसा वर मांगिये ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! आपलोगों की भक्ति से मैं उसको

करूंगी इस में सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि कर्णाट नामक महारौद्र दानव अहंकार से गर्वित है और वह सत्यमंदिर में बसनेवाले लोगों का सदैव विघ्न करता है ॥ ५३ ॥ हे महामते ! वह द्वेषी दैत्य सत्यशील व वेदपाठ में परायण ब्राह्मणों से सदैव द्वेष से वैर करता है और वेदों से वैर करनेवाला व दुष्ट है हे महाद्युते ! इसको मारिये ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर वह कुलदेवता देवी हँसकर भक्तों की रक्षा के लिये इसके मारने का उपाय विचार कर ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! श्रीमाता क्रोध से संयुत हुई और क्रोध से भौंह को लाल नेत्रांतभागवाले लोचनोंवाली करके ॥ ५६ ॥ बड़े क्रोध से संयुत हुई

विप्राः करिष्ये नात्र संशयः ॥ ५२ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ कर्णाटाख्यो महारौद्रो दानवो मदगर्वितः ॥ विघ्नं प्रकुरुते नित्यं सत्यमन्दिरवासिनाम् ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणान्सत्यशीलांश्च वेदाध्ययनतत्परान् ॥ द्वेषाद्द्वेष्टि द्वेषणस्तान्नित्यमेव महामते ॥ वेदविद्वेषणो दुष्टो घातयैनं महाद्युते ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा तु सा देवी प्रहस्य कुलदेवता ॥ वधोपायं विचिन्त्यास्य भक्तानां रक्षणाय वै ॥ ५५ ॥ ततः कोपपरा जाता श्रीमाता नृपसत्तम ॥ कोपेन भृकुटीं कृत्वा रक्तनेत्रान्तलोचनाम् ॥ ५६ ॥ कोपेन महताऽऽविष्टा वमन्ती पावकं तथा ॥ महाज्वाला मुखान्नेत्रान्नासाकर्णाच्च भारत ॥ ५७ ॥ तत्तेजसा समुद्भूता मातङ्गी कामरूपिणी ॥ काली करालवदना दुर्दर्शवदनोज्ज्वला ॥ ५८ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरा मदाघूर्णितलोचना ॥ न्यग्रोधस्य समीपे सा श्रीमाता संश्रिता तदा ॥ ५९ ॥ अष्टादशभुजा सा तु शुभा माता सुशोभना ॥ धनुर्बाणधरा देवी खड्गखेटकधारिणी ॥ ६० ॥ कुठारं क्षुरिकां बिभ्रत्त्रिशूलं पानपात्रकम् ॥ गदां

व अग्नि को मुख से उगिलने लगी व हे भारत ! मुख से नेत्र से व नासिका और कर्ण से महाज्वलित हुई ॥ ५७ ॥ उसके तेज से कामरूपिणी मातंगी उत्पन्न हुई जो कि काली व करालमुखी और दुःख से देखने योग्य मुख से उज्ज्वल थी ॥ ५८ ॥ और लाल माला व वसनों को धारण किये तथा मद से घूर्णित नेत्रोंवाली थी उस समय वह श्रीमाता बरगद के समीप स्थित हुई ॥ ५९ ॥ और अठारह भुजाओंवाली वह अति उत्तम माता धनुष बाण को धारनेवाली व तलवार तथा खेटक अस्त्र को धारनेवाली थी ॥ ६० ॥ और वह कुठार, छुरी, त्रिशूल व मदिरा पीनेके पात्रको लिये थी और गदा, सर्प, परिघ, धनुष व फँसरी को धारण किये

थी ॥ ६१ ॥ व हे राजन्! रुद्राक्ष की माला को धारनेवाली वह मदिरा के घट को लिये थी और शक्ति व उग्र मुशल तथा कर्तरी व खप्पर को लिये थी ॥ ६२ ॥ और काटोंसे संयुत बदरी को वह बड़ेभारी मुखवाली देवी लिये थी हे नृपोत्तम! वहां कर्णाट दानव के साथ मातंगी का रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ा युद्ध हुआ ॥६३।६४॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मारिष, धर्मज्ञ! कैसे युद्ध हुआ है व कैसे निवृत्त हुआ और किसने जीता है उसको मुझ से कहिये ॥ ६५ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेंद्र! दैत्य के युद्धमें एक समय जो हुआ है उसको सुनिये मैं उस सब को शीघ्रही कहता हूं कि जिस प्रकार पहले हुआ है ॥ ६६ ॥ हे नृपोत्तम! जिन ब्राह्मणों व वणिजों की स्त्रियां

सर्पं च परिघं पिनाकं चैव पाशकम् ॥ ६१ ॥ अक्षमालाधरा राजन्मद्यकुम्भानुधारिणी ॥ शक्तिं च मुशलं चोग्रं कर्तरीं खर्परं तथा ॥ ६२ ॥ कण्टकाढ्यां च बदरीं बिभ्रती तु महानना ॥ तत्राभवन्महायुद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६३ ॥ मातङ्ग्याः सह कर्णाटदानवेन नृपोत्तम ॥ ६४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं युद्धं समभवत्कथं चैवापवर्तत ॥ जितं केनैव धर्मज्ञ तन्ममाचक्ष्व मारिष ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ एकदा शृणु राजेन्द्र यज्जातं दैत्यसङ्गरे ॥ तत्सर्वं कथयाम्याशु यथावृत्तं हि तत्पुरा ॥ ६६ ॥ प्रणष्टयोषा ये विप्रा वणिजश्चैव भारत ॥ चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ६७ ॥ गौरीमुद्वाहयामासुर्विप्रास्ते संशितव्रताः ॥ स्वस्थानं सुशुभं ज्ञात्वा तीर्थराजं तथोत्तमम् ॥ ६८ ॥ विवाहं तत्र कुर्वन्तो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ कोटिकन्याकुलं तत्र एकत्रासीन्महोत्सवे ॥ धर्मारण्ये महाप्राज्ञ सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६९ ॥ चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमादधुः ॥ आसनं ब्रह्मणे दत्त्वा अग्निं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ७० ॥

नष्ट होगई थीं चैत्र महीना प्राप्त होनेपर धर्मारण्य में ॥ ६७ ॥ उन तीक्ष्ण व्रतोंवाले ब्राह्मणों ने उत्तम तीर्थराज व अपने स्थान को शुभ जानकर गौरी कन्याका विवाह किया ॥ ६८ ॥ और हे महाप्राज्ञ! वहां विवाह करते हुए वे द्विजोत्तम मिले और उस बड़े भारी उत्सव में धर्मारण्य में करोड़ कन्याओं का गण इकट्ठा हुआ यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ६९ ॥ और अन्य रात्रि में चौथि को उन्होंने भीतर अग्न्याधान किया व ब्रह्मा के लिये आसन को देकर तथा अग्नि की प्रदक्षिणाकर ॥ ७० ॥

उस समय स्थालीपाक व चार हाथ की उत्तम वेदियों को करके कलश समेत व नागपाश से संयुत किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणलोग उत्तम वेदमंत्र से आमंत्रण करनेलगे व चलते हुए स्त्री पुरुषों को यथायोग्य बिठालकर ॥ ७२ ॥ वहां ब्रह्मा समेत वे ब्राह्मणलोग प्रसन्न हुए और ॐकार स्वर से शब्दायमान वेदध्वनि करने लगे ॥ ७३ ॥ व उस बड़े भारी शब्द से समस्त आकाश पूर्ण होगया और ब्राह्मणों से कही हुई उस वेदध्वनि को सुनकर भयंकर दानव ॥ ७४ ॥ सेना समेत वह निर्बुद्धि शीघ्रही आसन से ऊपर उछला और जो अन्य सब सेवक थे दौड़ते हुए उन से उसने कहा ॥ ७५ ॥ कि सुनिये यह ब्राह्मणों का शब्द कहां उत्पन्न हुआ है उस

स्थालीपाकं च कृत्वाथ कृत्वा वेदीः शुभास्तदा ॥ चतुर्हस्ताः सकलशा नागपाशसमन्विताः ॥ ७१ ॥ वेदमन्त्रेण शुभ्रेण मन्त्रयन्ते ततो द्विजाः ॥ चरतां दम्पतीनां हि परिवेश्य यथोचितम् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणा सहितास्तत्र वाडवास्ते सुहर्षिताः ॥ कुर्वते वेदनिर्घोषं तारस्वरनिनादितम् ॥ ७३ ॥ तेन शब्देन महता कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ तां श्रुत्वा दानवो घोरो वेदध्वनिं द्विजेरितम् ॥ ७४ ॥ उत्पपातासनात्तूर्णं ससैन्यो गतचेतनः ॥ धावतः सर्वभृत्यांस्तु ये चान्ये तानुवाच सः ॥ ७५ ॥ श्रूयतां कुत्र शब्दोऽयं वाडवानां समुत्थितः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैतेयाः सत्वरं ययुः ॥ ७६ ॥ विभ्रान्तचेतसः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः ॥ धर्मारण्ये गताः केचित्तत्र दृष्टा द्विजातयः ॥ ७७ ॥ उद्गिरन्तो हि निगमान्विवाहसमये नृप ॥ सर्वं निवेदयामासुः कर्णाटाय दुरात्मने ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा रक्तताम्राक्षो द्विजद्विट् कोपपूरितः ॥ अभ्यधावन्महाभाग यत्र ते दम्पती नृप ॥ ७९ ॥ खमाश्रित्य तदा दैत्यमायां कुर्वन्स राक्षसः ॥ अहरद्दम्पती राजन्स

के उस वचन को सुनकर दैत्यलोग शीघ्रही गये ॥ ७६ ॥ और भ्रमितचित्तवाले सब इधर उधर दौड़े कोई वहां धर्मारण्यमें गये और उन्होंने ब्राह्मणोंको देखा ॥ ७७ ॥ कि हे नृप ! विवाह के समय में ब्राह्मणलोग वेदों को उच्चारण करते हैं इस सब वृत्तान्त को उन्होंने कर्णाटक दुष्ट से कहा ॥ ७८ ॥ उसको सुनकर क्रोध से लाल लोचनोंवाला द्विजवैरी वह कर्णाटक क्रोध से पूर्ण होगया व हे नृप ! वहां दौड़ा जहां कि वे स्त्री पुरुष थे ॥ ७९ ॥ तब हे राजन् ! आकाश में स्थित होकर दैत्यों

की माया करता हुआ वह राक्षस सब अलंकारों से संयुत स्त्री, पुरुषों को हरता भया ॥ ८० ॥ तदनन्तर बुम्बा शब्द करतेहुए वे सब ब्राह्मण भुवनेश्वरीजी के समीप गये और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह बोले ॥ ८१ ॥ उसको सुनकर जगदम्बिका भुवनेश्वरी मातंगीजी उत्तम त्रिशूल को धारणकर सिंहनाद करतीहुई आईं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर देवी व कर्णाट का युद्ध वर्तमान हुआ और ऋषियों के देखते हुए व वणिजों तथा ब्राह्मणों के देखते हुए वहां ॥ ८३ ॥ रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ाभारी युद्ध हुआ और मातंगी ने मद से विह्वल शत्रुको अस्त्रोंसे भेदन किया ॥ ८४ ॥ तदनन्तर उस मातंगी ने एक बाण से उस दैत्य के भी वक्षस्थल में मारा और त्रिशूल से

र्वालङ्कारसंयुतान् ॥ ८० ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे सङ्गता भुवनेश्वरीम् ॥ बुम्बारवं प्रकुर्वाणास्त्राहि त्राहीति चोचिरे ॥ ८१ ॥ तच्छ्रुत्वा विश्वजननी मातङ्गी भुवनेश्वरी ॥ सिंहनादं प्रकुर्वाणा त्रिशूलवरधारिणी ॥ ८२ ॥ ततः प्रववृते युद्धं देवी कर्णाटयोस्तथा ॥ ऋषीणां पश्यतां तत्र वणिजां च द्विजन्मनाम् ॥ ८३ ॥ पश्यतामभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ अस्त्रैश्चिच्छेद मातङ्गी मदविह्वलितं रिपुम् ॥ ८४ ॥ सोऽपि दैत्यस्ततस्तस्या बाणेनैकेन वक्षसि ॥ असावपि त्रिशूलेन घाततिः कश्मलं गतः ॥ ८५ ॥ मुष्टिभिश्चैव तां देवीं सोऽपि ताडयतेऽसुरः ॥ सोऽपि देव्या ततः शीघ्रं नागपाशेन यन्त्रितः ॥ ८६ ॥ ततस्तेनैव दैत्येन गरुडास्त्रं समादधे ॥ तया नारायणास्त्रं तु सन्दधे शरपातनम् ॥ ८७ ॥ एवमन्योन्यमाकृष्य युध्यमानौ जयेच्छया ॥ ततः परिघमादाय आयसं दैत्यपुङ्गवः ॥ ८८ ॥ मातङ्गीं प्रति संक्रुद्धो जघान परवीरहा ॥ देवी क्रुद्धा मुष्टिपातैश्चूर्णयामास दानवम् ॥ ८९ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो निपपात ह ॥ ततस्तु सहसो

मारा हुआ यह भी दुःख को प्राप्त हुआ ॥ ८५ ॥ और वह भी दैत्य उस देवी को घूंसों से मारा तदनन्तर देवीजी ने शीघ्रही उसको नागपाश से बाँध लिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर उस दैत्य ने गरुडास्त्र को धारण किया और उसने बाणों को गिरानेवाले नारायणास्त्र को धारण किया ॥ ८७ ॥ इस प्रकार जीत की इच्छा से परस्पर खींच कर दोनों युद्ध करनेलगे तदनन्तर लोहे का परिघ अस्त्र लेकर वह श्रेष्ठ दानव ॥ ८८ ॥ जोकि वीर शत्रुवों का नाशक था उसने क्रोधित होकर मातंगी को मारा और क्रोधित होती हुई देवीजी ने घूंसों से दानव को मारा ॥ ८९ ॥ और उस घूंसे के मारने से वह मूर्च्छित होकर गिरपड़ा तदनन्तर यकायक उठकर हर्ष से हाथ में शक्ति को

लेकर ॥ ६० ॥ दानव ने उस देवीके ऊपर शतघ्नी (बंदूक़) को चलाया और उत्तम मुखवाली उस मातंगी देवी ने शक्ति को काटडाला ॥ ६१ ॥ और वह उत्तम भौंहोंवाली देवी शतघ्नी को हँसनेलगी इस प्रकार परस्पर शस्त्रसमूहों से अन्योन्य विकल करनेलगे ॥ ६२ ॥ तदनन्तर त्रिशूल से हृदय में मारा हुआ दैत्य गिरपड़ा और यह दैत्य मूर्च्छा को छोड़कर व राक्षसी माया को करके ॥ ६३ ॥ उनके देखते हुए वह महासुर वहां अन्तर्द्धान होगया तदनन्तर अरुण लोचनोंवाली देवी ने मद्य पान किया व हास्य किया ॥ ६४ ॥ व चराचर समेत त्रिलोक में सब कहीं जानेवाले उससे ॥ ६५ ॥ वह देवी कहनेलगी कि कहां जावोगे यह तुम मुझसे कहो हे महा-

स्थाय शक्तिं धृत्वा करे मुदा ॥ ६० ॥ शतघ्नीं पातयामास तस्या उपरि दानवः ॥ शक्तिं चिच्छेद सा देवी मातङ्गी च शुभानना ॥ ६१ ॥ जहासोच्चैस्तु सा सुभ्रूः शतघ्नीं वज्रसन्निभाम् ॥ एवमन्योन्यशस्त्रौघैरर्दयन्तौ परस्परम् ॥ ६२ ॥ ततस्त्रिशूलेन हतो हृदये निपपात ह ॥ मूर्च्छां विहाय दैत्योऽसौ मायां कृत्वा च राक्षसीम् ॥ ६३ ॥ पश्यतां तत्र तेषां तु अदृश्योऽभून्महासुरः ॥ पपौ पानं ततो देवी जहासारुणलोचना ॥ ६४ ॥ सर्वत्रगं तं सा देवी त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ६५ ॥ क्व यास्यसीति ब्रूते सा ब्रूहि त्वं साम्प्रतं हि मे ॥ कर्णाटक महादुष्ट एहि शीघ्रं हि युध्यताम् ॥ ६६ ॥ ततोऽभवन्महायुद्धं दारुणं च भयानकम् ॥ पपौ देवी तु मैरेयं वधार्थं सुमहाबला ॥ ६७ ॥ मातङ्गी च ततः क्रुद्धा वक्त्रे चिक्षेप दानवम् ॥ ततोऽपि दानवो रौद्रो नासारन्ध्रेण निर्गतः ॥ ६८ ॥ युध्यते स पुनर्दैत्यः कर्णाटो मदपूरितः ॥ ततो देवी प्रकुपिता मातङ्गी मदपूरिता ॥ ६९ ॥ दशनैर्मथयित्वा च चर्वयित्वा पुनः पुनः ॥ शवास्थि मेदसा युक्तं

दुष्ट, कर्णाटक ! शीघ्रही आइये युद्ध कीजिये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर दारुण व भयानक बड़ाभारी युद्ध हुआ और बड़ी बलवती देवी ने उसके मारने के लिये मदिरा को पान किया ॥ ६७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होती हुई मातंगी ने दानवको मुखमें डाललिया उसके उपरान्त भयंकर दानव नासिका के छिद्र से निकला ॥ ६८ ॥ फिर मद से पूरित वह कर्णाटक दैत्य युद्ध करनेलगा तदनन्तर मद से पूरित क्रोधित मातंगी देवी ॥ ६९ ॥ दांतों से पीसकर व बार २ चर्वणकर अस्थि व मेदा से संयुत तथा

मज्जा व मांसादिसे पूरित ॥ १०० ॥ और नखों व रोमोंसे संयुत दैत्यको पेट में डालकर एक हाथ से मुख को आच्छादन किया व एक हाथ से नासिका को आच्छादन किया ॥ १ ॥ तदनन्तर बड़ा बलवान् दैत्य कान के छिद्र से निकला तदनन्तर उस महादेवी ने उस समय पृथ्वी में वह नाम किया ॥ २ ॥ कि कान के छिद्र से यह पैदा हुआ है इसलिये विद्वान् उसको कर्णाटक ऐसा कहते हैं फिर बल से गर्वित दैत्य युद्ध के लिये आया ॥ ३ ॥ और गर्जता हुआ अस्त्र समेत दानव युद्ध में स्थित हुआ उस दुस्सह दैत्य को देखकर व बार २ विचारकर ॥ ४ ॥ हे भारत ! मातंगी ने वध का उपाय विचार किया जब मदसे पूरित मातंगी देवी विचारनेलगी ॥ ५ ॥

मज्जामांसादिपूरितम् ॥ १०० ॥ नखरोमाभिसंयुक्तं प्रक्षिप्य चोदरेऽसुरम् ॥ करैकेण मुखं रुद्धं करेणैकेन नासिकाम् ॥ १ ॥ ततो महाबलो दैत्यः कर्णरन्ध्रेण निर्गतः ॥ ततस्तया महादेव्या नाम चक्रे तदा भुवि ॥ २ ॥ कर्णरन्ध्रप्रसूतोऽयं कर्णाटेति विदुर्बुधाः ॥ पुनर्युद्धार्थमायातो दैत्यो हि बलदर्पितः ॥ ३ ॥ गर्जमानोऽसुरस्तत्र सायुधो युधि संस्थितः ॥ तं दृष्ट्वा दुःसहं दैत्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ वधोपायं हि मातङ्गी चिन्तयामास भारत ॥ यदा चिन्तयते देवी मातङ्गी मदपूरिता ॥ ५ ॥ मायारूपं समास्थाय कर्णाटः कुसुमायुधः ॥ गौरश्चाम्बुजपत्राक्षस्तथा षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥ अभ्येत्य देवीं ब्रूते स्म मां त्वं वरय शोभने ॥ ७ ॥ श्रीमातोवाच ॥ साधु चेदं त्वया प्रोक्तं दैत्यराज सुनिश्चितम् ॥ रूपेण सदृशो नान्यो विद्यते भुवनत्रये ॥ ८ ॥ प्रतिज्ञा मे कृता पूर्वं श्रुता किमसुरोत्तम ॥ ममानुजा शुभा श्यामा विवाहे विघ्नकारिणी ॥ ९ ॥ पित्रा मे स्थापिता दैत्य रक्षार्थं हि द्विजन्मनाम् ॥ केवलं श्यामलाङ्गी

तब मायारूपमें स्थित होकर कामदेव के समान व गौर और कमल के समान नेत्रोंवाला तथा सोलहवर्षवाला कर्णाटक ॥ ६ ॥ देवीजी के समीप आकर कहनेलगा कि हे शोभने ! तुम मुझ को पति करो ॥ ७ ॥ श्रीमाता बोलीं कि हे दैत्यराज ! तुमने यह अच्छा निश्चित कहा त्रिलोक में अन्य तुम्हारे रूप के समान नहीं है ॥ ८ ॥ हे असुरोत्तम ! पहले मुझसे कीहुई प्रतिज्ञा को क्या तुम ने सुना है कि मेरी श्यामला छोटी बहन विवाह में विघ्न करनेवाली है ॥ ९ ॥ व हे दैत्य ! मेरे पिताने ब्राह्मणों

की रक्षा के लिये उसको स्थापन किया है केवल श्यामांगी वह सब लोकों का हित करनेवाली है ॥ १० ॥ कोई कन्या को नहीं ब्याहै यह कहकर वह स्थापित कीगई है इससे शीघ्रही कहिये तो तुम्हारा उत्तम उपाय सुनकर मैं करूं ॥ ११ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मेरी श्यामला बहन कुँवारी है व हे शूर ! तुम्हारे लिये वह रक्षितहै पहले उसको ब्याहिये ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह पिता उस उत्तम कन्या को तुमको देवैगा तुम जावो और क्रोध से संयुत श्यामला को ब्याहो ॥ १३ ॥ तदनन्तर क्रोधित होता हुआ दुष्टात्मा कर्णाटक बड़ी भारी शक्ति को लेकर श्यामला को मारने की इच्छा से दौड़ा ॥ १४ ॥ और आये हुए दैत्य को देखकर बड़ी मनस्विनी श्यामला दुष्ट चित्त

सा सर्वलोकहितावहा ॥ १० ॥ न कश्चिद्वरयेत्कन्यामित्युक्त्वा स्थापिता तु सा ॥ कथयाशु तव शुभं श्रुत्वोपायं करोम्यहम् ॥ ११ ॥ भगिनी मेऽस्ति दैत्येन्द्र श्यामला ह्यपरिग्रहा ॥ तवार्थं रक्षिता शूर तां च पूर्वेण चोद्वह ॥ १२ ॥ स पिता तां महावीर दास्यते वै शुभामिमाम् ॥ गच्छ त्वं व्रियतां ह्येव श्यामला कोपसंयुता ॥ १३ ॥ ततः कर्णाटकः क्रुद्धो गृहीत्वा शक्तिमूर्जिताम् ॥ अभ्यधावत दुष्टात्मा श्यामलानिधनेच्छया ॥ १४ ॥ आगतं चासुरं दृष्ट्वा श्यामला सुमहामनाः ॥ विवाहार्थं परं ज्ञात्वाऽभिप्रायं दुष्टचेतसः ॥ १५ ॥ महायुद्धमभूत्तत्र श्यामलाऽसुरवर्ययोः ॥ मासत्रयं ततो राजंश्चाभवत्तुमुलं क्षितौ ॥ १६ ॥ माघे कृष्णतृतीयायां धर्मारण्ये महारणे ॥ मध्याह्नसमये भूप कर्णाटाख्यो निपातितः ॥ १७ ॥ कर्णाटः पतितस्तत्र यत्र देव्या निपातितः ॥ तच्छैलशृङ्गप्रतिमं पपात शिर उत्तमम् ॥ १८ ॥ चचाल सकला पृथ्वी साब्धिद्वीपा सपर्वता ॥ ततो विप्राः प्रहृष्टास्ते जय मातरुदैरयन् ॥ १९ ॥ जगुर्ग

वाले दैत्य का विवाह के लिये अधिक प्रयोजन जानकर ॥ १५ ॥ श्यामला व श्रेष्ठ दानव का बड़ाभारी युद्ध हुआ तदनन्तर हे राजन् ! पृथ्वी में तीन महीने तक लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ हे भूप ! माघ में कृष्णपक्ष की तीज में धर्मारण्य में दुपहर के समय कर्णाट नामक दैत्य महायुद्ध में मारा गया ॥ १७ ॥ जहां देवी जी से गिराया हुआ वह कर्णाटक गिरा वहां वह पर्वत के शिखर के समान उत्तम शिर गिरपड़ा ॥ १८ ॥ और समुद्रों व द्वीपों समेत तथा पर्वतों समेत सब पृथ्वी कांप उठी तदनन्तर प्रसन्न होतेहुए उन ब्राह्मणोंने यह कहा कि हे मातः ! तुम्हारी जय हो ॥ १९ ॥ और गंधर्वों के स्वामी गानेलगे व अप्सराओंके गण नाचनेलगे तदनन्तर कल्याण-

दायक गीत व नृत्य और उत्सव करनेलगे ॥ २० ॥ व खीर, बरा और लड्डुवों की नैवेद्यों से पूजन किया व उत्तम मोटेरक स्थान में उन्होंने उत्तम वाणी से स्तुति किया ॥ २१ ॥ क्योंकि पूजी हुई वे मातंगी सुत, सुख व धन को देती हैं और महोत्सव प्राप्त होनेपर मातंगी का पूजन हित है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य उसको थाप कर धन व पुत्रार्थ की सिद्धि के लिये पूजते हैं वे सुख, यश, आयुर्बल व कीर्ति और पुण्य को पाते हैं ॥ २३ ॥ और रोग नाश होजाते हैं व सूर्यादिक ग्रह शुभ होते हैं और भूत, वेताल, शाकिनी व जंभादिक ग्रह पीडित नहीं करते हैं ॥ २४ ॥ और कभी प्रेतादिकों की पीड़ा नहीं होती है तदनन्तर प्रसन्न होते हुए ब्राह्मण स्तुति करने के

न्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ततोत्सवं प्रकुर्वन्तो गीतं नृत्यं शुभप्रदम् ॥ २० ॥ पायसैर्वटकैश्चैव नैवेद्यैर्मोदकै स्तथा ॥ तुष्टुवुः शुभवाण्या ते स्थाने मोटेरके वरे ॥ २१ ॥ श्रीमती पूजिता सा च सुतसौख्यधनप्रदा ॥ महोत्सवे च सम्प्राप्ते मातङ्गीपूजनं हितम् ॥ २२ ॥ येऽर्चयन्ति स्थापयित्वा धनपुत्रार्थसिद्धये ॥ सुखं कीर्तिं तथायुष्यं यशः पुण्यं समाप्नुयुः ॥ २३ ॥ व्याधयो नाशमायान्ति चादित्याद्या ग्रहाः शुभाः ॥ भूतवेतालशाकिन्यो जम्भाद्याः पीड यन्ति न ॥ २४ ॥ न जायते तथा क्वापि प्रेतादीनां प्रपीडनम् ॥ ततो विप्राः प्रहृष्टाश्च स्तुतिं कर्तुं समुद्यताः ॥ २५ ॥ श्रीमातां चैव शक्तीश्च मातङ्गीमस्तुवंस्तदा ॥ श्यामलां च महादेवीं हर्षेण महता युताः ॥ २६ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ मात स्त्वमेवमस्माकं रक्षिका स्थानके भव ॥ दम्पतीनां हितार्थाय स्थातव्यं स्थानके सदा ॥ २७ ॥ मातङ्ग्युवाच ॥ तुष्टा हं वो महाभागाः स्तवेनानेन वो द्विजाः ॥ वरयध्वं वरं यद्वो मनसा समभीप्सितम् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ दा

लिये उद्यत हुए ॥ २५ ॥ तब श्रीमाता और शक्तियों की व मातंगी की स्तुति किया और बड़े हर्ष से संयुत उन्होंने श्यामला महादेवी की स्तुति किया ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे मातः ! इस स्थान में स्त्री पुरुषों के हित के लिये तुम्हीं हमलोगों की रक्षिका होवो और सदैव तुम को इस स्थानमें स्थित होना चाहिये ॥ २७ ॥ मातंगी बोली कि हे महाभागो ! इस स्तोत्र से मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हूं जो मन से तुमलोगोंको प्रियहो उस वरको मांगिये ॥ २८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे देवि ! तुम्हारे

मन में जो वर्तमान है उस बलि को हम देवैंगे और हमलोगों की स्त्री पुरुषों की रक्षा के लिये स्थिर होवो ॥ २९ ॥ देवीजी बोलीं कि सब ब्राह्मण स्वस्थ होवैं क्योंकि मेरे स्थित होनेपर पीड़ा न होगी और दुर्धर्ष दैत्य व जो अन्य राक्षस हैं ॥ ३० ॥ व शाकिनी, भूत, प्रेत व जंभादिक ग्रह और शाकिनी आदिक ग्रह व सर्प और व्याघ्रादिक ॥ ३१ ॥ मेरी आज्ञामें स्थित मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं करैंगे और विवाह प्राप्त होनेपर जो महोत्सव करता है ॥ ३२ ॥ व स्त्री पुरुषोंके हितके लिये जो मनुष्य सदैव मुझको पूजता है उसकी सब पीड़ाको मैं निस्सन्देह नाश करती हूं ॥ ३३ ॥ और मानसी व्यथा व रोग और क्लेश व संभ्रम नहीं होता है और बहुत सुख, यश,

स्यामहे बलिं देवि यस्ते मनसि वर्तते ॥ अस्माकं चैव दम्पत्यो रक्षार्थं त्वं स्थिरा भव ॥ २९ ॥ देव्युवाच ॥ स्वस्थाः सन्तु द्विजाः सर्वे न च पीडा भविष्यति ॥ मयि स्थितायां दुर्धर्षा दैत्या येऽन्ये च राक्षसाः ॥ ३० ॥ शाकिनीभूतप्रेताश्च जम्भाद्याश्च ग्रहास्तथा ॥ शाकिन्यादिग्रहाश्चैव सर्पा व्याघ्रादयस्तथा ॥ ३१ ॥ पीडयिष्यन्ति न क्कापि स्थितानां मम शासने ॥ महोत्सवं यः कुरुते विवाहे समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ दम्पत्योश्च हितार्थं हि पूजयेन्मां सदा नरः ॥ तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ ३३ ॥ नाधयो व्याधयश्चैव न क्लेशो न च सम्भ्रमः ॥ प्राप्यते परमं सौख्यं यशः पुण्यं धनं सदा ॥ नाकाले मरणं तस्य वातपित्तादिकं न हि ॥ ३४ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ केन वा विधिना पूजा नैवेद्यं कीदृशं भवेत् ॥ धूपं च कीदृशं मातः कथं पूजां प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ श्रूयतां मे वचो विप्राः पत्रे चैव हिरण्मये ॥ लिखित्वा पूजयेद्यस्तु चिरायुर्दम्पती भवेत् ॥ ३६ ॥ अथवा राजते पत्रे कांसपत्रेऽथवा पुनः ॥

पुण्य व धन सदैव मिलता है व उसका अकाल में मरण नहीं होता है और वात, पित्तादिक नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोले कि किस विधिसे पूजन करना चाहिये व कैसी नैवेद्य होवै व हे मातः ! कैसी धूप होवै और कैसी पूजा करै ॥ ३५ ॥ श्रीदेवी बोलीं कि हे ब्राह्मणो ! मेरा वचन सुनिये कि सोनेके पत्रमें लिखकर जो मनुष्य पूजन करता है उसके स्त्री पुरुष बड़े आयुर्बलवान् होते हैं ॥ ३६ ॥ अथवा चांदी के पत्र में व कांस के पत्र में लिखकर अठारह भुजाओंवाली देवी चंदन से पूजित

होती है ॥ ३७ ॥ और हाथों से सूप, बाण, कुत्ता व उत्तम कमल और एक कैंची को बनावै व तरकस और धनुष ॥ ३८ ॥ व ढाल, पाश, मुद्गर, कांसाल, तोमर, शंख, चक्र व उत्तम गदा और मुशल व उत्तम परिघ ॥ ३९ ॥ और खट्वांग, बदरी व सुन्दर अंकुश इन अठारह अस्त्रों से भुवनेश्वरी संयुत हैं ॥ ४० ॥ बहुत नूपुरों से भूषित व कुंडल समेत और बजुल्ला व मोती के कमलोंसे तथा मुंडमालाओं से संयुत देवी को लिखै ॥ ४१ ॥ और मातृका के अक्षरों से घिरी व अंगूठी से संयुत तथा अनेक भांति के आभूषणों की शोभा से संयुत मातंगी ऐसी प्रसिद्ध भुवनेश्वरीजी को प्रतिष्ठा के लिये लिखकर सुन्दर चन्दन व पुष्पों से पूजै ॥ ४२ । ४३ ॥ और यक्ष-

अष्टादशभुजा देवी चन्दनेन विचर्चिता ॥ ३७ ॥ शूर्पं शरं करैः श्वानं पद्मं तु परमं पुनः ॥ कर्त्तरीं कारयेदेकां तूणीरं च धनूंषि च ॥ ३८ ॥ चर्म पाशं मुद्गरं च कांसालं तोमरं तथा ॥ शङ्खं चक्रं गदां शुभ्रां मुशलं परिघं शुभम् ॥ ३९ ॥ खट्वाङ्गं बदरीं चैव अङ्कुशं च मनोरमम् ॥ अष्टादशायुधैरेभिः संयुता भुवनेश्वरी ॥ ४० ॥ लिखेत्सकुण्डलां देवीं बहुनूपुरभूषिताम् ॥ केयूरमुक्तापद्मैश्च मुण्डमालाभिरन्विताम् ॥ ४१ ॥ मातृकाक्षरपरिवृतामङ्गुलीयकसंयुताम् ॥ नानाभरणशोभाढ्यां लिखित्वा भुवनेश्वरीम् ॥ ४२ ॥ मातङ्गीमिति विख्यातां प्रतिष्ठार्थं द्विजोत्तमाः ॥ चन्दनेन च हृद्येन पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत् ॥ ४३ ॥ यक्षकर्दममानीय मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ घृतेन बोधयेद्दीपं सप्तवर्तियुतं शुभम् ॥ ४४ ॥ धूपयेद्गुग्गुलेनाथ साज्येनाति सुगन्धिना ॥ नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घं च दम्पती ॥ ४५ ॥ प्रदक्षिणाः प्रकुर्वीत चतुरः सुमनोरमम् ॥ वस्त्रांशुकं गुण्ठयित्वा अग्रे कृत्वा च दम्पती ॥ ४६ ॥ प्रोक्षणीकृत्य मातङ्ग्याः प्राश्य माध्वीकमुत्तमम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ ४७ ॥ सुवासिनीस्तु तद्रूपा मातङ्गीसम्भवा इति ॥ नृत्य

कर्दम को लाकर विद्वान् मातंगी को पूजै और सात बत्तियों से संयुत उत्तम दीप को घृत से संयुत करै ॥ ४४ ॥ व घी समेत बड़े सुगंधित गुग्गुल से धूप देवै और स्त्री पुरुष उत्तम नारियल से अर्घ को देवैं ॥ ४५ ॥ और चार सुन्दर प्रदक्षिणा करै व वस्त्र को पहनाकर स्त्री पुरुष आगे करके ॥ ४६ ॥ छिड़क कर मातंगी जी के उत्तम मदिरा को पीकर विद्वान् गाने, बजाने के शब्दों से मातंगीको पूजै ॥ ४७ ॥ और सौभाग्यवती स्त्रियां उसी रूपवाली व मातंगी से उत्पन्न होती हैं इस कारण स्त्री पुरुष

सब उपद्रवों की शांति के लिये उनके आगे नृत्य करै ॥ ४८ ॥ और अनेक भांति के अन्न से अठारह भांति की उत्तम नैवेद्य निवेदन करै उत्तम बरा व पुवा और शक्कर से संयुत दूध की नैवेद्य निवेदन करै ॥ ४६ ॥ और बल्लाकर, बरा, पुवा व क्षिप्तकुल्माष तथा सोहारी, भिन्नवटा, लप्सी और पद्मचूर्ण ॥ ५० ॥ और वहां निर्मल सेंवई और पापड़ व शालकादिक और उस मांस को सुन्दर पूर्ण करै ॥ ५१ ॥ व स्त्री पुरुष वहां भली भांति लोबिया को पकावै और वहां सुन्दर फेनी व रोपिका करै ॥ ५२ ॥ शाक समूहों से संयुत व घी, शक्करसे संयुत इन अन्य अठारह पकान्नों को बनावै ॥ ५३ ॥ व रात्रि में जागरण करना चाहिये और सुवासिनी (सौभाग्यवती) को पूजै और स्त्री

न्ती दम्पती चाग्रे सर्वोपद्रवशान्तये ॥ ४८ ॥ नैवेद्यं विविधान्नेन अष्टादशविधं शुभम् ॥ वटकापूपिकाः शुभ्राः क्षीरं शर्करया युतम् ॥ ४६ ॥ बल्लाकरं वरं पूपाः क्षिप्तकुल्माषकं तथा ॥ सोहालिका भिन्नवटा लाप्सिका पद्मचूर्णकम् ॥ ५० ॥ शैवेया विमलास्तत्र पर्पटाः शालकादयः ॥ पूरणं तस्य मांसस्य कुर्याच्छुभ्रं मनोरमम् ॥ ५१ ॥ राजमाषाः सूपचिताः कल्पयेत्तत्र दम्पती ॥ फेणिका रोपिकास्तत्र कुर्याच्चैव मनोरमाः ॥ ५२ ॥ एतान्यष्टादशान्यानि पक्वान्नानि प्रकल्पयेत् ॥ आज्यशर्करायुक्तानि युक्तानि शाकसञ्चयैः ॥ ५३ ॥ रात्रौ जागरणं कार्यं पूजयेच्च सुवासिनीम् ॥ मुखावलोकनं चाज्ये कुर्वीयातां च दम्पती ॥ ५४ ॥ परस्परं हि कुर्वीत उत्पातपरिशान्तये ॥ एवंविधं मयाख्यातं मातङ्गीपूजनं शुभम् ॥ ५५ ॥ न पूजयति यो मूढस्तस्य विघ्नं करोति सा ॥ दम्पत्योर्मरणं चाथ धननाशं महाभयम् ॥ ५६ ॥ क्लेशं रोगं तथा वह्नेः प्रादुर्भावं प्रपश्यति ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्रा मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ ५७ ॥ दम्पतीनां च सर्वेषां द्विजातीनां च शासने ॥ वणिजां च महादेवी निर्विघ्नं कुरुते सदा ॥ ५८ ॥ तथेति चैव तैरुक्ते पुनर्वचनमब्रवीत् ॥

पुरुष घी में मुख को देखैं ॥ ५४ ॥ उत्पात की शांति के लिये परस्पर ऐसा करै मैंने इस प्रकार का उत्तम मातंगीपूजन कहा ॥ ५५ ॥ और जो मूढ़ नहीं पूजता है उसका वह मातंगी विघ्न करती है व स्त्री पुरुषों का मरण व धन का नाश और महाभय होती है ॥ ५६ ॥ और क्लेश, रोग व अग्नि की प्रकटता को वह देखता है हे ब्राह्मणो ! इस कारण विद्वान् मातंगी को पूजै ॥ ५७ ॥ सब स्त्री पुरुषों व ब्राह्मणों तथा वणिजों के शासन में महादेवी सदैव निर्विघ्न करती हैं ॥ ५८ ॥ बहुत अच्छा

यह उनसे कहनेपर फिर वचन बोली कि हे सब ब्राह्मणो ! सुनिये कि विवाहादिक बड़े भारी उत्सव में ॥ ५९ ॥ मेरा वचन सुनकर वैसी विधि कीजिये कि विवाह समय प्राप्त होने पर स्त्री, पुरुषोंके सुखके लिये ॥ ६० ॥ निर्विघ्न के लिये अपने सेवकों समेत करना चाहिये कि सब संबन्धियों के नेत्रों में अंजन करै ॥ ६१ ॥ भौंहों के मध्य से अर्द्धचन्द्रमा के समान आकार करना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! उसके ऊपर सुन्दर बिन्दु करै ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा करने पर उस समय शांति होती है अन्यथा नहीं होती यह अर्द्धबिम्ब तिलक पुत्रों की वृद्धि करनेवाला है और सब विघ्नों को हरनेवाला व सब दुर्गति और रोगों का विनाशक है ॥ ६३ ॥ व्यासजी

श्रूयतां ब्राह्मणाः सर्वे विवाहादिमहोत्सवे ॥ ५९ ॥ मदीयवचनं श्रुत्वा तथा कुरुत वै विधिम् ॥ विवाहकाले सम्प्राप्ते दम्पत्योः सौख्यहेतवे ॥ ६० ॥ निर्विघ्नार्थं तु कर्तव्यं निजैश्च सह सेवकैः ॥ अञ्जनं नयने कुर्यात्संबन्धिनां च सर्वशः ॥६१॥ भ्रूमध्यात्तु प्रकर्त्तव्यमर्द्धचन्द्रसमाकृति ॥ बिन्दुं तु कारयेद्विप्रास्तस्योपरि मनोहरम् ॥ ६२ ॥ एवं कृते तदा विप्राः शान्तिर्भवति नान्यथा ॥ पुत्रवृद्धिकरं चैतत्तिलकं चार्द्धबिम्बकम् ॥ सर्वविघ्नहरं सर्वदौःस्थ्यव्याधिविनाशनम् ॥ ६३ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः शान्ताः प्रजाः सर्वा धर्मारण्ये नराधिप ॥ प्रसादाच्चैव मातङ्ग्या देव्या वै सत्यमन्दिरे ॥ ६४ ॥ ततो हृष्टहृदा विप्राः प्रत्यूचुस्ते विधेः सुताम् ॥ मातङ्ग्याश्च प्रकर्त्तव्यं वर्षे वर्षे च पूजनम् ॥ ६५ ॥ माघासिते तृतीयायां भक्ष्यभोज्यादिभिस्तथा ॥ कर्णाटस्य तथोत्पत्तिः पुनर्जाता तु भूतले ॥ ६६ ॥ भयाच्चैव हि तत्स्थानं त्यक्त्वा याम्यमगात्ततः ॥ गच्छमानस्तदा दैत्यो यक्ष्मरूपो ह्यभाषत ॥ ६७ ॥ श्रूयतां भो द्विजाः सर्वे धर्मारण्यनि

बोले कि हे नराधिप ! तदनन्तर मातंगी देवी के प्रसाद से सब प्रजा धर्मारण्य सत्यमंदिर में शांत होगये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने प्रसन्नहृदय से ब्रह्मा की कन्या से कहा कि प्रतिवर्ष में माघ महीने के कृष्णपक्ष में तीज तिथि में भक्ष्य, भोज्यादिकों से मातंगी का पूजन करना चाहिये फिर पृथ्वी में कर्णाट की उत्पत्ति हुई ॥ ६५ । ६६ ॥ और वह भय से उस स्थान को छोड़कर तदनन्तर दक्षिण दिशा को चला गया तब जाता हुआ वह यक्ष्मरूपी दैत्य बोला ॥ ६७ ॥ कि हे धर्मारण्य-

निवासी, सब ब्राह्मणो व वणिजो ! सुनिये व इस मेरे बड़े भारी वचन को परिपालन कीजिये ॥ ६८ ॥ कि सदैव पृथ्वी में मेरी प्रीति से निर्विघ्न के लिये माघ महीने में त्रिदल धान से व विशेषकर मूली से ॥ ६९ ॥ व तिल के तैल से दृढ़व्रत पुरुष व्रत को करै और यक्ष्म की प्रीति के लिये सदैव एक बार भोजन करै ॥ ७० ॥ बालक से लगाकर युवा व वृद्ध पुरुष को भी सदैव प्रति वर्ष में यक्ष्मा का उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ७१ ॥ और जिस घर में जितने पुरुषाकाररूपी होवैं एकभक्त में परायण वे सदैव उसका व्रत करैं ॥ ७२ ॥ और बालक के लिये माता उत्तम व्रत करै पिता या भाई जिसके लिये व्रतको करै ॥ ७३ ॥ उसको कहीं भय नहीं होती और व्याधि व बंधन

वासिनः ॥ वणिजश्च महच्चेदं मद्वाक्यं परिपाल्यताम् ॥ ६८ ॥ माघमासे हि मत्प्रीत्या निर्विघ्नार्थं सदा भुवि ॥ त्रिदलेन च धान्येन मूलकेन विशेषतः ॥ ६९ ॥ तिलतैलेन वा कुर्यात्पुरुषो नियतव्रतः ॥ एकाशनं हि कुरुते यक्ष्मप्रीत्यै निरन्तरम् ॥ ७० ॥ आबालयौवनेनैव वृद्धेनापीह सर्वदा ॥ वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं यक्ष्मणो व्रतमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ यस्मिन्गृहे हि यावन्तः पुरुषाकाररूपिणः ॥ तस्य व्रतं प्रकुर्युस्त एकभक्तरताः सदा ॥ ७२ ॥ बालस्यार्थे तु जननी कुरुते व्रत मुत्तमम् ॥ पिता वाप्यथवा भ्राता यन्निमित्तं व्रतं चरेत् ॥ ७३ ॥ न च तस्य भयं क्वापि न व्याधिर्न च बन्धनम् ॥ भर्तुर्निमित्ते स्त्री कुर्यादशक्ते त्वितरेण च ॥ ७४ ॥ एवं समादिशन्दैत्यः सत्यमन्दिरमुत्सृजन् ॥ गतोऽसौ याम्यदिग्भाग उदधेस्तीर उत्तमे ॥ ७५ ॥ विपुलं देहमासाद्य कर्णाटः स नराधिप ॥ स्वनाम्ना चैव तं देशं स्थापयामास चोत्त मम् ॥ ७६ ॥ यस्मिंश्च सर्ववस्तूनि धनधान्यानि भूरिशः ॥ कर्णाटदेशं तं राजन्परिवार्य चिरं स्थितः ॥ ७७ ॥ धर्मार

नहीं होता है पति के लिये स्त्री व्रत को करै और अशक्त होने पर अन्य से व्रत कराना चाहिये ॥ ७४ ॥ सत्यमंदिर को छोड़तेहुए दैत्य ने ऐसा कहा और यह दक्षिण दिशा के भाग में समुद्र के उत्तम किनारे पै चला गया ॥ ७५ ॥ हे नराधिप ! बड़े भारी शरीर को प्राप्त होकर उस कर्णाट ने अपने नाम से उस उत्तम देश को स्थापित किया ॥ ७६ ॥ जिसमें सब वस्तुवें व बहुत धन, धान्य हैं हे राजन् ! उस कर्णाट देश को घेर कर वह कर्णाट बहुत दिनोंतक स्थित रहा ॥ ७७ ॥ हे नरसत्तम ! कहीं

हुई धर्मारण्य की पवित्र कथा व श्रीमाता का उत्तम माहात्म्य जो सुनते या सुनाते हैं ॥ ७८ ॥ उनके वंश में कभी अरिष्ट नहीं होता है पुत्र रहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व धनहीन संपत्तियों को पाता है व आयुर्बल, नीरोगता और ऐश्वर्य को श्रीमाता के प्रसाद से प्राप्त होता है ॥ १७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जयंतेश इन्द्रेश जिमि थाप्यो इन्द्र जयन्त । उन्निसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखवन्त ॥ व्यासजी बोले कि इन्द्रसर में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजी को देखकर

ण्यकथां पुण्यां कथितां नरसत्तम ॥ श्रीमातुश्चैव माहात्म्यं शृण्वन्ति श्रावयन्ति ये ॥ ७८ ॥ तेषां कुले कदाचित्तु अरिष्टं नैव जायते ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनहीनस्तु सम्पदः ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं श्रीमातुश्च प्रसादतः ॥ १७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येमातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ नर इन्द्रसरे स्नात्वा दृष्ट्वा चेन्द्रेश्वरं शिवम् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ केन चादौ निर्मितं तत्तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथावद्वर्णय त्वं मे भगवन्द्विजसत्तम ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इन्द्रेणैव महाराज तपस्तप्तं सुदुष्करम् ॥ ग्रामादुत्तरदिग्भागे शतवर्षाणि तत्र वै ॥ ३ ॥ शिवोद्देशं महाघोरमेकाङ्गुष्ठेन भारत ॥ ऊर्द्ध्वबाहुर्महातेजाः सूर्यस्याभिमुखोऽभवत् ॥ ४ ॥ वृत्रस्य वधतो जातं यत्पापं तस्य नुत्तये ॥ एकाग्रः प्रयतो भूत्वा शिवस्याराधने रतः ॥ ५ ॥ तपसा च तदा शम्भुस्तोषितः शशिशेखरः ॥ तत्राऽऽजगाम जटि

मनुष्य सात जन्मों में किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि उस सब तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ को किसने पहले बनाया है हे द्विजोत्तम, भगवन् ! तुम इसको यथायोग्य वर्णन करो ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाराज, भारत ! गांव से उत्तर दिशा के भाग में इन्द्र ने शिवजी को उद्देश कर तीन सौ बरस तक एक अंगूठे से बड़ा भयंकर व कठिन तप किया और ऊर्ध्वबाहु व बड़े तेजस्वी इन्द्रजी सूर्य के सामने हुए ॥ ३ । ४ ॥ वृत्रासुर के वध से जो पाप उत्पन्न हुआ था उसको दूर करने के लिये एकाग्र व पवित्र होकर इन्द्रजी शिवजी के आराधन में परायण हुए ॥ ५ ॥ तब तपस्या से चन्द्रभाल शिवजी प्रसन्न हुए और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भस्म को अंग में लगाये हुए जटाधारी शिवजी वहां आये ॥ ६ ॥ खट्वांग नामक अस्त्र को लिये दशभुज, त्रिलोचन, पंचमुख, गंगाधर, भूत, प्रेतादिकोंसे वेष्टित शिव जी बैलपर चढ़कर ॥ ७ ॥ बहुत प्रसन्न, सुरश्रेष्ठ, दयालु, वरदायक व प्रसन्न मनवाले शिवदेवजी ने उस समय इन्द्रजी से यह कहा ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि हे देव ! जो तुम मांगते हो उसको मैं तुम को दूंगा ॥ ९ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे दयासिंधो, देवेश, महेशजी ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो मुझ को ब्रह्महत्या नित्य दुःख देती है ॥ १० ॥ हे सुरोत्तम ! वृत्रासुर के मारने में जो पाप हुआ है हे विभो ! मुझको सदैव दुःखदायक उस पाप को नाश कीजिये ॥ ११ ॥ शिवजी बोले कि हे

लो भस्माङ्गो वृषभध्वजः ॥ ६ ॥ खट्वाङ्गी पञ्चवक्त्रश्च दशबाहुस्त्रिलोचनः ॥ गङ्गाधरो वृषारूढो भूतप्रेतादिवेष्टितः ॥ ७ ॥ सुप्रसन्नः सुरश्रेष्ठः कृपालुर्वरदायकः ॥ तदा हृष्टमना देवो देवेन्द्रमिदमूचिवान् ॥ ८ ॥ हर उवाच ॥ यत्त्वं याचयसे देव तदहं प्रददामि ते ॥ ९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश कृपासिन्धो महेश्वर ॥ ब्रह्महत्या हि मां देव उद्वेजयति नित्यशः ॥ १० ॥ वृत्रासुरस्य हनने जातं पापं सुरोत्तम ॥ तत्पापं नाशय विभो मम दुःखप्रदं सदा ॥ ११ ॥ हर उवाच ॥ धर्मारण्ये सुरपते ब्रह्महत्या न पीडयेत् ॥ हत्या गवां द्विजातीनां बालस्य योषितामपि ॥ १२ ॥ वचनान्मम देवेन्द्र ब्रह्मणः केशवस्य च ॥ यमस्य वचनाज्जिष्णो हत्या नैवात्र तिष्ठति ॥ प्रविश्य त्वं महाराज अतोत्र स्नानमाचर ॥ १३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यदि त्वं मम तुष्टोऽसि कृपासिन्धो महेश्वर ॥ मन्नाम्ना च महादेव स्थापितो भव शङ्कर ॥ १४ ॥ तथेत्युक्त्वा महादेवः सुप्रसन्नो हरस्तदा ॥ दर्शयामास तत्रैव लिङ्गं पापप्रणाश

सुरपते ! धर्मारण्य में ब्रह्महत्या दुःख नहीं देवैगी क्योंकि गौवों की हत्या व बालक की हत्या और स्त्रियों की भी जो हत्या है ॥ १२ ॥ हे देवेन्द्र, जिष्णो ! मेरे और ब्रह्मा व विष्णुजी के वचन से और यमराज के वचन से वह हत्या यहां स्थित नहीं होती है हे महाराज ! इस कारण तुम इसमें पैठकर स्नान करो ॥ १३ ॥ इन्द्र जी बोले कि हे दयासिंधो, महेश्वर ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो हे शंकर, महादेव ! मेरे नाम से स्थापित होवो ॥ १४ ॥ तब बहुत अच्छा यह कहकर महादेवजी प्रसन्न हुए और पापनाशक लिंगको कूर्म की पीठ से शिवजीने अपने योगसे उत्पन्न करके दिखलाया और शिवजी वहीं स्थित हुए ऐसा त्रिकालके जानने

वाले कहते हैं ॥ १५ । १६ ॥ हे नृप ! तब वृत्रासुर की हत्या से डरे हुए इन्द्र के समीप इन्द्रेश्वरजी उस धर्मारण्य में लोकों की हितकी इच्छासे सब पापों की शुद्धि के लिये स्थित हुए हे नृपेन्द्र ! जो मनुष्य सदैव पुष्प व धूपादिकों से इन्द्रेश्वरजी को ॥ १७ । १८ ॥ भक्तिसे पूजता है वह मनुष्य सब पापों से छूटजाता है और माघ महीने में विशेषकर अष्टमी व चौदसि में ॥ १९ ॥ जो सब पापों की शुद्धि के लिये पूजता है वह शिवलोक में पूजा जाता है और उन इन्द्रेश्वरजी के आगे जो नीलोत्सर्ग करता है ॥ २० ॥ वह सात गोत्रोंको व एक सौ एक पुश्तियोंको उधारताहै और जो चौदसि तिथि में सांग रुद्र जप करता है ॥ २१ ॥ सब पापोंसे शुद्ध चित्त

नम् ॥ १५ ॥ कूर्मपृष्ठात्समुत्पाद्य आत्मयोगेन शम्भुना ॥ स्थितस्तत्रैव श्रीकण्ठःकालत्रयविदो विदुः ॥ १६ ॥ वृत्रहत्यासमुत्रस्तदेवराजस्य सन्निधौ ॥ इन्द्रेश्वरस्तदा तत्र धर्मारण्ये स्थितो नृप ॥ १७ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं लोकानां हितकाम्यया ॥ इन्द्रेश्वरं तु राजेन्द्र पुष्पधूपादिकैः सदा ॥ १८ ॥ पूजयेच्च नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां माघमासे विशेषतः ॥ १९ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं शिवलोके महीयते ॥ नीलोत्सर्गं तु यो मर्त्यः करोति च तदग्रतः ॥ २० ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ साङ्गरुद्रजपं यस्तु चतुर्दश्यां करोति वै ॥ २१ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते परमं पदम् ॥ २२ ॥ सौवर्णनयनं कृत्वा मध्ये रत्नसमन्वितम् ॥ यो ददाति द्विजातिभ्य इन्द्रतीर्थे तथोत्तमे ॥ २३ ॥ अन्धता न भवेत्तस्य जन्मानि षष्टिसंख्यया ॥ निर्मलत्वं सदा तेषां नयनेषु प्रजायते ॥ महारोगास्तथा चान्ये स्नात्वा यान्ति तदग्रतः ॥ २४ ॥ पूजिते चैकचित्तेन सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ स्नात्वा कुण्डे नरो यस्तु सन्तर्पयति यः पितॄन् ॥ २५ ॥ तस्य तृप्ताः सदा भूप पितरश्च पितामहाः ॥ ये वै ग्रस्ता महारो

वाला वह परमपद को पाता है ॥ २२ ॥ और उत्तम इन्द्रतीर्थ में मध्य में रत्नसंयुत करके जो सोने का नेत्र ब्राह्मणों के लिये देता है ॥ २३ ॥ साठ संख्यक जन्मोंतक उसके अन्धता नहीं होती है और उनके नेत्रों में सदैव निर्मलता होती है और उनके आगे नहाकर अन्य महारोग नाश होजाते हैं ॥ २४ ॥ और सावधान चित्त से पूजन करनेपर मनुष्य सब रोगसे छूट जाता है और कुंडमें नहाकर जो मनुष्य पितरों को तर्पण करता है ॥ २५ ॥ हे भूप ! उसके पितर व पितामह सदैव तृप्त रहते हैं

और जो मनुष्य कुष्ठादिक महारोगों से ग्रस्त होते हैं ॥ २६ ॥ वे नहाने ही से शुद्ध होकर दिव्यशरीर होजाते हैं और ज्वरादिक के कष्ट में प्राप्त मनुष्य अपने हित के लिये ॥ २७ ॥ स्नानही से शुद्ध होकर दिव्यशरीर होजाते हैं और स्नान करके जो इन्द्रेश्वरदेव को पूजता है वह ज्वरके बन्धन से छूट जाता है ॥ २८ ॥ और एकाहिक, द्व्याहिक, चातुर्थिक व तृतीयक और विषमज्वर की पीड़ा व मास, पक्षादिक ज्वर ॥ २९ ॥ इन्द्रेश्वरजी के प्रसाद से नाश होजाता है इस में सन्देह नहीं है व हे भूपते ! वह सत्य सत्य ज्वररहित होजाता है ॥ ३० ॥ और जो बन्ध्या, दुर्भगा, काकबन्ध्या व मृतप्रजा और जो मृतवत्सा व महादुष्टा स्त्री शिवजी के आगे कुण्ड

गैः कुष्ठाद्यैश्चैव देहिनः ॥ २६ ॥ स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥ ज्वरादिकष्टमापन्ना नराः स्वात्महिताय वै ॥ २७ ॥ स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥ स्नात्वा च पूजयेद्देवं मुच्यते ज्वरबन्धनात् ॥ २८ ॥ एकाहिकं द्व्याहिकं च चातुर्थं वा तृतीयकम् ॥ विषमज्वरपीडा च मासपक्षादिकं ज्वरम् ॥ २९ ॥ इन्द्रेश्वरप्रसादाच्च नश्यते नात्र संशयः ॥ विज्वरो जायते नूनं सत्यं सत्यं च भूपते ॥ ३० ॥ बन्ध्या च दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥ मृतवत्सा महादुष्टा स्नात्वा कुण्डे शिवाग्रतः ॥ पूजयेदेकचित्तेन स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥ एवंविधांश्च बहुशो वरान्दत्त्वा पिनाकधृक् ॥ गतोऽसौ स्वपुरं पार्थ सेव्यमानः सुरासुरैः ॥ ३२ ॥ ततः शक्रो महातेजा गतो वै स्वपुरं प्रति ॥ जयन्तेनापि तत्रैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ जयन्तस्य हरस्तुष्टस्तस्मिँल्लिङ्गे स्तुतः सदा ॥ त्रिकालं पुत्रसंयुक्तः पूजनार्थं सुरेश्वर ॥ ३४ ॥ आयाति च महाबाहो त्यक्त्वा स्थानं स्वकं हि वै ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं सर्व

में नहाकर सावधान चित्त से पूजती है वह नहानेही से पवित्र होजाती है ॥ ३१ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार बहुत से वरदानों को देकर देवताओं व दैत्यों से सेवित पिनाकधारी शिवजी अपने लोक को चले गये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बड़े तेजस्वी इन्द्रजी अपने लोक को चलेगये और वहीं पर जयन्तने भी उत्तम लिंगको थापा है ॥ ३३ ॥ उस लिंगमें स्तुति किये हुए शिवजी सदैव जयंत के ऊपर प्रसन्न रहते हैं सुरेश्वर इन्द्रजी पुत्र समेत पूजन के लिये त्रिकाल ॥ ३४ ॥ हे महाबाहो ! अपने स्थान को

छोड़कर आतेहैं सब सुखोंको देनेवाला यह सब चरित्र कहा गया ॥ ३५ ॥ जो पुण्य इन्द्रेश्वरमें होताहै जयंतेशजी के पूजन से उसी पुण्य को मनुष्य सत्य सत्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उस कुंड में नहाकर व पूजन करके सावधान मनवाला मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर इन्द्रलोक में पूजा जाता है ॥ ३७ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूट जाता है और जयंतेशजी के प्रसाद से वह सब कामनाओं को पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सौख्यप्रदायकम् ॥ ३५ ॥ इन्द्रेश्वरे तु यत्पुण्यं जयन्तेशस्य पूजनात् ॥ तदेवाप्नोति राजेन्द्र सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३६ ॥ स्नात्वा कुण्डे महाराज सम्पूज्यैकाग्रमानसः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा इन्द्रलोके महीयते ॥ ३७ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति जयन्तेशप्रसादतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येइन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रासौ शंकरो देवः पुनर्जन्मधरोऽभवत् ॥ १ ॥ कीलितो देवदेवेशः शंकरश्च त्रिलोचनः ॥ गिरिजया महाभाग पातितो भूमिमण्डले ॥ २ ॥ छलितो मुह्यमानस्तु दिवा रात्रिं न वेत्ति च ॥ पुंस्त्रीनपुंसकांश्चैव जडीभूतस्त्रिलोचनः ॥ ३ ॥ कल्पान्तमिव सञ्जातं तदा तस्मिंश्च कीलिते ॥ पार्वत्या सहसा तस्य कृतं कीलनकं तदा ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ एतदाश्चर्यमतुलं वचनं यत्त्वयोदितम् ॥ यो गुरुः

दो॰ । धराक्षेत्रकर है यथा अतिहीं अतुल प्रभाव । सोइ बीस अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त मैं अतिउत्तम शिवतीर्थ को कहता हूं जहां कि ये शिवदेवजी फिर जन्मधारी हुए हैं ॥ १ ॥ हे महाभाग ! पार्वतीजी ने देवदेवेश त्रिलोचन शिवजी को कीलन किया व भूमंडल में पातित किया है ॥ २ ॥ छलित व मोहित वे दिन, रात को नहीं जानते हैं और जड़ीभूत त्रिलोचनजी पुरुष, स्त्री व नपुंसक को नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ तब उन शिवजी के कीलने पर कल्पान्त सा होगया उस समय यकायक पार्वतीजी ने उन शिवजी का कीलन कियाहै ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि यह बड़ाभारी आश्चर्य है जो वचन कि तुमने कहा है सब

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

देवताओं व योगियों के जो सदैव गुरु हैं ॥ ५ ॥ नष्टवृत्तिवाले वे शिवजी किस कारण पार्वतीजी से कीलित हुए इस कारण को कहिये उसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन्, महाराज ! अथर्वण उपवेद से उपजे हुए अनेक प्रकारके मंत्रसमूहोंको शिवजी ने पार्वतीजी के आगे प्रकाशित कियाहै ॥ ७ ॥ और शाकिनी, डाकिनी, काकिनी, हाकिनी, एकिनी व लाकिनी ये छः भेद वहां कहे गये ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! उनसे बीजों को उद्धारकर शिवजी ने पार्वतीजी के आगे एकवृता माला किया है व कहा है ॥ ९ ॥ व हे अनघ ! उस समय अन्य आठ बीजों से मंत्रोद्धार किया गया है और वह महादुष्टा शाकिनी प्रमदा साधन

सर्वदेवानां योगिनां चैव सर्वदा ॥ ५ ॥ पार्वत्या कीलितः कस्मान्नष्टवृत्तिः शिवः कथम् ॥ कारणं कथ्यतां तत्र परं कौतूहलं हि मे ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ मन्त्रौघा विविधा राजञ्छंकरेण प्रकाशिताः ॥ पार्वत्यग्रे महाराज अथर्वणोपवेदजाः ॥ ७ ॥ शाकिनी डाकिनी चैव काकिनी हाकिनी तथा ॥ एकिनी लाकिनी ह्येताः षड्भेदास्तत्र कीर्तिताः ॥ ८ ॥ बीजान्युद्धृत्य वै ताभ्यो माला चैकवृता कृता ॥ शम्भुना कथिता चैव पार्वत्यग्रे नृपोत्तम ॥ ९ ॥ अन्यैश्चैवाष्टभिर्बीजैर्मन्त्रोद्धारः कृतस्तदा ॥ साधयेत्सा महादुष्टा शाकिनी प्रमदानघा ॥ १० ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ प्रकाशितास्त्वया नाथ भेदा ह्येते षडेव हि ॥ षड्विधाः शक्तयो नाथ अगम्या योगमालिनीः ॥ षड्विधोक्तं त्वयैकेन कूटात्कृतं वदस्व माम् ॥ ११ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अप्रकाश्यो महादेवि देवासुरैस्तु मानवैः ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ नमस्ते सर्वरूपाय नमस्ते वृषभध्वज ॥ जटिलेश नमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोस्तुते ॥ १३ ॥ कृपासिन्धो नमस्तुभ्यं नमस्ते कालरूपिणे ॥

करती है ॥ १० ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे नाथ ! तुमने इन छःहीं भेदों को प्रकाशित किया है व हे नाथ ! छः प्रकार की शक्तियां अगम्य व योगमालिनी हैं व तुम एकने छः प्रकार के उस शक्तिसमूह को कहा है इससे कूट से कियेहुए उसको मुझ से कहिये ॥ ११ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे महादेवि ! वह देवता, दैत्य व मनुष्यों से प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि सब रूपी आप के लिये नमस्कार है व हे वृषभध्वज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे जटिल, ईश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ हे दयासिन्धो ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व कालरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है इन बहुत से

कोमल वचनों से दयानिधान शिवजी को ॥ १४ ॥ प्रसन्न कराकर पार्वतीजी ने दण्डवत् प्रणामकर दोनों चरणों को प्रणाम किया और दया में तत्पर शिवजी ने उन पार्वतीजी से कहा ॥ १५ ॥ कि हे भद्रे ! तुम किस लिये स्तुति करती हो मन में प्रिय वरदान को मांगो ॥ १६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि यदि मैं तुम को प्यारी हूं तो ध्यान समेत सब समाहार को विस्तार समेत निस्सन्देह कहिये ॥ १७ ॥ श्रीशिवजी बोले कि समाहार से उपजा हुआ फल तुमको प्रकाश न करना चाहिये मैं सब तत्त्व व मंत्र कूटादिक को कहता हूं ॥ १८ ॥ कि हे वरानने ! सब कूटों का माया बीज है और सबों का मध्यम वर्ण बिंदुनाद से आदि में शोभित होताहै ॥ १९ ॥ व

एतैश्च बहुभिर्वाक्यैः कोमलैः करुणानिधिम् ॥ १४ ॥ तोषयित्वाद्रितनया दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ जग्राह पादयुगलं तां प्रोवाच दयापरः ॥ १५ ॥ किमर्थं स्तूयसे भद्रे याच्यतां मनसीप्सितम् ॥ १६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ समाहारं च सध्यानं कथयस्व सविस्तरम् ॥ असन्देहमशेषं च यद्यहं वल्लभा तव ॥ १७ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ न प्रकाश्यं त्वया देवि समाहारोद्भवं फलम् ॥ सर्वं तत्त्वमहं वक्ष्ये मन्त्रकूटाद्यमेव हि ॥ १८ ॥ मायाबीजं तु सर्वेषां कूटानां हि वरानने ॥ सर्वेषां मध्यमो वर्णो बिन्दुनादादिशोभितः ॥ १९ ॥ वह्निबीजं सवातं च कूर्मबीजसमन्वितम् ॥ आदित्यप्रभवं बीजं शक्तिबीजोद्भवं सदा ॥ २० ॥ एतत्कूटं चाद्यबीजं द्वितीयं च विभोर्मतम् ॥ तृतीयं चाग्निबीजं तु संयुक्तं बिन्दुनेन्दुना ॥ २१ ॥ चतुर्थं तु विशेषेण ब्रह्मबीजमृषिस्तथा ॥ पञ्चमं कालबीजं च षष्ठं पार्थिवबीजकम् ॥ २२ ॥ सप्तमे चाष्टमे बाह्यं नृसिंहेन समन्वितम् ॥ नवमे द्वितीयमेकं च दशमे चाष्टकूटकम् ॥ २३ ॥ विपरीतं तयोर्बीजं रुद्राख्ये वरव

पवन समेत अग्निबीज और कूर्मबीज से संयुत सूर्य से उपजा हुआ बीज सदैव शक्तिबीज से उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ यह कूट प्रथम बीज व दूसरा बीज विभु का माना गया है और तीसरा अग्निबीज बिंदु व चंद्रमासे संयुक्त है ॥ २१ ॥ और विशेषकर चौथा ब्रह्मबीज व ऋषि है और पांचवां कालबीज व छठां पृथ्वीबीज है ॥ २२ ॥ और सातवें व आठवें में बाहर नृसिंहबीज से संयुत है और नवम में दूसरा व पहला तथा दशम में अष्टकूट है ॥ २३ ॥ व हे वरवर्णिनि ! गेरहवें में उनका

बीज उलटा होता है और चौदहवें में चौथा पृथ्वीबीज से संयुत होता है ॥ २४ ॥ व हे मेनकात्मजे ! कितेक कूट शेष अक्षर रक्षित हैं हे नृप ! जब वे शिवजी की स्त्री पार्वतीजी पृथ्वी में प्राप्त हुई तब ॥ २५ ॥ वहां रामचन्द्रजी ने समझाया और हँसते हुए शिवजी ने कहा कि हे भद्रे ! तुम किस लिये आपत्ति में प्राप्त हो तुम्हारे मारण, मोहन, वशीकरण, आकर्षण व उच्चाटन में शक्ति होगी और जिस जिस वस्तु की इच्छा करोगी वह वह सिद्धि होगी ॥ २६ । २७ ॥ यह सुनकर उस समय पवित्र हास्यवाली पार्वतीजी का चित्त प्रसन्न हुआ तदनन्तर हे वीर ! शिवजी ने शेष कूटोंको पार्वतीजी से कहा ॥ २८ ॥ और दयासिंधु शिवजी यह बोले कि विधिपूर्वक साधन

र्णिनि ॥ चतुर्दशे चतुर्थाख्यं पृथ्वीबीजेन संयुतम् ॥ २४ ॥ कूटाः शेषाक्षराः केचिद्रक्षिता मेनकात्मजे ॥ सा पपात य दोर्व्यां हि शिवपत्नी तदा नृप ॥ २५ ॥ रामेणाश्वासिता तत्र प्रहसंस्त्रिपुरान्तकः ॥ भद्रे कस्मात्त्वमापन्ना तव शक्ति र्भविष्यति ॥ २६ ॥ मारणे मोहने वश्ये आकर्षणे च क्षोभणे ॥ यं यं कामयसे नूनं तत्तत्सिद्धिर्भविष्यति ॥ २७ ॥ इति श्रुत्वा तदा देवी हृष्टचित्ता शुचिस्मिता ॥ कूटशेषास्ततो वीर प्रोक्तास्तस्यै तु शम्भुना ॥ २८ ॥ उवाच च कृपासिन्धुः साधयस्व यथाविधि ॥ कैलासात्तु हरस्तत्र धर्मारण्ये गतोभृशम् ॥ २९ ॥ ज्ञात्वा देवी ययौ तत्र यत्रासौ वृषभध्व जः ॥ तत्क्षणात्पतितो भूमौ धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ३० ॥ जटा चन्द्रोरगाः शूलं वृषभाद्यायुधानि वै ॥ मुण्डमाला च कौपीनं कपालं ब्रह्मणस्तु वै ॥ ३१ ॥ गता गणाश्च सर्वत्र भूतप्रेता दिशो दश ॥ विसंज्ञं च स्वमात्मानं ज्ञात्वा देवो महे श्वरः ॥ ३२ ॥ स्वेदजास्तु समुत्पन्ना गणाः कूटादयस्तथा ॥ पञ्चकूटान्समुत्पाद्य तदा तस्मै च शूलिने ॥ ३३ ॥ साध

करो और शिवजी कैलास से उस धर्मारण्य में गये ॥ २९ ॥ और पार्वती देवीजी जानकर वहां गईं जहां कि हे नृपोत्तम ! ये वृषध्वज शिवजी उसी क्षण धर्मारण्य में पृथ्वी में गिरे थे ॥ ३० ॥ और जटा, चंद्रमा, नाग, त्रिशूल व वृषभादिक और अस्त्र तथा मुंडमाला, कौपीन व ब्रह्माका कपाल ॥ ३१ ॥ और भूत, प्रेतादिक गण सब कहीं दशो दिशाओं को चले गये और अपने चित्त को मोहित जानकर शिवदेवजी ने विचार किया ॥ ३२ ॥ व स्वेदज उत्पन्न हुए और कूटादिक गण पैदा हुए पांच कूटों को उत्पन्न करके उस समय उन शिवजी के लिये ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वे साधक जप व होम में परायण हुए और प्रेतासनवाले वे सब गण कालकूट

के ऊपर स्थित हुए ॥ ३४ ॥ व अपने चित्तसे ऐसा कहने लगे कि जिससे शिवजी को मोक्ष होवै तदनन्तर अग्नि की भय से विकल पार्वतीजी कष्ट में प्राप्तहुईं ॥ ३५ ॥ और उन्होंने शिवजी को पूजन किया व शिवजी की आज्ञा करनेवाली नीचे मुख किये लज्जित होकर वहां स्थित पार्वतीजी ने तप किया ॥ ३६ ॥ और पंचाग्निसेवन व धूमपान करके पार्वतीजी नीचे मुख करके स्थित हुई और उन कूटाक्षरों से स्तुति किये हुए शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह धराक्षेत्र पातकों का विनाशक व सब कामनाओं का दायक है और इस स्थान में देवमज्जनक नामक उत्तम तड़ाग शोभित है ॥ ३८ ॥ हे नृप ! कुँवार के कृष्णपक्ष में चौदसि के दिन उस में नहाकर

कास्ते महाराज जपहोमपरायणाः ॥ प्रेतासनास्तु ते सर्वे कालकूटोपरिस्थिताः ॥ ३४ ॥ कथयन्ति स्वमात्मानं येन मोक्षः पिनाकिनः ॥ ततः कष्टसमाविष्टा गौरी वह्निभयातुरा ॥ ३५ ॥ समर्चितः शिवस्तैश्च गौरी ह्रीणा त्वधोमुखी ॥ तपस्तेपे च तत्रस्था शंकरादेशकारिणी ॥ ३६ ॥ पञ्चाग्निसेवनं कृत्वा धूम्रपानमधोमुखी ॥ कूटाक्षरैः स्तुतस्तैस्तु तोषितो वृषभध्वजः ॥ ३७ ॥ धराक्षेत्रमिदं राजन्पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ देवमज्जनकं शुभ्रं स्थानकेऽस्मिन्विराजते ॥ ३८ ॥ आश्विने कृष्णपक्षे च चतुर्दश्या दिने नृप ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ पूजयित्वा च देवेशमुपोष्य च विधानतः ॥ शाकिनी डाकिनी चैव वेतालाः पितरो ग्रहाः ॥ ४० ॥ ग्रहा धिष्ण्या न पीड्यन्ते सत्यं सत्यं वरानने ॥ साङ्गं रुद्रजपं तत्र कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ नश्यन्ति विविधा रोगाः सत्यं सत्यं च भूपते ॥ एतत्सर्वं मया ख्यातं देवमज्जनकं शुभम् ॥ ४२ ॥ अश्वमेधसहस्रैस्तु कृतैस्तु भूरिदक्षिणैः ॥ तत्फलं समवा

व जल को पीकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ३९ ॥ और देवेश शिवजी को पूजकर व विधिसे उपासकर शाकिनी, डाकिनी, वेताल, पितर व ग्रह ॥ ४० ॥ और नक्षत्र ग्रह पीडित नहीं करते हैं हे वरानने ! यह सत्य सत्य है और वहां सांग रुद्रजप करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥ व हे राजन् ! अनेक भांति के रोग सत्य सत्य नाश होजाते हैं यह सब मैंने उत्तम देवमज्जनक तड़ाग कहा ॥ ४२ ॥ बहुत दक्षिणावाले हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है उस फल को इस

को सुनने व सुनानेवाला मनुष्य पाता है ॥ ४३ ॥ व पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है और निर्धनी धन को पाता है और आयुर्बल, आरोग्य व ऐश्वर्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और मन, वचन व शरीर से उपजा हुआ जो तीन प्रकार का पापहै हे नृप ! वह सब स्मरण व कीर्तन से नाश होजाता है ॥ ४५ ॥ और वह धन्य, यशदायक, आयुर्बलदायक व सुख और सन्तान को देनेवाला है हे वत्स ! जो इस माहात्म्य को सुनता है वह सब सुखों से संयुत होताहै ॥ ४६ ॥ हे नृप ! सब तीर्थों में जो पुण्य होता है व सब दानों में जो फल होता है और सब यज्ञों से जो पुण्य होताहै वह इसको सुनने से होताहै ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमा

प्नोति श्रोता श्रावयिता नरः ॥ ४३ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनमाप्नुयात् ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति स्मरणात्कीर्तनान्नृप ॥ ४५ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसन्तानदायकम् ॥ माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्यान्वितो भवेत् ॥ ४६ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सर्वयज्ञैश्च यत्पुण्यं जायते श्रवणान्नृप ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येधराक्षेत्रवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ तया चोत्पादिता राजञ्छरीरात्कुलदेवताः ॥ भट्टारिकी १ तथा छत्रा २ ओविका ३ ज्ञानजा तथा ४ ॥ १ ॥ भद्रकाली च ५ माहेशी ६ सिंहोरी ७ धनमर्द्दनी ८ ॥ गात्रा ९ शान्ता १० शेषदेवी ११ वाराही १२ भद्रयोगिनी १३ ॥ २ ॥ योगेश्वरी १४ मोहलज्जा १५ कुलेशी १६ शकुलाचिता १७ ॥ तारणी १८ कनकानन्दा १९

हात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधराक्षेत्रवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । जौन गोत्र देवी अहै गोत्र प्रवर हैं जौन । इकिसवें अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! उसने शरीर से कुलदेवताओं को उत्पन्न किया है कि भट्टारिका, छत्रा, ओविका व ज्ञानजा ॥ १ ॥ और भद्रकाली, माहेशी, सिंहोरी, धनमर्दिनी, गात्रा, शांता, शेषदेवी, वाराही व भद्रयोगिनी ॥ २ ॥ योगेश्वरी,

मोहलज्जा, कुलेशी, शकुलाचिता, तारणी, कनकानंदा, चामुण्डा व सुरेश्वरी ॥ ३ ॥ और दारभट्टारिकादिक फिर प्रत्येक सौप्रकार की उत्तम शक्तियां उसमें अनेक रूपों से संयुत उत्पन्न हुई इसके उपरान्त मैं प्रवरों व देवताओं को कहता हूं ॥ ४ ॥ कि औपमन्यवसगोत्र के प्रवर तीन ३ हैं और गोत्रदेव्या गात्रावसिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ और काश्यपसगोत्र की सगोत्रदेव्या ज्ञानजा २ व प्रवर ३ तीन हैं काश्यप १ अवत्सार २ व रैभ्य ३ और मांडव्यसगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ व प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यवन, अत्रि, और्व और जमदग्नि व कुशिकसगोत्र में उत्पन्न तारणी ६ व महाबला है और प्रवर ३ तीन हैं विश्वामित्र, देवराज, उद्दालक ६

चामुण्डा २० च सुरेश्वरी २१ ॥ ३ ॥ दारभट्टारिकेत्या २२ द्या प्रत्येका शतधा पुनः ॥ उत्पन्नाः शक्तयस्तस्मिन्नानारूपान्विताः शुभाः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रवराण्यथ देवताः ॥ ४ ॥ औपमन्यवसगोत्रप्रवर ३ गोत्रदेव्यागात्रावसिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ काश्यपसगोत्रसगोत्रदेव्याज्ञानजा २ प्रवर ३ काश्यपः १ अवत्सारः २ रैभ्यः ३ माण्डव्यसगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ प्रवर ५ भार्गवच्यवनाअत्रिऔर्वजमदग्निः ५ कुशिकसगोत्रजातारणी ६ महाबला प्रवर ३ विश्वामित्रदेवराजउद्दालक ६ शौनकसगोत्र ७ गोत्रदेवी ७ शान्ता प्रवर ३ भार्गवाणैनहोत्रगार्त्समद ३ कृष्णात्रेयसगोत्रवीगोत्रदेव्याभद्रयोगिनी ८ प्रवर ३ आत्रेयअर्चनानसश्यावाश्व ३ गार्ग्यायणसगोत्र गोत्रजा शान्ता प्रवर ५ भार्गवच्यवनआप्नुवान्और्वजमदग्निः १० गार्गायणगोत्रगोत्रजाज्ञानजा प्रवर ५ काश्यपअवत्सारशाण्डिलअसितदेवलगाङ्गेयसगोत्रदेवी शान्ता द्वारवासिनी प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि शङ्ख लिखित १२ पैङ्ग्यसगोत्रजाज्ञानजा

और शौनक के सगोत्र ७ सात हैं व गोत्र देवी ७ सात हैं और शांता के प्रवर ३ तीन हैं भार्गव, अर्णैनहोत्र व गार्त्समद ३ और कृष्णात्रेयस गोत्रवी गोत्रदेवी की भद्रयोगिनी है ८ और प्रवर ३ आत्रेय, अर्चनानस और श्यावाश्व ३ और गार्ग्यायणसगोत्र की गोत्रजा देवी शांता है प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हैं १० और गार्गायण गोत्रकी गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ५ पांच हैं काश्यप, अवत्सार, शांडिल, असित व देवल हैं और गांगेयस की गोत्रदेवी शांता द्वारवासिनी है और प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि, शंख व लिखित हैं १२ व पैंग्यसगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ३ तीन हैं आंगिरस, आंबरीष व

यौवनाश्व १३ और वत्ससगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस हैं १४ व वात्ससगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है और प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान, और्व व पुरोधस १५ व वात्स्यसगोत्र की गोत्रजा देवी शीहरी है प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस हैं १६ और श्यामायनसगोत्र की गोत्रजा देवी शीहरी है और प्रवर पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हैं १७ व धारणसगोत्र की गोत्रजा देवी छत्रजा है प्रवर ३ तीनहैं अगस्त्य, दार्वच्युत व दध्यवाहन हैं १८ और काश्यप गोत्र की गोत्रजा देवी चामुण्डा है प्रवर ३ तीन हैं काश्यप, स्यावत्सार व नैध्रुव

प्रवर ३ आङ्गिरसआम्बरीषयौवनाश्व १३ वत्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १४वात्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर५ भार्गवच्यावन आप्नुवान् और्वपुरोधसः १५ वात्स्यसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १६ श्यामायनसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्व जमदग्निः १७ धारणसगोत्रस्य गोत्रजा छत्रजा प्रवर ३ अगस्त्यदार्वच्युतदध्यवाहन १८ काश्यपगोत्रस्य गोत्रजा चामुण्डा प्रवर ३ काश्यपस्यावत्सार नैध्रुव १९ भरद्वाजगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ आङ्गिरस बार्हस्पत्यभारद्वाज २२ माण्डव्यसगोत्रस्य वत्ससवात्स्यसवात्स्यायनस ४ सामान्यलौगाक्षसगोत्रस्य गोत्रजा भद्रयोगिनी प्रवर ३ काश्यपवसिष्ठ अवत्सार २० कौशिकसगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ विश्वामित्र अथर्व भारद्वाज २१ सामान्यप्रवर १ पैङ्ग्यसभरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षसगार्ग्यायनसकाश्यपकश्यप ४ समानप्रवर ३

हैं १९ और भरद्वाज गोत्र की गोत्रजा पक्षिणी देवी है प्रवर ३ तीन हैं आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज २२ व मांडव्यसगोत्र के वत्स, सवात्स्यस, वात्स्यायनस ये तीन प्रवर हैं ४ और सामान्य लौगाक्षस गोत्र की गोत्रजा देवी भद्रयोगिनी है प्रवर ३ तीन हैं काश्यप, वसिष्ठ, अवत्सार २० कौशिकसगोत्र की गोत्रजा देवी पक्षिणी है प्रवर ३ तीन हैं विश्वामित्र, अथर्व व भरद्वाज २१ सामान्य प्रवर १ पैंग्यस भरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षस, गार्ग्यायनस, काश्यप, कश्यप ४ समान प्रवर ३ तीन

हैं कौशिक, कुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्यु, लौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ पांच हैं ॥ जितने गोत्रों के प्रवरों में एक विश्वामित्रजी वर्तमान हैं उतने गोत्रों का सगोत्र होने के कारण परस्पर विवाह नहीं होता है ॥ ५ ॥ समान प्रवर व समानगोत्रवाली तथा माता के सपिण्ड (सातपुश्तियों के इसपार) वाली व जिसकी औषधि न होसकै ऐसे रोगवाली व अजातलोम्नी तथा पहले अन्य की ब्याही व पुत्ररहित की कन्या व बहुतही काली कन्या को त्याग करै ॥ ६ ॥ और जिन प्रवरों में एकही ऋषि वर्तमान हैं भृगु व अंगिरा गण को छोड़कर उतने में सगोत्रता होती है ॥ ७ ॥ और सामान्य से पांच व तीन प्रवरों में और तीन व दो में और ऐसेही भृगु

कौशिककुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्युलौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ ॥ यावतां प्रवरेष्वेको विश्वामित्रोऽनुवर्तते ॥ न तावतां सगोत्रत्वाद्विवाहः स्यात्परस्परम् ॥ ५ ॥ त्यजेत्समानप्रवरां सगोत्रां मातुः सपिण्डामचिकित्स्यरोगाम् ॥ अजातलोम्नीं च तथान्यपूर्वां सुतेन हीनस्य सुतां सुकृष्णाम् ॥ ६ ॥ एक एव ऋषिर्यत्र प्रवरेष्वनुवर्तते ॥ तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥ ७ ॥ पञ्चसु त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥ ८ ॥ समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च ॥ तस्यामुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ९ ॥ कात्यायनः ॥ परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा ॥ त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १० ॥ उत्सृज्य तां ततो भार्यां मातृवत्परिपालयेत् ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्यः ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ॥ पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ १२ ॥ असमानप्रवरैर्विवाह इति गौतमः ॥ यद्येकं प्रवरं भिन्नं मातृगोत्र

व अंगिरा गणों में तथा शेष प्रवरों में एक को भी त्याग करै ॥ ८ ॥ और समान गोत्र व प्रवरवाली कन्या को ब्याह कर व संगम कर उसमें चांडाल पुत्र को पैदाकरके मनुष्य ब्राह्मणताही से हीन होजाता है ॥ ९ ॥ कात्यायन ने कहा है कि समान गोत्र व समान प्रवरवाली कन्या को ब्याह कर ब्राह्मण उसको त्याग कर तदनन्तर चान्द्रायण व्रत करै ॥ १० ॥ उसके उपरान्त उसको त्यागकर माता की नाईं पालन करै ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्य ने कहा है कि बिन रोगवाली व भाइयोंवाली तथा असमान ऋषि व गोत्र में उपजी हुई कन्या को ब्याहै और माता से पांच व सात पुश्तियों के उपरान्त तथा पिता से ॥ १२ ॥ असमान गोत्र व प्रवरों से विवाह करना

चाहिये ऐसा गौतम ने कहा है ॥ व यदि माता के गोत्र व प्रवर का एकही प्रवर पृथक् हो तो उसमें विवाह न करना चाहिये क्योंकि वह कन्या बहन मानी गई है ॥ १३ ॥ और जो बड़ा भाई स्थित होनेपर स्त्री व अग्नि का संयोग करता है वह परिवेत्ता जानने योग्य है और जेठा भाई परिवित्त होताहै ॥ १४ ॥ और उद्‌री स्त्री में उपजी हुई नीचकुलवाली स्त्री सदैव वर्जित करने योग्य है वचन व मन से दी हुई और कौतुक से जिसका मंगल कर्म किया गया है ॥ १५ ॥ और जिसका जल से संकल्प हुआ है व जिसका पाणिग्रहण हुआ है व जिसने अग्नि की प्रदक्षिणा की है व जिसके संतान पैदा होचुकी है वह उद्‌री है ॥ १६ ॥ ये वंश को अग्नि की

वरस्य च ॥ तत्रोद्वाहो न कर्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत् ॥ १३ ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १४ ॥ सदा पौनर्भवा कन्या वर्जनीया कुलाधमा ॥ वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुक मङ्गला ॥ १५ ॥ उदकस्पर्शिता या च या च पाणिगृहीतका ॥ अग्निं परिगता या च पुनर्भूः प्रसवा च या ॥ १६ ॥ इत्येताः काश्यपेनोक्ता दहन्ति कुलमग्निवत् ॥ १७ ॥ अथावटङ्काः कथ्यन्ते गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मण्डकीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १९ वालूआ २० पोकीया २१ वाकीया २२ मकाल्या २३ लाडआ २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलण्डीया २९ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमघ ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३९ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥ मातुलस्य

नाई जलाती हैं ऐसा काश्यपजी ने कहा है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त अवटंक कहेजाते हैं कि गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मंडकीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १९ वालूआ २० पोकीया २१ वाकीया २२ मकाल्या२३ लाडआ २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलण्डीया २९ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमघ ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३९ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥ और मामा की कन्या व माता

के गोत्र की कन्या को ब्याह कर और समानप्रवरवाली कन्या को ब्याह करके उसको छोड़कर चान्द्रायण करै ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य स्थान में जौन जौन हैं देवि । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसेवि ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि स्थानवासिनी योगिनियों को ब्रह्मा, विष्णु व शिव जीने निर्माण किया है तो किस स्थान में कौनसी व कैसी देवियां हैं उनको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! तुम सर्वज्ञ व कुलीन हो और बहुत

सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च ॥ समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्य माहात्म्ये श्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ योगिन्यः स्थानवासिन्यो काजेशेन विनिर्मिताः ॥ कस्मिन्स्थाने हि का देव्यः कीदृश्यस्ता वदस्व मे ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ सर्वज्ञोसि कुलीनोसि साधु पृष्टं त्वयानघ ॥ कथयिष्याम्यहं सर्वमखिलेन युधिष्ठि र ॥ २ ॥ नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ नानावसनसंवीता नानायुधसमन्विताः ॥ ३ ॥ नानावाहनसं युक्ता नानास्वरनिनादिनीः ॥ भयनाशाय विप्राणां काजेशेन विनिर्मिताः ॥ ४ ॥ प्राच्यां याम्यामुदीच्यां च प्रती च्यां स्थापिता हि ताः ॥ आग्नेय्यां नैर्ऋते देशे वायव्येशानयोस्तथा ॥ ५ ॥ आशापुरी च गात्रायी छत्रायी ज्ञानजा तथा ॥ पिप्पलाम्बा तथा शान्ता सिद्धा भट्टारिका तथा ॥ ६ ॥ कदम्बा विकटा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ मातङ्गी

अच्छा तुमने पूंछा मैं सब को सम्पूर्णता से कहता हूं ॥ २ ॥ कि अनेक भांति के आभूषणोंसे संयुत तथा अनेक भांति के रत्नों से शोभित और अनेक भांति के वसनों को पहने व अनेक प्रकार के अस्त्रों से वे देवियां संयुत हैं ॥ ३ ॥ और अनेक भांति की सवारियों से युक्त व अनेक भांति के शब्दों से बोलनेवाली वे ब्राह्मणों की भय के नाश के लिये ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से बनाई गई हैं ॥ ४ ॥ और वे पूर्व, दक्षिण, उत्तर व पश्चिम में स्थापित कीगई हैं और आग्नेय व नैर्ऋत्य स्थान में और वायव्य व ईशान में स्थापित हैं ॥ ५ ॥ आशापुरी, गात्रायी, छत्रायी व ज्ञानजा, पिप्पलाम्बा, शांता व सिद्धा और भट्टारिका ॥ ६ ॥ कदम्बा, विकटा, मीठा, सुपर्णा, वसुजा व मातंगी

महादेवी, वाराही और मुकुटेश्वरी ॥ ७ ॥ और भद्रा महाशक्ति व महाबलवती सिंहारा ये व अन्य बहुतसी वे देवियां कही नहीं जासक्ती हैं॥ ८ ॥ वे देवियां अनेक भांति के रूप को धारण करनेवाली व अनेक प्रकार के वेषों में आश्रित देवियां स्थान से उत्तरदिशा के भागमें आशापूर्णा के समीप हैं॥ ९ ॥ पूर्व में आनन्द को देनेवाली आनन्दा देवी है और उत्तर में वसंती है व हर्ष से अनेक प्रकार के रूपों को वे धारण करती हैं॥ १० ॥ और जलदान से तृप्त कीहुई ये देवियां प्रिय कामनाओं को देती हैं व नैर्ऋत्य दिशा के भाग में शांति को देनेवाली शांता देवी है ॥ ११ ॥ वरदायिनी व चार भुजाओंवाली वह देवी सिंह के ऊपर बैठी है और फिर भट्टारी महाशक्ति

च महादेवी वाराही मुकुटेश्वरी॥ ७॥ भद्रा चैव महाशक्तिः सिंहारा च महाबला ॥ एताश्चान्याश्च बह्व्यस्ताः कथितुं नैव शक्यते ॥ ८ ॥ नानारूपधरा देव्यो नानावेषसमाश्रिताः ॥ स्थानादुत्तरदिग्भागे आशापूर्णासमीपतः ॥ ९ ॥ पूर्वे तु विद्यते देवी आनन्दानन्ददायिनी ॥ वसन्ती चोत्तरे देव्यो नानारूपधरा मुदा ॥ १० ॥ इष्टान्कामान्ददत्येता जलदानेन तर्पिताः ॥ स्थाने नैर्ऋतिदिग्भागे शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ ११ ॥ सिंहोपरि समासीना चतुर्हस्ता वरप्रदा ॥ भट्टारी च महाशक्तिः पुनस्तत्रैव तिष्ठति ॥ १२ ॥ संस्तुता पूजिता भक्त्या भक्तानां भयनाशिनी ॥ स्थानात्तु सप्तमे क्रोशे क्षेमलाभा व्यवस्थिता ॥ १३ ॥ सा विलेपमयी पूज्या चिन्तिता सिद्धिदायिनी ॥ पूर्वस्यां दिशि लोकैस्तु बलिदानेन तर्पिता ॥ परिवारेण संयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ १४ ॥ अचिन्त्यरूपचरिता सर्वशत्रुविनाशनी ॥ सन्ध्यायास्त्रिषु कालेषु प्रत्यक्षैव हि दृश्यते ॥ १५ ॥ स्थानात्तु सप्तमे क्रोशे दक्षिणे विन्ध्यवासिनी ॥ सायुधा

वहीं पर स्थित है ॥ १२ ॥ भक्ति से स्तुति कीहुई व पूजी हुई वह भक्तों के भयको नाशनेवाली है और स्थान से सात कोसपर क्षेमलाभा देवी स्थित है ॥ १३ ॥ लेपमयी वह पूजने योग्य है और स्मरण कीहुई वह सिद्धि को देती है और पूर्व दिशा में परिवार समेत लोगों से तृप्त कीहुई वह भुक्ति, मुक्ति को देती है ॥ १४ ॥ और वह अचिन्तनीय रूप व चरित्रवाली है व सब शत्रुवों को नाशनेवाली है और संध्या के तीनों समयों में वह प्रत्यक्षही देखपड़ती है ॥ १५ ॥ और स्थान से

दक्षिण में सात कोसपर विन्ध्यवासिनी देवी है अस्त्रों समेत व रूप से संयुत वह भक्तों के भय को नाशनेवाली हैं ॥ १६ ॥ और पश्चिम में उतनीही भूमि में निम्बजा देवी स्थित है बहुत बलवती वह देखनेपर भी नयनों को आनन्द देती है ॥ १७ ॥ और स्थान से उत्तर दिशा के भाग में उतनीही भूमि पै बहुसुवर्णाक्ष नामक शक्ति स्थित है पूजीहुई वह सुवर्ण को देती है ॥ १८ ॥ और स्थान से वायव्यकोण में कोसभर पर समय में छाग को धारनेवाली क्षेत्रधरा महादेवी स्थित है ॥ १९ ॥ और नगर से उत्तर दिशा के भाग में कोसभरपर सब के उपकार में परायण व स्थान के उपद्रव को नाशनेवाली कर्णिका देवी है ॥ २० ॥ और स्थान से नैर्ऋत्य दिशा

रूपसम्पन्ना भक्तानां भयहारिणी ॥ १६ ॥ पश्चिमे निम्बजा देवी तावद्भूमिसमाश्रिता ॥ महाबला सा दृष्टापि नयनानन्ददायिनी ॥ १७ ॥ स्थानादुत्तरदिग्भागे तावद्भूमिसमाश्रिता ॥ शक्तिर्बहुसुवर्णाक्षा पूजिता सा सुवर्णदा ॥ १८ ॥ स्थानाद्वायव्यकोणे च क्रोशमात्रमिते श्रिता ॥ क्षेत्रधरा महादेवी समये छागधारिणी ॥ १९ ॥ पुरादुत्तरदिग्भागे क्रोशमात्रे तु कर्णिका ॥ सर्वोपकारनिरता स्थानोपद्रवनाशनी ॥ २० ॥ स्थानान्निर्ऋतिदिग्भागे ब्रह्माणीप्रमुखास्तथा ॥ नानारूपधरा देव्यो विद्यन्ते जलमातरः ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवतास्थापनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥ तत्सर्वं कथयाम्यद्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १ ॥ देवा

के भाग में अनेक प्रकार के रूपों को धारनेवाली ब्रह्माणी आदिक जलमातृका देवी स्थित हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवतास्थापनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र में यज्ञ देवतन कीन । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त मैं कहता हूं कि पुरातन समय ब्रह्मा ने जो किया है उस सबको मैं इस समय कहताहूं सावधान मन होकर सुनिये ॥ १ ॥ कि देवताओं व दानवों का वैर से युद्ध हुआ और उस महादुष्ट युद्ध में देवताओं का मन

दुःखित हुआ ॥ २ ॥ और उस युद्धमें वे दुःखित हुए व ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ३ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! हम किस प्रकार दैत्यों का वध करैंगे उस यत्न को इस समय मुझ से शीघ्रही कहिये ॥ ४ ॥ ब्रह्मा बोले कि पुरातन समय यमराज की तपस्या से प्रसन्न होतेहुए मैंने व शिवजी ने और विष्णुजी ने धर्मारण्यको बनाया है ॥ ५ ॥ वहां जो दान दिया जाता है अथवा जो उत्तम यज्ञ या तप कियाजाता है वह सब कोटिगुना होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ हे देवताओ ! पाप या पुण्य सब कोटिगुना होता है उसी कारण दैत्यों से वह स्थान कभी धर्षित नहीं होता है ॥ ७ ॥ ब्रह्मा का वचन सुनकर आश्चर्य समेत सब देवता ब्रह्मा को आगे करके धर्मारण्य

नां दानवानां च वैरायुद्धं बभूव ह ॥ तस्मिन्युद्धे महादुष्टे देवाः संक्लिष्टमानसाः ॥ २ ॥ बभूवुस्तत्र सोद्वेगा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन्केन प्रकारेण दैत्यानां वधमेव च ॥ कुर्मश्चाद्य उपायं हि कथ्यतां शीघ्रमेव मे ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मया हि शंकरेणैव विष्णुना हि तथा पुरा ॥ यमस्य तपसा तुष्टैर्धर्मारण्यं विनिर्मितम् ॥ ५ ॥ तत्र यद्दीयते दानं यज्ञं वा तप उत्तमम् ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं भवेदिति न संशयः ॥ ६ ॥ पापं वा यदि वा पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ तस्माद्दैत्यैर्धर्षितं न कदाचिदपि भोः सुराः ॥ ७ ॥ श्रुत्वा तु ब्रह्मणो वाक्यं देवाः सर्वे सविस्मयाः ॥ ब्रह्माणं त्वग्रतः कृत्वा धर्मारण्यमुपाययुः ॥ ८ ॥ सत्रं तत्र समारभ्य सहस्राब्दमनुत्तमम् ॥ वृत्वाऽऽचार्यं चाङ्गिरसं मार्कण्डेयं तथैव च ॥ ९ ॥ अत्रिं च कश्यपं चैव होतारं समकल्पयन् ॥ जमदग्निं गौतमं च अध्वर्युत्वं न्यवेदयन् ॥ १० ॥ भरद्वाजं वसिष्ठं तु प्रत्यध्वर्युत्वमादिशन् ॥ नारदं चैव बाल्मीकिं नोदनायाकरोत्तदा ॥ ११ ॥ ब्रह्मासने च ब्रह्माणं स्थापयामासुरादरात् ॥ क्रोशचतुष्कमात्रां च वेदिं कृत्वा सुरैस्ततः ॥ १२ ॥ द्विजाः सर्वे समाहूता यज्ञस्यार्थे हि जाप

को आये ॥ ८ ॥ और वहां हज़ार वर्षका अति उत्तम यज्ञ प्रारंभ करके आंगिरस व मार्कंडेयजी को आचार्य वरण करके ॥ ९ ॥ अत्रि व कश्यपजी को होता किया और जमदग्नि व गौतमजी को अध्वर्यु का कर्म दिया ॥ १० ॥ और भरद्वाज व वसिष्ठजी को प्रत्यध्वर्यु का कार्य दिया व उस समय नारद और बाल्मीकिजी को प्रेरणा के लिये किया ॥ ११ ॥ और ब्रह्मासन पै आदर से ब्रह्माजी को स्थापित किया तदनन्तर देवताओं ने चार कोस की वेदी बनाकर ॥ १२ ॥ यज्ञ के लिये जप करनेवाले सब

ब्राह्मणों को बुलाया जोकि ऋग्, यजुः, साम व अथर्वण वेदों को कहते थे ॥ १३ ॥ और शिवजी के पुत्र गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी को बुलाया और वज्रधारी इन्द्र व इन्द्र के पुत्र जयंत को बुलाया ॥ १४ ॥ और चार शूर देवता द्वारपाल बनाये गये तदनन्तर रक्षोघ्न इस मंत्र से अग्नि में हवन होनेलगा ॥ १५ ॥ और हे नरेश्वर ! यव से मिश्रित व शहद तथा घी से मिश्रित तिलों को उससमय उन देवताओं ने वेदमंत्रों से हवन किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर आघार व आज्यभाग को हवन कर मुनक्का, ऊंख, सुपारी, नारंगी, जंभीरी व बिजौरा निंबू को हवन किया ॥ १७ ॥ और उत्तर से नारियल व अनार को क्रम से हवन किया और दूध से संयुत शहद व घी और शक्कर

काः ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वान्वै वेदानुद्गिरयन्ति ये ॥ १३ ॥ गणनाथं शम्भुसुतं कार्त्तिकेयं तथैव च ॥ इन्द्रं वज्रधरं चैव जयन्तं चेन्द्रसूनुकम् ॥ १४ ॥ चत्वारो द्वारपालाश्च देवाः शूरा विनिर्मिताः ॥ ततो रक्षोघ्नमन्त्रेण हूयते हव्यवाहनः ॥ १५ ॥ तिलांश्च यवमिश्रांश्च मध्वाज्येन च मिश्रितान् ॥ जुहुवुस्ते तदा देवा वेदमन्त्रैर्नरेश्वर ॥ १६ ॥ आघारावाज्यभागौ च हुत्वा चैव ततः परम् ॥ द्राक्षेक्षुपूगनारिङ्गजम्बीरं बीजपूरकम् ॥ १७ ॥ उत्तरतो नालिकेरं दाडिमं च यथाक्रमम् ॥ मध्वाज्यं पयसा युक्तं कृशरं शर्करायुतम् ॥ १८ ॥ तण्डुलैः शतपत्रैश्च यज्ञे वाचं नियम्य च ॥ विचिन्त्य च महाभागाः कृत्वा यज्ञं सदक्षिणम् ॥ १९ ॥ उत्तमं च शुभं स्तोमं कृत्वा हर्षमुपाययुः ॥ अवारितान्नमददन्दीनान्धकृपणेष्वपि ॥ २० ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण दत्तमन्नं यथेप्सितम् ॥ पायसं शर्करायुक्तं साज्यशाकसमन्वितम् ॥ २१ ॥ मण्डका वटकाः पूपास्तथा वै वेष्टिकाः शुभाः ॥ सहस्रमोदकाश्चापि फेणिका घुर्घुरादयः ॥ २२ ॥ ओदनश्च तथा

समेत तिल, चावल को हवन किया ॥ १८ ॥ और यज्ञ में वचन को रोंककर चावलों व कमलों से हवन करके महाभाग देवता लोग विचार कर यज्ञ को दक्षिणा समेत करके ॥ १९ ॥ उत्तम व शुभ स्तोत्र करके हर्ष को प्राप्त हुए व उन्हों ने बिन मना कियेहुए अन्न को दीन, अन्ध और कृपणों के लिये दिया ॥ २० ॥ व विशेषकर ब्राह्मणों के लिये इच्छा के अनुकूल अन्न दियागया और शक्कर समेत व घी और शाक से संयुत खीर दीगई ॥ २१ ॥ और मंडक, बरा, पुवा और उत्तम वेष्टिका दीगई व हज़ारों लड्डू व फेनी और घुर्घुरादिक दियेगये ॥ २२ ॥ और भात व अरहर से उपजी हुई उत्तम दालि दीगई और वैसेही मूंगकी दालि व पापड़ और बरिया

दीगईं ॥ २३ ॥ व विचित्र चाटने योग्य पदार्थ दियेगये और लवंग, मिर्च व पिप्पली की राशियोंसे संयुत कुल्माष, वेल्लक व कोमल और उत्तम वालक दियेगये ॥ २४ ॥ व मिर्च समेत तथा अदरख से संयुत ककड़ियां दीगईं इस प्रकार के अन्न व अनेक भांति के शाकों को ॥ २५ ॥ हे नृप ! पुत्रों समेत अठारह हज़ार सब धर्मारण्यनिवासी द्विजोंको उस समय भोजन कराकर ॥ २६ ॥ तब वे देवता प्रतिदिन भोजन करते थे इस प्रकार उस समय हज़ार वर्षतक यज्ञ करके ॥ २७ ॥ हे राजन् ! दैत्यका वध करके वे सुखको प्राप्त हुए और सब पवनगण व देवता यकायक स्वर्ग को चलेगये ॥ २८ ॥ वैसेही सब अप्सरा और ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी मनोहर कैलास पर्वतके शिखर पै व

दाली आढकीसम्भवा शुभा ॥ तथा वै मुद्गदाली च पर्पटा वटिका तथा ॥ २३ ॥ प्रलेह्यानि विचित्राणि युक्तास्त्र्यूषणसञ्चयैः ॥ कुल्माषा वेल्लकाश्चैव कोमला वालकाः शुभाः ॥ २४ ॥ कर्कटिकाश्चार्द्रयुता मरिचेन समन्विताः ॥ एवं विधानि चान्नानि शाकानि विविधानि च ॥ २५ ॥ भोजयित्वा द्विजान्सर्वान्धर्मारण्यनिवासिनः ॥ अष्टादशसहस्राणि सपुत्रांश्च तदा नृप ॥ २६ ॥ तदा देवाः प्रतिदिनं ते कुर्वन्तिस्म भोजनम् ॥ एवं वर्षसहस्रं वै कृत्वा यज्ञं तदामराः ॥ २७ ॥ कृत्वा दैत्यवधं राजन्निर्भयत्वमवाप्नुयुः ॥ स्वर्गं जग्मुश्च सहसा देवाः सर्वे मरुद्गणाः ॥ २८ ॥ तथैवाप्सरसः सर्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ कैलासशिखरं रम्यं वैकुण्ठं विष्णुवल्लभम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मलोकं महापुण्यं प्राप्य सर्वे दिवौकसः ॥ परं हर्षमुपाजग्मुः प्राप्य नन्दनमुत्तमम् ॥ ३० ॥ स्वे स्वे स्थाने स्थिरीभूत्वा तस्थुः सर्वे हि निर्भयाः ॥ ३१ ॥ ततः कालेन महता कृताख्ययुगपर्यये ॥ लोहासुरो मदोन्मत्तो ब्रह्मवेषधरः सदा ॥ ३२ ॥ आगत्य सर्वान्विप्रांश्च धर्षयेद्धर्मवित्तमान् ॥ शूद्रांश्च वणिजश्चैव दण्डघातेन ताडयेत् ॥ ३३ ॥ विध्वंसयेच्च यज्ञादीन्होमद्रव्याणि भक्षयेत् ॥

विष्णु प्रिय वैकुंठ को ॥ २९ ॥ और महापुण्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर व सब देवता उत्तम नंदनवन को प्राप्त होकर बड़े आनन्द को प्राप्तहुए ॥ ३० ॥ और अपने अपने स्थान में स्थिर होकर सब निडर होतेहुए स्थित हुए ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद सतयुग नामक युग के बीतने पर सदैव ब्राह्मण का वेष धारनेवाला मद से उन्मत्त लोहासुर ॥ ३२ ॥ आकर धर्मविदों में श्रेष्ठ सब ब्राह्मणों की धर्षणा करनेलगा और शूद्रों व वणिजों को दंडघात से मारता था ॥ ३३ ॥ और यज्ञादिकों को

विध्वंस करता था व होम की वस्तुवों को खाता था और बड़ी भारी वेदियों को देखकर मोह से दूषित करता था ॥ ३४ ॥ और पवित्र भूमियों को मूत्रोत्सर्ग व मल से दूषित करता था व हे राजन् ! वह वन से स्त्रियों को दूषित करता था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर लोहासुर के डर से विकल वे सब ब्राह्मण परिवार समेत भगकर दशो दिशाओं को चले गये ॥ ३६ ॥ व हे नृप ! भय से दुःखित वे बनिया ब्राह्मणों के पीछे चले और बड़े डर से भीत होतेहुए वे दूर जाकर व विचार कर ॥ ३७ ॥ तब शूद्रों व ब्राह्मणों समेत सब मिलकर चलेगये और निर्जन तथा बहुतही पवित्र मुक्तावन को वे गये ॥ ३८ ॥ व हे नरेश्वर ! थोड़ेही दूर पै उन्हों ने निवास कराया और उन्हों ने वजिङ्

वेदिका दीर्घिका दृष्ट्वा कश्मलेन प्रदूषयेत ॥ ३४ ॥ मूत्रोत्सर्गपुरीषेण दूषयेत्पुण्यभूमिकाः ॥ गहनेन तथा राजन्स्त्रियो दूषयते हि सः ॥ ३५ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे लोहासुरभयातुराः ॥ प्रणष्टाः सपरीवारा गतास्ते वै दिशो दश ॥ ३६ ॥ वणिजस्ते भयोद्विग्ना विप्राननुययुर्नृप ॥ महाभयेन सम्भीता दूरं गत्वा विमृश्य च ॥ ३७ ॥ सह शूद्रैर्द्विजैः सर्व एकीभूत्वा गतास्तदा ॥ मुक्तारण्यं पुण्यतमं निर्जनं हि ययुश्च ते ॥ ३८ ॥ निवासं कारयामासुर्नातिदूरे नरेश्वर ॥ वजिङ्नाम्ना हि तद्ग्रामं वासयामासुरेव ते ॥ ३९ ॥ लोहासुरभयाद्राजन्विप्रनाम्ना विनिर्मितम् ॥ शम्भुना वणिजो यस्मात्तस्मात्तन्नामधारणम् ॥ ४० ॥ शम्भुग्राममिति ख्यातं लोके विख्यातिमागतम् ॥ अथ केचिद्भयान्नष्टा वणिजः प्रथमं तदा ॥ ४१ ॥ ते नातिदूरे गत्वा वै मण्डलं चक्रुरुत्तमम् ॥ विप्रागमनकाङ्क्षास्ते तत्र वासमकल्पयन् ॥४२॥ मण्डलेति च नाम्ना वै ग्रामं कृत्वा न्यवीविसन् ॥ विप्रसार्थपरिभ्रष्टाः केचित्तु वणिजस्तदा ॥ ४३ ॥ अन्यमार्गे

नाम से उस ग्राम को बसाया ॥ ३९ ॥ व हे राजन् ! लोहासुर के भय से विप्रों के नाम से शिवजी से बनाया गया जिस लिये उसमें वणिज् बसते हैं उस कारण उस नाम को धारनेवाला है ॥ ४० ॥ व शंभुग्राम ऐसा वह संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और उस समय कितेक वणिज् लोग पहले भय से भगगये ॥ ४१ ॥ उन्हों ने थोड़ीदूर जाकर उत्तम मंडल किया व ब्राह्मणों के आने की इच्छावाले उन्हों ने वहां निवास किया ॥ ४२ ॥ और मंडल ऐसे नाम से ग्राम करके उन्हों ने निवास किया और उस समय ब्राह्मणों के गण से अलग होकर कितेक वणिज् लोग ॥ ४३ ॥ लोहासुर के डर से विकल होकर जो अन्य मार्ग में गये और धर्मारण्य से थोड़ीदूर

जाकर चिंता को प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ कि हम लोग किस मार्ग में प्राप्त हैं व ब्राह्मण लोग किस मार्ग में प्राप्तहुए इस बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त उन्हों ने वहां निवास किया ॥ ४५ ॥ जिस लिये वे अन्य मार्ग में गये थे उस कारण उन्हों ने उस नाम से उपजेहुए अडालंज ऐसे पृथ्वी में प्रसिद्ध ग्राम को बसाया ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! जिस नाम का जो वणिज् जिस ग्राम में निवासी हुआ उस ग्रामका वह नाम हुआ ॥ ४७ ॥ व हे राजन् ! भय से विकल वणिज् और ब्राह्मण जिसलिये मोह को प्राप्त हुए उसी कारण उन सबों ने मोह ऐसी संज्ञा को कहा ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वे सब भगकर दशो दिशाओं को चले गये और ब्राह्मण व वणिज् भी धर्मारण्य में नहीं स्थित

गता ये वै लोहासुरभयार्दिताः ॥ धर्मारण्यान्नातिदूरे गत्वा चिन्तामुपाययुः ॥ ४४ ॥ कस्मिन्मार्गे वयं प्राप्ताः कस्मिन्प्राप्ता द्विजातयः ॥ इति चिन्तां परां प्राप्ता वासं तत्र त्वकारयन् ॥ ४५ ॥ अन्यमार्गे गता यस्मात्तस्मात्तन्नामसम्भवम् ॥ ग्रामं निवासयामासुरडालञ्जमिति क्षितौ ॥४६॥ यस्मिन्ग्रामे निवासी यो यत्संज्ञश्च वणिग्भवेत् ॥ तस्य ग्रामस्य तन्नाम ह्यभवत्पृथिवीपते ॥ ४७ ॥ वणिजश्च तथा विप्रा मोहं प्राप्ता भयार्दिताः ॥ तस्मान्मोहेतिसंज्ञां ते राजन्सर्वे निरब्रुवन् ॥ ४८ ॥ एवं प्रनषणं नष्टास्ते गताश्च दिशो दश ॥ धर्मारण्ये न तिष्ठन्ति वाडवा वणिजोऽपि वा ॥ ४९ ॥ उद्वसं हि तदा जातं धर्मारण्यं च दुर्लभम् ॥ भूषणं सर्वतीर्थानां कृतं लोहासुरेण तत् ॥ ५० ॥ नष्टद्विजं नष्टतीर्थं स्थानं कृत्वा हि दानवः ॥ परां मुदमवाप्यैव जगाम स्वालयं ततः ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येज्ञातिभेदवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

हुए ॥ ४९ ॥ तब सब तीर्थों का भूषण धर्मारण्य उजाड़ होगया और लोहासुर ने उसको दुर्लभ करदिया ॥ ५० ॥ उस स्थान को ब्राह्मणों से रहित व तीर्थों से रहित करके दानव बड़े आनन्द को प्राप्त होकर तदनन्तर अपने स्थान को चला गया ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ज्ञातिभेदवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्रकर अहै यथा माहात्म्य । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भूपते ! अनेक पूर्व जन्मों के पातकों का नाशक इस तीर्थ का माहात्म्य मैंने तुम्हारे आगे कहा ॥ १ ॥ स्थानों के मध्य में वह उत्तम स्थान बड़ा भारी कल्याणकारक है पुरातन समय बुद्धिमान् महारुद्रजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी के आगे कहा है ॥ २ ॥ हे पार्थ ! उसमें नहाकर तुम सब पाप से छूट जावोगे शिवजी बोले कि हे तात ! व्यासजी के उस वचन को सुनकर साधुवों के पालन में तत्पर धर्म के पुत्र धर्मराज युधिष्ठिरजी ने उस समय महापातकों के नाश के लिये धर्मारण्य में प्रवेश किया और उन्हों ने इच्छा के अनुकूल वहां तीर्थों में

व्यास उवाच ॥ एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं मया प्रोक्तं तवाग्रतः ॥ अनेकपूर्वजन्मोत्थपातकघ्नं महीपते ॥ १ ॥ स्थानानामुत्तमं स्थानं परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्कन्दस्याग्रे पुरा प्रोक्तं महारुद्रेण धीमता ॥ २ ॥ त्वं पार्थ तत्र स्नात्वा हि मोक्ष्यसे सर्वपातकात् ॥ शिव उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा व्यासवाक्यं हि धर्म्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ धर्मात्मजस्तदा तात धर्मारण्यं समाविशत् ॥ महापातकनाशाय साधुपालनतत्परः ॥ ४ ॥ विगाह्य तत्र तीर्थानि देवतायतनानि च ॥ इष्टापूर्तादिकं सर्वं कृतं तेन यथेप्सितम् ॥ ५ ॥ ततः पापविनिर्मुक्तः पुनर्गत्वा स्वकं पुरम् ॥ इन्द्रप्रस्थं महासेन शशास वसुधातलम् ॥ ६ ॥ इदं हि स्थानमासाद्य ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥ भुक्त्वा भोगान्पार्थिवांश्च परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥ श्राद्धकाले च सम्प्राप्ते ये पठन्ति द्विजातयः ॥ ८ ॥ उद्धृताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ द्वापरे च युगे भूत्वा व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ ९ ॥ वारिमात्रेण धर्मवाप्यां गया

नहाकर व देवस्थानों को जाकर सब इष्टापूर्तादिक कर्म किया ॥ ३ । ४ । ५ ॥ तदनन्तर फिर हे महासेन ! पातकों से छूटेहुए उन्हों ने अपने नगर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को जाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ६ ॥ इस स्थान को आकर जो उत्तम मनुष्य इसको सुनते हैं उनकी भुक्ति व मुक्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और राजाओं के सुखों को भोगकर वे उत्तम मोक्ष को पाते हैं व श्राद्ध का समय प्राप्त होनेपर जो ब्राह्मण इसको पढ़ते हैं ॥ ८ ॥ उन्हों ने चन्द्रमा व सूर्य और पृथ्वी जबतक रहेगी तबतक पितरोंको उधारा है द्वापरयुग में उत्पन्न होकर महात्मा व्यासजी ने यह कहा है ॥ ९ ॥ कि धर्मवापी में जलही से मनुष्य गयाश्राद्ध का फल पाता है और

यहां आयेहुए मनुष्य का पाप यमराज के स्थान में स्थित होता है याने नाश होजाता है॥ १० ॥ लोकों के हित की इच्छा से धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने कहा है कि विना अन्न व विना कुश और विना आसन के ॥ ११ ॥ जल से कोटि जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाताहै कुरु जांगल में सुवर्णशृंगवाली हज़ार गौवों को सूर्यग्रहण में देकर जो पुण्य होता है वही धर्मवापी में तर्पण से होता है ॥ १२ ॥ तुमलोगों से यह सब धर्मारण्य का कार्य कहागया जिसको सुनकर ब्रह्मघाती व गोघाती मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ १३ ॥ गया में इक्कीसबार पिंडपातन से जो फल होता है उस फल को मनुष्य एकबार इसको सुनने पर पाता है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

श्राद्धफलं लभेत् ॥ अत्रागतस्य मर्त्यस्य पापं यमपदे स्थितम् ॥ १० ॥ कथितं धर्मपुत्रेण लोकानां हितकाम्यया ॥ विना अन्नैर्विना दर्भैर्विना चासनमेव वा ॥ ११ ॥ तोयेन नाशमायाति कोटिजन्मकृतं त्वघम् ॥ सहस्ररुक्मशृङ्गीणां धेनूनां कुरुजाङ्गले ॥ दत्त्वा सूर्यग्रहे पुण्यं धर्मवाप्यां च तर्पणात् ॥ १२ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं धर्मारण्यस्य चेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥ एकविंशतिवारैस्तु गयायां पिण्डपातने ॥ तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कान्देधर्मारण्यतीर्थमाहात्म्यप्रभावकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सूत उवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ धर्मारण्ये यथाऽऽनीता सत्यलोकात्सरस्वती ॥१॥ मार्कण्डेयं सुखासीनं महामुनिनिषेवितम् ॥ तरुणादित्यसंकाशं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थमयं दिव्यमृषीणां प्रवरं द्विजम् ॥ आसनस्थं समायुक्तं धन्यं पूज्यं दृढव्रतम् ॥ ३ ॥ योगात्मानं परं शान्तं कमण्डलुधरं विभुम्॥

धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधर्मारण्यतीर्थमाहात्म्यप्रभावकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

दो० । यथा सरस्वति नदीकर है अति अतुल प्रभाव । पच्चिसवें अध्याय में सोइ चरित सरसाव ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं अन्य उत्तम तीर्थ का माहात्म्य कहताहूं कि जिस प्रकार धर्मारण्यमें सत्यलोक से सरस्वतीजी लाईगई हैं ॥ १ ॥ सुख से बैठे हुए व महामुनियों से सेवित तथा तरुणसूर्य के समान व सब शास्त्रों में प्रवीण मार्कंडेयजी ॥ २ ॥ जोकि समस्त तीर्थमय व ऋषियों के मध्य में श्रेष्ठ व दिव्य द्विज, आसन पै बैठे, धन्य, पूज्य व दृढ़व्रत ॥ ३ ॥ और योगात्मक व बहुतही शान्त, कमंडलु

को धारण किये व्यापक, रुद्राक्ष सूत्रधारी, शान्त व कल्पान्तवासी ॥ ४ ॥ और क्षोभरहित, ज्ञानी, स्वस्थ व पितामह के समान प्रकाशवान् इस प्रकार समाधि में स्थित व हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले ॥ ५ ॥ मार्कंडजी को स्तुतियों से भक्ति करके प्रणाम कर मुनियों ने कहा कि हे भगवन् ! नैमिषारण्य में बारह वर्ष के यज्ञ में ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम ने जिस ब्रह्मा की कन्या को उतारा है व पृथ्वी में वहीं गंगाका अवतरण कराया है ॥ ७ ॥ कुलपति शौनक मुनि के आगे अन्य मुनियों के भी सुनतेहुए सूत मुनि से जो गाया व कहागया है ॥ ८ ॥ उस बड़े भारी आख्यानको सुनकर हमलोगों के हृदय में स्थित है कि दर्शन से भी सरस्वतीजी प्राणियों के

अक्षसूत्रधरं शान्तं तथा कल्पान्तवासिनम् ॥ ४ ॥ अक्षोभ्यं ज्ञानिनं स्वस्थं पितामहसमद्युतिम् ॥ एवं दृष्ट्वा समाधिस्थं प्रहर्षोत्फुल्ललोचनम् ॥ ५ ॥ प्रणम्य स्तुतिभिर्भक्त्या मार्कण्डं मुनयोऽब्रुवन् ॥ भगवन्नैमिषारण्ये सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥ त्वयावतारिता ब्रह्मन्नदी या ब्रह्मणः सुता ॥ तथा कृतं च तत्रैव गङ्गावतरणं क्षितौ ॥ ७ ॥ गीयमानं कुलपतेः शौनकस्य मुनेः पुरः ॥ सूतेन मुनिना ख्यातमन्येषामपि शृण्वताम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाख्यानमस्माकं हृदि संस्थितम् ॥ पापघ्नी पुण्यजननी प्राणिनां दर्शनादपि ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ धर्मारण्ये मया विप्राः सत्यलोकात्सरस्वती ॥ समानीता सुरेन्द्राद्यैः शरण्या शरणार्थिनाम् ॥ १० ॥ भाद्रपदे सिते पक्षे द्वादशी पुण्यसंयुता ॥ तत्र द्वारावतीतीर्थे मुनिगन्धर्वसेविते ॥ ११ ॥ तस्मिन्दिने च तत्तीर्थे पिण्डदानादि कारयेत् ॥ तत्फलं समवाप्नोति पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १२ ॥ महदाख्यानमखिलं पापघ्नं पुण्यदं च यत् ॥ पवित्रं यत्पवित्राणां महापातकनाश

पाप को नाशनेवाली व पुण्य को पैदा करनेवाली हैं ॥ ९ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! शरण चाहनेवालोंके शरण योग्य सरस्वतीजी को मैं व सुरेन्द्रादिक लोग धर्मारण्य में भादों के शुक्लपक्ष में जो पुण्यसंयुत द्वादशी तिथि है उसमें मुनियों व गन्धर्वों से सेवित द्वारावतीतीर्थ में ले आये हैं ॥ १० । ११ ॥ उस दिन जो मनुष्य उस तीर्थ में पिंडदानादिक कर्म करता है वह उस फल को पाता है और पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ १२ ॥ यह बड़ा भारी समस्त आख्यान जो पातकों का

विनाशक व पुण्यदायक है और जो पवित्रों के मध्यमें पवित्र व महापापों का विनाशक है ॥ १३ ॥ और सरस्वतीजी का जल सब मंगलों का मंगलदायक व पवित्र है और जो पुण्य प्रभास के मध्य में स्थित है क्या वह ऊपर स्वर्ग में है याने नहीं है ॥ १४ ॥ और सरस्वतीजी का जल मनुष्यों की ब्रह्महत्या को नाश करता है व सरस्वतीजी में नहाकर और पितरों व देवताओं को तर्पण कर पश्चात् पिंड को देनेवाले मनुष्य दूध पीनेवाले नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ जैसे कामधेनु गऊ प्रिय फलको देनेवाली होती हैं वैसेही स्वर्ग व मोक्ष को एकही कारणभूत सरस्वतीजी हैं ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसरस्वतीमाहा

नम् ॥ १३ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं पुण्यं सारस्वतं जलम् ॥ ऊर्ध्वं किं दिवि यत्पुण्यं प्रभासान्ते व्यवस्थितम् ॥ १४ ॥ सारस्वतजलं नृणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ सरस्वत्यां नराः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ पश्चात्पिण्डप्रदातारो न भवन्ति स्तनन्धयाः ॥ १५ ॥ यथा कामदुघा गावो भवन्तीष्टफलप्रदाः ॥ तथा स्वर्गापवर्गैकहेतुभूता सरस्वती ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसरस्वतीमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ मार्कण्डेयोद्घाटितं वै स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ तत्र ये देहसंत्यागं कुर्वन्ति फलकाङ्क्षया ॥ १ ॥ लभन्ते तत्फलं ह्यन्ते विष्णोः सायुज्यमाप्नुयुः ॥ अतः किं बहुनोक्तेन द्वारवत्यां सदा नरैः ॥ २ ॥ देहत्यागः प्रकर्त्तव्यो विष्णोर्लोकजिगीषया ॥ अनाशके जले वाग्नौ ये वसन्ति नरोत्तमाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः पुरीं

त्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी में अनशन से फल होत । छब्बिसवें अध्याय में सोई चरित उदोत ॥ व्यासजी बोले कि मार्कंडेयजी ने मूंदेहुए स्वर्गद्वार को खोलदिया है क्योंकि उस सरस्वती नदी के समीप जो मनुष्य फल की इच्छा से शरीर को त्याग करते हैं ॥ १ ॥ वे उस फल को पाते हैं कि अन्त में विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाते हैं इससे बहुत कहने से क्या है द्वारका में सदैव मनुष्यों को ॥ २ ॥ विष्णुलोक के जीतने की इच्छा से शरीर को त्याग करना चाहिये और जो उत्तम मनुष्य अनशन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व्रत और जल व अग्नि में बसते हैं सब पापों से छूटेहुए वे सदैव विष्णुपुरी को प्राप्तहोते हैं ॥ ३ ॥ व रोगरहित अन्य भी जो पुरुष अनशन व्रत को प्राप्त होता है सब पापोंसे छूटाहुआ वह मनुष्य विष्णुजी की पुरीको जाता है ॥ ४ ॥ और सैकड़ों व हज़ारों वर्षतक वह ब्राह्मण अन्त में स्वर्ग में बसता है पृथ्वी में ब्राह्मणों से अधिक पवित्र व पावन नहीं है ॥ ५ ॥ और उपासों के समान तपस्या का कर्म नहीं है व वेद से अधिक अन्य शास्त्र नहीं है व माता के समान गुरु नहीं है ॥ ६ ॥ व अनशन धर्म से अधिक यहां अन्य तप नहीं है इसमें नहाकर जो श्राद्ध व पिंडोदक कर्म को करता है ॥ ७ ॥ उसके पितर तबतक तृप्त रहते हैं जबतक कि ब्रह्मा का दिन व राति

सदा ॥ ३ ॥ अन्योपि व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः पुरीं नरः ॥ ४ ॥ शतवर्षसहस्राणां वसेदन्ते दिवि द्विजः ॥ ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पवित्रं पावनं भुवि ॥ ५ ॥ उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म्म न विद्यते ॥ नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ ६ ॥ न धर्मात्परमस्तीह तपो नानशनात्परम् ॥ स्नात्वा यः कुरुते ऽत्रापि श्राद्धं पिण्डोदकक्रियाम् ॥ ७ ॥ तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा केशवं यस्तु पूजयेत् ॥ ८ ॥ समुक्तःपातकैः सर्वैर्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ ९ ॥ हरते सकलं पापं तस्मिंस्तीर्थे स्थितस्य सः ॥ मुक्तिदं मोक्षकामानां धनदं च धनार्थिनाम् ॥ आयुर्दं सुखदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥ १० ॥ किमन्येनात्र तीर्थेन यत्र देवो जनार्दनः ॥ स्वयं वसति नित्यं हि सर्वेषामनुकम्पया ॥ ११ ॥ तत्र यद्दीयते किञ्चिद्दानं श्रद्धासमन्वितम् ॥ अक्षयं तद्भवेत्सर्वमिह लोके परत्र च ॥ १२ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च यत्फ

होती है उस तीर्थ म नहाकर जो मनुष्य विष्णुजीको पूजता है ॥ ८ ॥ सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है जहांपर विष्णुजी स्थित हैं तीर्थों के मध्य में वह उत्तम तीर्थ ॥ ९ ॥ उस तीर्थ में स्थित मनुष्य के सब पापको हरता है मोक्ष चाहनेवालों को वह मुक्तिदायक व धन की इच्छावाले मनुष्यों को धनदायक है व आयुर्दायक और सुखदायक व सब कामनाओं के फल को देनेवाला है ॥ १० ॥ यहां अन्य तीर्थ से क्या है जहां कि सबों के ऊपर दया से आपही जनार्दन देवजी नित्य बसते हैं ॥ ११ ॥ वहां श्रद्धा से संयुत जो कुछ दान दिया जाता है इस लोक व परलोक में वह सब अक्षय होता है ॥ १२ ॥ विद्वानों को यज्ञ, दान व तपसे जो

फल मिलता है वह यहां उत्तम सेवकों शूद्रोंको भी मिलता है ॥ १३ ॥ व एकादशीमें उपास करके जो मनुष्य वहां श्राद्ध करताहै वह नरक से सब पितरों को उधारता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ और परमात्मा जनार्दनजी अक्षय तृप्ति को प्राप्त होते हैं और उनको उद्देश कर यहां जो दियाजाता है वह अक्षय कहा गया है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वारकामाहात्म्यवर्णनन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो लिङ्ग उत्पन्न जिमि गोवत्सक इमि नाम । सत्ताइसवें में सोई कह्यो चरित्र ललाम ॥ सूतजी बोले कि वहां उसके समीप में स्थित व मार्कंडजी से उपल-

लं प्राप्यते बुधैः ॥ तदत्र स्नानमात्रेण शूद्रैरपि सुसेवकैः ॥ १३ ॥ तत्र श्राद्धं च यः कुर्यादेकादश्यामुपोषितः ॥ स पितॄनुद्धरेत्सर्वान्नरकेभ्यो न संशयः ॥ १४ ॥ अक्षय्यां तृप्तिमाप्नोति परमात्मा जनार्द्दनः ॥ दीयतेऽत्र यदुद्दिश्य तदक्षय्यमुदाहृतम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येद्वारकामाहात्म्यवर्णनन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सूत उवाच ॥ तत्र तस्य समीपस्थं मार्कण्डेनोपलक्षितम् ॥ तीर्थं गोवत्ससंज्ञं तु सर्वत्र भुवि विश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रावतीर्य गोवत्सस्वरूपेणाम्बिकापतिः ॥ स्वयम्भूलिङ्गरूपेण संस्थितो जगतां पतिः ॥ २ ॥ आसीद्बलाहकोनाम रुद्रभक्तो महाबलः ॥ आखेटकसमायुक्तो नृपः परपुरञ्जयः ॥ ३ ॥ मृगयूथे स्थितं दृष्ट्वा गोवत्सं तत्पदातिना ॥ उक्तो राजा मया दृष्टं कौतुकं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ गोवत्सो मृगयूथस्य दृष्टो मध्यस्थितो मया ॥ तेषामेवानुरक्तोऽसौ जनन्या रहितस्तथा ॥ ५ ॥ द्रष्टुं तु कौतुकं राजा तं पदातिं पुरः स्थितम् ॥ उवाच दर्शयस्वेति गोवत्सं त्वं समाविश ॥ ६ ॥

क्षित गोवत्स नामक तीर्थ सबकहीं पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ वहां लोकों के स्वामी शिवजी गऊ के बछड़ा के स्वरूपसे अवतार लेकर स्वयंभू लिङ्ग के रूप से स्थितहैं ॥ २ ॥ बलाहक नामक बड़ा बलवान् शिवजीका भक्त हुआ है और शत्रुपुरोंको जीतनेवाला वह राजा शिकारी था ॥ ३ ॥ उसके पैदल नौकर ने मृगयूथ में स्थित गऊ का बछड़ा देखकर राजा से कहा कि हे नृपोत्तम ! मैंने एक कौतुक देखा है ॥ ४ ॥ कि मृगयूथ में स्थित गऊ के बछड़ा को मैंने देखा और माता से रहित यह उन्हीं मृगों में स्नेह करता है ॥ ५ ॥ राजा ने उस कौतुक को देखने के लिये आगे खड़े हुए उस पैदल नौकर से यह कहा कि गऊ के बछड़ा को तुम दिखावो और वन में प्रवेश करो ॥ ६ ॥

तब वन को जाकर पैदल सेवक ने राजा को उसको दिखाया और जब पैदलों से डरवाया हुआ मृगयूथ भगा ॥ ७ ॥ और पीलु वृक्षों के गुल्म में चला गया तब गऊका बछड़ा भी चला और उसके पकड़ने की इच्छावाला राजा भी उस गुल्म में पैठ गया ॥ ८ ॥ और वहां स्थित गऊ के बछड़े को उस राजा ने आपही देखा और जब तक राजा उसको ग्रहण करै तब तक वह उज्ज्वल लिङ्ग होगया ॥ ९ ॥ उसको देखकर राजा विस्मित हुआ व उसने यह चिंतन किया कि यह क्या है जब तक ऐसा विचार करता रहा तब तक शरीर को छोड़कर वह स्वर्ग को चला गया ॥ १० ॥ इसी अवसर में आकाश में सब ओर देवताओं के जय करने का गर्जित शब्द सुनपड़ा और

गत्वाटवीं तदा राज्ञो दर्शितः स पदातिना ॥ पदातिभिर्मृगानीकं दुद्राव त्रासितं यदा ॥ ७ ॥ पीलुगुल्मं प्रति गतं गोवत्सः प्रस्थितस्तदा ॥ राजा तद्धरणाकाङ्क्षो प्राविशद् गुल्ममादरात् ॥ ८ ॥ तत्र स्थितं स गोवत्समपश्यन्नृपतिः स्वयम् ॥ यावद् गृह्णाति तं तावल्लिङ्गं जातं समुज्ज्वलम् ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो राजा किमेतदित्यचिन्तयत् ॥ यावच्चिन्तयते ह्येवं देहं त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ १० ॥ अत्रान्तरे गगनतले समन्ततः श्रूयते सुरजयकारगर्जितम् ॥ पपात पुष्पवृष्टिरम्बराद्राजा गतः शिवभुवनं च तत्क्षणात् ॥ ११ ॥ तावत्पश्यति तन्नाभ्यां गोवत्सं बालकं स्थितम् ॥ नूनमेष महादेवो वत्सरूपी महेश्वरः ॥ १२ ॥ तमानेतुं समुद्युक्तो राजा तमुज्जहार च ॥ यदा तद्देवलिङ्गं तु नोत्तिष्ठति कथंचन ॥ तदा देवाः सहानेन प्रार्थयामासुरीश्वरम् ॥ १३ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्सर्वदेवेश स्थातव्यं भवता विभो ॥ शुक्लेन लिङ्गरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥ १४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ स्थास्याम्यहं सदैवात्र लिङ्गरूपेण देवताः ॥ यस्मा

आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई और उसी क्षण राजा शिवलोक को चला गया ॥ ११ ॥ तब तक उसके मध्य में गऊ के बछड़ारूपी बालक को स्थित देखा व यह विचार किया कि निश्चयकर ये बछड़ारूपी महेश्वर देवजी हैं ॥ १२ ॥ उसको लाने के लिये राजा उद्यत हुआ व राजा ने उसको उठाया जब वह देवलिङ्ग किसी प्रकार न उठा तब इस राजा समेत देवताओं ने शिवजी की प्रार्थना की ॥ १३ ॥ देवता बोले कि हे सर्वदेवेश, भगवन्, विभो ! सब लोकों का हित करनेवाले आप को सफ़ेद लिङ्गके रूप से स्थित होना चाहिये ॥ १४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवताओ ! मैं यहां लिङ्गरूप से सदैव टिकूंगा जिस लिये भादौं महीने में कृष्णपक्ष में अमावस

के दिन में मैं स्थित हुआ ॥ १५ ॥ उस कारण उस दिन उसमें स्नान करके जो विधि से उस लिङ्ग को पूजैंगे उसको भय न होगी ॥ १६ ॥ और पिंडदान करने से जो पूर्वज पितर सैकड़ों बरस से भयंकर रौरव व कुंभीपाक नरक में प्राप्त हैं ॥ १७ ॥ व जो अनेक नरकों में स्थित हैं और जो पशु, पक्षियों की योनि में प्राप्त हैं एक बार पिंड देने से उनकी अक्षय गति होती है ॥ १८ ॥ तदनन्तर सब देवताओं से संयुत बलाहक राजा ने सब देवताओं के समीप उस लिङ्ग को स्थापन किया ॥ १९ ॥ और लोकों के हित की कामना से बहुत दानों को किया जब तक वे पूजन करैं तब तक आपही शिवजी भी आगये ॥ २० ॥ शिवजी बोले कि इस रात्रि में श्रद्धा

द्भाद्रपदे मासि कृष्णपक्षे कुहूदिने ॥ १५ ॥ तस्मात्तद्दिवसे तत्र स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ लिङ्गं ये पूजयिष्यन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥ १६ ॥ कृतेन पिण्डदानेन पूर्वजाः शाश्वतीः समाः ॥ रौरवे नरके घोरे कुम्भीपाके च ये गताः ॥१७॥ अनेकनरकस्थाश्च तिर्यग्योनिगताश्च ये ॥ सकृत्पिण्डप्रदानेन स्यात्तेषामक्षया गतिः ॥ १८ ॥ ततो बलाहको राजा सर्वदेवसमन्वितः ॥ स्थापयामास तल्लिङ्गं सर्वदेवसमीपतः ॥ १९ ॥ चकार बहुदानानि लोकानां हितकाम्यया ॥ यावदर्चयते ह्येवं रुद्रोऽपि स्वयमागतः ॥ २० ॥ रुद्र उवाच ॥ अस्यां रात्रौ तु मनुजाः श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ येऽर्चयिष्यन्ति देवेशं तेषां पुण्यमनन्तकम् ॥ २१ ॥ जागरं ये करिष्यन्ति गीतशास्त्रपुरःसरम् ॥ उद्धरिष्यन्ति ते मर्त्याः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ २२ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि नैमिषं पुष्करं गया ॥ प्रयागं च प्रभासं च द्वारका मथुराऽर्बुदः ॥ २३ ॥ यावन्न दृश्यते लिङ्गं गोवत्सं परमाद्भुतम् ॥ यदा हि कुरुते भावं गोवत्सगमनं प्रति ॥ २४ ॥ स्ववंशजास्तदा सर्वे नृत्य

व भक्ति से संयुत जो मनुष्य देवेश शिवजी को पूजैंगे उनको अनन्त पुण्य होगा ॥ २१ ॥ और गीतशास्त्रपूर्वक जो जागरण करैंगे वे मनुष्य एक सौ एक पुश्तियों को उधारैंगे ॥ २२ ॥ तब तक तीर्थ, नैमिष, पुष्कर व गया और प्रयाग, प्रभास, द्वारका, मथुरा और अर्बुद ये तीर्थ गर्जते हैं ॥ २३ ॥ जब तक कि बहुतही अद्भुत गोवत्स नामक लिङ्ग नहीं देखा जाता है जब मनुष्य गोवत्सजी के गमन में भक्ति करता है ॥ २४ ॥ तब निश्चय कर हर्षित होते हुए सब अपने वंश में

उपजे हुए पितर नाचते हैं ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजो ! वहां जो अन्य अद्भुत वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये कि जिस के सुनने से सब पापों का नाश होता है ॥ २६ ॥ जब सब देवताओं ने प्राचीन लिङ्ग को स्थापन किया तब विष्णुजी के व सब देवताओं के स्थापन के गुण से ॥ २७ ॥ वह प्रतिदिन अणु प्रमाण भर से बढ़नेलगा तदनन्तर डरे हुए वे मनुष्य व देवता उन शिवजी की शरण में गये ॥ २८ ॥ देवता बोले कि हे देवेश ! वृद्धि को संहार कीजिये तो लोकों का कल्याण होवै ऐसा कहने पर तदनन्तर लिङ्ग से आकाशवाणी बोली ॥ २९ ॥ शिववाणी बोली कि हे लोगो ! तुमलोगों को भय मत होवै इस यत्न को सुनिये कि किसी चांडाल

न्ति हर्षिता ध्रुवम् ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ यच्चान्यदद्भुतं तत्र वृत्तान्तं शृणुत द्विजाः ॥ येन वै श्रुतमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २६ ॥ यदा वै स्थापितं लिङ्गं सर्वदेवैः पुरातनम् ॥ विष्णोः प्रतिष्ठानगुणात्सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ २७ ॥ अणुमात्रप्रमाणेन प्रत्यहं समवर्द्धत ॥ ततस्ते मनुजा देवा भीतास्तं शरणं ययुः ॥ २८ ॥ देवा ऊचुः ॥ वृद्धिं संहर देवेश लोकानां स्वस्ति तद्भवेत् ॥ एवमुक्ते ततो लिङ्गाद्वाग्बभाषाशरीरिणी ॥ २९ ॥ शिववाण्युवाच ॥ हे लोका माभयं वोऽस्तु उपायः श्रूयतामयम् ॥ कश्चिच्चण्डालमानीय मत्पुरः स्थाप्यतां ध्रुवम् ॥ ३० ॥ चण्डालांश्च समानीय दधुर्देवस्य ते पुरः ॥ तथापि तस्य वृद्धिस्तु नैव निर्वर्तते पुनः ॥ ३१ ॥ वागुवाच ॥ कर्म्मणा यस्तु चण्डालः सोऽग्रे मे स्थाप्यतां जनाः ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं मतिं चक्रुश्च वीक्षणे ॥ ३२ ॥ मार्गमाणास्तदा ते तु ग्रामाणि च पुराणि च ॥ कञ्चित्कर्मरतं पापं ददृशुर्ब्राह्मणब्रुवम् ॥ ३३ ॥ वृषभान्भारसंयुक्तान्मध्याह्नेवाहयत्तु सः ॥ क्षुत्तृट्श्रमपरीतांश्च दुर्ब

को लेकर निश्चय कर मेरे आगे स्थापन कीजिये ॥ ३० ॥ उन्होंने चांडालों को लेकर शिव देवजी के आगे धारण किया तथापि उसकी वृद्धि फिर निवृत्त न हुई ॥ ३१ ॥ आकाशवाणी बोली कि हे लोगो ! जो कर्म से चांडाल होवै उसको मेरे आगे स्थापन कीजिये उस बड़े भारी आश्चर्य को सुनकर उन्हों ने ढूंढ़ने में बुद्धि किया ॥ ३२ ॥ तब गांवों व पुरों को ढूंढ़ते हुए उन्हों ने कर्म में लगे व ब्राह्मण कहते हुए किसी पापी को देखा ॥ ३३ ॥ क्रूर मनवाला वह दुपहर में भी क्षुधा,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्यास व परिश्रम से संयुत तथा बोझ से संयुत दुर्बल बैलों को चलाता था॥ ३४ ॥ और बिन नहाकर भी वह ब्राह्मण पर्युषित अन्न को भोजन करता था उसको लेकर वे देवेश विष्णुजी के समीप गये जहां कि जगद्गुरु विष्णुजी थे॥ ३५॥ और देवालय के आगेवाली भूमि में उसको उन्हों ने आदर से स्थापन किया और गोवत्स जी के आगे स्थापित वह यकायक भस्म होगया ॥ ३६ ॥ इससे पृथ्वी में यह चांडालस्थल ऐसा प्रसिद्ध हुआ वहां स्थित मनुष्यों को आज भी वह मन्दिर नहीं देखपड़ता है॥ ३७ ॥ तब से लगाकर वह लिङ्ग समता को प्राप्त हुआ और लिङ्ग को देखने से पापरहित वह ब्राह्मण स्वर्ग को चलागया ॥ ३८ ॥ व पापरहित उस

लान्क्रूरमानसः ॥ ३४ ॥ अस्नात्वापि पर्युषितं भक्षयेच्चैव वै द्विजः ॥ तं समादाय देवेशं जग्मुर्यत्र जगद्गुरुः ॥ ३५ ॥ देवालयाग्रभूमौ तं स्थापयामासुरादृताः ॥ भस्मीबभूव सहसा गोवत्साग्रे निरूपितः ॥ ३६ ॥ चण्डालस्थल इत्येष प्रसिद्धः सोऽभवत्क्षितौ ॥ तत्र स्थितैर्न चाद्यापि प्रासादो दृश्यते हि सः ॥ ३७ ॥ तदाप्रभृति तल्लिङ्गं साम्यभावमुपागतम् ॥ धौतपाप्मा गतः स्वर्गं द्विजो लिङ्गनिरीक्षणात् ॥ ३८ ॥ प्रत्यहं पूजयामास गोवत्सं गतकिल्बिषः ॥ विशेषात्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां समागतः ॥ ३९ ॥ एतत्तदद्भुतं तस्य देवस्य च त्रिशूलिनः ॥ शृणुयाद्यो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ गोवत्समिति विख्यातं नराणां पुण्यदं परम् ॥ अनेकजन्मपापघ्नं मार्कण्डेयेन भाषितम् ॥ ४१ ॥ तत्र तीर्थे सकृत्स्नानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् ॥ पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम् ॥ ४२ ॥ कूपे तर्पणतश्चैव श्राद्धतश्चैव तृप्तता ॥ भाद्रपदे विशेषेण पक्षस्यान्ते भवेत्कलौ ॥ ४३ ॥ एकविंशतिवारांस्तु गयायां

ने प्रतिदिन गोवत्स का पूजन किया और कृष्णपक्ष की चौदसि में आकर उसने विशेष कर पूजन किया॥ ३९ ॥ उन त्रिशूलधारी शिवजी के इस चरित्र को जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ४० ॥ सूतजी बोले कि गोवत्स ऐसा प्रसिद्ध लिङ्ग मनुष्यों को बहुतही पुण्यदायक व अनेक जन्मों का पापनाशक मार्कंडेयजी से कहा गया है ॥ ४१ ॥ पाप से नष्टचित्तवाले मनुष्यों के पापसंयुत शरीर की शुद्धि के लिये उस तीर्थ में एक बार स्नान शिवलोकदायक है॥ ४२ ॥ व विशेष कर भाद्रपद महीने में पक्ष के अन्त में कलियुग में कूप में तर्पण व श्राद्ध से तृप्तता होती है॥ ४३ ॥ गया में इक्कीस बार तर्पण करने पर पितरों

की उत्तम तृप्ति होती है व गंगकूप में एक बार तर्पण करने से तृप्ति होती है॥४४॥ और उस गोवत्स के समीप गंगकूप स्थित है उसमें तिलोदक से भी तृप्त किये हुए पितर नरक से छूट कर उत्तम गति को पाते हैं और उस तीर्थ में मुनीश्वर लोग गोदान की प्रशंसा करते हैं ॥ ४५ । ४६ ॥ और ब्राह्मण के लिये सुवर्ण का दान मनुष्य को शिवलोक में प्राप्त करता है सरस्वती, शिवक्षेत्र और गंगाजी गंगकूप में स्थित हैं॥ ४७ ॥ स्वर्ग व मोक्ष का कारण ये तीनों एकत्र स्थित हैं और सब कहीं प्रसिद्ध वह तीर्थ ऋषियों व सिद्धों से सेवित है ॥ ४८ ॥ और वहां दो पीलु के वृक्ष स्थित हैं व मुनियों से सेवित वह तीर्थ स्नान से स्वर्गदायक और पान से

तर्प्पणे कृते ॥ पितॄणां परमा तृप्तिः सकृद्वै गङ्गकूपके ॥ ४४ ॥ तस्मिन्गोवत्ससामीप्ये तिष्ठते गङ्गकूपकः ॥ तस्मिंस्तिलोदकेनापि सन्तृप्तिं यान्ति तर्प्पिताः ॥४५॥ पितरो नरकाद्वापि सुपुण्येन सुमेधसा ॥ गोप्रदानं प्रशंसन्ति तस्मिंस्तीर्थे मुनीश्वराः ॥ ४६ ॥ विप्राय स्वर्णदानं तु रुद्रलोके नयेन्नरम् ॥ सरस्वतीशिवक्षेत्रे गङ्गा च गङ्गकूपके ॥ ४७ ॥ एकस्थमेतत्त्रितयं स्वर्गापवर्गकारणम् ॥ सेवितं चर्षिभिः सिद्धैस्तीर्थं सर्वत्र विश्रुतम् ॥४८॥ पीलुयुग्मं स्थितं तत्र तत्तीर्थं मुनिसेवितम् ॥ स्नानात्स्वर्गप्रदं चैव पानात्पापविशुद्धिदम् ॥ ४९ ॥ कीर्त्तनात्पुण्यजननं सेवनान्मुक्तिदं परम् ॥ तद्वै पश्यन्ति ये भक्त्या ब्रह्महा यदि मातृहा ॥ ५० ॥ बालघाती च गोघ्नश्च ये च स्त्रीशूद्रघातकाः ॥ गरदाश्चाग्निदाश्चैव गुरुद्रोहरताश्च ये ॥५१॥ तपस्विनिन्दकाश्चैव कूटसाक्ष्यं करोति यः ॥ वक्ता च परदोषस्य परस्य गुणलोपकः ॥ ५२ ॥ सर्वपापमयोऽप्यत्र मुच्यते लिङ्गदर्शनात् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कान्देबलाहकोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

पाप की शुद्धि को देनेवाला है ॥ ४९ ॥ और कीर्तन करने से पुण्य को पैदा करनेवाला व सेवन से बहुतही मुक्तिदायक है उसको भक्ति से जो मनुष्य देखते हैं ब्रह्मघाती और यदि मातृघाती होवै ॥ ५० ॥ और बालघाती व जो स्त्री और शूद्रों को मारनेवाले हैं व विषदायक तथा अग्निदायक व जो गुरुवों के द्रोह में परायण हैं ॥ ५१ ॥ और तपस्वियों के निन्दक व जो झूंठी गवाही देता है और पराये दोष का कहनेवाला व अन्य के गुणों को लोप करनेवाला ॥ ५२ ॥ सब पापमय भी यहां लिङ्गके दर्शन से मुक्त होजाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलाहकोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दो० । लोहयष्टि के तीर्थ महँ पिंड दिये फल जौन । अट्ठाइसयें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ व्यासजी बोले कि गोवत्स से नैर्ऋत्य दिशा के भाग में लोहयष्टि देखपड़ती है वहां स्वयंभू लिङ्ग के रूप से आपही शिवजी स्थित हैं ॥ १ ॥ श्रीमार्कंडेयजी बोले कि सरस्वती के मोक्षतीर्थ में भाद्रपद में अमावस के दिन ब्राह्मणों को पूजकर विधिपूर्वक उनके लिये दक्षिणा देकर ॥ २ ॥ भक्ति से इक्कीस बार पिंड का जो फल गया में पुरुषों को मिलता है वह निश्चय कर यहां तर्पण से मिलता है ॥ ३ ॥ भादौं में अमावस के दिन लोहयष्टि तीर्थ में श्राद्ध करने पर प्रेतयोनि से छूटे हुए पितर स्वर्ग में क्रीडा करते हैं ॥ ४ ॥ पितरलोग यह

व्यास उवाच ॥ गोवत्सान्नैर्ऋते भागे दृश्यते लोहयष्टिका ॥ स्वयम्भुलिङ्गरूपेण रुद्रस्तत्र स्थितः स्वयम् ॥ १ ॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ मोक्षतीर्थे सरस्वत्या नभस्ये चन्द्रसंक्षये ॥ विप्रान्सम्पूज्य विधिवत्तेभ्यो दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥ २ ॥ एकविंशतिवारांस्तु भक्त्या पिण्डस्य यत्फलम् ॥ गयायां प्राप्यते पुंसां ध्रुवं तदिह तर्प्पणात् ॥ ३ ॥ लोहयष्ट्यां कृते श्राद्धे नभस्ये चन्द्रसंक्षये ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ताः क्रीडन्ति पितरो दिवि ॥ ४ ॥ अपि नः स कुले भूयाद्यो वै दद्यात्तिलोदकम् ॥ पिण्डं वाप्युदकं वापि प्रेतपक्षे विधूदये ॥ ५ ॥ लोहयष्ट्याममावस्यां कार्यं भाद्रपदे जनैः ॥ श्राद्धं वै मुनयः प्राहुः पितरो यदि वल्लभाः ॥ ६ ॥ क्षीरेण तु तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले ॥ पितॄंस्तर्पयते यस्तु तृप्तास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ ७ ॥ तत्र श्राद्धानि कुर्वीत सक्तुभिः पयसा सह ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ ८ ॥ रुद्रतीर्थे ततो धेनुं दद्याद्वस्त्रादिभूषिताम् ॥ विष्णुतीर्थे हिरण्यं च प्रदद्यान्मोक्षमिच्छुकः ॥ ९ ॥ गयायां

कहते हैं कि वह हम लोगों के वंश में उत्पन्न होवै जो कि प्रेतपक्ष में अमावस तिथि में पिंड या जल देवै ॥ ५ ॥ मुनियों ने ऐसा कहा है कि यदि पितर प्रिय होवैं तो भाद्रपद में अमावस तिथि को मनुष्यों को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ सरस्वती के जल में नहाकर दूध से व श्वेततिलों से जो पितरों को तर्पण करता है उसके पितर निश्चय कर तृप्त होते हैं ॥ ७ ॥ वहां अमावस दिन को पाकर पितरों की मुक्ति चाहनेवाले मनुष्य को दूध समेत सत्तुवों से श्राद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥ तदनन्तर रुद्र तीर्थ में वस्त्रादि से भूषित गऊ को देवै और मोक्ष चाहनेवाला मनुष्य विष्णुतीर्थ में सुवर्ण को देवै ॥ ९ ॥ गया में आपही विष्णुजी पितरों के रूप से

स्थित हैं उन कमललोचन विष्णुजी को ध्यान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूटजाता है ॥ १० ॥ वहां जाकर देवदेव विष्णुजी से प्रार्थना करै कि हे देव ! पितरों को पिंडदेने की इच्छा से मैं गया को आया हूं व हे जनार्दनजी ! मैंने तुम्हारे हाथ में इस पिंड को दिया ॥ ११ ॥ क्योंकि परलोक में गये हुए पितरों के लिये तुम दाता होगे इसी मंत्र से वहां विष्णुजी के हाथ में पिंड को देवै ॥ १२ ॥ भादों में चौदसि व अमावस तिथि में यदि पिंड को देवै तो पितरों की अक्षय तृप्ति होगी इस में सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ गया में इक्कीसबार पिंड देने से और लोहयष्टि तीर्थ में भक्ति से तर्पण करने पर तृप्ति को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जल को देनेवाला तृप्ति

पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥ तं ध्यात्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ १० ॥ प्रार्थयेत्तत्र गत्वा तं देव देवं जनार्दनम् ॥ आगतोऽस्मि गयां देव पितृभ्यः पिण्डदित्सया ॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥ ११ ॥ परलोकगतेभ्यश्च त्वं हि दाता भविष्यसि ॥ अनेनैव च मन्त्रेण तत्र दद्याद्धरेः करे ॥ १२ ॥ चन्द्रे क्षीणे चतुर्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत् ॥ पितृणामक्षया तृप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥ एकविंशतिवारांश्च गयायां पिण्ड पातनैः ॥ भक्त्या तृप्तिमवाप्नोति लोहयष्ट्यां च तर्प्पणे ॥ १४ ॥ वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ फलप्रदः सुतान्भक्तानारोग्यमभयप्रदः ॥ १५ ॥ वित्तं न्यायार्जितं दत्तं स्वल्पं तत्र महाफलम् ॥ स्नानेनापि हि तत्तीर्थे रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसंक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टा विंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को पाता है व अन्न को देनेवाला मनुष्य अक्षय सुख को पाता है व फल देनेवाला भक्त पुत्रों को पाता है और अभय को देनेवाला आरोग्य को पाता है ॥ १५ ॥ वहां न्याय से इकट्ठा किया थोड़ा धन दिया हुआ महाफलवान् होता है और उस तीर्थ में स्नान से भी शिवजी का सेवक होता है ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्य माहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसंक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । लोहासुर के नाम से भयो तीर्थ जिमि ख्यात । उन्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहात ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त लोहासुर के चरित्र को सुनिये और बलि के सौ पुत्रों का भी पराक्रम कहूंगा ॥ १ ॥ जब वे दोनों वृद्ध भाई उत्तम स्थान को प्राप्त हुए तब से लगाकर लोहासुर दैत्य ने वैराग्य को धारण किया ॥ २ ॥ मैं क्या करूं व कहां जाऊं और किस उत्तम स्थान को सेवन करूं देवता, मनुष्य व मुनिलोग जिसका अन्त नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे किस देवता का मैं आराधन करूं ऐसा हृदय में बहुत ही चिन्तन करता रहा इस प्रकार विचारते हुए उस महात्मा की यह बुद्धि हुई ॥ ४ ॥ कि जिसने अपने मस्तक से गंगा को धारण किया

सूत उवाच ॥ अतः परं शृणुध्वं हि लोहासुरविचेष्टितम् ॥ बलेः पुत्रशतस्यापि कथयिष्यामि विक्रमम् ॥ १ ॥ यदा तौ भ्रातरौ वृद्धौ प्रापतुः स्थानमुत्तमम् ॥ तदाप्रभृति वैराग्यं दैत्यो लोहासुरो दधौ ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं सेवे स्थानमुत्तमम् ॥ यस्य पारं न जानन्ति देवता मुनयो नराः ॥ ३ ॥ कोमयाऽऽराध्यतां देवो हृदि चिन्तयते भृशम् ॥ इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ॥ ४ ॥ दधौ गङ्गां स्वशीर्षेण पुष्पवन्तौ च नेत्रयोः ॥ हृदा नारायणं देवं ब्रह्माणं कटिमण्डले ॥ ५ ॥ इन्द्राद्या देवताः सर्वे यद्देहे प्रतिबिम्बिताः ॥ प्रपश्यन्ति सदात्मानं भास्करः सलिले यथा ॥ ६ ॥ तमेवाराधयिष्यामि निरञ्जनमकल्मषम् ॥ एवं कृत्वा मतिं दैत्यस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ भीतो जन्मभयाद्घोराद्दुष्करं यन्महात्मभिः ॥ ७ ॥ अम्बुभक्षो वायुभक्षः शीर्णपर्णाशनस्तथा ॥ दिव्यं वर्षशतं साग्रं यदा तेपे महत्तपः ॥ ततस्तुतोष भगवांस्त्रिशूलवरधारकः ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यदभीप्सितम् ॥

है व नेत्रों में सूर्य और चन्द्रमा को धारण किया और हृदय से नारायणदेव व कटिमंडल में ब्रह्मा को धारण किया है ॥ ५ ॥ इन्द्रादिक सब देवता जिसके शरीर में प्रतिबिम्बित हैं व रुदैव अपना को देखते हैं जैसे कि सूर्यनारायण जल में प्रतिबिम्बित हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं निष्पाप निरंजन को मैं आराधन करूंगा ऐसी बुद्धि करके महात्माओं को भी जो कठिन है भयंकर जन्म के भय से डरे हुए उसने उस कठिन तप को किया ॥ ७ ॥ जलभक्षी व पवनभक्षी और गिरे हुए पत्तों को खानेवाले उसने जब कुछ अधिक सौ वर्षों तक बड़ा भारी तप किया तब उत्तम त्रिशूल को धारनेवाले भगवान् शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि हे लोहासुर ! तुम्हारा

कल्याण होवै और मन से जो प्रिय होवै उस वर को मांगो तुम्हारे तपोबल से मुझ को कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ ६ ॥ ऐसा कहे हुए दानव ने वहां शिवजी के आगे वचन कहा ॥ १० ॥ लोहासुर बोला कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो तो मैं तुम से एक वर को मांगता हूं कि शरीर की वृद्धता न होवै और मृत्यु से भी मुझ को डर ॥ ११ ॥ इस जन्म में न होवै व हे प्रभो ! मेरे हृदय में स्थित होना चाहिये ऐसाही होवै वहां उस दानवेश्वर से शिवजी ने ऐसा कहा ॥ १२ ॥ शिवदेवजी से इस प्रकार वर को पाकर उसने फिर सुन्दर सरस्वतीजी के किनारे संसारसागर से तरने के लिये बड़ा तप किया ॥ १३ ॥ हज़ारों व लाखों और अर्बुदों वर्ष तक जब

लोहासुर मयादेयं तव नास्ति तपोबलात् ॥ ६ ॥ इत्युक्तो दानवस्तत्र शङ्कराग्रे वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ लोहासुर उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश वरमेकं वृणोम्यहम् ॥ शरीरस्याजरत्वं च मा मृत्योरपि मे भयम् ॥ ११ ॥ जन्मन्यस्मिन्प्रभो भूयात्स्थातव्यं हृदये मम ॥ एवमस्तु शिवः प्राह तत्र तं दानवेश्वरम् ॥ १२ ॥ एवं लब्धवरो देवात्पुनस्तेपे मह त्तपः ॥ रम्ये सरस्वतीतीरे तरणाय भवार्णवात् ॥ १३ ॥ वत्सराणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ शङ्कते भगवा निन्द्रो भीतस्तस्य तपोबलात् ॥ १४ ॥ मा मे पदच्युतिर्भूयाद्दैत्याल्लोहासुरात्कचित् ॥ मघवा गुप्तरूपेण समेत्याश्रम काननम् ॥ १५ ॥ तपोभङ्गं प्रकुरुते कोपयित्वा महासुरम् ॥ ताडयन्ति शरीरे तं मुष्टिभिस्तीक्ष्णकर्कशैः ॥ १६ ॥ अथ तेन च दैत्येन ध्यानमुत्सृज्य वीक्षितम् ॥ इन्द्रेण तत्कृतं सर्वं तपोबलविनाशनम् ॥ १७ ॥ तस्य तैरभवद्युद्ध मिन्द्राद्यैरथ कर्कशैः ॥ एकस्य बहुभिः सार्द्धं देवास्ते तेन संयुगे ॥ १८ ॥ रुधिराक्लिन्नदेहा वै प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ के

उसने तप किया तब उसके तपोबल से डरे हुए भगवान् इन्द्रजी शंकित हुए ॥ १४ ॥ कि लोहासुर दैत्य से कहीं मेरे स्थान की पृथक्ता न होवै और गुप्तरूप से आश्रम के वन को आकर इन्द्रजी ॥ १५ ॥ महादैत्य को क्रोधित कराकर तपस्या का भंग करनेलगे और तीक्ष्ण व कठोर घूंसों से उसके शरीर में मारनेलगे ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उस दैत्य ने ध्यान को छोड़कर देखा कि इन्द्र ने उस सब तपोबल को नाश किया है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त उन कठोर बहुत से इन्द्रादिकों का उस एक दैत्य के साथ युद्ध हुआ और युद्ध में उस दैत्य ने उन देवताओं को ॥ १८ ॥ प्रहारों से जर्जर किया और रक्त से भीगे हुए शरीरवाले वे देवता रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये

ऐसा कहते हुए विष्णुजी की शरण में प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ सूतजी बोले कि देवताओं का वचन सुनकर वासुदेव जनार्दन विष्णुजी ने उसके साथ युद्ध में सौ बरस तक समर किया ॥ २० ॥ तदनन्तर वरदान से बढ़े हुए उसने उस युद्ध में विष्णुजी को जीतलिया इसके उपरान्त लोहासुर से जीते हुए नारायण देवजी ने ॥ २१ ॥ शिव व ब्रह्माजी से बार २ सम्मति किया और तीनों देवताओं ने विचार कर फिर युद्ध का उद्यम किया ॥ २२ ॥ फिर लोहासुर दैत्य का शरीर नवीन देखकर तदनन्तर विष्णु व दैत्य का फिर बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ जब सामर्थ्यवान् विष्णुजी से वह दैत्य न मरा तब उसको विष्णुजी ने वेग से पृथ्वी में गिरा दिया ॥ २४ ॥

शर्वं शरणं प्राप्तास्त्राहि त्राहीति भाषिणः ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ देवानां वाक्यमाकर्ण्य वासुदेवो जनार्दनः ॥ युयुधे केशवस्तेन युद्धे वर्षशतं किल ॥ २० ॥ ततो नारायणं तत्र जिगाय स वरोर्जितः ॥ अथ नारायणो देवो जितो लोहासुरेण तु ॥ २१ ॥ मन्त्रयामास रुद्रेण ब्रह्मणा च पुनः पुनः ॥ मीमांसित्वा त्रयो देवाः पुनर्युद्धसमुद्यमम् ॥ २२ ॥ लोहासुरस्य दैत्यस्य वपुर्दृष्ट्वा पुनर्नवम् ॥ महदासीत्पुनर्युद्धं दैत्यकेशवयोस्ततः ॥ २३ ॥ न ममार यदा दैत्यो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तरसा तं केशवोऽपि पातयामास भूतले ॥ २४ ॥ उत्तानं पतितं दृष्ट्वा पिनाकी परमेश्वरः ॥ दधार हृदये तस्य स्वरूपं रूपवर्जितः ॥ २५ ॥ कण्ठे तस्थौ ततो ब्रह्मा तस्य लोहासुरस्य च ॥ चरणौ पीडयामास स्वस्थित्या पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥ अथ दैत्यः समुत्तस्थौ भृशं बद्धोपि भूतले ॥ दृष्ट्वोत्थितं ततो दैत्यं पातयन्तं सुरोत्तमान् ॥ २७ ॥ उवाच दिव्यया वाचा विरञ्चिः कमलासनः ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोहासुर सदा रक्ष वाचोधर्ममभीक्ष्ण

और उतान गिरे हुए उस दैत्य को देख कर रूप से रहित परमेश्वर शिवजी ने उसके हृदय में अपने स्वरूप को धारण किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस लोहासुर के कण्ठ में ब्रह्माजी स्थित हुए और पुरुषोत्तम विष्णुजी ने अपनी स्थिति से चरणों को पीड़ित किया ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर बहुतही बाँधा हुआ भी वह दैत्य उठपड़ा तदनन्तर सुरोत्तमों को गिराते हुए दैत्य को उत्थित देख कर ॥ २७ ॥ कमलासन ब्रह्माजी ने दिव्य वाणी से कहा ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोहासुर ! वचन के

धर्म की सदैव रक्षा कीजिये तुम ने जो शिवजी से प्रार्थना किया था वही प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ ये तीनों उत्तम देवता याने मैं, विष्णु व शिवजी कल्प पर्यन्त तुम्हारे शरीर में स्थित रहैंगे ॥ ३० ॥ हे दानवेश ! भावभक्तिही से शिवजी की प्राप्ति होती है और शिवजी को टालने के लिये तुम्हारे कैसे बुद्धि होगी ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अचल मन्दिर, ब्राह्मण व नगरों को चलाता है वह थोड़ेही समय में पाप से लिप्त होता है ॥ ३२ ॥ और सत्य के धर्म से अलग किया हुआ मनुष्य श्मशान के समान छोड़ने योग्य है और तुम सत्यवादी हो तुम्हारा कल्याण होवै देवताओं को मत चलाइये ॥ ३३ ॥ जिस मार्ग से पिता व पितामहलोग गये हैं उसी मार्ग

शः ॥ त्वया यत्प्रार्थितं रुद्रात्तदेव समुपस्थितम् ॥ २६ ॥ अहं विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोऽमी सुरसत्तमाः ॥ त्वद्देहमुपवेक्ष्यामो यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३० ॥ दानवेश शिवप्राप्तिर्भावभक्त्यैव जायते ॥ शिवं चालयितुं बुद्धिः कथं तव भविष्यति ॥ ३१ ॥ अचलांश्चालयेद्यस्तु प्रासादान्ब्राह्मणान्पुरान् ॥ अचिरेणैव कालेन पातकेनैव लिप्यते ॥ ३२ ॥ श्मशानवत्परित्याज्यः सत्यधर्मबहिष्कृतः ॥ सत्यवागसि भद्रं ते मा विचालय देवताः ॥ ३३ ॥ येन यातास्तु पितरो येन याताः पितामहाः ॥ तेन मार्गेण गन्तव्यं न चोल्लङ्घ्या सतां गतिः ॥ ३४ ॥ दानवेश पिता ते हि ददौ लोकत्रयं हरेः ॥ वाक्पाशबद्धः पाताले राज्यं चक्रे महीपतिः ॥ ३५ ॥ तथा त्वमपि वाक्पाशाच्छिवभक्तिसमन्वितः ॥ भूतले तिष्ठ दैत्येन्द्र मा वाग्वैकल्प्यमाप्नुहि ॥ ३६ ॥ वरांस्ते च प्रदास्यामो मा विचालय देवताः ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं सन्तुष्टो दानवेश्वरः ॥ प्राह प्रसन्नया वाचा ब्रह्माणं केशवं हरम् ॥ ३८ ॥ लोहासुर उवाच ॥

से जाना चाहिये और सज्जनों की गति को उल्लंघन न करना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे दानवेश ! तुम्हारे पिता ने विष्णुजी को त्रिलोक दे दिया और वचन की फँसरी से बँधे हुए उसने पाताल में राज्य किया ॥ ३५ ॥ वैसेही हे दैत्येन्द्र ! शिवजी की भक्ति से संयुत तुम भी वचन के पाश से पृथ्वी में स्थित होवो और वचन की विकलता को न प्राप्त होवो ॥ ३६ ॥ तुमको हमलोग वर देवैंगे देवताओं को न चलाइये ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले कि ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर दानवेश्वर लोहासुर प्रसन्न हुआ और प्रसन्न वचन से उसने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहा ॥ ३८ ॥ लोहासुर बोला कि वचनरूपी पाश से बँधाहुआ मैं स्थित हूंगा

आपलोगों के बल में नहीं स्थित हूंगा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी ये तीनों उत्तम देवता ॥ ३९ ॥ यदि मेरे शरीर में टिकैंगे तो मैंने क्या नहीं पाया और तीनों देवताओं से आक्रमित (दबाया हुआ) यह मेरा शरीर ॥ ४० ॥ हे सुरोत्तमो ! पृथ्वी में मेरे प्रभाव से प्रसिद्ध होवै ॥ ४१ ॥ लोहासुर के वचन से प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा, विष्णु व शिव तीनों देवताओं ने उसको प्रत्युत्तर दिया ॥ ४२ ॥ कि जिसलिये तुम सत्यवचनरूपी पाश से नहीं चले उस सत्य से प्रसन्न होते हुए हमलोग तुम्हारे मनोरथ को देवैंगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे दैत्य ! जैसे गया स्थान में स्नान, ब्रह्मज्ञान व शरीर त्याग होता है वैसेही धर्मेश्वरजी के आगे स्थित धर्मारण्य में होता है ॥ ४४ ॥

वाक्पाशबद्धस्तिष्ठामि न पुनर्भवतां बले ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोऽमी सुरसत्तमाः ॥ ३९ ॥ स्थास्यन्ति चेच्छरीरे मे किं न लब्धं मया ततः ॥ इदं कलेवरं मे हि समारूढं त्रिभिः सुरैः ॥ ४० ॥ भूम्यां भवतु विख्यातं मत्प्रभावात्सुरोत्तमाः ॥ ४१ ॥ लोहासुरस्य वाक्येन हर्षितास्त्रिदशास्त्रयः ॥ ददुः प्रत्युत्तरं तस्मै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४२ ॥ सत्यवाक्पाशतो दैत्यो न सत्याच्चलितो यतः ॥ तेन सत्येन सन्तुष्टा दास्यामस्ते हृदीप्सितम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यथा स्नानं ब्रह्मज्ञानं देहत्यागो गयातले ॥ धर्मारण्ये तथा दैत्य धर्म्मेश्वरपुरःस्थिते ॥ ४४ ॥ कूपे तर्प्पणकं श्राद्धं शंसन्ति पितरो दिवि ॥ सन्तुष्टाः पिण्डदानेन गयायां पितरो यथा ॥ ४५ ॥ वाञ्छन्ति तर्प्पणं कूपे धर्मारण्ये विशुद्धये ॥ दानवेन्द्र शरीरं तु तीर्थं तव भविष्यति ॥ ४६ ॥ एकविंशतिवारांस्तु गयायां तर्प्पणे कृते ॥ पितॄणां या परा तृप्तिर्जायते दानवाधिप ॥ ४७ ॥ धर्मेश्वरपुरस्तात्सा त्वेकदा पितृतर्पणात ॥ स्याद्वै दशगुणा तृप्तिः सत्यमेव न संशयः ॥ ४८ ॥

और कूप के समीप तर्पण व श्राद्ध की पितरलोग स्वर्ग में प्रशंसा करते हैं और जैसे गया में पिंडदान से पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ वैसेही धर्मारण्य में शुद्धि के लिये पितरलोग कूप के समीप तर्पण की इच्छा करते हैं व हे दानवेन्द्र ! तुम्हारा शरीर तीर्थ होगा ॥ ४६ ॥ हे दानवाधिप ! गया में इक्कीसबार तर्पण करने से पितरों की जा उत्तम तृप्ति होती है ॥ ४७ ॥ धर्मेश्वरजी के आगे एकबार पितरों के तर्पण से उससे दशगुनी तृप्ति होती है यह सत्य है इस में सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

पृथ्वी में शिवरूप के अन्तर्गत धर्मारण्य में यहां पितरों के पिंडदान से अक्षय तृप्ति होगी ॥ ४९ ॥ और श्राद्ध, पिंड व जलक्रिया श्रद्धाही से करना चाहिये व हे असुरोत्तम ! हमलोगों के मध्यदेश में व तुम्हारे शरीर में विशेष कर श्राद्ध पिंड करने योग्य होगा ब्रह्मा का वचन सुनकर तदनन्तर शिवजी ने उस दैत्य से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे लोहासुर ! तुम को चिन्ता न करना चाहिये व हे सुव्रत ! तुम सत्य हो और तीनों लोकों में दुर्लभ तुम्हारी स्वर्गस्थिति सत्यही होगी ॥ ५२ ॥ व हे असुरसत्तम ! हमारे सत्य वचन से पृथ्वी में तुम्हारा तीर्थ गया से अधिक होगा ॥ ५३ ॥ और तुम्हारे शरीर में हमारी अव्यग्र स्थिति होगी इसमें सन्देह नहीं है व हे अनघ !

पितॄणां पिण्डदानेन अक्षय्या तृप्तिरस्त्विह ॥ शिवरूपान्तराले वै धर्मारण्ये धरातले ॥ ४९ ॥ श्रद्धयैव हि कर्त्तव्याः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ॥ तथान्तराले चास्माकं श्राद्धपिण्डो विशेषतः ॥ ५० ॥ तथा शरीरे कर्तव्यो भविष्यत्यसुरोत्तम ॥ ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य रुद्रः प्राह ततोऽसुरम् ॥ ५१ ॥ लोहासुर न ते कार्या चिन्ता सत्योऽसि सुव्रत ॥ त्रिषु लोकेषु दुष्प्रापं सत्यं ते दिवि संस्थितम् ॥ ५२ ॥ अस्मद्वाक्येन सत्येन तत्तथाऽसुरसत्तम ॥ गयासमधिकं तीर्थं तव जातं धरातले ॥ ५३ ॥ अस्माकं स्थितिरव्यग्रा तव देहे न संशयः ॥ सत्यपाशेन बद्धाः स्म दृढमेव त्वयाऽनघ ॥५४॥ विष्णुरुवाच ॥ गयाप्रयागकस्याऽपि फलं समधिकं स्मृतम् ॥ चतुर्द्दश्याममावास्यां लोहयष्ट्यां पिण्डदानतः ॥ ५५ ॥ बलिपुत्रस्य सत्येन महती तृप्तिरत्र हि ॥ मा कुरुष्वात्र सन्देहं तव देहे स्थिता स्वयम् ॥ ५६ ॥ सरस्वती पुण्यतोया ब्रह्मलोकात्प्रयात्युत ॥ प्लावयिष्यन्ति देहाङ्गं मया सह सुसङ्गता ॥ ५७ ॥ यत्र वै द्वारकावासो देवस्तत्र

तुम ने सत्यरूपी पाश से हमलोगों को दृढ़ता से बाँध लिया ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले कि गया व प्रयाग से भी यहां अधिक फल कहा गया है और चौदसि व अमावस में लोहयष्टि तीर्थ में पिंडदान से ॥ ५५ ॥ बलिपुत्र (लोहासुर) के सत्य से यहां बड़ी तृप्ति होगी इसमें सन्देह न करो हमलोग तुम्हारे शरीर में आपही स्थित हैं ॥ ५६ ॥ और ब्रह्मलोकसे चलती हुई पवित्र जलवाली सरस्वतीजी मेरे साथ आकर शरीर को डुबावैंगी ॥ ५७ ॥ और जहां द्वारकाजी का निवास है वहां शिवदेवजी

स्थित होते हैं व जहां ब्रह्मा होते हैं वहां पृथ्वी में ये तीनों तीर्थ होते हैं ॥ ५८ ॥ व हे असुरश्रेष्ठ ! पितरों की तृप्ति के लिये ये तीर्थ पाताल, स्वर्गलोक व यमस्थान में प्रसिद्ध होवैंगे ॥ ५९ ॥ हे अनघ ! पुत्रों के लिये आज्ञारूपिणी पितरों से कीहुई उत्तम गाथा को कहता हूं उसको मुझ से सुनिये ॥ ६० ॥ पितरलोग बोले कि पाप से नष्टशरीरवाले मनुष्यों के पापसंयुत शरीर की शुद्धि के लिये शंकरजी के आगे स्थान शिवलोक का दायक है ॥ ६१ ॥ उसमें उत्तम बुद्धिवाले पुत्र से तिलोदक से भी तृप्त किये हुए पितर नरक से छूटकर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ इसी कारण वहां पितरों की मुक्ति के लिये विद्वान् गोदान की प्रशंसा करते हैं और

महेश्वरः ॥ विरञ्चिर्यत्र तीर्थानि त्रीण्येतानि धरातले ॥ ५८ ॥ भविष्यन्ति च पाताले स्वर्गलोके यमक्षये ॥ विख्यातान्यसुरश्रेष्ठ पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ ५९ ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गाथां पितृकृतां पराम् ॥ आज्ञारूपां हि पुत्राणां तां शृणुष्व ममानघ ॥ ६० ॥ पितर ऊचुः ॥ शङ्करस्याग्रतः स्थानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् ॥ पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम् ॥ ६१ ॥ तस्मिंस्तिलोदकेनापि सद्गतिं यान्ति तर्पिताः ॥ पितरो नरकाद्वापि सुपुत्रेण सुमेधसा ॥६२॥ गोप्रदानं प्रशंसन्ति तत्तत्र पितृमुक्तये ॥ पित्रादिकान्समुद्दिश्य दृष्ट्वा रुद्रं च केशवम् ॥ ६३ ॥ तिलपिण्याकपिण्डेन तृप्तिं यास्यामहे पराम् ॥ चतुर्द्दश्याममावास्यां तथा च पितृतर्पणम् ॥ ६४ ॥ अज्ञातगोत्रजन्मानस्तेभ्यः पिण्डांस्तु निर्वपेत् ॥ तेऽपि यान्ति दिवं सर्वे पिण्डे दत्त इति श्रुतिः ॥ ६५ ॥ सर्वकार्याणि सन्त्यज्य मानवैः पुण्यमीप्सुभिः ॥ प्राप्ते भाद्रपदे मासे गन्तव्या लोहयष्टिका ॥ ६६ ॥ अज्ञातगोत्रनाम्नां तु पिण्डमन्त्रमिमं शृणु ॥ ६७ ॥ पितृवंशे

शिव व विष्णुजी को देखकर पिता आदिकों को उद्देश कर ॥ ६३ ॥ तिल के पीना के पिंड से हमलोग उत्तम तृप्ति को प्राप्त होवैंगे और चौदसि व अमावस में पितरों को तर्पण करना चाहिये ॥ ६४ ॥ और जिनका गोत्र व जन्म नहीं जाना गया है उनके लिये पिंडों को देवै तो पिंड देने पर वे भी स्वर्ग को जाते हैं ऐसा श्रुति ने कहा है ॥ ६५ ॥ पुण्य को चाहनेवाले मनुष्यों को सब कर्मों को छोड़कर भादौं महीना प्राप्त होने पर लोहयष्टितीर्थ में जाना चाहिये ॥ ६६ ॥ और बिन जाने हुए गोत्र व नामवाले पितरों के इस पिंडमंत्र को सुनिये ॥ ६७ ॥ कि बिन जाने हुए गोत्र में उत्पन्न जो पिता के वंश में व माता के वंश में मरे हैं उनके लिये यह पिंड

प्राप्त होवै ॥ ६८ ॥ विष्णुजी बोले कि हे असुरसत्तम ! भादौं में अमावस व चौदसि तिथि में इसी मंत्र से मेरे आगे पिंड को देवै ॥ ६९ ॥ तो पितरों की अक्षय तृप्ति होगी इस में सन्देह नहीं है और तिल के पीना के पिंड से पितर मोक्ष को पाते हैं ॥ ७० ॥ और लोहयष्टितीर्थ में तिलों से तर्पण करने पर मनुष्य पृथ्वी में तीनों ऋणों से मुक्त होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ और यहां स्नान करके जो पितरों को पिंड व जलदान कर्म करते हैं उसके पितर ब्रह्मा के दिन रात्रि तक तृप्त रहते हैं ॥ ७२ ॥ व हे असुर ! भादौं महीने में अमावस दिन को पाकर ब्रह्मा की यष्टिका में जो पितरों का तर्पण करता है ॥ ७३ ॥ उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते

मृता ये च मातृवंशे तथैव च ॥ अज्ञातगोत्रजास्तेभ्यः पिण्डोऽयमुपतिष्ठतु ॥ ६८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण ममाग्रेऽसुरसत्तम ॥ क्षीणे चन्द्रे चतुर्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत् ॥ ६९ ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ तिलपिण्याकपिण्डेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥ ७० ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्ता मानवा जगतीतले ॥ भविष्यन्ति न सन्देहो लोहयष्ट्यां तिलतर्पणे ॥ ७१ ॥ स्नात्वा यः कुरुते चात्र पितृपिण्डोदकक्रियाः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ७२ ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य मासि भाद्रपदेऽसुर ॥ ब्रह्मणो यष्टिकायां तु यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ ७३ ॥ पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तेषां प्रसन्नो भगवानादिदेवो महेश्वरः ॥ ७४ ॥ अस्य तीर्थस्य यात्रायां मतिर्येषां भविष्यति ॥ गोक्षीरेण तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले ॥ ७५ ॥ तर्पयेदक्षया तृप्तिः पितॄणां तस्य जायते ॥ श्राद्धं चैव प्रकुर्वीत सक्तुभिः पयसा सह ॥ ७६ ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ धेनुं दद्याद्रुद्रतीर्थे वस्त्राणि यमतीर्थके ॥ ७७ ॥ विष्णुतीर्थे हिरण्यं च पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ विनाक्षतैर्विना दर्भैर्वि

हैं और भगवान् आदिदेव महेश्वरजी उनके ऊपर प्रसन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ जिन की बुद्धि इस तीर्थ की यात्रा में होगी और सरस्वतीजी के जल में नहाकर जो गऊ के दूध व सफ़ेद तिलों से ॥ ७५ ॥ तर्पण करता है उसके पितरों की अक्षय तृप्ति होती है और पितरों की मुक्ति को चाहनेवाला मनुष्य अमावास्या दिन को प्राप्त होकर वहां दूध समेत सत्तुवों से श्राद्ध करना चाहिये और रुद्रतीर्थ में गऊ देवै व यमतीर्थ में वस्त्रों को देवै ॥ ७६ । ७७ ॥ और पितरों की मुक्ति चाहनेवाला

मनुष्य विष्णुतीर्थ में सुवर्ण को देवै अक्षतों के विना व कुशों के विना और आसन के विना लोहयष्टि में जलही से मनुष्य गयाश्राद्ध का फल पाता है ॥ ७८ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह लोहासुर का वृत्तान्त तुमलोगों से कहागया जिसको सुनकर ब्रह्मघाती व गोघाती मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ७६ ॥ गया में इक्कीसबार पिंडदान से जो फल होताहै उस फल को मनुष्य इस चरित्र के एकबार सुनने से पाता है ॥ ८० ॥ और जो इस माहात्म्य को सुनता है उसने चार करोड़ दो लाख एक हज़ार सौ गौवों को दिया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

ना चासनमेव च ॥ वारिमात्राल्लोहयष्ट्यां गयाश्राद्धफलं लभेत् ॥ ७८ ॥ सूत उवाच ॥ एतद्वः कथितं विप्रा लोहासुर विचेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ७६ ॥ एकविंशतिवारन्तु गयायां पिण्डपातने ॥ तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति ॥ ८० ॥ चतुष्कोटिद्विलक्षं च सहस्रं शतमेव च ॥ धेनवस्तेन दत्ताः स्युर्माहात्म्यं शृणुयात्तु यः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येलोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ॥ पुरा त्रेतायुगे प्राप्ते वैष्णवांशो रघूद्वहः ॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नो रामो राजीवलोचनः ॥ १ ॥ स रामो लक्ष्मणश्चैव काकपक्षधरावुभौ ॥ तातस्य वचनात्तौ तु विश्वामित्रमनुव्रतौ ॥ २ ॥ यज्ञसंरक्षणार्थाय राज्ञा दत्तौ कुमारकौ ॥ धनुःशरधरौ वीरौ पितुर्वचनपालकौ ॥ ३ ॥ पथि प्रव्रजतोर्यावत्ताडकानाम राक्षसी ॥ तावदागम्य पुरतस्तस्थौ वै विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥ ऋषेरनुज्ञया रामस्ताडकां समघातयत् ॥ प्रादिशच्च धनुर्वेदविद्यां रामाय

दो० । रावण राक्षस को हन्यो यथा देव रघुनाथ । सोइ तीस अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ व्यासजी बोले कि पुरातनसमय त्रेतायुग प्राप्त होने पर विष्णुजी के अंश रघुनायक कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ और काकपक्षधारी श्रीराम व लक्ष्मणजी वे दोनों पिता के वचन से विश्वामित्रजी के अनुगामी हुए ॥ २ ॥ यज्ञ की रक्षा के लिये राजा दशरथ ने उन दोनों कुमारों को दिया और धनुष व बाण को धारनेवाले वे वीर पिता वचन के पालक हुए ॥ ३ ॥ जब मार्ग में जाते थे तब तक ताड़का नामक राक्षसी आकर विघ्न के कारण आगे स्थित हुई ॥ ४ ॥ और ऋषि की आज्ञा से श्रीरामजी ने ताड़का को मारा और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी के लिये धनुर्वेदविद्या को बतलाया ॥ ५ ॥ और इन्द्र के संयोग से गौतमकी स्त्री अहल्या शिला उन श्रीरामचन्द्रजी के चरणतलों के स्पर्श से फिर स्वरूपवती होगई ॥ ६ ॥ और विश्वामित्र का यज्ञ वर्तमान होने पर रघूत्तम रघुनाथजी ने उत्तम बाणों से मारीच व सुबाहु को मारा ॥ ७ ॥ और जनक के घर में धरा हुआ शिवजी का धनुष तोड़डाला और श्रीरामचन्द्रजी ने पन्द्रहवें वर्ष में छः वर्ष की मैथिली ॥ ८ ॥ व अयोनिजा सुन्दरी सीताजी को जब ब्याहा तब हे राजन् ! सीताजी को पाकर श्रीरामजी कृतार्थ हुए ॥ ९ ॥ व जब अयोध्याजी को गये तब हे राजन् ! परशुरामजी को देखकर देवताओं को भी दुस्सह समर

गाधिजः ॥ ५ ॥ तस्य पादतलस्पर्शाच्छिला वासवयोगतः ॥ अहल्या गौतमवधूः पुनर्जाता स्वरूपिणी ॥ ६ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु सम्प्रवृत्ते रघूत्तमः ॥ मारीचं च सुबाहुं च जघान परमेषुभिः ॥ ७ ॥ ईश्वरस्य धनुर्भग्नं जनकस्य गृहे स्थितम् ॥ रामः पञ्चदशे वर्षे षड्वर्षां चैव मैथिलीम् ॥ ८ ॥ उपयेमे यदा राजन्रम्यां सीतामयोनिजाम् ॥ कृतकृत्यस्तदा जातः सीतां सम्प्राप्य राघवः ॥ ९ ॥ अयोध्यामगमन्मार्गे जामदग्न्यमवेक्ष्य च ॥ संग्रामोऽभूत्तदा राजन्देवानामपि दुःसहः ॥ १० ॥ ततो रामं पराजित्य सीतया गृहमागतः ॥ ततो द्वादशवर्षाणि रेमे रामस्तया सह ॥ ११ ॥ सप्तविंशतिमे वर्षे यौवराज्यप्रदायकम् ॥ राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत ॥ १२ ॥ तयोरेकेन रामस्तु ससीतः सहलक्ष्मणः ॥ जटाधरः प्रव्रजतां वर्षाणीह चतुर्दश ॥ १३ ॥ भरतस्तु द्वितीयेन यौवराज्याधिपोस्तु मे ॥ मन्थरावचनान्मूढा वरमेतमयाचत ॥ १४ ॥ जानकीलक्ष्मणसखं रामं प्राव्राजयन्नृपः ॥ त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्थेह्नि

हुआ ॥ १० ॥ तदनन्तर परशुरामजी को जीतकर श्रीरामजी सीता समेत घर को आये तदनन्तर श्रीरामजी ने उन जानकीजी समेत बारह वर्ष तक रमण किया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सत्ताईसवें वर्ष में युवराजता को देनेवाले राजा दशरथ से कैकेयी ने दो वरों को मांगा ॥ १२ ॥ उन दोनों में से एक वर से सीता समेत व लक्ष्मण सहित श्रीरामजी जटाओं को धारण कर चौदह वर्ष तक वन को जावैं ॥ १३ ॥ और मेरे दूसरे वरदान से भरतजी युवराजता के स्वामी होवैं मंथरा के वचन से मूढ़ कैकेयी ने इस वर को मांगा ॥ १४ ॥ और राजा दशरथ ने जानकी व लक्ष्मण सखावाले श्रीरामजी को वनवास दिया और तीन रात्रि तक जलाहारी व चौथे दिन

फल को भोजन करनेवाले ॥ १५ ॥ श्रीरामजी ने पांचवें दिन चित्रकूट में निवास किया तब हा राम! ऐसा कहते हुए दशरथजी स्वर्ग को चलेगये ॥ १६ ॥ वे दशरथजी ब्राह्मण का शाप सफल कर स्वर्ग को गये तदनन्तर भरत व शत्रुघ्न चित्रकूट में आये ॥ १७ ॥ व हे राजन्! रामजी से पिता को स्वर्ग में प्राप्त बतलाकर भरतजी इन श्रीरामजी के लौटने के लिये समझा कर ॥ १८ ॥ तदनन्तर भरत व शत्रुघ्नजी नंदिग्राम को आये और वहां राज्य को धारण किये दोनों पादुका पूजन में परायण हुए ॥ १९ ॥ और श्रीरामजी महात्मा अत्रिजी को देखकर दण्डकारण्य को आये व राक्षसगणों के मारने के प्रारंभ में विराध के मारने पर ॥ २० ॥ साढ़े तेरह वर्ष

फलाशनः ॥ १५ ॥ पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकल्पयत् ॥ तदा दशरथः स्वर्गं गतो राम इति ब्रुवन् ॥ १६ ॥ ब्रह्मशापं तु सफलं कृत्वा स्वर्गं जगाम सः ॥ ततो भरतशत्रुघ्नौ चित्रकूटे समागतौ ॥ १७ ॥ स्वर्गतं पितरं राजन् रामाय विनिवेद्य च ॥ सान्त्वनं भरतश्चास्य कृत्वा निवर्तनं प्रति ॥ १८ ॥ ततो भरतशत्रुघ्नौ नन्दिग्रामं समागतौ ॥ पादुकापूजनरतौ तत्र राज्यधरावुभौ ॥ १९ ॥ अत्रिं दृष्ट्वा महात्मानं दण्डकारण्यमागमत् ॥ रक्षोगणवधारम्भे विराधे विनिपातिते ॥ २० ॥ अर्द्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह ॥ ततो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम् ॥ वने विचरतस्तस्य जानकीसहितस्य च ॥ २१ ॥ आगतो राक्षसो घोरः सीतापहरणाय सः ॥ ततो माघासिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञके ॥२२॥ राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः ॥ मारीचस्याश्रमं गत्वा मृगरूपेण तेन च ॥ २३ ॥ नीत्वा दूरं राघवं च लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ततो रामो जघानाशु मारीचं मृगरूपिणम् ॥ २४ ॥ पुनः प्राप्याश्रमं

पंचवटी में बसे तदनन्तर उन्हों ने शूर्पणखा राक्षसी को विरूप किया और जानकी समेत वन में घूमते हुए उन श्रीरामजी के ॥ २१ ॥ वह भयंकर रावण राक्षस सीता जी के हरने के लिये आया तदनन्तर माघ की कृष्ण पक्षवाली अष्टमी में वृन्दसंज्ञक मुहूर्त में ॥ २२ ॥ रावण ने मारीच के आश्रम को जाकर श्रीराम व लक्ष्मणजी के बिना सीताजी को हरलिया और उस मृगरूपधारी मारीच ने ॥ २३ ॥ लक्ष्मण समेत श्रीरामजी को दूर ले जाकर माया किया तदनन्तर मृगरूपी मारीच को श्रीराम जी ने शीघ्रही मारा ॥ २४ ॥ फिर आश्रम को प्राप्त होकर श्रीरामजी ने सीता के विना आश्रम को देखा और वहां हरी जाती हुई वे सीताजी कुररी पक्षिणी की नाई

रोनेलगीं ॥ २५ ॥ कि हे राम! हे राम! राक्षस से हरी हुई मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये जैसे क्षुधा से संयुत बाजपक्षी चिल्लाती हुई वर्तिका (बटेर) को लेजाता है ॥ २६ ॥ वैसेही कामदेव के वश में प्राप्त यह राक्षस रावण जनक की कन्या (जानकी) जी को लिये जाता है तब उस वचन को सुनकर पक्षिराज गीध ने ॥ २७ ॥ राक्षसेन्द्र रावण से युद्ध किया व रावण से मारा हुआ वह गिरपड़ा और माघ के कृष्णपक्ष की नवमी में रावण के मन्दिर में बसती हुई जानकीजी को ॥ २८ ॥ ढूंढ़ते हुए वे राम, लक्ष्मण दोनों भाई उस समय ॥ २९ ॥ जटायु को देखकर व राक्षस से हरी हुई सीता को जानकर तदनन्तर उन श्रीरामजी ने पक्षी गृध्रराज का दाहा-

रामो विना सीतां ददर्श ह ॥ तत्रैव ह्रियमाणा सा चक्रन्द कुररी यथा ॥ २५ ॥ रामरामेति मां रक्ष रक्ष मां रक्षसा हृताम् ॥ यथा श्येनः क्षुधायुक्तः क्रन्दन्तीं वर्तिकां नयेत् ॥ २६ ॥ तथा कामवशं प्राप्तो राक्षसो जनकात्मजाम् ॥ नयत्येष जनकजां तच्छ्रुत्वा पक्षिराट् तदा ॥ २७ ॥ युयुधे राक्षसेन्द्रेण रावणेन हतोऽपतत् ॥ माघासितनवम्यां तु वसन्तीं रावणालये ॥ २८ ॥ मार्गमाणौ तदा तौ तु भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥ जटायुषं तु दृष्ट्वैव ज्ञात्वा राक्षससंहृताम् ॥ सीतां ज्ञात्वा ततः पक्षी संस्कृतस्तेन भक्तितः ॥ ३० ॥ अग्रतः प्रययौ रामो लक्ष्मणस्तत्पदानुगः ॥ पम्पाभ्याशमनुप्राप्य शबरीमनुगृह्य च ॥ ३१ ॥ तज्जलं समुपस्पृश्य हनुमद्दर्शनं कृतम् ॥ ततो रामो हनुमता सह सख्यं चकार ह ॥ ३२ ॥ ततः सुग्रीवमभ्येत्य अहनद्वालिवानरम् ॥ प्रेषिता रामदेवेन हनुमत्प्रमुखाः प्रियाम् ॥ ३३ ॥ अङ्गुलीयकमादाय वायुसूनुस्तदा गतः ॥ सम्पातिर्दशमे मासि आचख्यौ वानराय ताम् ॥ ३४ ॥ ततस्त

दिक कर्म किया ॥ ३० ॥ आगे श्रीरामजी चले व उनके पीछे लक्ष्मणजी चले और पंपासर के समीप प्राप्त होकर शबरी के ऊपर दयाकर ॥ ३१ ॥ उस पंपासर के जल को स्पर्श कर उन्हों ने हनुमान्जी का दर्शन किया तदनन्तर श्रीरामजी ने हनुमान्जी के साथ मित्रता की ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुग्रीव के समीप जाकर बालि वानर को मारा और श्रीरामदेवजी ने हनुमान् आदिक वानरों को सीताजी के समीप पठाया ॥ ३३ ॥ तब हनुमान्जी अँगूठा को लेकर गये और दशवें महीने में संपाति वानर ने हनुमान् वानर से उन जानकीजी को कहा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उस संपाति के वचन से हनुमान्जी सौ योजन समुद्र को नांघगये व उन्होंने उस रात में लंका में

जानकीजी को सब ओर ढूंढा ॥ ३५ ॥ और उसी रात के शेष रहने पर हनुमान्‌जीको सीताजी का दर्शन हुआ और द्वादशी में हनुमान्‌जी शिशम के वृक्षपै चढ़े ॥ ३६ ॥ और उस रातमें उन्होंने जानकीजी के विश्वास के लिये कथा को कहा तदनन्तर तेरसि तिथि में अक्षकुमार आदिकों के साथ युद्ध वर्तमान हुआ ॥ ३७ ॥ और तेरसि में मेघनादने हनुमान्‌जी को ब्रह्मास्त्र से बांध लिया और हनुमान्‌जी ने कठोर व रूखे वचनों को राक्षसाधिप रावण से कहा व ब्रह्मास्त्र से संयुत तथा बँधेहुए उन्होंने पुच्छ से संयुत आग से लंका को जलादिया ॥ ३८।३९ ॥ और पौर्णमासी में हनुमान्‌जी का महेन्द्र पर्वत पै आगमन हुआ व मार्गशीर्ष की परेवा से पांच दिनों से मार्गमें ॥ ४० ॥

द्वचनादब्धिं पुप्लुवे शतयोजनम् ॥ हनुमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां परितोऽचिनोत् ॥ ३५ ॥ तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः ॥ द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाह संकथाम् ॥ अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ॥ दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः ॥ वह्निना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं कृतम् ॥ ३९ ॥ पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः ॥ मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः ॥ ४० ॥ पुनरागत्य वर्षेह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल ॥ सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम् ॥ ४१ ॥ मणिप्रदानं सीतायाः सर्वं रामाय शंसयत् ॥ अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्त्ते विजयाभिधे ॥ ४२ ॥ मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ॥ रामः कृत्वा प्रतिज्ञां हि प्रयातुं दक्षिणां दिशम् ॥ ४३ ॥ तीर्त्वाहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् ॥ दक्षिणाशां

फिर आकर वर्ष दिनमें मधुवनको विध्वंस किया और सप्तमीमें चीन्ह को दिया व सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४१ ॥ हनुमान्‌जी ने सीताजी के मणि प्रदान आदि समस्त वृत्तान्तको श्रीरामजी से निवेदन किया और अष्टमीमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विजय संज्ञक मुहूर्त्त में ॥ ४२ ॥ सूर्यनारायण के मध्य में प्राप्त होनेपर श्रीरामजी का प्रस्थान हुआ व श्रीरामजी दक्षिण दिशा को जाने के लिये प्रतिज्ञा करके ॥ ४३ ॥ यह कहा कि मैं समुद्र को भी उतरकर रावण को मारूंगा और दक्षिण दिशा को जातेहुए उन

श्रीरामजी के सुग्रीव मित्र हुए ॥ ४४ ॥ और सात दिनों में समुद्र के किनारेपर सेनाका टिकाश्रय हुआ व पौष के शुक्लपक्ष की परेवा से तीज तिथितक सेना समेत श्रीरामजी समुद्र के समीप टिकेरहे ॥ ४५ ॥ और चौथि तिथि में विभीषणजी श्रीरामचन्द्रजी को मिले व पंचमी तिथि में समुद्र को उतरने के लिये सलाह हुई ॥ ४६ ॥ और श्रीरामजी ने चार दिन अन्न जल को छोड़कर व्रत किया तब समुद्र से वर मिला व यत्न दिखलाया गया ॥ ४७ ॥ और दशमी तिथि में सेतु का प्रारम्भ हुआ व तेरसि में समाप्तहुआ और चौदसि तिथि में श्रीरामजी ने सुवेल पर्वत पै सेना को टिकाया ॥ ४८ ॥ व पौर्णमासी तिथि से दुइज तक तीन दिनों से सेना उतरी और वीर

प्रयातस्य सुग्रीवोऽथाभवत्सखा ॥ ४४ ॥ वासरैः सप्तभिः सिंधोस्तीरे सैन्यनिवेशनम् ॥ पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीयां यावदम्बुधौ ॥ उपस्थानं ससैन्यस्य राघवस्य बभूव ह ॥ ४५ ॥ विभीषणश्चतुर्थ्यां तु रामेण सह सङ्गतः ॥ समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतः ॥ ४६ ॥ प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम् ॥ समुद्राद्वरलाभश्च सहोपायप्रदर्शनः ॥ ४७ ॥ सेतोर्दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यां समापनम् ॥ चतुर्दश्यां सुवेलाद्रौ रामः सेनां न्यवेशयत् ॥ ४८ ॥ पूर्णिमास्या द्वितीयायां त्रिदिनैः सैन्यतारणम् ॥ तीर्त्वा तोयनिधिं रामः शूरवानरसैन्यवान् ॥ ४९ ॥ रुरोध च पुरीं लङ्कां सीतार्थं शुभलक्षणः ॥ तृतीयादिदशम्यन्तं निवेशश्च दिनाष्टकः ॥ ५० ॥ शुकसारणयोस्तत्र प्राप्तिरेकादशीदिने ॥ पौषासिते च द्वादश्यां सैन्यसंख्यानमेव च ॥ ५१ ॥ शार्दूलेन कपीन्द्राणां सारासारोपवर्णनम् ॥ त्रयोदश्याद्यमान्ते च लङ्कायां दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥ रावणः सैन्यसंख्यानं रणोत्साहं तदाऽकरोत् ॥ प्रययावङ्गदो

वानरों की सेनावाले श्रीरामजी ने समुद्र को उतरकर ॥ ४९ ॥ सीता के लिये उत्तम लक्षणोंवाले श्रीरामजी ने लंकापुरी को घेरलिया और तीज से लगाकर दशमीतक आठ दिन सेना टिकी रही ॥ ५० ॥ और वहां एकादशी तिथि में शुक व सारण मंत्री का मिलाप हुआ व पौष के कृष्णपक्ष में द्वादशी तिथि में सेना की गिनती हुई ॥ ५१ ॥ व कपीन्द्रों के मध्य में श्रेष्ठ सुग्रीव ने सारांश व असारांश का वर्णन किया और तेरसि से लगाकर अमावस तक लंका में तीन दिनों से ॥ ५२ ॥ रावण

ने सेना की गिनती की तब युद्ध करने का उत्साह किया व माघशुक्ल की प्रतिपदा तिथि में अंगद दूतता में गये ॥ ५३ ॥ तब माघशुक्ल द्वितीया तिथि में सीताजी को पति का माया से मस्तकादि का दर्शन कराया गया और सात दिनों में अष्टमी पर्यन्त ॥ ५४ ॥ राक्षसों व वानरों का बड़ा भारी युद्ध हुआ व माघशुक्ल नवमी तिथि में रात्रि को युद्ध में मेघनाद ने ॥ ५५ ॥ श्रीराम व लक्ष्मणजी को नागपाश से बाँध लिया व वानरेशों के विकल होने पर व सबों की आशा टूटने पर ॥ ५६ ॥ उस समय श्रीरामजी ने पवन के उपदेश से गरुड़ को स्मरण किया और दशमी में नागपाश से छुड़ाने के लिये गरुड़जी आये ॥ ५७ ॥ व माघशुक्ल

दौत्ये माघशुक्लाद्यवासरे ॥ ५३ ॥ सीतायाश्च तदा भर्तुर्मायामूर्धादिदर्शनम् ॥ माघशुक्लद्वितीयायां दिनैः सप्तभिर ष्टमीम् ॥ ५४ ॥ रक्षसां वानराणां च युद्धमासीच्च संकुलम् ॥ माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजिता रणे ॥ ५५ ॥ रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल ॥ आकुलेषु कपीशेषु हताशेषु च सर्वशः ॥ ५६ ॥ वायूपदेशाद्गरुडं स स्मार राघवस्तदा ॥ नागपाशविमोक्षार्थं दशम्यां गरुडोऽभ्यगात् ॥ ५७ ॥ अवहारो माघशुक्लस्यैकादश्या दिनद्वय म् ॥ द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः ॥ ५८ ॥ त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे ॥ मायासीतां दर्श यित्वा रामाय दशकन्धरः ॥ ५९ ॥ त्रासयामास च तदा सर्वान्सैन्यगतानपि ॥ माघशुक्लचतुर्दश्या यावत्कृष्णादि वासरम् ॥ ६० ॥ त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः ॥ माघकृष्णद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥ ६१ ॥ रामेण तुमुले युद्धे रावणो द्रावितो रणात् ॥ पञ्चम्या अष्टमी यावद्रावणेन प्रबोधितः ॥ ६२ ॥ कुम्भकर्णस्तदा चक्रे

की एकादशी से दो दिन तक फिर युद्ध हुआ व द्वादशी तिथि में हनुमान्जी ने धूम्राक्ष को मारा ॥ ५८ ॥ व तेरसि तिथि में उन्हीं ने समर में अकंपन को मारा व रावण ने श्रीरामजी को माया की सीता को दिखलाकर ॥ ५९ ॥ उस समय सेना में प्राप्त सब लोगों को डरवाया व माघशुक्ल की चौदसि से कृष्णपक्ष की परेवा तक ॥ ६० ॥ तीन दिन में नील वानर ने प्रहस्त का वध किया व माघकृष्ण की द्वितीया से चौथि तक तीन दिनों में ॥ ६१ ॥ श्रीरामजी ने बड़े युद्ध में रावण को युद्ध से भगा दिया व पंचमी से लगाकर अष्टमी तक रावण ने कुंभकर्ण को जगाया तब कुंभकर्ण ने चार दिन तक भोजन किया और कुंभकर्ण ने नवमी से लगाकर

चार दिनों तक युद्ध किया ॥ ६२ । ६३ ॥ व श्रीरामजी ने युद्ध में बहुत वानरों को खानेवाले कुंभकर्ण को मारा और अमावस के दिन शोकाभ्यवहार हुआ ॥ ६४ ॥ और फाल्गुन की प्रतिपदा से लगाकर चौथि तक चार दिनों में नरांतक आदिक पांच राक्षस मारे गये ॥ ६५ ॥ और पंचमी से सप्तमी तक तीन दिन में अतिकाय का वध हुआ व अष्टमी से द्वादशी तक पांच दिन में निकुंभ व कुंभ ये दोनों मारे गये और मकराक्ष चार दिनों में मारा गया व फाल्गुन के कृष्णपक्ष की दुइज के दिन मेघनाद जीता गया ॥ ६६ । ६७ ॥ और तीज से लगाकर सप्तमी तक पांच दिन तक ओषधी लाने की व्यग्रता से युद्ध बन्द रहा ॥ ६८ ॥ और अष्टमी में

ऽभ्यवहारं चतुर्दिनम् ॥ कुम्भकर्णोऽकरोद्युद्धं नवम्यादिचतुर्दिनैः ॥ ६३ ॥ रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः ॥ अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह ॥ ६४ ॥ फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः ॥ नरान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥ ६५ ॥ पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात ॥ अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥ ६६ ॥ निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ मकराक्षश्चतुर्दिनैः ॥ फाल्गुनासितद्वितीयाया दिने वै शक्रजिज्जितः ॥ ६७ ॥ तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेव च ॥ ओषध्यानयवैयग्र्यादवहारो बभूव ह ॥ ६८ ॥ अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः ॥ शोकावेगात्तदा रामश्चक्रे सैन्यावधारणम् ॥ ६९ ॥ ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित् ॥ लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥ ७० ॥ चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः ॥ अमावास्यादिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः ॥ ७१ ॥ चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीं दिनपञ्चके ॥ रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥ ७२ ॥

कुबुद्धि रावण ने मायारूपिणी जानकीजी को मारा तब शोक के वेग से श्रीरामजी ने सैना का निश्चय किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर त्रयोदशी से पांच दिनों में प्रसिद्ध बल व पौरुषवाला मेघनाद युद्ध में लक्ष्मणजी से मारा गया ॥ ७० ॥ और चौदसि में युद्ध बंद होने के कारण रावण यज्ञदीक्षा को प्राप्त हुआ व अमावस दिन में रावण युद्ध के लिये गया ॥ ७१ ॥ और चैत के शुक्लपक्ष की परेवा से पंचमी तक पांच दिन रावण युद्ध करता रहा और राक्षसों का बहुत वध हुआ ॥ ७२ ॥

व चैत के शुक्लपक्ष की अष्टमी तक रथ व अश्वादिकों का नाश हुआ और चैत के शुक्लपक्ष की नवमी में लक्ष्मणजी के शक्ति का भेदन होने पर ॥ ७३ ॥ क्रोध से संयुत श्रीरामजी ने रावण को भगा दिया और विभीषण के उपदेश से हनुमान्जी का युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ और हनुमान्जी लक्ष्मणजी के लिये ओषधी लाने के कारण द्रोणाचल को आये व विशल्यकरणी ओषधी को लाकर उसको लक्ष्मणजी को पिला दिया ॥ ७५ ॥ व दशमी में युद्ध शांत रहा और रात्रि में राक्षसों का युद्ध हुआ और एकादशी में श्रीरामजी के लिये रथ व मातलि सारथी प्राप्त हुआ और द्वादशी से लगाकर कृष्णपक्ष की चौदसि तक अठारह दिनों में श्रीरामजी ने रावण को

चैत्रशुक्लाष्टमीं यावत्स्यन्दनाश्वादिसूदनम् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रेः शक्तिभेदने ॥ ७३ ॥ कोपाविष्टेन रामेण द्रावितो दशकन्धरः ॥ विभीषणोपदेशेन हनुमद्युद्धमेव च ॥ ७४ ॥ द्रोणाद्रेरोषधीं नेतुं लक्ष्मणार्थमुपागतः ॥ विशल्यां तु समादाय लक्ष्मणं तामपाययत् ॥ ७५ ॥ दशम्यामवहारोऽभूद्रात्रौ युद्धं तु रक्षसाम् ॥ एकादश्यां तु रामाय रथो मातलिसारथिः ॥ ७६ ॥ प्राप्तो युद्धाय द्वादश्या यावत्कृष्णां चतुर्द्दशीम् ॥ अष्टादशदिनै रामो रावणं द्वैरथेऽवधीत् ॥ ७७ ॥ संस्कारा रावणादीनाममावास्यादिनेऽभवन् ॥ संग्रामे तुमुले जाते रामो जयमवाप्तवान् ॥७८॥ माघशुक्लद्वितीयादिचैत्रकृष्णचतुर्द्दशीम् ॥ सप्ताशीतिदिनान्येवं मध्ये पञ्चदशाहकम् ॥ ७९ ॥ युद्धावहारः संग्रामो द्वासप्ततिदिनान्यभूत् ॥ वैशाखादितिथौ राम उवास रणभूमिषु ॥ अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ॥ ८० ॥ सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम् ॥ दशरथस्यागमनं तत्र चैवानुमोदनम् ॥ ८१ ॥ हत्वा

द्वैरथ युद्ध में मारा ॥ ७६ । ७७ ॥ और अमावस के दिन रावणादिकों के संस्कार हुए व बड़ाभारी संग्राम होने पर श्रीरामजी ने जीत को पाया ॥ ७८ ॥ इस प्रकार माघ महीने के शुक्लपक्ष की द्वितीया से लगाकर चैत महीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि तक सत्तासी दिन हुए और बीच में पंद्रह दिन ॥ ७९ ॥ युद्ध बंद हुआ और बहत्तरि दिन युद्ध हुआ व वैशाख की प्रतिपदा तिथि में श्रीरामजी ने युद्धभूमियों में निवास किया और दुइज तिथि में लंका के राज्य पै विभीषण का अभिषेक किया गया ॥ ८० ॥ और तीज तिथि में सीताजी की शुद्धि हुई व देवताओं से वरदान मिला और वहां दशरथ का आगमन हुआ व अनुमोदन हुआ ॥ ८१ ॥ और

लक्ष्मण के बड़े भाई व्यापक श्रीरामजी शीघ्रता से लंकेश रावण को मारकर राक्षस से दुःखित पवित्र जानकीजी को लेकर ॥ ८२ ॥ वैशाख की चौथि में श्रीरामजी पुष्पक विमान पै बैठकर व बड़ी प्रीति से जानकीजी को लेकर लौटे ॥ ८३ ॥ फिर आकाश के द्वारा अयोध्यापुरी को लौटे और चौदह वर्ष पूर्ण होने पर वैशाख की पंचमी में ॥ ८४ ॥ गणों समेत श्रीरामजी भारद्वाजजी के आश्रम में पैठे और छठि तिथि में वे पुष्पक विमान के द्वारा नंदिग्राम में आये ॥ ८५ ॥ और सप्तमी तिथि में इन रघुनाथजी का अयोध्यापुरी में अभिषेक किया गया दश अधिक चौदह महीने तक जानकीजी ने ॥ ८६ ॥ श्रीरामजी से रहित होकर रावण के घर

त्वरेण लङ्केशं लक्ष्मणस्याग्रजो विभुः ॥ गृहीत्वा जानकीं पुण्यां दुःखितां राक्षसेन तु ॥ ८२ ॥ आदाय परया प्रीत्या जानकीं स न्यवर्तत ॥ वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्पकमाश्रितः ॥ ८३ ॥ विहायसा निवृत्तस्तु भूयोऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥ पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां माधवस्य च ॥ ८४ ॥ भारद्वाजाश्रमे रामः सगणः समुपाविशत् ॥ नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां स पुष्पकेण समागतः ॥ ८५ ॥ सप्तम्यामभिषिक्तोसावयोध्यायां रघूद्वहः ॥ दशाहाधिकमासांश्च चतुर्दश हि मैथिली ॥ ८६ ॥ उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने ॥ द्वाचत्वारिंशके वर्षे रामो राज्यमकारयत् ॥ ८७ ॥ सीता यास्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि तु तदाभवन् ॥ स चतुर्दशवर्षान्ते प्रविष्टः स्वां पुरीं प्रभुः ॥ ८८ ॥ अयोध्यांनाम मुदितो रामो रावणदर्पहा ॥ भ्रातृभिः सहितस्तत्र रामो राज्यमकारयत् ॥ ८९ ॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ रामो राज्यं पालयित्वा जगाम त्रिदिवालयम् ॥ ९० ॥ रामराज्ये तदा लोका हर्षनिर्भरमानसाः ॥ बभूवुर्धनधान्याढ्याः पुत्रपौत्रयुता नराः ॥ ९१ ॥ कामवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि गुणवन्ति च ॥ गावस्तु घटदोहिन्यः पादपाश्च सदा

में निवास किया बयालीसवें वर्ष में श्रीरामजी ने राज्य किया ॥ ८७ ॥ तब सीताजी के तेंतीस वर्ष हुए और रावण का गर्व नाशनेवाले वे प्रभु श्रीरामजी प्रसन्न होकर चौदह वर्ष के अन्त में अयोध्या नामक अपनी पुरी में पैठे और वहां भाइयों समेत श्रीरामजी ने राज्य किया ॥ ८८ । ८९ ॥ गेरह हज़ार वर्ष तक श्रीरामजी राज्य को पालन कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ९० ॥ उस श्रीरामजी के राज्य में मनुष्यों के मन हर्ष से पूर्ण हुए व पुत्रों और पौत्रों से संयुत मनुष्य धन व धान्य से युक्त हुए ॥ ९१ ॥ और

मेघ इच्छा के अनुकूल बरसते थे व अन्न गुणवान् होते थे और गौवें घड़ाभर दूध देनेवाली थीं व वृक्ष सदैव फलते थे ॥ ६२ ॥ व हे नराधिप ! श्रीरामजी के राज्य में मानसी व्यथा व रोग न हुए और स्त्रियां पतिव्रता हुईं व मनुष्य पितरों की भक्ति में परायण हुए ॥ ६३ ॥ और ब्राह्मणलोग सदैव वेद में परायण हुए व क्षत्रिय ब्राह्मणों के सेवक हुए और वैश्य जातिवाले लोग सदैव ब्राह्मणों व गौवों की भक्ति को करते थे ॥ ६४ ॥ व उस राज्य में संकरवर्ण व संकर आचरण नहीं हुआ है और स्त्री बंध्या व दुर्भाग्यवती तथा काकबंध्या और मृतवत्सा नहीं होती थी ॥ ६५ ॥ और कोई भी स्त्री विधवा न हुई व पतिसंयुत स्त्री विलाप नहीं करती थी और कोई मनुष्य माता, पिता व गुरु का अपमान नहीं करते थे ॥ ६६ ॥ और कोई पुण्यकारी मनुष्य वृद्धों का वचन उल्लंघन नहीं करता

फलाः ॥ ९२ ॥ नाधयो व्याधयश्चैव रामराज्ये नराधिप ॥ नार्यः पतिव्रताश्चासन्पितृभक्तिपरा नराः ॥ ९३ ॥ द्विजा वेदपरा नित्यं क्षत्रिया द्विजसेविनः ॥ कुर्वते वैश्यवर्णाश्च भक्तिं द्विजगवां सदा ॥ ९४ ॥ न योनिसङ्करश्चासीत्तत्र नाचारसङ्करः ॥ न बन्ध्या दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥ ९५ ॥ विधवा नैव काप्यासील्लप्यते न सभर्तृका ॥ नावज्ञां कुर्वते केपि मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥ ९६ ॥ न च वाक्यं हि वृद्धानामुल्लङ्घयति पुण्यकृत् ॥ न भूमिहरणं तत्र परनारीपराङ्मुखाः ॥ ९७ ॥ नापवादपरो लोको न दरिद्रो न रोगभाक् ॥ न स्तेयो द्यूतकारी च मैरेयी पापिनो न हि ॥ ९८ ॥ न हेमहारी ब्रह्मघ्नो न चैव गुरुतल्पगः ॥ न स्त्रीघ्नो न च बालघ्नो न चैवानृतभाषणः ॥ ९९ ॥ न वृत्तिलोपकश्चासीत्कूटसाक्षी न चैव हि ॥ न शठो न कृतघ्नश्च मलिनो नैव दृश्यते ॥ १०० ॥ सदा सर्वत्र पूज्यन्ते ब्राह्मणा

था व उस राज्य में पृथ्वी का हरण नहीं होता था और मनुष्य पराई स्त्रियों से विमुख होते थे ॥ ९७ ॥ व मनुष्य कलंक में तत्पर नहीं होता था और निर्धनी व रोगी नहीं होता था और चोर, जुँवारी व मदिरा पीनेवाला और पापी मनुष्य नहीं होते थे ॥ ९८ ॥ और सुवर्ण को चुरानेवाला, ब्रह्मघाती व गुरु की शय्या पै जानेवाला नहीं हुआ और न स्त्री को मारनेवाला तथा न बालघाती और न असत्यवादी हुआ ॥ ९९ ॥ और जीविका को लोप करनेवाला व झूंठी गवाही देनेवाला मनुष्य नहीं हुआ और न शठ न कृतघ्न न मलीन देख पड़ता था ॥ १०० ॥ व हे राजन् ! बहुतही प्रसिद्ध श्रीरामजी के राज्य में सदैव सब कहीं वेदों के पार-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गामी ब्राह्मण पूजे जाते थे और कोई अवैष्णव व व्रतविहीन न था ॥ १ ॥ और उन श्रीरामजी के राज्य करते हुए बड़े ऐश्वर्यवान् व तपस्या के निधान ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी मुनियों समेत अनेक तीर्थों को करके आये और श्रीरामजी ने मुनियों समेत गुरु वसिष्ठजी को अभ्युत्थान व अर्घ, पाद्य और मधुपर्कादि पूजा से पूजन किया व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से कुशल पूंछा ॥ २ । ३ । ४ ॥ कि हे राम ! राज्य, घोड़ा, हाथी, ख़ज़ाना, देश व उत्तम बन्धु तथा सेवकों में कुशल है उस समय मुनि के ऐसा पूंछने पर ॥ ५ ॥ रामजी बोले कि आप की प्रसन्नता से इस समय व सदैव सब कहीं मेरे कुशल है और श्रीरामजी ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी से

वेदपारगाः ॥ नावैष्णवोऽव्रती राजन् रामराज्येऽतिविश्रुते ॥ १ ॥ राज्यं प्रकुर्वतस्तस्य पुरोधा वदतां वरः ॥ वसिष्ठो मुनिभिः सार्द्धं कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥ २ ॥ आजगाम ब्रह्मपुत्रो महाभागस्तपोनिधिः ॥ रामस्तं पूजयामास मुनिभिः सहितं गुरुम् ॥ ३ ॥ अभ्युत्थानार्घपाद्यैश्च मधुपर्कादिपूजया ॥ पप्रच्छ कुशलं रामं वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥ राज्ये चाश्वे गजे कोशे देशे सद्भ्रातृभृत्ययोः ॥ कुशलं वर्त्तते राम इति पृष्टे मुनेस्तदा ॥ ५ ॥ राम उवाच ॥ सर्वत्र कुशलं मेऽद्य प्रसादाद्भवतः सदा ॥ पप्रच्छ कुशलं रामो वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६ ॥ सर्वतः कुशली त्वं हि भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ स सर्वं कथयामास यथा तीर्थान्यशेषतः ॥ ७ ॥ सेवितानि धरापृष्ठे क्षेत्राण्यायतनानि च ॥ रामाय कथयामास सर्वत्र कुशलं तदा ॥ ८ ॥ ततः स विस्मयाविष्टो रामो राजीवलोचनः ॥ पप्रच्छ तीर्थमाहात्म्यं यत्तीर्थं पूत्तमोत्तमम् ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येरामचरित्रवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥

कुशल पूंछा ॥ ६ ॥ कि स्त्री व पुत्र समेत तुम सब ओर से कुशल समेत हो तब उन वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से सब कहीं कुशल कहा व जिस प्रकार पृथ्वी में सब तीर्थ और क्षेत्र व स्थान जिस प्रकार सेवन किये गये उस सब को कहा ॥ ७ । ८ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत कमललोचन श्रीरामजी ने उस तीर्थ के माहात्म्य को पूंछा जो कि तीर्थों में उत्तमोत्तम था ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामचरित्रवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो० । धर्मारण्यक्षेत्र को गये यथा श्रीराम । इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ श्रीरामजी बोले कि हे मानद, भगवन्, विभो ! तुम ने जिन तीर्थों को सेवन किया है इनके मध्य में जो उत्तम तीर्थ हो उसको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ और मैंने सीताजी के हरने में ब्रह्मराक्षसों को मारा है उस पाप की शुद्धि के लिये उत्तम तीर्थों में भी उत्तम तीर्थ को कहिये ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले कि गंगा, नर्मदा, तापी, यमुना, सरस्वती, गंडकी, गोमती व पूर्णा ये नदियां भलीभांति पवित्रकारक हैं॥ ३॥ और इन नदियों के मध्य में त्रिपथगामिनी गंगाजी श्रेष्ठ हैं हे राघव! ये गंगाजी दर्शनही से पाप को जलाती हैं ॥ ४ ॥ और कलियुग में नर्मदा नदी देखकर सौ

श्रीराम उवाच ॥ भगवन्यानि तीर्थानि सेवितानि त्वया विभो ॥ एतेषां परमं तीर्थं तन्ममाचक्ष्व मानद ॥ १ ॥ मया तु सीताहरणे निहता ब्रह्मराक्षसाः ॥ तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं वद तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ गङ्गा च नर्मदा तापी यमुना च सरस्वती ॥ गण्डकी गोमती पूर्णा एता नद्यः सुपावनाः ॥ ३ ॥ एतासां नर्मदा श्रेष्ठा गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ दहते किल्बिषं सर्वं दर्शनादेव राघव ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा जन्मशतं पापं गत्वा जन्मशतत्रयम् ॥ स्नात्वा जन्मसहस्रं च हन्ति रेवा कलौ युगे ॥ ५ ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य शाकमूलफलैरपि ॥ एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिभोजफलं लभेत् ॥ ६ ॥ गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७ ॥ फाल्गुनान्ते कुहूं प्राप्य तथा प्रौष्ठपदेऽसिते ॥ पक्षे गङ्गामधि प्राप्य स्नानं च पितृतर्प्पणम् ॥ ८ ॥ कुरुते पिण्डदानानि सोऽक्षयं फलमश्नुते ॥ शुचौ मासे च सम्प्राप्ते स्नानं वाप्यां करोति यः ॥ ९ ॥ चतुरशीतिनरकान्न

जन्मों का पाप व जाकर तीन सौ जन्मों का पाप और नहाकर हज़ार जन्मों का पाप नाश करती है ॥ ५ ॥ नर्मदा के किनारे प्राप्त होकर शाक, मूल व फलों से भी एक ब्राह्मण को भोजन कराने पर मनुष्य कोटि ब्राह्मणों के भोजन का फल पाता है ॥ ६ ॥ और सौ योजनों से भी जो गंगा गंगा ऐसा कहता है वह सब पापों से छूट जाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ७ ॥ फागुन के अन्त में अमावस को प्राप्त होकर व भादों के कृष्णपक्ष में गंगा के समीप प्राप्त होकर जो स्नान व पितरों का तर्पण करता है ॥ ८ ॥ व जो पिंडदान करता है वह अक्षय फल को भोगता है और आषाढ़ महीना प्राप्त होने पर जो बावली में स्नान करता है ॥ ९ ॥ हे राजन्!

वह चौरासी नरकों को नहीं देखता है व हे राम! तपती के स्मरण में महापातकियों के भी ॥ १० ॥ सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को वह उधारता है व यमुना में नहाकर मनुष्य समस्त पातकों से छूट जाता है ॥ ११ ॥ और बड़े पापों से युक्त भी वह उत्तम गति को प्राप्त होता है व कृत्तिका नक्षत्र के योग में कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो सरस्वतीजी में नहाता है ॥ १२ ॥ उत्तम देवताओं से स्तुति किया जाता हुआ वह गरुड़ पै चढ़कर स्वर्ग को जाता है और जहां प्राची सरस्वती है वहां कातिक महीने में जो नहाकर ॥ १३ ॥ प्राची सरस्वती व माधवजी की स्तुति करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है और गंडकी नामक पवित्र तीर्थ में जो

पश्यति नरो नृप ॥ तपत्याः स्मरणे राम महापातकिनामपि ॥ १० ॥ उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ यमुनायां नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ महापातकयुक्तोऽपि स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिका योगे सरस्वत्यां निमज्जयेत् ॥ १२ ॥ गच्छेत्स गरुडारूढः स्तूयमानः सुरोत्तमैः ॥ स्नात्वा यः कार्त्तिके मासि यत्र प्राची सरस्वती ॥ १३ ॥ प्राचीं च माधवं स्तौति स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ गण्डकीपुण्यतीर्थे हि स्नानं यः कुरुते नरः ॥ १४ ॥ शालग्रामशिलामर्च्य न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ गोमतीजलकल्लोलैर्मज्जयेत्कृष्णसन्निधौ ॥ १५ ॥ चतुर्भुजो नरो भूत्वा वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥ चर्मण्वतीं नमस्कृत्य अपः स्पृशति यो नरः ॥ १६ ॥ स पूर्वजांस्तारयति दश पूर्वान्दशापरान् ॥ द्वयोश्च सङ्गमं दृष्ट्वा श्रुत्वा वा सागरध्वनिम् ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्यायुतो वापि पूतो गच्छेत्परां गतिम् ॥ माघमासे प्रयागे तु मज्जनं कुरुते नरः ॥ १८ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा अन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ॥ प्रभासे ये

मनुष्य स्नान करता है ॥ १४ ॥ वह शालग्रामशिला को पूजकर फिर दूध पीनेवाला नहीं होता है और श्रीकृष्णजी के समीप जो गोमतीजल की बड़ी भारी लहरियों से नहाता है ॥ १५ ॥ वह मनुष्य चतुर्भुज होकर वैकुंठ में बहुत दिनों तक आनन्द करता है व चर्मण्वती नदी को प्रणाम कर जो मनुष्य जल को स्पर्श करता है ॥ १६ ॥ वह दश पहले व दश पीछे के पितरों को तारता है और दोनों के संगम को देखकर व समुद्र की ध्वनि को सुनकर ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्या से संयुत भी मनुष्य पवित्र होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है और माघ महीने में जो मनुष्य प्रयाग में स्नान करता है ॥ १८ ॥ वह इस लोक में सुख को भोगकर अन्त में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विष्णुजी के स्थान को जाता है व हे राम ! प्रभासक्षेत्र में जो मनुष्य तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी होते हैं ॥ १९ ॥ वे यमलोक व कुंभीपाकादिक को नहीं देखते हैं और जो मनुष्य नैमिषारण्यवासी होता है वह देवत्व को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ जिस कारण देवताओं का स्थान है उसी कारण वह पृथ्वी में दुर्लभ है व हे राम ! कुरुक्षेत्र तीर्थ में चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ २१ ॥ हे नृपेन्द्र ! सुवर्ण के दान से फिर मनुष्य स्तन पीनेवाला नहीं होताहै और श्रीस्थल में दर्शन करके मनुष्य पाप से छूट जाता है ॥ २२ ॥ और सब दुःखों के विनाशक विष्णुलोक में वह पूजा जाता है व हे राघव ! पृथ्वी में जो मनुष्य कपिला गऊ को स्पर्श करता है ॥ २३ ॥ वह

नरा राम त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणः ॥ १९ ॥ यमलोकं न पश्येयुः कुम्भीपाकादिकं तथा ॥ नैमिषारण्यवासी यो नरो देवत्वमाप्नुयात ॥ २० ॥ देवानामालयं यस्मात्तदेव भुवि दुर्लभम् ॥ कुरुक्षेत्रे नरो राम ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ २१ ॥ हेमदानाच्च राजेन्द्र न भूयःस्तनपो भवेत् ॥ श्रीस्थले दर्शनं कृत्वा नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ सर्वदुःखविनाशे च विष्णुलोके महीयते ॥ कपिलां स्पर्शयेद्यो गां मानवो भुवि राघव ॥ २३ ॥ सर्वकामदुघावासमृषिलोकं स गच्छति ॥ उज्जयिन्यां तु वैशाखे शिप्रायां स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ मोचयेद्रौरवाद् घोरात्पूर्वजांश्च सहस्रशः ॥ सिन्धुस्नानं नरो राम प्रकरोति दिनत्रयम् ॥ २५ ॥ सर्पपापविशुद्धात्मा कैलासे मोदते नरः ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम् ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्लिप्यते न च स कचित् ॥ अज्ञानामपि जन्तूनां महाऽमेध्ये तु गच्छताम् ॥ २७ ॥ पादोद्भूतं पयः पीत्वा सर्वपापं प्रणश्यति ॥ वेदवत्यां नरो यस्तु स्नाति सूर्योदये शुभे ॥२८॥

सब कामनाओं को देनेवाले ऋषिलोक स्थान को जाता है और वैशाख में उज्जयिनीपुरी में जो शिप्रा नदी में स्नान करता है ॥ २४ ॥ वह हज़ारों पूर्वजों को भयंकर रौरव नरक से छुड़ाता है व हे राम ! जो मनुष्य तीन दिन तक समुद्रस्नान करता है ॥ २५ ॥ वह मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर कैलास में आनन्द करता है और कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर ॥ २६ ॥ वह कभी ब्रह्महत्यादिक पापों से लिप्त नहीं होता है और बहुतही अशुद्ध स्थान में जानेवाले मूर्ख भी प्राणियों का ॥ २७ ॥ सब पातक विष्णुजी के चरण से उपजे हुए जल को पीकर नाश हो जाता है और उत्तम सूर्योदय में जो मनुष्य वेदवती नदी में नहाताहै ॥२८॥

वह सब रोग से छूट जाता है व उत्तम सुख को पाता है हे राम ! सब कहीं तीर्थस्नान, पान व अवगाहन से ॥ २९ ॥ मनुष्यों के सब पापों को लीला से नाश करते हैं तीर्थों के मध्य में धर्मारण्य उत्तम तीर्थ कहा जाता है ॥ ३० ॥ जो कि पुरातन समय में पहले ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से स्थापित किया गया है सब वनों व तीर्थों के मध्य में विशेष कर ॥ ३१ ॥ धर्मारण्य से श्रेष्ठ भुक्ति, मुक्ति को देनेवाला तीर्थ नहीं है स्वर्ग में देवता धर्मारण्यनिवासी जनों की प्रशंसा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे रामदेव ! वे पवित्र और वे पुण्यकारी मनुष्य हैं जो कि कलियुग में सब पातकों को नाशनेवाले धर्मारण्य में बसते हैं ॥ ३३ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पाप

सर्वरोगात्प्रमुच्येत परं सुखमवाप्नुयात् ॥ तीर्थानि राम सर्वत्र स्नानपानावगाहनैः ॥ २९ ॥ नाशयन्ति मनुष्याणां सर्वपापानि लीलया ॥ तीर्थानां परमं तीर्थं धर्मारण्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३० ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैर्यदादौ संस्थापितं पुरा ॥ अरण्यानां च सर्वेषां तीर्थानां च विशेषतः ॥ ३१ ॥ धर्मारण्यात्परं नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ३२ ॥ ते पुण्यास्ते पुण्यकृतो ये वसन्ति कलौ नराः ॥ धर्मारण्ये रामदेव सर्वकिल्बिषनाशने ॥ ३३ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि सर्वस्तेयकृतानि च ॥ परदारप्रसङ्गादि अभक्ष्यभक्षणादि वै ॥ ३४ ॥ अगम्यागमनाद्यानि अस्पर्शस्पर्शनादि च ॥ भस्मीभवन्ति लोकानां धर्मारण्यावगाहनात् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च बालघ्नोऽनृतभाषणः ॥ स्त्रीगोघ्नश्चैव ग्रामघ्नो धर्मारण्ये विमुच्यते ॥ ३६ ॥ नातः परं पावनं हि पापिनां प्राणिनां भुवि ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वाञ्छितार्थप्रदं शुभम् ॥ ३७ ॥ कामिनां कामदं क्षेत्रं यतीनां मुक्तिदायकम् ॥ सिद्धानां सि

व सब चोरियों से किये हुए पाप और पराई स्त्री के प्रसंगादिक व अभक्ष्य वस्तु के खाने से उत्पन्न ॥ ३४ ॥ और न संग करने योग्य स्त्रियों के संगमादिक से उत्पन्न व न छूने योग्य वस्तुओं के स्पर्शादिक से उपजे हुए मनुष्यों के पाप धर्मारण्य के अवगाहन से भस्म होजाते हैं ॥ ३५ ॥ और ब्रह्मघाती, कृतघ्न, बालघाती, असत्यवादी व स्त्री और गऊ को मारनेवाला व ग्रामनाशक मनुष्य धर्मारण्य में मुक्त होता है ॥ ३६ ॥ पृथ्वी में इससे अधिक पापी प्राणियों को पवित्रकारक व स्वर्गदायक, यशदायक तथा आयुर्बलदायक व चाहे हुए प्रयोजन को देनेवाला उत्तम तीर्थ नहीं है ॥ ३७ ॥ और कामियों को धर्मारण्यक्षेत्र कामनादायक व

संन्यासियों को मुक्तिदायक तथा सिद्धों को प्रत्येक युग में सिद्धिदायक कहा गया है ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वसिष्ठजी का वचन सुन कर धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी हृदय को आनन्द करनेवाले बड़े भारी हर्ष को प्राप्त होकर ॥ ३९ ॥ उत्तम नियमोंवाले, प्रफुल्लित हृदय व रोमांचसंयुत श्रीरामजी ने धर्मारण्य में जाने के लिये बुद्धि की ॥ ४० ॥ जिस धर्मारण्य में तीन रात्रि के सेवन से कीट, पतंगादिक, मनुष्य व पशु सब पापों से छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार द्वारका-पुरी व काशी और त्रिशूलपाणि शिव व भैरवजी मुक्तिदायक हैं वैसेही धर्मारण्य उत्तम है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बड़े भारी धनुषवाले तथा बड़े हर्ष से संयुत श्रीरामजी

द्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं युगे युगे ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो धर्मभृतां वरः ॥ परं हर्षमनुप्राप्य हृदयानन्दकारकम् ॥ ३९ ॥ प्रोत्फुल्लहृदयो रामो रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ गमनाय मतिं चक्रे धर्मारण्ये शुभव्रतः ॥४०॥ यस्मिन्कीटपतङ्गादिमानुषाः पशवस्तथा ॥ त्रिरात्रसेवनेनैव मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ४१ ॥ कुशस्थली यथा काशी शूलपाणिश्च भैरवः ॥ यथा वै मुक्तिदो राम धर्मारण्यं तथोत्तमम् ॥ ४२ ॥ ततो रामो महेष्वासो मुदा परमया युतः ॥ प्रस्थितस्तीर्थयात्रायां सीतया भ्रातृभिः सह ॥ ४३ ॥ अनुजग्मुस्तदा रामं हनुमांश्च कपीश्वरः ॥ कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च मुदान्विता ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणो लक्षणोपेतो भरतश्च महामतिः ॥ शत्रुघ्नः सैन्यसहितोप्ययोध्यावासिनस्तथा ॥ ४५ ॥ नरव्याघ्र प्रकृतयो धर्मारण्ये विनिर्ययुः ॥ अनुजग्मुस्तदा रामं मुदा परमया युताः ॥ ४६ ॥ तीर्थयात्राविधिं कर्तुं गृहात्प्रचलितो नृपः ॥ वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमिदमाह महीपते ॥ ४७ ॥ श्रीराम उवाच ॥ एत

सीता व भाइयों समेत तीर्थयात्रा के लिये चले ॥ ४३ ॥ तब कपिनायक हनुमान्जी और हर्ष से संयुत कौशल्या, सुमित्रा व कैकेयी श्रीरामजी के पीछे चलीं ॥ ४४ ॥ और लक्षणों से संयुत लक्ष्मणजी व महाबुद्धिमान् भरतजी और सेना समेत शत्रुघ्न व अयोध्यानिवासीलोग ॥ ४५ ॥ व हे नरव्याघ्र ! सब प्रजालोग धर्मारण्य को चले और बड़ी प्रसन्नता से संयुत वे उस समय श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४६ ॥ हे महीपते ! तीर्थयात्रा की विधि को करने के लिये घर से चले हुए राजा रामजी ने अपने वंश के आचार्य वसिष्ठजी से यह कहा ॥ ४७ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे वसिष्ठजी ! यह बड़ा भारी आश्चर्य है कि पहले क्या द्वारका हुई है और कितने

समय से यह उत्पन्न है इसको मुझ से कहिये ॥ ४८ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे महाराज ! मैं यह नहीं जानता हूं कि कितने समय से यह क्षेत्र हुआ है लोमश और जाम्बवान्जी इस कारण को जानते हैं ॥ ४६ ॥ और अनेक भांति के जन्मों के मध्य में शरीर में जो पाप किया गया है उन सबों का यह क्षेत्र उत्तम प्रायश्चित्त (पापनाशक कर्म) कहा गया है ॥ ५० ॥ उन वसिष्ठजी के इस वचन को सुन कर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने तीर्थ को जाने के लिये बुद्धि करके यात्रा की विधि किया ॥ ५१ ॥ और पुरश्चरण की विधि करके श्रीरामजी वसिष्ठजी को आगे कर महामांडलिक राजाओं के साथ उत्तर दिशा को चले ॥ ५२ ॥ और वसिष्ठजी को

दाश्चर्यमतुलं किमादौ द्वारकाभवत् ॥ कियत्कालसमुत्पन्ना वसिष्ठेदं वदस्व मे ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ न जानामि महाराज कियत्कालादभूदिदम् ॥ लोमशो जाम्बवांश्चैव जानातीति च कारणम् ॥ ४६ ॥ शरीरे यत्कृतं पापं नाना जन्मान्तरेष्वपि ॥ प्रायश्चित्तं हि सर्वेषामेतत्क्षेत्रं परं स्मृतम् ॥ ५० ॥ श्रुत्वेति वचनं तस्य रामो ज्ञानवतां वरः ॥ गन्तुं कृतमतिस्तीर्थे यात्राविधिमथाचरत् ॥ ५१ ॥ वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा महामाण्डलिकैर्नृपैः ॥ पुरश्चरणविधिं कृत्वा प्रस्थितश्चोत्तरां दिशम् ॥ ५२ ॥ वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा प्रतस्थे पश्चिमां दिशम् ॥ ग्रामाद्ग्राममतिक्रम्य देशाद्देशं व नाद्वनम् ॥ ५३ ॥ विमुच्य निर्ययौ रामः ससैन्यः सपरिच्छदः ॥ गजवाजिसहस्रौघै रथैर्यानैश्च कोटिभिः ॥ ५४ ॥ शिबिकाभिश्चासंख्याभिः प्रययौ राघवस्तदा ॥ गजारूढः प्रपश्यंश्च देशान्विविधसौहृदान् ॥ ५५ ॥ श्वेतातपत्रं वि धृत्य चामरेण शुभेन च ॥ वीजितश्च जनौघेन रामस्तत्र समभ्यगात् ॥ ५६ ॥ वादित्राणां स्वनैर्घोरैर्नृत्यगीतपुरः

आगे कर पश्चिम दिशा को चले और एक ग्राम से दूसरे ग्राम को व देश से देश को और वन से वन को ॥ ५३ ॥ छोड़कर सेना समेत व सामान समेत श्रीरामजी निकले और हज़ारों हाथी घोड़े व करोड़ों रथों व सवारियों से ॥ ५४ ॥ और असंख्य पालकियों समेत उस समय अनेक प्रकार के प्रिय देशों को देखते हुए श्रीरामजी हाथी के ऊपर चढ़कर चले ॥ ५५ ॥ और जनों के गण से उत्तम चँवर से वीजित श्रीरामजी श्वेत छत्र को धारण कर वहां गये ॥ ५६ ॥ और नृत्य, गीतपूर्वक बाजनों

के घोर शब्दों समेत सूतों से प्रशंसा किये जाते हुए भी हर्षसंयुत श्रीरामजी चले ॥ ५७ ॥ और दशवें दिन अति उत्तम धर्मारण्य मिला तदनन्तर समीप में मांडलिक नगर को देखकर श्रीरामजी ने ॥ ५८ ॥ वहां सेना समेत टिककर रात्रि को उस पुरी में निवास किया और क्षेत्र को उजड़ा हुआ व भयानक तथा मनुष्यों से रहित सुनकर ॥ ५९ ॥ और उस धर्मारण्य को लोगों के मुख से व्याघ्रों तथा सिंहों से पूर्ण तथा यक्षों व राक्षसों से सेवित सुनकर श्रीरामदेवजी ने सबों से यह कहा कि चिन्ता न कीजिये ॥ ६० ॥ व उस समय श्रीरामजी ने अपने उद्योग में प्रवीण तथा शूर व बड़े बलवान् व पराक्रमी और बड़े शरीरवाले वहां टिके हुए

सरैः ॥ स्तूयमानोपि सूतैश्च ययौ रामो मुदान्वितः ॥ ५७ ॥ दशमेऽहनि सम्प्राप्तं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ अदूरे हि ततो रामो दृष्ट्वा माण्डलिकं पुरम् ॥ ५८ ॥ तत्र स्थित्वा ससैन्यस्तु उवास निशि तां पुरीम् ॥ श्रुत्वा तु निर्जनं क्षेत्र मुद्वसं च भयानकम् ॥ ५९ ॥ व्याघ्रसिंहाकुलं तच्च यक्षराक्षससेवितम् ॥ श्रुत्वा जनमुखाद्रामो धर्मारण्यमरण्यक म् ॥ उवाच रामदेवस्तु न चिन्ता क्रियतामिति ॥ ६० ॥ तत्रस्थान्वणिजः शूरान्दक्षान्स्वव्यवसायके ॥ ६१ ॥ स मर्थान्हि महाकायान्महाबलपराक्रमान् ॥ समाहूय तदा काले वाक्यमेतदथाब्रवीत् ॥ ६२ ॥ शिबिकां सुसुवर्णां मे शीघ्रं वाहयताचिरम् ॥ यथा क्षणेन चैकेन धर्मारण्यं व्रजाम्यहम् ॥ ६३ ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापात्प्रमु च्यते ॥ एवं ते वणिजः सर्वे रामेण प्रेरितास्तदा ॥ ६४ ॥ तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे ऊहुस्तच्छिबिकां तदा ॥ क्षेत्रमध्ये यदा रामः प्रविष्टः सहसैनिकः ॥ ६५ ॥ तद्यानस्य गतिर्मन्दा संजाता किल भारत ॥ मन्दशब्दानि वाद्यानि मातङ्ग

समर्थ वैश्यों को बुलाकर यह वचन कहा ॥ ६१।६२ ॥ कि मेरी सोने की पालकी को तुमलोग शीघ्रही ले चलो जिस प्रकार कि एक क्षण में मैं धर्मारण्य को जाऊं ॥ ६३ ॥ क्योंकि उस धर्मारण्य में नहाकर व जल को पीकर मनुष्य पापों से छूटजाता है उस समय श्रीरामजी से इस प्रकार प्रेरित वणिज्लोग ॥ ६४ ॥ बहुत अच्छा यह कह कर वे सब उस समय उन श्रीरामजी की पालकी को ले चले और जब सेना समेत श्रीरामजी क्षेत्र के मध्य में पैठे ॥ ६५ ॥ तब हे भारत ! उस सवारी की गति मंद

होगई और बाजनों के शब्द मन्द होगये व हाथियों की चाल मंद होगई ॥ ६६ ॥ और घोड़े भी वैसेही होगये तब श्रीरामजी आश्चर्य को प्राप्त हुए और विनय से उन्हों ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ गुरु से पूंछा ॥ ६७ ॥ कि हे मुनीश्वर! यह क्या है जो कि ये मंदगति होगये और हृदय में आश्चर्य है त्रिकाल के जाननेवाले मुनि ने कहा कि धर्मक्षेत्र आगया ॥ ६८ ॥ हे राम! इस प्राचीन तीर्थ में पैदल चलिये क्योंकि ऐसा करने पर तदनन्तर पश्चात् सेना को सुख होगा ॥ ६९ ॥ तदनन्तर सेना समेत श्रीरामजी पैदल चलकर बहुतही पवित्र मधुवासनक ग्राम में प्राप्त हुए ॥ ७० ॥ और गुरु से कहे हुए मार्ग से श्रीरामजी ने प्रतिष्ठा की विधिपूर्वक अनेक भांति के

मन्दगामिनः ॥ ६६ ॥ हयाश्च तादृशा जाता रामो विस्मयमागतः ॥ गुरुं पप्रच्छ विनयाद्वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६७ ॥ किमेतन्मन्दगतयश्चित्रं हृदि मुनीश्वर ॥ त्रिकालज्ञो मुनिः प्राह धर्मक्षेत्रमुपागतम् ॥ ६८ ॥ तीर्थे पुरातने राम पाद चारेण गम्यताम् ॥ एवं कृते ततः पश्चात्सैन्यसौख्यं भविष्यति ॥ ६९ ॥ पादचारी ततो रामः सैन्येन सह संयुतः ॥ मधुवासनके ग्रामे प्राप्तः परमपावने ॥ ७० ॥ गुरुणा चोक्तमार्गेण मातृणां पूजनं कृतम् ॥ नानोपहारैर्विविधैः प्रतिष्ठा विधिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥ ततो रामो हरिक्षेत्रं सुवर्णादक्षिणे तटे ॥ निरीक्ष्य यज्ञयोग्याश्च भूमीर्वै बहुशस्तथा ॥ ७२ ॥ कृतकृत्यं तदात्मानं मेने रामो रघूद्वहः ॥ धर्मस्थानं निरीक्ष्याथ सुवर्णाक्षोत्तरे तटे ॥ ७३ ॥ सैन्यसङ्घं समुत्तीर्य्य बभ्राम क्षेत्रमध्यतः ॥ तत्र तीर्थेषु सर्वेषु देवतायतनेषु च ॥ ७४ ॥ यथोक्तानि च कर्माणि रामश्चक्रे विधानतः ॥ श्राद्धानि विधिवच्चक्रे श्रद्धया परया युतः ॥ ७५ ॥ स्थापयामास रामेशं तथा कामेश्वरं पुनः ॥ स्थानाद्वायुप्रदेशे तु सु

उपहारों से मातृकाओं का पूजन किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर श्रीरामजी सुवर्णा नदी के दक्षिण किनारे पै हरिक्षेत्र को देखकर व यज्ञ के योग्य बहुतसी भूमियों को देखकर ॥ ७२ ॥ उस समय रघुनायक श्रीरामजी ने अपना को कृतार्थ माना और सुवर्णाक्षा के उत्तर किनारे पै धर्मस्थान को देखकर ॥ ७३ ॥ सेनासमूह को उतार कर श्रीरामजी क्षेत्र के मध्य में घूमनेलगे और वहां सब तीर्थों व देवमन्दिरों में ॥ ७४ ॥ श्रीरामजी ने जैसे कहे हैं वैसेही कर्मों को विधि से किया व बड़ी श्रद्धा से संयुत श्रीरामजी ने विधिपूर्वक श्राद्धों को किया ॥ ७५ ॥ और स्थान से वायव्यकोण में सुवर्णा के दोनों किनारों में रामेश्वर व कामेश्वरजी को स्थापन

किया ॥ ७६ ॥ ऐसा करके दशरथ के पुत्र श्रीरामजी कृतार्थ हुए और सब विधि करके स्त्री समेत श्रीरामजी स्थित हुए ॥ ७७ ॥ और वे रघुनाथजी उस रात को नदी के किनारे सो रहे तदनन्तर आधीरात होने पर उस समय धर्मप्रिय व कमललोचन श्रीरामजी अकेले जागते रहे व उस क्षण में श्रीरामजी ने स्त्री का रोना सुना ॥७८।७९॥ रात में दीनवचनों से कुररी की नाईं रोती हुई उस स्त्री को श्रीरामजी ने बड़ी शीघ्रता से गुप्त दूतों से देखा ॥ ८० ॥ तब हे अनघ ! करुण शब्दों से रोती हुई बहुत ही विकल स्त्री को देखकर श्रीरामजी के दूतों ने उस दुःखित स्त्री से पूंछा ॥ ८१ ॥ दूत बोले कि हे सुभगे, नारि ! तुम कौन हो देवपत्नी हो या दानवी हो और किस

वर्णोभयतस्तटे ॥ ७६ ॥ कृत्वैवं कृतकृत्योऽभूद्रामो दशरथात्मजः ॥ कृत्वा सर्वविधिं चैव सभार्यः समुपाविशत् ॥ ७७ ॥ तां निशां स नदीतीरे सुष्वाप रघुनन्दनः ॥ ततोऽर्द्धरात्रे संजाते रामो राजीवलोचनः ॥ ७८ ॥ जागर्ति स्म तदा काल एकाकी धर्मवत्सलः ॥ अश्रौषीच्च क्षणे तस्मिन् रामो नारीविरोदनम् ॥ ७९ ॥ निशायां करुणैर्वाक्यै रुदन्तीं कुररीमिव ॥ चारैर्विलोकयामास रामस्तामतिसम्भ्रमात् ॥ ८० ॥ दृष्ट्वातिविह्वलां नारीं क्रन्दन्तीं करुणैः स्वरैः ॥ पृष्टा सा दुःखिता नारी रामदूतैस्तदानघ ॥ ८१ ॥ दूता ऊचुः ॥ कासि त्वं सुभगे नारि देवी वा दानवी नु किम् ॥ केन वा त्रासितासि त्वं मुष्टं केन धनं तव ॥ ८२ ॥ विकला दारुणाञ्छब्दानुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः ॥ कथयस्व यथातथ्यं रामो राजाभिपृच्छति ॥ ८३ ॥ तयोक्तं स्वामिनं दूताः प्रेषयध्वं ममान्तिकम् ॥ यथाहं मानसं दुःखं शान्त्यै तस्मै निवेदये ॥ ८४ ॥ तथेत्युक्त्वा ततो दूता राममागत्य चाब्रुवन् ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये दूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ने तुम को दुःखित किया है व किस ने तुम्हारा धन चुराया है ॥ ८२ ॥ बार २ कठोर शब्दों को कहती हुई विकल तुम यथार्थ कहो इसको राजा रामजी पूंछते हैं ॥ ८३ ॥ उस ने कहा कि हे दूतो ! मेरे समीप स्वामी को पठाइये कि जिस प्रकार मैं मानसी दुःख को उनसे शांति के लिये कहूं ॥ ८४ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर तदनन्तर दूतों ने श्रीरामजी के समीप आकर कहा ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो०। उजड़े धर्मारण्य को फेरि बसायो राम। बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर श्रीरामजी के उन दूतों ने श्रीरामजी को प्रणाम कर कहा कि हे महाबाहो, राम, राम! वह उत्तम मुखवाली स्त्री है॥ १॥ और सुन्दर वस्त्र व भूषणोंवाली तथा कोमलवचनों में परायण उस रोती हुई अकेली स्त्री को देखकर हमलोग विस्मित होगये॥ २॥ और समीप वर्तमान होकर हम लोगों ने उस देवपत्नी से पूंछा कि हे वरारोहे, देवि! तुम कौन हो देवी हो या दानवी हो॥ ३॥ हे देवि! श्रीरामजी तुम को पूंछते हैं तुम सब यथायोग्य कहो उस वचन को सुनकर उस स्त्री ने मधुरवचन को कहा॥ ४॥ कि मेरे दुःख को

व्यास उवाच॥ ततश्च रामदूतास्ते नत्वा राममथाब्रुवन्॥ रामराम महाबाहो वरनारी शुभानना॥ १॥ सुवस्त्र भूषाभरणां मृदुवाक्यपरायणाम्॥ एकाकिनीं क्रन्दमानां दृष्ट्वा तां विस्मिता वयम्॥ २॥ समीपवर्तिनो भूत्वा पृष्टा सा सुरसुन्दरी॥ का त्वं देवि वरारोहे देवी वा दानवी नु किम्॥ ३॥ रामः पृच्छति देवि त्वां ब्रूहि सर्वं यथातथम्॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रामा सोवाच मधुरं वचः॥ ४॥ रामं प्रेषयत भद्रं वो मम दुःखापहं परम्॥ ५॥ तदाकर्ण्य ततो रामः सम्भ्रमात्त्वरितो ययौ॥ दृष्ट्वा तां दुःखसन्तप्तां स्वयं दुःखमवाप सः॥ उवाच वचनं रामः कृताञ्जलिपुटस्तदा॥ ६॥ श्रीराम उवाच॥ का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा केनावधूता विजने निरस्ता॥ मुष्टं धनं केन च तावकीनमाचक्ष्व मातः सकलं ममाग्रे॥ ७॥ इत्युक्त्वा चातिदुःखार्तो रामो मतिमतां वरः॥ प्रणामं दण्डवच्चक्रे चक्रपाणिरिवापरः॥ ८॥ तयाभिनन्दितो रामः प्रणम्य च पुनः पुनः॥ तुष्ट्या परया प्रीत्या स्तुतो मधुरया

नाश करनेवाले श्रेष्ठ श्रीरामजी को पठाइये तुम लोगों का कल्याण होवै॥ ५॥ उस वचन को सुनकर तदनन्तर शीघ्रता समेत श्रीरामजी संभ्रम से गये और दुःख से तची हुई उस स्त्री को देखकर वे श्रीरामजी आप भी दुःख को प्राप्त हुए और उस समय हाथों को जोड़कर श्रीरामजी वचन बोले॥ ६॥ श्रीरामजी बोले कि हे शुभे! तुम कौन हो व किस की स्त्री हो और किसने दुःखित तुम को निर्जन स्थान में निकाल दिया है व हे मातः! किसने तुम्हारा धन चुरा लिया है इस सब को मेरे आगे कहिये॥ ७॥ यह कह कर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बहुतही दुःख से विकल श्रीरामजी ने दूसरे चक्रपाणि की नाईं दंडवत् प्रणाम किया॥ ८॥ और बड़ी प्रीति से

प्रसन्न उस स्त्री ने बार २ प्रणाम कर श्रीरामजी की प्रशंसा किया व बार २ स्तुति किया ॥ ६ ॥ कि हे परमात्मन्, परेशान, दुःखहारिन्, सनातन! जिस लिये तुम्हारा अवतार हुआ है उस कार्य को तुम ने किया ॥ १० ॥ कि रावण, कुम्भकर्ण व इन्द्रजीत (मेघनाद) आदिक खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच व अक्षकुमार ॥ ११ ॥ व असंख्य भयंकर राक्षस युद्ध के आंगन में जीते गये ॥ १२ ॥ हे लोकेश! इस समय मैं तुम्हारे यश को क्या कहूं कि तुम्हारे अंग से उत्पन्न कमल से उपजे हुए ब्रह्मा ने तुम्हारे उदर में स्थित संसार को देखा जैसे कि बरगद के बीज में बरगद का वृक्ष माना गया है ॥ १३ ॥ हे जगदीश, गोविन्द! संसार में दशरथ व तुम्हारी

गिरा ॥ ६ ॥ परमात्मन्परेशान दुःखहारिन्सनातन ॥ यदर्थमवतारस्ते तच्च कार्यं त्वया कृतम् ॥ १० ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च शक्रजित्प्रमुखास्तथा ॥ खरदूषणत्रिशिरोमारीचाक्षकुमारकाः ॥ ११ ॥ असंख्या निर्जिता रौद्रा राक्षसाः समराङ्गणे ॥ १२ ॥ किं वच्मि लोकेश सुकीर्त्तिमद्य ते वेधास्त्वदीयाङ्गजपद्मसम्भवः ॥ ददर्श विश्वं च तवोदरस्थं वटस्य बीजे हि यथा वटो मतः ॥ १३ ॥ धन्यो दशरथो लोके कौशल्या जननी तव ॥ ययोर्जातोसि गोविन्द जगदीश परः पुमान् ॥ १४ ॥ धन्यं च तत्कुलं राम यत्र त्वमागतः स्वयम् ॥ धन्याऽयोध्यापुरी राम धन्यो लोकस्त्वदाश्रयः ॥ १५ ॥ धन्यः सोऽपि हि वाल्मीकिर्येन रामायणं कृतम् ॥ कविना विप्रमुख्येभ्य आत्मबुद्ध्या ह्यनागतम् ॥ १६ ॥ त्वत्तोऽभवत्कुलं चेदं त्वया देव सुपावितम् ॥ १७ ॥ नरपतिरिति लोकैः स्मर्यते वैष्णवांशः स्वयमसि रमणीयैस्त्वं गुणैर्विष्णुरेव ॥ किमपि भुवनकार्यं यद्विचिन्त्यावतीर्य तदिह घटयतस्ते वत्स निर्विघ्नमस्तु ॥ १८ ॥ स्तुत्वा वाचाथ

माता कौशल्या धन्य हैं कि जिन दोनों के तुम परमपुरुष उत्पन्न हुए हो ॥ १४ ॥ व हे राम! वह वंश धन्य है कि जिस में तुम आपही आये हो व हे राम! अयोध्यापुरी धन्य है और तुम्हारे आश्रित मनुष्य धन्य है ॥ १५ ॥ और वे बाल्मीकि भी धन्य हैं कि जिन कवि ने अपनी बुद्धि से मुख्य ब्राह्मणों के लिये भविष्य रामायण को बनाया है ॥ १६ ॥ व हे देव! तुम से यह वंश भली भांति पवित्र होगया ॥ १७ ॥ हे वत्स! मनुष्यों से नृपति विष्णुजी का अंश कहा जाता है और तुम सुन्दर गुणों से आपही विष्णु हो व कोई भी लोक का कार्य है कि जिस को विचार कर अवतार लेकर उस को करते हुए तुम को इस संसार में विघ्न न होवै ॥ १८ ॥ इस प्रकार

स्तुतिकर इसके अनन्तर उसने श्रीरामजी से कहा कि इस समय तुम्हारे स्वामी होने पर मैं बहुत दिनों से जिस लिये शून्य वर्तमान हूं उस कारण तुम्हीं को दोष है॥ १९ ॥ मुझ को धर्मारण्य क्षेत्र की अधिदेवता जानो और यहां मुझको बारह वर्ष बीते हैं तब से मैं दुःखित हूं ॥ २० ॥ हे महामते ! आज तुम मेरी शून्यता को हरलो हे रामजी ! लोहासुर के डर से सब ब्राह्मण दशो दिशाओं को चले गये ॥ २१ ॥ व दुःखित होते हुए सब बनिया स्थानों के अनुसार चले गये व हे रामजी ! यहां बड़े भारी मायावी व दुर्धर्ष और दुःख से नाश होने योग्य उस सुरभयंकर दैत्य को ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवताओं ने दबाकर मारडाला है परन्तु उसके डर से बहुत ही शंकित

रामं हि त्वयि नाथे नु साम्प्रतम् ॥ शून्यावर्ते चिरं कालं यतो दोषस्तवैव हि ॥ १९ ॥ धर्मारण्यस्य क्षेत्रस्य विद्धि मामधिदेवताम् ॥ वर्षाणि द्वादशेहैव जातानि दुःखितास्म्यहम् ॥ २० ॥ निर्जनत्वं ममाद्य त्वमुद्धरस्व महामते ॥ लोहासुरभयाद्राम विप्राः सर्वे दिशो दश ॥ २१ ॥ गताश्च वणिजः सर्वे यथास्थानं सुदुःखिताः ॥ स दैत्यो घातितो राम देवैः सुरभयङ्करः ॥ २२ ॥ आक्रम्यात्र महामायो दुराधर्षो दुरत्ययः ॥ न ते जनाः समायान्ति तद्भयादतिशङ्किताः ॥ २३ ॥ अद्य वै द्वादश समाः शून्यागारमनाथवत् ॥ यस्यां हि दीर्घिकायां मे स्नानदानोद्यतो जनः ॥ २४ ॥ राम तस्यां दीर्घिकायां निपतन्ति च शूकराः ॥ यत्राङ्गना भर्तृयुता जलक्रीडापरायणाः ॥ २५ ॥ चिक्रीडुस्तत्र महिषा निपतन्ति जलाशये ॥ यत्र स्थाने सुपुष्पाणां प्रकारः प्रचुरोऽभवत् ॥ २६ ॥ तद्रुद्धं कण्टकैर्वृक्षैः सिंहव्याघ्रसमाकुलैः ॥ संचिक्रीडुः कुमाराश्च यस्यां भूमौ निरन्तरम् ॥ २७ ॥ कुमाराश्चित्रकाणां च तत्र क्रीडन्ति हर्षिताः ॥

वे लोग नहीं आते हैं ॥ २२।२३ ॥ आज शून्य मंदिर व अनाथवान् धर्मक्षेत्र को बारह वर्ष हुए और मेरी जिस बावली में मनुष्य स्नान, दान के लिये उद्यत था ॥ २४ ॥ हे राम ! उस बावली में सुवर गिरते हैं और जिसमें पतियों से संयुत स्त्रियां जलक्रीड़ा करती थीं ॥ २५ ॥ उस जलाशय में भैंसे गिरते हैं व खेलते हैं और जिस स्थानमें बहुत उत्तम पुष्पों के भेद थे ॥ २६ ॥ वह स्थान सिंहों व व्याघ्रों से संयुत कँटीले वृक्षों से रुँध गया है और जिस भूमि में सदैव कुमार लोग क्रीड़ा करते थे ॥ २७ ॥ वहां

प्रसन्न होते हुए चीता बाघों के बच्चे खेलते हैं और जहां सदैव ब्राह्मण लोग वेदगान करते थे ॥ २८ ॥ वहां बड़े भयंकर सियारियोंके फेत्कार शब्द सुनपड़ते हैं और जहां घर घर में अग्निहोत्रों का धुवाँ देख पड़ता था ॥ २९ ॥ वहां बहुतही उग्र व धुवाँ समेत दौरहा देख पड़ते हैं और ब्राह्मणों के आगे जहां प्रसन्न होकर नर्तक लोग नाचते थे ॥ ३० ॥ वहीं पर मोहित होते हुए भूत, वेताल व प्रेत नाचते हैं व जिस सभा में मंत्रोंको जपते हुए ब्राह्मण लोग बैठते थे ॥ ३१ ॥ उस स्थान में सुरहगाय, ऋक्ष व साही नामक जन्तु बैठते हैं और जहां ब्राह्मणों व वैश्यों के निवासस्थान देख पड़ते थे ॥ ३२ ॥ हे राम ! बाँधी हुई भूमिवाले वे स्थान यहां बिल देख पड़ते हैं और यहां

अकुर्वन्वाडवा यत्र वेदगानं निरन्तरम् ॥ २८ ॥ शिवानां तत्र फेत्काराः श्रूयन्तेऽतिभयङ्कराः ॥ यत्र धूमोग्निहोत्राणां दृश्यते वै गृहे गृहे ॥ २९ ॥ तत्र दावाः सधूमाश्च दृश्यन्तेऽत्युल्बणा भृशम् ॥ नृत्यन्ते नर्त्तका यत्र हर्षिता हि द्विजाग्रतः ॥ ३० ॥ तत्रैव भूतवेतालाःप्रेता नृत्यन्ति मोहिताः ॥ नृपा यत्र सभायां तु न्यषीदन्मन्त्रतत्पराः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्स्थाने निषीदन्ति गवया ऋक्षशल्लकाः ॥ आवासा यत्र दृश्यन्ते द्विजानां वणिजां तथा ॥ ३२ ॥ कुट्टिमप्रतिमा राम दृश्यन्तेत्र बिलानि वै ॥ कोटराणीव वृक्षाणां गवाक्षाणीह सर्वतः ॥ ३३ ॥ चतुष्का यज्ञवेदिर्हि सोच्छ्रायाह्यभवत्पुरा ॥ तेऽत्र वल्मीकनिचयैर्दृश्यन्ते परिवेष्टिताः ॥ ३४ ॥ एवंविधं निवासं मे विद्धि राम नृपोत्तम ॥ शून्यं तु सर्वतो यस्मान्निवासाय द्विजा गताः ॥ ३५ ॥ तेन मे सुमहद्दुःखं तस्मात्त्राहि नरेश्वर ॥ एतच्छ्रुत्वा वचो राम उवाच वदतां वरः ॥ ३६ ॥ श्रीराम उवाच ॥ न जाने तावकान्विप्रांश्चतुर्दिक्षु समाश्रितान् ॥ न तेषां वेद्म्यहं संख्यां नाम

सब ओर झरोखा वृक्षों के खोड़र से देख पड़ते हैं ॥ ३३ ॥ और पुरातन समय चौकोर यज्ञवेदी जो उँचाई समेत हुई है वे स्थान बँबौरि समूहों से घिरे देखपड़ते हैं ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम, राम ! मेरे इस प्रकार के निवास को सब ओर से शून्य जानिये जिस लिये ब्राह्मण लोग निवास के लिये चले गये ॥ ३५ ॥ हे नरेश्वर ! उससे मुझको बड़ा दुःख है उसी कारण रक्षा कीजिये इस वचन को सुनकर कहनेवालों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने वचन को कहा ॥ ३६ ॥ श्रीरामजी बोले कि चारों दिशाओं में टिके हुए

तुम्हारे ब्राह्मणों को मैं नहीं जानता हूं और उन ब्राह्मणों की संख्या व नाम और गोत्र को नहीं जानता हूं ॥ ३७ ॥ जैसा कुटुंब व जैसा गोत्र हो उसको यथार्थ कहिये तो उन सबों को लाकर मैं उन सबों को अपने स्थान में बसाऊं ॥ ३८ ॥ श्रीमाता बोली कि हे नरेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने जिनको स्थापन किया है वे अठारह हज़ार वेदों के पारगामी ब्राह्मण हैं ॥ ३९ ॥ व हे अमितद्युते ! इस संसार में वे वेदत्रयी की विद्याओं में प्रवीण हैं और चौंसठि गोत्रों के मध्य में जो ब्राह्मण प्रतिष्ठित हैं ॥ ४० ॥ उनको श्रीमाता ने त्रयीविद्या को दिया है और संसार में वे सब द्विजोत्तम हैं व छत्तीस हज़ार धर्म में परायण वैश्य हैं ॥ ४१ ॥ व ब्राह्मणों की सेवा में परायण वे

गोत्रे द्विजन्मनाम् ॥ ३७ ॥ यथा ज्ञातिर्यथा गोत्रं याथातथ्यं निवेदय ॥ तत आनीय तान्सर्वान्स्वस्थाने वासयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ श्रीमातोवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च स्थापिता ये नरेश्वर ॥ अष्टादशसहस्राणि ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ३९ ॥ त्रयीविद्यासु विख्याता लोकेऽस्मिन्नमितद्युते ॥ चतुष्षष्टिकगोत्राणां वाडवा ये प्रतिष्ठिताः ॥ ४० ॥ श्रीमातादात्त्रयीविद्यां लोके सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वैश्या धर्मपरायणाः ॥ ४१ ॥ आर्यवृत्तास्तु विज्ञेया द्विजशुश्रूषणे रताः ॥ बकुलार्को नृपो यत्र संज्ञया सह राजते ॥ ४२ ॥ कुमारावश्विनौ देवौ धनदो व्ययपूरकः ॥ अधिष्ठात्री त्वहं राम नाम्ना भट्टारिका स्मृता ॥ ४३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ स्थानाचाराश्च ये केचित्कुलाचारास्तथैव च ॥ श्रीमात्रा कथितं सर्वं रामस्याग्रे पुरातनम् ॥ ४४ ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रामो मुदमवाप ह ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं हि भाषितं त्वया ॥ ४५ ॥ यस्मात्सत्यं त्वया प्रोक्तं तन्नाम्ना नगरं शुभम् ॥ वासयामि जगन्मातः सत्य

श्रेष्ठ आचरणवाले हैं जहां कि संज्ञा समेत बकुलार्क राजा शोभित हैं ॥ ४२ ॥ वहीं अश्विनीकुमार देव व व्यय (ख़र्च) को पूर्ण करनेवाले कुबेरजी हैं व हे राम ! मैं अधिष्ठात्री देवता नाम से भट्टारिका कही गई हूं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि जो कोई स्थान के आचार व कुल के आचार थे श्रीरामजी के आगे उस सब पुराने चरित्र को श्रीमाता ने कहा ॥ ४४ ॥ व उसका वचन सुनकर रामजी हर्ष को प्राप्त हुए और यह बोले कि तुमने सत्य, सत्य व फिर सत्य को कहा है ॥ ४५ ॥ हे जगदम्बिके !

जिस लिये तुम ने सत्य कहा है उसी कारण उस नाम से सत्यमंदिर नामक उत्तम नगर को बसाऊंगा ॥ ४६ ॥ और उत्तम सत्यमंदिर तीनों लोकों में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ४७ ॥ यह कहकर तदनन्तर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों को लाने के लिये लक्ष संख्यक अपने सेवकों को पठाया ॥ ४८ ॥ व कहा कि जिस देश व प्रदेश और वन में व नदी के किनारे और पर्वत के समीप व जैसे स्थानवाले उस उस ग्राम में ॥ ४९ ॥ जहां धर्मारण्य के निवासी द्विजोत्तम गये हों वहां उन को अर्घ व पाद्यों से पूजकर शीघ्रही लाइये ॥ ५० ॥ जब यहां मैं उन द्विजोत्तमों को देखूंगा तब भोजन करूंगा ॥ ५१ ॥ और जो इन ब्राह्मणों को न मानकर यहां आवैगा

मन्दिरमेव च ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्ये ख्यातिमाप्नोतु सत्यमन्दिरमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ एतदुक्त्वा ततो रामः सहस्रशतसंख्यया ॥ स्वभृत्यान्प्रेषयामास विप्रानयनहेतवे ॥ ४८ ॥ यस्मिन्देशे प्रदेशे वा वने वा सरितस्तटे ॥ पर्यन्ते वा यथास्थाने ग्रामे वा तत्र तत्र च ॥ ४९ ॥ धर्मारण्यनिवासाश्च याता यत्र द्विजोत्तमाः ॥ अर्घपाद्यैः पूजयित्वा शीघ्रमानयतात्र तान् ॥ ५० ॥ अहमत्र तदा भोक्ष्ये यदा द्रक्ष्ये द्विजोत्तमान् ॥ ५१ ॥ विमान्य च द्विजानेतानागमिष्यति यो नरः ॥ स मे वध्यश्च दण्ड्यश्च निर्वास्यो विषयाद्बहिः ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं दुःसहं दुष्प्रधर्षणम् ॥ रामाज्ञाकारिणो दूता गताः सर्वे दिशो दश ॥ ५३ ॥ शोधिता वाडवाः सर्वे लब्ध्वा सर्वे सुहर्षिताः ॥ यथोक्तेन विधानेन अर्घपाद्यैरपूजयन् ॥ ५४ ॥ स्तुतिं चक्रुश्च विधिवद्विनयाचारपूर्वकम् ॥ आमन्त्र्य च द्विजान्सर्वान् रामवाक्यं प्रकाशयन् ॥ ५५ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे द्विजाः सेवकसंयुताः ॥ गमनायोद्यताः सर्वे वेदशास्त्रपरायणाः ॥ ५६ ॥ आगता रामपार्श्वे च बहु

वह मेरे मारने योग्य तथा दंड देने योग्य व देश से बाहर निकालने योग्य होगा ॥ ५२ ॥ उस दुःसह व दुर्धर्ष और कठोर वचन को सुनकर श्रीरामजी की आज्ञा को करनेवाले सब दूत दशो दिशाओं को चले गये ॥ ५३ ॥ सब ब्राह्मण ढूंढ़े गये और उन को पाकर प्रसन्न होते हुए दूतों ने यथोक्त विधि से अर्घ व पाद्य से पूजन किया ॥ ५४ ॥ और विनय व आचारपूर्वक विधि से स्तुति किया व सब ब्राह्मणों को बुलाकर श्रीरामजी के वचन को प्रकाश किया ॥ ५५ ॥ तब वेदों व शास्त्रों में परायण वे सब ब्राह्मण सेवकों समेत जाने के लिये तैयार हुए ॥ ५६ ॥ और बहुत मानपूर्वक वे श्रीरामजी के समीप आये और आये हुए ब्राह्मणों को देखकर रोमांच

संयुत ॥ ५७ ॥ दशरथकुमार श्रीराम राजा ने अपना को कृतार्थ सा माना और वे शीघ्रता से उठकर आगे पैदल चले ॥ ५८ ॥ और हाथों को जोड़कर हर्ष से आँसुवों को छोड़ते हुए श्रीरामजी ने घुटुनुवों से पृथ्वी को प्राप्त होकर यह वचन कहा ॥ ५९ ॥ कि ब्राह्मणों की प्रसन्नतासे मैं लक्ष्मीपति हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी को धारण किये हूं और ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी का स्वामी हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मेरा राम नाम है ॥ ६० ॥ श्रीरामजी से ऐसा कहे हुए वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए व उन्होंने जय के आशीर्वादों से पूजकर दीर्घायु होवो यह कहा ॥ ६१ ॥ और श्रीरामजी ने उनको पाद्य, अर्घ्य व विष्टरादिक दिया व दंडा की नाईं

मानपुरःसराः ॥ समागतान्द्विजान्दृष्ट्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ५७ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मेने दाशरथिर्नृपः ॥ स सं भ्रमात्समुत्थाय पदातिः प्रययौ पुरः ॥ ५८ ॥ करसम्पुटकं कृत्वा हर्षाश्रु प्रतिमुञ्चयन् ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा इदं व चनमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम् ॥ विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसा दान्मम रामनाम ॥ ६० ॥ इत्येवमुक्ता रामेण वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ जयाशीर्भिः प्रपूज्याथ दीर्घायुरिति चाब्रु वन् ॥ ६१ ॥ आवर्जितास्ते रामेण पाद्यार्घ्यविष्टरादिभिः ॥ स्तुतिं चकार विप्राणां दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ६२ ॥ कृता ञ्जलिपुटः स्थित्वा चक्रे पादाभिवन्दनम् ॥ आसनानि विचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ ६३ ॥ समर्पयामास ततो रामो दशरथात्मजः ॥ अङ्गुलीयकवासांसि उपवीतानि कर्णकान् ॥ ६४ ॥ प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो नानावर्णाश्च धेनवः ॥ एकैकशतसंख्याका घटोध्नीश्च सवत्सकाः ॥ ६५ ॥ सवस्त्रा बद्धघण्टाश्च हेमशृङ्गविभूषिताः ॥ रूप्यखुरास्ताम्र

प्रणाम करके स्तुति किया ॥ ६२ ॥ और हाथों को जोड़कर स्थित होकर चरणों को प्रणाम किया व विचित्र आसन व सुवर्ण के गहनों को दिया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने अँगूठी, वसन, यज्ञोपवीत व कर्णाभरणों को दिया ॥ ६४ ॥ व मुख्य ब्राह्मणों के लिये अनेक प्रकार के रंगवाली तथा घड़ा के समान ऐनवाली बछड़ा समेत एक एक सौ गौवों को मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ६५ ॥ और बँधेहुए घंटोंवाली तथा सुवर्ण के शृंगों से भूषित व चांदी के खुर और ताँबे की पीठवाली

कांस्य पात्रों से संयुत वस्त्र समेत गौवों को दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादेसत्यमन्दिरस्थापनवर्णनोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्यक राम किय यथा जीर्ण उद्धार । तेंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ श्रीरामजी बोले कि श्रीमाता के वचन से मैं जीर्णोद्धार करूंगा मेरे लिये आज्ञा को दीजिये कि जिस प्रकार मैं तुमलोगों को दान देऊं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उत्तम यज्ञ करके पात्र में दान देना चाहिये अपात्र में कुछ नहीं दिया जाता है क्योंकि

पृष्ठीः कांस्यपात्रसमन्विताः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येब्रह्मनारदसंवादे सत्यमन्दिरस्थापनवर्णनोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राम उवाच ॥ जीर्णोद्धारं करिष्यामि श्रीमातुर्वचनादहम् ॥ आज्ञा प्रदीयतां मह्यं यथादानं ददामि वः ॥ १ ॥ पात्रे दानं प्रदातव्यं कृत्वा यज्ञवरं द्विजाः ॥ नापात्रे दीयते किञ्चिद्दत्तं न तु सुखावहम् ॥ २ ॥ सुपात्रं नौरिव सदा तारये दुभयोरपि ॥ लोहपिण्डोपमं ज्ञेयं कुपात्रं भञ्जनात्मकम् ॥ ३ ॥ जातिमात्रेण विप्रत्वं जायते न हि भो द्विजाः ॥ क्रिया बलवती लोके क्रियाहीने कुतः फलम् ॥ ४ ॥ पूज्यास्तस्मात्पूज्यतमा ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ यज्ञकार्ये समुत्पन्ने कृपां कुर्वन्तु सर्वदा ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्तु मिलिताः सर्वे विमृश्य च परस्परम् ॥ केचिदूचुस्तदा रामं शिलोञ्छजीविका वयम् ॥ ६ ॥ सन्तोषं परमास्थाय स्थिता धर्मपरायणाः ॥ प्रतिग्रहप्रयोगेण न चास्माकं प्रयो

दिया हुआ वह सुखदायक नहीं होता है ॥ २ ॥ और नाव की नाईं सुपात्र सदैव दोनों को भी तारता है व कुपात्र लोहपिंड के समान नाशक जानने योग्य है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! केवल जातिही से ब्राह्मणता नहीं होती है वरन संसार में कर्म बलवान् होता है और कर्महीन में फल कहां से होगा ॥ ४ ॥ इस कारण सत्यवादी ब्राह्मण पूजने योग्य व अधिक पूजनीय हैं और यज्ञकार्य उत्पन्न होने पर ब्राह्मण सदैव कृपा करें ॥ ५ ॥ ब्रह्मा बोले कि तदनन्तर सब मिलकर व परस्पर विचार कर उस समय कुछ ब्राह्मणों ने श्रीरामजी से कहा कि हमलोग शिलोञ्छ जीविकावाले हैं ॥ ६ ॥ और बड़े संतोष में स्थित हमलोग धर्म में लगे हुए हैं हमलोगों का दान

के प्रयोग से प्रयोजन नहीं है ॥ ७ ॥ दश बधस्थानों के समान कुम्हार होता है व दश कुम्हारों के बराबर तेली होता है और दश तेलियों के समान वेश्या होती है व दश वेश्याओं के समान राजा होता है ॥ ८ ॥ व हे रामजी ! राजा का दान भयंकर होता है यह निस्सन्देह सत्य है उसी कारण हमलोग भयदायक दान की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ कोई एकाहिक व्रतवाले ब्राह्मण थे व कोई अमृत (अयाचित) जीविकावाले थे और कोई ब्राह्मण कुंभीधान्य व्रतवाले व कोई छः कर्मों में तत्पर थे ॥ १० ॥ और कोई तीन मूर्तियों का स्थापन करनेवाले थे इस प्रकार सब पृथक् भाववाले व पृथक् गुणोंवाले थे और कितेक ब्राह्मणों ने यह कहा कि बिन त्रिमूर्ति

जनम् ॥७॥ दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ८॥ राजप्रतिग्रहो घोरो राम सत्यं न संशयः॥ तस्माद्वयं न चेच्छामः प्रतिग्रहं भयावहम् ॥ ९ ॥ एकाहिका द्विजाः केचित्केचित्स्वामृत वृत्तयः ॥ कुम्भीधान्या द्विजाः केचित् केचित्षट्कर्मतत्पराः ॥ १० ॥ त्रिमूर्तिस्थापिताः सर्वे पृथग्भावाः पृथग्गुणाः॥ केचिदेवं वदन्तिस्म त्रिमूर्त्याज्ञां विना वयम् ॥ ११॥ प्रतिग्रहस्य स्वीकारं कथं कुर्याम ह द्विजाः ॥ न ताम्बूलं स्वीकृतं नो यावद्देवैर्नभाषितम् ॥ १२ ॥ विमृश्य स तदा रामो वसिष्ठेन महात्मना ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सस्मार गुरुणा सह ॥ १३ ॥ स्मृतमात्रास्ततो देवास्तं देशं समुपागमन् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशविमानावलिसंवृताः ॥ १४ ॥ रामेण ते यथान्यायं पूजिताः परया मुदा ॥ निवेदितं तु तत्सर्वं रामेणातिसुबुद्धिना ॥ १५ ॥ अधिदेव्या वचनतो जीर्णोद्धारं करोम्यहम् ॥ धर्मारण्ये हरिक्षेत्रे धर्मकूपसमीपतः ॥ १६ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे त्रिमूर्त्तीः प्रणिपत्य च ॥ महता हर्ष

की आज्ञा से हमलोग ॥ ११ ॥ ब्राह्मण कैसे दान को स्वीकार करें क्योंकि जबतक देवता नहीं कहते हैं तबतक हमलोग ताम्बूल को नहीं खाते हैं ॥ १२ ॥ तब महात्मा वसिष्ठ गुरु समेत श्रीरामजी ने विचार कर ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को स्मरण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर स्मरण किये हुए वे विमानों की पांतियों से घिरेहुए करोड़ों सूर्यों के समान देवता उस स्थान को आये ॥ १४ ॥ और श्रीरामजी ने उनको बड़े हर्ष से यथायोग्य पूजन किया और उत्तम बुद्धिवाले श्रीरामजी ने उस सब वृत्तान्त को बतलाया ॥ १५ ॥ धर्मारण्य विष्णुक्षेत्र में धर्मकूप के समीप से मैं अधिदेवी के वचन से जीर्णोद्धार करता हूं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वे सब बड़े हर्षगण

से पूर्ण वे सब ब्राह्मण तीनों मूर्तियों को प्रणाम कर मनोरथ को प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ और उन्हों ने अर्घ्य, पाद्यादि की विधि से उन को श्रद्धा से पूजा व क्षण भर विश्राम कर उन ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं ने ॥ १८ ॥ विनय से हाथों को जोड़े हुए बड़े शक्तिमान् श्रीरामजी से कहा ॥ १९ ॥ देवता बोले कि हे सूर्यवंशभूषण, श्रीरामजी ! तुम ने देवताओं के शत्रु जिन रावणादिकों को मारा है उस से हम सब प्रसन्न हैं ॥ २० ॥ और बड़े भारी स्थान का जीर्णोद्धार कीजिये तो बड़े भारी यश को प्राप्त होवोगे ॥ २१ ॥ उन देवताओं की आज्ञा को पाकर वे दशरथकुमार श्रीरामजी प्रसन्न हुए व जीर्णोद्धार में अनन्त गुण को चाहते हुए लक्ष्मीपति श्रीरामजी

वृन्देन पूर्णाः प्राप्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ अर्घ्यपाद्यादिविधिना श्रद्धया तानपूजयन् ॥ क्षणं विश्रम्य ते देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १८ ॥ ऊचू रामं महाशक्तिं विनयात्कृतसम्पुटम् ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवद्रुहस्त्वया राम ये हता रावणादयः ॥ तेन तुष्टा वयं सर्वे भानुवंशविभूषण ॥ २० ॥ उद्धरस्व महास्थानं महतीं कीर्तिमाप्नुहि ॥ २१ ॥ लब्ध्वा स तेषामाज्ञां तु प्रीतो दशरथात्मजः ॥ जीर्णोद्धारेऽनन्तगुणं फलमिच्छन्निलापतिः ॥ २२ ॥ देवानां सन्निधौ तेषां कार्यारम्भमथाकरोत् ॥ स्थण्डिलं पूर्वतः कृत्वा महागिरिसमं शुभम् ॥ २३ ॥ तस्योपरि बहिःशाला गृहशाला ह्यनेकशः ॥ ब्रह्मशालाश्च बहुशो निर्ममे शोभनाकृतीः ॥ २४ ॥ निधानैश्च समायुक्ता गृहोपकरणैर्वृताः ॥ सुवर्णकोटिसम्पूर्णा रसवस्त्रादिपूरिताः ॥ २५ ॥ धनधान्यसमृद्धाश्च सर्वधातुयुतास्तथा ॥ एतत्सर्वं कारयित्वा ब्राह्मणेभ्यस्तदा ददौ ॥ २६ ॥ एकैकशो दश दश ददौ धेनूः पयस्विनीः ॥ चत्वारिंशच्छतं प्रादाद् ग्रामाणां चतुराधिकम् ॥ २७ ॥ त्रैविद्यद्विजविप्रेभ्यो

ने ॥ २२ ॥ उन देवताओं के समीप कार्य का प्रारंभ किया पूर्व और बड़े पर्वत के समान चौतरा को बनाकर ॥ २३ ॥ उसके ऊपर उत्तम स्वरूपवाली अनेक बहिश्शाला व गृहशाला और ब्रह्मशालाओं को बनाया ॥ २४ ॥ जो कि घर की सामग्रियों से संयुत तथा खज़ानों से युक्त और करोड़ों अशर्फियों से पूर्ण व रस और वस्त्रादिकों से पूर्ण थे ॥ २५ ॥ और धन, धान्य से पूर्ण व सब धातुओं से संयुत थे इस सब को बनवाकर तब श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के लिये देदिया ॥ २६ ॥ और एक एक ब्राह्मण को दश दश दूधवाली गाइयों को दिया व दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये चार अधिक चार सौ ग्रामों को दिया जिस लिये

ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों ने द्विजोत्तमों को स्थापित किया है॥ २७। २८॥ उसी कारण त्रैविध ऐसी प्रसिद्धि संसार में हुई ब्राह्मणों के लिये इस प्रकार का बड़ा अद्भुत दान देकर॥ २९॥ उन श्रीरामनरेशजी ने अपना को कृतार्थ माना पहले ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से जो स्थापन किये गये थे॥ ३०॥ वे जीर्णोद्धार करने पर श्रीरामजी से पूजे गये और छत्तीस हज़ार जो गोभुज श्रेष्ठ वैश्य थे वे सेवा के लिये विष्णु व शिवादिक देवताओं से दिये गये और प्रसन्न शिवजी ने उनके लिये नौकरी दिया॥ ३१। ३२॥ और सुफ़ेद घोड़े व चँवर दिये गये और निर्मल तलवार दीगई तब ब्राह्मणों की सेवा के लिये वे समझाये गये॥ ३३॥ कि विवाहादिकों में सदैव

रामो दशरथात्मजः॥ काजेशेन त्रयेणैव स्थापिता द्विजसत्तमाः॥ २८॥ तस्मात्रयीविद्य इति ख्यातिर्लोके बभूव ह॥ एवंविधं द्विजेभ्यः स दत्त्वा दानं महाद्भुतम्॥ २९॥ आत्मानं चापि मेने स कृतकृत्यं नरेश्वरः॥ ब्रह्मणा स्थापिताः पूर्वं विष्णुना शङ्करेण ये॥ ३०॥ ते पूजिता राघवेण जीर्णोद्धारे कृते सति॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि गोभुजा ये वणिग्वराः॥ ३१॥ शुश्रूषार्थं प्रदत्ता वै देवैर्हरिहरादिभिः॥ सन्तुष्टेन तु शर्वेण तेभ्यो दत्तं तु वेतनम्॥ ३२॥ श्वेताश्वचामरौ दत्तौ खड्गं दत्तं सुनिर्मलम्॥ तदा प्रबोधितास्ते च द्विजशुश्रूषणाय वै॥ ३३॥ विवाहादौ सदा भाव्यं चामरैर्मङ्गलं वरम्॥ खड्गं शुभं तदा धार्य्यं मम चिह्नं करे स्थितम्॥ ३४॥ गुरुपूजा सदा कार्या कुलदेव्या पुनः पुनः॥ वृद्ध्यागमेषु प्राप्तेषु वृद्धिदायकदक्षिणा॥ ३५॥ एकादश्यां शनेर्वारे दानं देयं द्विजन्मने॥ प्रदेयं बालवृद्धेभ्यो मम रामस्य शासनात्॥ ३६॥ मण्डलेषु च ये शूद्रा वणिग्वृत्तिरताः पराः॥ सपादलक्षास्ते दत्ता रामशासन

चँवर से उत्तम मंगल होना चाहिये और तब मेरे हाथ में स्थित चिह्न व उत्तम तलवार को धारण करना चाहिये॥३४॥ और सदैव गुरुपूजन व कुलदेवी का पूजन बार २ करना चाहिये व वृद्धि आगमवाले कार्यों के प्राप्त होने पर वृद्धि देनेवाली दक्षिणा चाहिये॥ ३५॥ और शनिवार एकादशी में ब्राह्मण के लिये दान देना चाहिये और मेरी रामजी की आज्ञा से बालकों व वृद्धों के लिये देना चाहिये॥३६॥ और मंडलों में जो उत्तम शूद्र वैश्यों की जीविका में परायण थे श्रीरामजी की आज्ञा

के पालक वे सवालक्ष दिये गये ॥ ३७ ॥ वे मांडलीक राजा मंडलेश्वर जानने योग्य हैं व श्रीरामजी से श्रेष्ठ वैश्यलोग ब्राह्मणों की सेवा में दिये गये ॥ ३८ ॥ और श्रीरामजी ने दो चँवर व तलवार को दिया और प्रतिष्ठा की विधिपूर्वक कुल के स्वामी सूर्य को स्थापित किया ॥ ३९ ॥ और चारों वेदों से संयुत ब्रह्मा को स्थापित किया और श्रीमाता महाशक्ति व शून्य के स्वामी विष्णुजी को स्थापित किया ॥ ४० ॥ व विघ्नों के नाश के लिये दक्षिण द्वार पै टिके हुए गण को स्थापित किया और अन्य देवताओं को स्थापित किया ॥ ४१ ॥ और उन वीर श्रीरामजी ने सात भूमियोंवाले मन्दिरों को बनवाया जो कुछ मंगलरूप उत्तम कार्य को मनुष्य करता है॥४२॥

पालकाः ॥ ३७ ॥ माण्डलीकास्तु ते ज्ञेया राजानो मण्डलेश्वराः ॥ द्विजशुश्रूषणे दत्ता रामेण वणिजां वराः ॥ ३८ ॥ चामरद्वितयं रामो दत्तवान्खड्गमेव च ॥ कुलस्य स्वामिनं सूर्यं प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्माणं स्थापयामास चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ श्रीमातरं महाशक्तिं शून्यस्वामिहरिं तथा ॥ ४० ॥ विघ्नापध्वंसनार्थाय दक्षिणद्वारसंस्थितम् ॥ गणं संस्थापयामास तथान्याश्चैव देवताः ॥ ४१ ॥ कारितास्तेन वीरेण प्रासादाः सप्तभूमिकाः ॥ यत्किञ्चित्कुरुते कार्यं शुभं माङ्गल्यरूपकम् ॥ ४२ ॥ पुत्रे जाते जातके वान्नाशने मुण्डनेऽपि वा ॥ लक्षहोमे कोटिहोमे तथा यज्ञक्रियासु च ॥ ४३ ॥ वास्तुपूजाग्रहशान्त्योः प्राप्ते चैव महोत्सवे ॥ यत्किञ्चित्कुरुते दानं द्रव्यं वा धान्यमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वस्त्रं वा धेनवो नाथ हेम रूप्यं तथैव च ॥ विप्राणामथशूद्राणां दीनानाथान्धकेषु च ॥ ४५ ॥ प्रथमं बकुलार्कस्य श्रीमातुश्चैव मानवः ॥ भागं दद्याच्च निर्विघ्नकार्यसिद्ध्यै निरन्तरम् ॥ ४६ ॥ वचनं मे समुल्लंघ्य कुरुते योऽन्यथा नरः ॥

और पुत्र उत्पन्न होने पर जातक कर्म या अन्नप्राशन व मुंडन में भी और यज्ञ कार्यों में लक्ष होम व कोटि होम में ॥ ४३ ॥ और वास्तुपूजन व ग्रह की शांति में महोत्सव प्राप्त होने पर मनुष्य जिस किसी दान व द्रव्य और उत्तम धान्य को देता है ॥ ४४ ॥ व हे नाथ ! वस्त्र व गऊ और सुवर्ण व चांदी को जो ब्राह्मणों व शूद्रों तथा दीन, अनाथ और अन्धों के लिये देवै ॥ ४५ ॥ वह मनुष्य सदैव निर्विघ्न कार्य की सिद्धि के लिये पहले बकुलार्कजी को व श्रीमाताजी को भाग देवै ॥ ४६ ॥ व जो

मनुष्य मेरे वचन को उल्लंघन करके अन्यथा करता है उसके उस कर्म का विघ्न होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर श्रीरामजी ने प्रसन्न चित्त से देवताओं की बावली व क़िला की सामग्रियों से युक्त उत्तम प्राकारों (छहर दिवाली) को बनाया और बड़े लंबे चौड़े गांव के भीतरी मार्गों को व कुंड और तड़ाग व छोटे तालाबों को बनाया ॥ ४८ । ४९ ॥ और धर्म बावली व देवताओं से रचित अन्य कूपों को बनाया सुन्दर धर्मारण्य में इस सब को विस्तार कर ॥ ५० ॥ फिर श्रीरामजी ने बड़ी श्रद्धा से मुख्य त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये दिया ताँबे के पट्ट (तख़्ते) में स्थित श्रीरामजी की आज्ञा को जो लोप करता है ॥ ५१ ॥ उसके पहले

तस्यतत्कर्मणो विघ्नं भविष्यति न संशयः ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वा ततो रामः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ देवानामथ वापीश्च प्राकारांस्तु सुशोभनान् ॥ ४८ ॥ दुर्गोपकरणैर्युक्तान्प्रतोलीश्च सुविस्तृताः ॥ निर्ममे चैव कुण्डानि सरांसि सरसीस्तथा ॥ ४९ ॥ धर्मवापीश्च कूपांश्च तथान्यान्देवनिर्मितान् ॥ एतत्सर्वं च विस्तार्य धर्मारण्ये मनोरमे ॥ ५० ॥ ददौ त्रैविद्यमुख्येभ्यः श्रद्धया परया पुनः ॥ ताम्रपट्टस्थितं रामशासनं लोपयेत्तु यः ॥ ५१ ॥ पूर्वजास्तस्य नरके पतन्त्यग्रे न सन्ततिः ॥ वायुपुत्रं समाहूय ततो रामोऽब्रवीद्वचः ॥ ५२ ॥ वायुपुत्र महावीर तव पूजा भविष्यति ॥ अस्य क्षेत्रस्य रक्षायै त्वमत्र स्थितिमाचर ॥ ५३ ॥ आञ्जनेयस्तु तद्वाक्यं प्रणम्य शिरसा दधौ ॥ जीर्णोद्धारं तदा कृत्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ५४ ॥ श्रीमातरं तदाभ्यर्च्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ श्रीमातरं नमस्कृत्य तीर्थान्यन्यानि राघवः ॥ ५५ ॥ तेऽपि देवाः स्वकं स्थानं ययुर्ब्रह्मपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दत्त्वाशिषं तु रामाय वाञ्छितं ते भविष्यति ॥

पैदा हुए पितर नरक में पड़ते हैं और आगे सन्तान नहीं होती है पवनपुत्र हनुमान्जी को बुलाकर तदनन्तर श्रीरामजी ने यह वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महावीर, पवनपुत्र ! तुम्हारी यहां पूजा होगी और इस क्षेत्र की रक्षा के लिये तुम यहां स्थिति को प्राप्त होवो ॥ ५३ ॥ अंजनीकुमार हनुमान्जी ने प्रणामकर उस वचन को मस्तक से धारण किया और उस समय जीर्णोद्धार करके श्रीरामजी कृतार्थ हुए ॥ ५४ ॥ व उस समय श्रीरघुनाथजी प्रसन्नचित्त से श्रीमाता को प्रणामकर व पूजकर अन्य तीर्थों को चलेगये ॥ ५५ ॥ और ब्रह्मा आदिक वे देवता भी तुम्हारा मनोरथ होगा श्रीरामजी के लिये इस आशीर्वाद को देकर अपने स्थान को चले गये हे राम ! तुम

ने ब्राह्मणों का सुन्दर स्थापनादिक कर्म किया ॥ ५६ । ५७ ॥ और तुम पुण्यवान् ने हमलोगों का भी स्नेह किया इस प्रकार स्तुति करते हुए देवता अपने स्थानों को चले गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां श्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णननामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन को दिय शासन जिमि राम । चौंतिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ व्यासजी बोले कि हे धर्मज्ञ ! पुरातन समय इस प्रकार श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के हित के लिये श्रीमाता के वचन से जीर्णोद्धार किया है ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! त्रेता में श्रीरामजी ने सत्यमन्दिर में कैसा शासन (शिक्षा)

रम्यं कृतं त्वया राम विप्राणां स्थापनादिकम् ॥ ५७ ॥ अस्माकमपि वात्सल्यं कृतं पुण्यवता त्वया ॥ इति स्तुवन्तस्ते देवाः स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णननामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ एवं रामेण धर्मज्ञ जीर्णोद्धारः पुरा कृतः ॥ द्विजानां च हितार्थाय श्रीमातुर्वचनेन च ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं शासनं ब्रह्मन् रामेण लिखितं पुरा ॥ कथयस्व प्रसादेन त्रेतायां सत्यमन्दिरे ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धर्मारण्ये वरे दिव्ये बकुलार्के स्वधिष्ठिते ॥ शून्यस्वामिनि विप्रेन्द्र स्थिते नारायणे प्रभौ ॥ ३ ॥ रक्षणाधिपतौ देवे सर्वज्ञे गणनायके ॥ भवसागरमग्नानां तारिणी यत्र योगिनी ॥ ४ ॥ शासनं तत्र रामस्य राघवस्य च नामतः ॥ शृणु ताम्राश्रयं तत्र लिखितं धर्मशास्त्रतः ॥ ५ ॥ महाश्चर्यकरं तच्च ह्यनेकयुगसंस्थितम् ॥ सर्वो धातुः क्षयं

लिखा है उसको प्रसन्नता से कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! उत्तम व दिव्य धर्मारण्य में बकुलार्कजी के स्थित होनेपर व शून्यस्वामी नारायण प्रभु के स्थित होने पर ॥ ३ ॥ और सर्वज्ञ गणेशदेवजी के रक्षा के स्वामी होने पर संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों के तारने के लिये जहां योगिनीजी हैं ॥ ४ ॥ वहां राघवजी के नाम से श्रीरामजी के शासन को सुनिये कि धर्मशास्त्र से ताम्रपत्र के आश्रय जो शासन लिखा गया है ॥ ५ ॥ अनेकों युगों से स्थित वह बड़ा भारी आश्चर्य

करनेवाला है सब धातु क्षय होती है और सुवर्ण नाश को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ व हे पुत्र ! द्विजशासन प्रत्यक्ष अक्षय देख पड़ता है और वहां तांबे के नाश न होनेवाला कारण विद्यमान है ॥ ७ ॥ हे भारत ! जिस लिये विष्णुही सब वेदोक्त कहे जाते हैं व पुराणों में और वेदों तथा धर्मशास्त्रों में ॥ ८ ॥ अनेक प्रकार के भावों में आश्रित विष्णुजी सब कहीं गाये जाते हैं और अनेक प्रकार के देशों व धर्मों में अनेक भांति के धर्मों को सेवनेवाले मनुष्यों से ॥ ९ ॥ अनेक प्रकार के भेदों से सर्वत्र जो विष्णुही ध्यान किये जाते हैं वे ही साक्षात् पुराण पुरुषोत्तम विष्णुजी अवतार करते भये हैं ॥ १० ॥ हे पुत्र ! उन्हों ने देवताओं के वैरियों के नाश के लिये व

याति सुवर्णं क्षयमेति च ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षं दृश्यते पुत्र द्विजशासनमक्षयम् ॥ अविनाशो हि ताम्रस्य कारणं तत्र विद्यते ॥ ७ ॥ वेदोक्तं सकलं यस्माद्विष्णुरेव हि कथ्यते ॥ पुराणेषु च वेदेषु धर्मशास्त्रेषु भारत ॥ ८ ॥ सर्वत्र गीयते विष्णुर्नानाभावसमाश्रयः ॥ नानादेशेषु धर्मेषु नानाधर्मनिषेविभिः ॥ ९ ॥ नानाभेदैस्तु सर्वत्र विष्णुरेवेति चिन्त्यते ॥ अवतीर्णः स वै साक्षात्पुराणपुरुषोत्तमः ॥ १० ॥ देववैरिविनाशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ तेनेदं शासनं दत्तमविनाशात्मकं सुत ॥ ११ ॥ यस्य प्रतापाद्दृषदस्तारिता जलमध्यतः ॥ वानरैर्वेष्टिता लङ्का हेलया राक्षसा हताः ॥ १२ ॥ मुनिपुत्रं मृतं रामो यमलोकादुपानयत् ॥ दुन्दुभिर्निहतो येन कबन्धोऽभिहतस्तथा ॥ १३ ॥ निहता ताडका चैव सप्ततालाविभेदिताः ॥ खरश्च दूषणश्चैव त्रिशिराश्च महासुरः ॥ १४ ॥ चतुर्दशसहस्राणि जवेन निहता रणे ॥ तेनेदं शासनं दत्तमक्षयं न कथं भवेत् ॥ १५ ॥ स्ववंशवर्णनं तत्र लिखित्वा स्वयमेव तु ॥ देशकालादिकं सर्वं लिलेख विधिपूर्व

धर्म की रक्षा के लिये इस अविनाशी शासन को दिया है ॥ ११ ॥ जिन के प्रताप से पत्थर जल के मध्य में ऊपर प्राप्त हुए और वानरों से लंका घेरी गई व हेला से राक्षस मारे गये ॥ १२ ॥ और मरे हुए मुनिपुत्र को श्रीरामजी यमलोक से ले आये और जिन्होंने कबंध को मारा व दुन्दुभि को नाश किया ॥ १३ ॥ और जिन्हों ने ताड़का राक्षसी को मारा व सात ताल वृक्षों को काट डाला और खर, दूषण व त्रिशिरा महादैत्य को जिन्हों ने मारा ॥ १४ ॥ और युद्ध में चौदह हज़ार राक्षस वेग से मारेगये उन्हों ने यह अक्षय शासन दिया है वह कैसे न होवै ॥ १५ ॥ उसमें आपही श्रीरामजी ने अपने वंश का वर्णन लिखकर विधिपूर्वक सब देश काला-

दिक लिखा ॥ १६ ॥ और वहां अपनी छाप से चिह्नित उस लेख को त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये चवालीस वर्ष के दशरथकुमार श्रीरामजी ने दिया ॥ १७ ॥ व हे भारत ! उस समय में बड़ा भारी आश्चर्य दिया गया कि वहां सुवर्ण के समान व चांदी के समान ॥ १८ ॥ देवता, ऋषि व पितरों की तृप्तिदायक जल को श्रीरामजी ने तीर्थ में प्राप्त किया और अपने वंश के स्वामी श्रीरामजी के आगे सूर्य ने उसको किया ॥ १६ ॥ उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर पवित्र श्रीरामजी ने विष्णुजी को पूजकर विद्यामयी त्रयी को देकर ब्रह्म में मन को लगाया व रामजी के विचित्र लेखों से धर्म की आज्ञा लिखी गई ॥ २० ॥ जिसको देखकर जिस लिये सब

कम् ॥ १६ ॥ स्वमुद्राचिह्नितं तत्र त्रैविद्येभ्यस्तथा ददौ ॥ चतुश्चत्वारिंशवर्षो रामो दशरथात्मजः ॥ १७ ॥ तस्मिन्काले महाश्चर्यं संदत्तं किल भारत ॥ तत्र स्वर्णोपमं चापि रौप्योपममथापि च ॥ १८ ॥ उवाह सलिलं तीर्थे देवर्षिपितृ तृप्तिदम् ॥ स्ववंशनायकस्याग्रे सूर्येण कृतमेव तत् ॥ १६ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रामो विष्णुं प्रपूज्य च ॥ त्रयीं विद्या मयीं दत्त्वा ब्रह्मार्पणमनाः शुचिः ॥ रामलेखविचित्रैस्तु लिखितं धर्मशासनम् ॥ २० ॥ यद्दृष्ट्वाथ द्विजाः सर्वे संसार भयबन्धनम् ॥ कुर्वते नैव यस्माच्च तस्मान्निखिलरक्षकम् ॥ २१ ॥ ये पापिष्ठा दुराचारा मित्रद्रोहरताश्च ये ॥ तेषां प्र बोधनार्थाय प्रसिद्धिमकरोत्पुरा ॥ २२ ॥ रामलेखविचित्रैस्तु विचित्रे ताम्रपट्टके ॥ वाक्यानीमानि श्रूयन्ते शासने किल नारद ॥ २३ ॥ आस्फोटयन्ति पितरः कथयन्ति पितामहाः ॥ भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ २४ ॥ बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः पृथिवी त्वियम् ॥ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २५ ॥ षष्टिवर्ष

ब्राह्मण संसार के भय के बंधन को नहीं करते हैं उसी कारण वह सबों का रक्षक है ॥ २१ ॥ और जो पापी व दुराचारी और जो मित्र के द्रोह में परायण हैं उन के ज्ञान के लिये प्राचीन समय में उन्हों ने प्रसिद्धि किया है ॥ २२ ॥ हे नारद ! रामजी के विचित्र लेखों से विचित्र ताम्रपट्ट में शिक्षा में ये वचन सुन पड़ते हैं ॥ २३ ॥ कि पितर गरजते हैं व पितामह यह कहते हैं कि जो भूमिदायक हमारे वंश में पैदा होगा वह हमलोगों को तारैगा ॥ २४ ॥ बहुत से राजाओं ने द्रव्य को धारने-वाली इस पृथ्वी को भोग किया है जब जिस जिस की पृथ्वी होती है तब उस उस को फल होता है ॥ २५ ॥ और पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य साठ हज़ार वर्ष तक

स्वर्ग में बसता है और मना करनेवाला व उसको अनुमोदन करनेवाला उन्हीं साठ हज़ार वर्षों तक नरक को जाता है ॥ २६ ॥ और मुद्गरों से मार कर संगसियों से क्लेशित व फँसरियों से बांधा जाता हुआ वह बड़े भारी शब्द से रोता है ॥ २७ ॥ और दंडों से मस्तक में मारा हुआ व छुरी से काटा जाता हुआ वह अग्नि को लिपट कर बड़े शब्द से रोता है ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाले उन पुरुषों को ऐसे बड़े दुष्ट महागण यमदूतलोग पीड़ित करते हैं ॥ २९ ॥ तदनन्तर वह पशु या पक्षी की योनि को पाता है या राक्षसी व कुत्ते की योनि को प्राप्त होता है अथवा बड़े प्राणियों को भी भय करनेवाली सर्प, सियार व पिशाच की योनि

सहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः ॥ आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकं व्रजेत् ॥ २६ ॥ सन्दंशैस्तुद्यमानस्तु मुद्गरैर्विनिहत्य च ॥ पाशैः सुबध्यमानस्तु रोरवीति महास्वरम् ॥ २७ ॥ ताड्यमानः शिरे दण्डैः समालिङ्ग्य विभावसुम् ॥ छिद्यमानः क्षुरिकया रोरवीति महास्वनम् ॥ २८ ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्ब्रह्मवृत्तिविलोपकाः ॥ एवंविधैर्महादुष्टैः पीड्यन्ते ते महागणैः ॥ २९ ॥ ततस्तिर्यक्त्वमाप्नोति योनिं वा राक्षसीं शुनीम् ॥ व्यालीं शृगालीं पैशाचीं महाभूतभयङ्करीम् ॥ ३० ॥ भूमेरङ्गुलहर्त्ता हि स कथं पापमाचरेत् ॥ भूमेरङ्गुलदाता च स कथं पुण्यमाचरेत् ॥ ३१ ॥ अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥ कन्याशतप्रदानस्य फलं प्राप्नोति भूमिदः ॥ ३२ ॥ आयुर्यशः सुखं प्रज्ञा धर्मो धान्यं धनं जयः ॥ सन्तानं वर्द्धते नित्यं भूमिदः सुखमश्नुते ॥ ३३ ॥ भूमेरङ्गुलमेकं तु ये हरन्ति खला नराः ॥ विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः ॥ कृष्णसर्पाः प्रजायन्ते दत्तदायापहारकाः ॥ ३४ ॥ तडागानां सहस्रेण

को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ और जो अंगुल भर पृथ्वी को हरता है वह क्यों पाप करता है व अंगुल भर पृथ्वी को जो देता है वह क्यों पुण्य करता है ॥ ३१ ॥ क्योंकि पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य हज़ार अश्वमेध व सौ राजसूय और सौ कन्यादान के फल को पाता है ॥ ३२ ॥ और आयुर्बल, यश, सुख, बुद्धि, धर्म, धान्य, धन, जय व सन्तान सदैव बढ़ती है और पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य सुख को पाता है ॥ ३३ ॥ और जो दुष्ट मनुष्य पृथ्वी का एक अंगुल हरते हैं वे बिन जलवाले विन्ध्याचल के वनों में व सूखे वृक्षों के खोड़रों में बसते हैं और दिये हुए धन को हरनेवाले मनुष्य काले सांप होते हैं ॥ ३४ ॥ और हज़ार तड़ाग व सौ अश्वमेध

तथा करोड़ गौवों के देने से पृथ्वी को हरनेवाला मनुष्य पवित्र होता है॥ ३५॥ इस संसार में उदारता से जो धर्म, अर्थ व यश को करनेवाले धन दान दिये गये फिर ब्राह्मण को दिये हुए उनको कौन सज्जन पुरुष ले लेता है ॥ ३६ ॥ सब संसार के सुखवाले और तिनुका के अणु प्रमाण भर छोटे सारांशवाले इस मेघों के समान चलायमान जीवलोक में जो दुष्ट आशावाला पुरुष ब्राह्मणों की जीविका को हरता है वह कठिन नरककुंड के भँवर में गिरने का उत्कंठित होताहै॥ ३७॥ जो राजालोग इस पृथ्वी को पालन करैंगे वे सब पृथ्वी को भोगकर चलेजावैंगे परन्तु किसी के साथ भी पृथ्वी न गई है न जाती है न जावैगी और जो कुछ पृथ्वी में है वह सब

अश्वमेधशतेन वा॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता विशुध्यति॥ ३५॥ यानीह दत्तानि पुनर्धनानि दानानि धर्मार्थयशस्कराणि॥ औदार्यतो विप्रनिवेदितानि को नाम साधुः पुनराददीत॥ ३६॥ इह हि जलदलीलाचञ्चले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये॥ अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां नरकगहनगर्त्तावर्तपातोत्सुकोयः॥ ३७॥ ये पास्यन्ति महीभुजः क्षितिमिमां यास्यन्ति भुक्त्वाखिलां नो याता न तु याति यास्यति न वा केनापि सार्द्धं धरा॥ यत्किञ्चिद्भुवि तद्विनाशि सकलं कीर्तिः परं स्थायिनी त्वेवं वै वसुधापि यैरुपकृता लोप्या न सत्कीर्तयः॥ ३८॥ एकैव भगिनी लोके सर्वेषामेव भूभुजाम्॥ न भोज्या न करग्राह्या विप्रदत्ता वसुंधरा॥ ३९॥ दत्त्वा भूमिं भाविनः पार्थिवेशान्भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः॥ सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः॥ ४०॥ अस्मिन्वंशे क्षितौ कोपि राजा यदि भविष्यति॥ तस्याहं करलग्नोस्मि मद्दत्तं यदि पाल्यते॥ ४१॥ लिखित्वा

नाशवान् है परन्तु यश स्थित होनेवाला है ऐसेही जिसने पृथ्वी को दिया है उसके उत्तम यश नाश नहीं होते हैं॥ ३८॥ संसार में सब राजाओं की एकही बहन है याने ब्राह्मण को दीहुई पृथ्वी न भोग करने योग्य है और न हाथ पकड़ने के योग्य है॥ ३९॥ पृथ्वी को देकर होनेवाले राजाओं से रामचन्द्रजी बार २ प्रार्थना करते हैं कि राजाओं का यह साधारण धर्मसेतु आपलोगों से अपने अपने समय में पालन करने योग्य है॥ ४०॥ यदि मेरा दिया हुआ पालन किया जाता है तो पृथ्वी में यदि इस वंश में कोई भी राजा होगा तो उसके हाथ में मैं प्राप्त हूंगा॥ ४१॥ इस शासन (शिक्षा) को लिखकर बुद्धिमान् श्रीमान्जी ने वसिष्ठजी के सामने

चतुर्वेदी द्विजोत्तमों को पूजकर दे दिया ॥ ४२ ॥ और उन ब्राह्मणों ने सुवर्ण के अक्षरों से संयुत व धर्मभूषण उस धर्मसंयुत उत्तम ताँबे के पट्ट को लेकर ॥ ४३ ॥ पूजन के लिये भक्ति की इच्छावाले उन्हों ने उसकी रक्षा किया और दिव्यचंदन व सुगंधित पुष्प से ॥ ४४ ॥ और सोने के पुष्प व चांदी के पुष्प से वे ब्राह्मण प्रतिदिन उत्तम पूजन करनेलगे ॥ ४५ ॥ व हे राजन् ! निर्मल घी से संयुत व सात बत्तियों से युक्त दीपक को उसके आगे ब्राह्मणलोग अर्घ्य करते हैं ॥ ४६ ॥ व भक्तिपूर्वक ब्राह्मण लोग नित्य नैवेद्य करते हैं और राम, राम व राम ऐसा मंत्र कहते हैं ॥ ४७ ॥ और भोजन, शयन, जलपान, गमन व आसन और सुख या दुःख में जो राम-

शासनं रामश्चातुर्वेद्यद्विजोत्तमान् ॥ सम्पूज्य प्रददौ धीमान्वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ ४२ ॥ ते वाडवा गृहीत्वा तं पट्टं रामाज्ञया शुभम् ॥ ताम्रं हैमाक्षरयुतं धर्म्यं धर्मविभूषणम् ॥ ४३ ॥ पूजार्थं भक्तिकामार्थास्तद्रक्षणमकुर्वत ॥ चन्दनेन च दिव्येन पुष्पेण च सुगन्धिना ॥ ४४ ॥ तथा सुवर्णपुष्पेण रूप्यपुष्पेण वा पुनः ॥ अहन्यहनि पूजां ते कुर्वते वाडवाः शुभाम् ॥ ४५ ॥ तदग्रे दीपकं चैव घृतेन विमलेन हि ॥ सप्तवर्तियुतं राजन्नर्घ्यं प्रकुर्वते द्विजाः ॥४६॥ नैवेद्यं कुर्वते नित्यं भक्तिपूर्वं द्विजोत्तमाः ॥ रामरामेति रामेति मन्त्रमप्युच्चरन्ति हि ॥ ४७ ॥ अशने शयने पाने गमने चोपवेशने ॥ सुखे वाप्यथवा दुःखे राममन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ४८ ॥ न तस्य दुःखदौर्भाग्यं नाधिव्याधिभयं भवेत् ॥ आयुः श्रियं बलं तस्य वर्द्धयन्ति दिने दिने ॥ ४९ ॥ रामेति नाम्ना मुच्येत पापाद्वै दारुणादपि ॥ नरकं नहि गच्छेत गतिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ इति कृत्वा ततो रामः कृतकृत्यममन्यत ॥ प्रदक्षिणीकृत्य तदा प्रणम्य च द्विजान्बहून् ॥ ५१ ॥ दत्त्वा दानं भूरितरं गवाश्वमहिषीरथम् ॥ ततः सर्वान्निजांस्तांश्च वाक्यमे

मन्त्र को कहता है ॥ ४८ ॥ उसको दुःख, दुर्भाग्यता व आधि, व्याधि का डर नहीं होता है व प्रतिदिन उसका आयुर्बल, लक्ष्मी व पराक्रम बढ़ता है ॥ ४९ ॥ और राम ऐसे नाम से मनुष्य कठिन पाप से भी छूटजाता है और नरक को नहीं जाता है व अविनाशिनी गति को पाता है ॥ ५० ॥ ऐसा करके तदनन्तर श्रीरामजी ने कृतार्थ माना और उस समय बहुत से ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कर व प्रणाम करके ॥ ५१ ॥ गऊ, घोड़े, भैंसी व रथ बहुत सा दान देकर तदनन्तर श्रीरामजी ने

उन सब अपने ब्राह्मणों से यह वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि जब तक चन्द्रमा व सूर्य रहैं तबतक तुम सबों को यहां टिकना चाहिये और जबतक पृथ्वी में सुमेरु व सातों समुद्र रहैं ॥ ५३ ॥ तबतक निस्सन्देह आपलोगों को यहीं टिकना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में जब राजालोग मेरी शिक्षा को न मानैं ॥ ५४ ॥ अथवा गर्व व माया से मोहित वे वणिज् व शूद्रलोग मेरी आज्ञा को न करैं ॥ ५५ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! तुमलोग पवनपुत्र हनुमान्जी को स्मरण कीजियेगा क्योंकि स्मरण किये हुए हनुमान्जी आकर मेरे वचन से यकायक उनको भस्म करैंगे यह निस्सन्देह सत्य है और जो राजा मेरी इस सुन्दरी शिक्षा को पालैगा ॥ ५६ । ५७ ॥ पवनपुत्र

तदुवाचह ॥ ५२ ॥ अत्रैव स्थीयतां सर्वैर्यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ यावन्मेरुर्महीपृष्ठे सागराः सप्त एव च ॥ ५३ ॥ तावदत्रैव स्थातव्यं भवद्भिर्हि न संशयः ॥ यदाहि शासनं विप्रा न मन्यन्ते नृपा भुवि ॥ ५४ ॥ अथवा वणिजः शूद्रा मदमायाविमोहिताः ॥ मदाज्ञां न प्रकुर्वन्ति मन्यन्ते वा न ते जनाः ॥ ५५ ॥ तदा वै वायुपुत्रस्य स्मरणं क्रियतां द्विजाः ॥ स्मृतमात्रो हनूमान्वै समागत्य करिष्यति ॥ ५६ ॥ सहसा भस्म तान्सत्यं वचनान्मे न संशयः ॥ य इदं शासनं रम्यं पालयिष्यति भूपतिः ॥ ५७ ॥ वायुपुत्रः सदा तस्य सौख्यमृद्धिं प्रदास्यति ॥ ददाति पुत्रान्पौत्रांश्च साध्वीं पत्नीं यशो जयम् ॥ ५८ ॥ इत्येवं कथयित्वा च हनुमन्तं प्रबोध्य च ॥ निवर्तितो रामदेवः ससैन्यः सपरिच्छदः ॥ ५९ ॥ वादित्राणां स्वनैर्विष्वक्सूच्यमानशुभागमः ॥ श्वेतातपत्रयुक्तोऽसौ चामरैर्वीजितो नरैः ॥ अयोध्यां नगरीं प्राप्य चिरं राज्यं चकार ह ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येब्रह्मनारदसंवादेश्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः शासनपट्टप्रदानवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥

हनुमान्जी सदैव उसको सुख व ऐश्वर्य देवैंगे और पुत्रों व पौत्रों को तथा पतिव्रता स्त्री और यश व जीत को देवैंगे ॥ ५८ ॥ यह कहकर वे हनुमान्जी को समझाकर सेना समेत व सामान समेत श्रीरामजी लौट आये ॥ ५९ ॥ सब ओर बाजनों के शब्दों से सूचित उत्तम आगमनवाले ये सफ़ेद छत्र से संयुत व मनुष्यों से वीजित श्रीरामजी ने अयोध्या नगरी को प्राप्त होकर बहुत दिनों तक राज्य किया ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादेश्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः शासनपट्टप्रदानवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो०। धर्मारण्यक्षेत्र में कियो यज्ञ श्रीराम। पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम॥ नारदजी बोले कि हे सृष्टिसंहारकारक, देवदेवेश, भगवन्! गुणों से रहित व गुणों से युक्त तथा मुक्तियों के उत्तम साधनरूप॥१॥ रघुनाथजी विधिपूर्वक सत्यमंदिर में द्विजोत्तमों को थापकर फिर जब अयोध्यापुरी में गये तब उन्हों ने क्या किया है॥२॥ और वहां अपने स्थान में ब्राह्मणों ने किन कर्मों को किया है ब्रह्माजी बोले कि इष्टापूर्तकर्मों में लगे हुए वे शांत ब्राह्मण दान से विमुख हुए॥३॥ और द्विजोत्तम वसिष्ठ पुरोहित ने इस वन की राज्य किया और श्रीरामजी के आगे उत्तम तीर्थ का माहात्म्य कहा॥४॥ और प्रयाग का माहात्म्य व त्रिवेणी का उत्तम

नारद उवाच॥ भगवन्देवदेवेश सृष्टिसंहारकारक॥ गुणातीतो गुणैर्युक्तो मुक्तीनां साधनं परम्॥१॥ संस्थाप्य वेदभवनं विधिवद् द्विजसत्तमान्॥ किं चक्रे रघुनाथस्तु भूयोऽयोध्यां गतस्तदा॥२॥ स्वस्थाने ब्राह्मणास्तत्र कानि कर्माणि चक्रिरे॥ ब्रह्मोवाच॥ इष्टापूर्तरताः शान्ताः प्रतिग्रहपराङ्मुखाः॥३॥ राज्यं चक्रुर्वनस्यास्य पुरोधा द्विज सत्तमः॥ उवाच रामपुरतस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥४॥ प्रयागस्य च माहात्म्यं त्रिवेणीफलमुत्तमम्॥ प्रयागतीर्थ महिमा शुक्लतीर्थस्य चैव हि॥५॥ सिद्धक्षेत्रस्य काश्याश्च गङ्गाया महिमा तथा॥ वसिष्ठः कथयामास तीर्थान्य न्यानि नारद॥६॥ धर्मारण्ये सुवर्णाया हरिक्षेत्रस्य तस्य च॥ स्नानदानादिकं सर्वं वाराणस्या यवाधिकम्॥७॥ एतच्छ्रुत्वा रामदेवः स चमत्कृतमानसः॥ धर्मारण्ये पुनर्यात्रां कर्त्तुकामः समभ्यगात्॥८॥ सीतया सह धर्मज्ञो गुरुसैन्यपुरःसरः॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भरतेन सहायवान्॥९॥ शत्रुघ्नेन परिवृतो गतो मोहेरके पुरे॥ तत्र गत्वा

फल कहा और प्रयागतीर्थ की महिमा व शुक्लतीर्थ की महिमा को उन्हों ने कहा॥५॥ व हे नारद! सिद्ध क्षेत्र की महिमा व काशी और गंगा की महिमा और अन्य तीर्थों को वसिष्ठजी ने कहा॥६॥ और धर्मारण्य में सुवर्णा नदी व उस हरिक्षेत्र के सब स्नान दानादिक को कहा और काशी से यव भर अधिक धर्मारण्य को कहा॥७॥ इस वचन को सुनकर चमत्कृत मनवाले वे श्रीरामजी फिर धर्मारण्य में तीर्थयात्रा करने के लिये गये॥८॥ और सीता समेत बड़ी भारी सेना अग्रगामीवाले धर्मज्ञ व भरत सहायवाले श्रीरामजी लक्ष्मण भाई समेत॥९॥ शत्रुघ्न से घिरकर मोहेरक पुर में गये और वहां जाकर ये उदार मनवाले श्रीरामजी

वसिष्ठजी से पूछने लगे ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! धर्मारण्य महाक्षेत्र में क्या दान, नियम, स्नान व उत्तम तप करना चाहिये ॥ ११ ॥ और ध्यान, यज्ञ, होम व उत्तम जप, दान, नियम, स्नान व कौन उत्तम तप करना चाहिये ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस तीर्थ में जिसके करने से मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों से छूट जाता है उसको मुझ से कहिये ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे महाभाग ! तुम प्रतिदिन कोटि गुने उत्तम यज्ञ को सौ बरस तक कीजिये ॥ १४ ॥ गुरु से उसको सुनकर उन श्रीरामजी ने यज्ञ का प्रारंभ किया और उस समय में श्रीरामजी से सीताजी ने हर्ष से कहा ॥ १५ ॥ कि हे स्वामिन् ! तुम ने पहले

वसिष्ठं तु पृच्छतेऽसौ महामनाः ॥ १० ॥ राम उवाच ॥ धर्मारण्ये महाक्षेत्रे किं कर्त्तव्यं द्विजोत्तम ॥ दानं वा नियमो वाथ स्नानं वा तप उत्तमम् ॥ ११ ॥ ध्यानं वाथ क्रतुं वाथ होमं वा जपमुत्तमम् ॥ दानं वा नियमं वाथ स्नानं वा तप उत्तमम् ॥ १२ ॥ येन वै क्रियमाणेन तीर्थेऽस्मिन्द्विजसत्तम ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तद्ब्रवीहि मे ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यज्ञं कुरु महाभाग धर्मारण्ये त्वमुत्तमम् ॥ दिनेदिने कोटिगुणं यावद्वर्षशतं भवेत् ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा चैव गुरुतो यज्ञारम्भं चकार सः ॥ तस्मिन्नवसरे सीता रामं व्यज्ञापयन्मुदा ॥ १५ ॥ स्वामिन्पूर्वं त्वया विप्रा वृता ये वेदपारगाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन निर्मिता ये पुरा द्विजाः ॥ १६ ॥ कृते त्रेतायुगे चैव धर्मारण्यनिवासिनः ॥ विप्रांस्तान्वै वृणुष्व त्वं तैरेव सार्थकोऽध्वरः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वा रामदेवेन आहूता ब्राह्मणास्तदा ॥ स्थापिताश्च यथापूर्वमस्मिन्मोहेरके पुरे ॥ १८ ॥ तैस्त्वष्टादशसंख्याकैस्त्रैविद्यैर्मोहिवाडवैः ॥ यज्ञं चकार विधिवत्तैरेवायतबुद्धिभिः ॥ १९ ॥

जिन वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को वरण किया था और जो ब्राह्मण पुरातन समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये गये हैं ॥ १६ ॥ सतयुग व त्रेतायुग में धर्मारण्य में बसनेवाले उन ब्राह्मणों को तुम वरण करो क्योंकि उन्हीं से यज्ञ सार्थक होगा ॥ १७ ॥ उसको सुनकर श्रीरामदेवजी ने उस समय ब्राह्मणों को बुलाया और इस मोहेरक पुर में पहले की नाईं स्थापित किया ॥ १८ ॥ और विशाल बुद्धिवाले उन अठारह संख्यक त्रैविद्य मोहेरकपुर निवासी ब्राह्मणों से उन्होंने यज्ञ किया ॥ १९ ॥

कुशिक, कौशिक, वत्स, उपमन्यु, काश्यप, कृष्णात्रेय, भरद्वाज, धारिण व श्रेष्ठ शौनकजी ॥ २० ॥ और मांडव्य, भार्गव, पैंग्य, वात्स्य, लौगाक्ष, गांगायन, गांगेय, शुनक व शौनकजी ने यज्ञ कराया ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि इन ब्राह्मणों से राजा श्रीरामजी ने विधिपूर्वक यज्ञ को समाप्तकर ब्राह्मणों को भक्ति से पूजकर अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) किया ॥ २२ ॥ और यज्ञ के अन्तमें बहुतही नम्र सीताजी ने श्रीरामजी से विनय किया कि हे सुव्रत ! इस यज्ञ की सिद्धि में दक्षिणाको दीजिये ॥ २३ ॥ और मेरे नाम से वहां शीघ्रही नगर को स्थापन कीजिये सीताजी का वचन सुनकर श्रीरामजी ने वैसाही किया ॥ २४ ॥ और सीताजी की प्रसन्नता के लिये श्रीरामराजा ने

कुशिकः कौशिको वत्स उपमन्युश्च काश्यपः ॥ कृष्णात्रेयो भरद्वाजो धारिणः शौनको वरः ॥ २० ॥ माण्डव्यो भार्गवः पैङ्ग्यो वात्स्यो लौगाक्ष एव च ॥ गाङ्गायनोथ गाङ्गेयः शुनकः शौनकस्तथा ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एभिर्विप्रैः क्रतुं रामः समाप्य विधिवन्नृपः ॥ चकारावभृथं रामो विप्रान्सम्पूज्य भक्तितः ॥ २२ ॥ यज्ञान्ते सीतया रामो विज्ञप्तः सुविनीतया ॥ अस्याध्वरस्य सम्पत्तौ दक्षिणां देहि सुव्रत ॥ २३ ॥ मन्नाम्ना च पुरं तत्र स्थाप्यतां शीघ्रमेव च ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे नृपोत्तमः ॥ २४ ॥ तेषां च ब्राह्मणानां च स्थानमेकं सुनिर्भयम् ॥ दत्तं रामेण सीतायाः सन्तोषाय महीभृता ॥ २५ ॥ सीतापुरमिति ख्यातं नाम चक्रे तदा किल ॥ तस्याधिदेव्यौ वर्त्तेते शान्ता चैव सुमङ्गला ॥ २६ ॥ मोहेरकस्य पुरतो ग्रामद्वादशकं पुरः ॥ ददौ विप्राय विदुषे समुत्थाय प्रहर्षितः ॥ २७ ॥ तीर्थान्तरं जगामाशु काश्यपीसरितस्तटे ॥ वाडवाः केऽपि नीतास्ते रामेण सह धर्मवित् ॥ २८ ॥ धर्मालये गतः सद्यो यत्र मूलार्क

उन ब्राह्मणों को एक निडर स्थान दिया ॥ २५ ॥ व तब उन्हों ने उसका सीतापुर ऐसा प्रसिद्ध नाम किया और उस नगर की शांता व मंगला ये दो अधिदेवियां वर्तमान हैं ॥ २६ ॥ और मोहेरक नगर के आगे बारह ग्रामों को प्रसन्न होतेहुए श्रीरामजी ने उठकर विद्वान् ब्राह्मण के लिये दिया ॥ २७ ॥ व हे धर्मवित् ! श्रीरामजी काश्यपी नदी के किनारे शीघ्रही अन्य तीर्थ को गये और श्रीरामजी साथही कितेक ब्राह्मणों को भी ले आये ॥ २८ ॥ और शीघ्रही धर्मालय में गये जहां कि मूलार्क

जीका मण्डप है व हे मुने! जहां पहले धर्मराज ने बड़ाभारी तप किया है ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर वह धर्मालय ऐसा प्रसिद्ध स्थान विख्यात हुआ और वहां दशरथकुमार श्रीरामजी ने सोलह महादानों को दिया ॥ ३० ॥ और उस समय सीतापुर समेत जो सत्यमन्दिर तक पचास ग्राम थे उनको रघुनाथजी ने ॥ ३१ ॥ सीताजी के वचन से व गुरु के वचन से अपने वंश की वृद्धि के लिये व सब प्रयोजनों की सिद्धि के लिये दिया ॥ ३२ ॥ वहां अठारह हज़ार ब्राह्मणों का वंश हुआ है वात्स्यायन, उपमन्यु, जातूकर्ण्य व पिंगल ॥ ३३ ॥ व भारद्वाज, वत्स, कौशिक, कुश, शाण्डिल्य, कश्यप, गौतम व छांधन ॥ ३४ ॥ कृष्णात्रेय, वत्स, वसिष्ठ, धारण,

मण्डपः ॥ पुरा धर्मेण सुमहत्कृतं यत्र तपो मुने ॥ २९ ॥ तदारभ्य सुविख्यातं धर्मालयमिति श्रुतम् ॥ ददौ दाशरथिस्तत्र महादानानि षोडश ॥ ३० ॥ ये पञ्चाशत्तदा ग्रामाः सीतापुरसमन्विताः ॥ सत्यमन्दिरपर्यन्ता रघुनाथेन वै तदा ॥ ३१ ॥ सीताया वचनात्तत्र गुरुवाक्येन चैव हि ॥ आत्मनो वंशवृद्ध्यर्थं दत्तास्सर्वार्थसिद्धये ॥ ३२ ॥ अष्टादश सहस्राणां द्विजानामभवत्कुलम् ॥ वात्स्यायन उपमन्युर्जातूकर्ण्योऽथ पिङ्गलः ॥ ३३ ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः कुश एव च ॥ शाण्डिल्यः कश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ ३४ ॥ कृष्णात्रेयस्तथा वत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा ॥ भाण्डिलश्चैव विज्ञेयो यौवनाश्वस्ततः परम् ॥ ३५ ॥ कृष्णायनोपमन्यू च गार्ग्यमुद्गलमौखकाः ॥ पुशिः पराशरश्चैव कौण्डिन्यश्च ततः परम् ॥ ३६ ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां नामान्येवं यथाक्रमम् ॥ सीतापुरं श्रीक्षेत्रं च मुशली मुद्गली तथा ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठला श्रेयस्थानं च दन्ताली वटपत्रका ॥ राज्ञः पुरं कृष्णवाटं देहं लोहं चनस्थनम् ॥ ३८ ॥ कोहेचं चन्दनक्षेत्रं थलं च हस्तिनापुरम् ॥ कर्पटं कंनजह्ववी वनोडफनफावली ॥ ३९ ॥ मोहोधं शमो

भांडिल व तदनन्तर यौवनाश्व जानने योग्य हैं ॥ ३५ ॥ और कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल व मौखक, पुशि, पराशर तदनन्तर कौण्डिन्य हैं ॥ ३६ ॥ व ऐसेही पचपन ग्रामों के नाम क्रम से हैं सीतापुर, श्रीक्षेत्र, मुशली, मुद्गली ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठला, श्रेयस्थान, दन्ताली, वटपत्रका, राजापुर, कृष्णवाट, देह, लोह व चनस्थन ॥ ३८ ॥ और कोहेच, चन्दनक्षेत्र, थल व हस्तिनापुर, कर्पट, कंनजह्ववी, वनोडफ व नफावली ॥ ३९ ॥ और मोहोध, शमोहोरली, गोविन्दण, थलत्यज, चारण

सिद्ध, सोद्गीत्राभाज्यज व वटमालिका ॥ ४० ॥ और गोघर, मारणज, मात्रमध्य व मातर, बलवती, गन्धवती, ईआम्ली व राज्यज ॥ ४१ ॥ और रूपावली, बहुधन, छत्रीट व वंशज और जायासंरण, गोतिकी व चित्रलेख ॥ ४२ ॥ दुग्धावली, हंसावली, वैहोल, चैल्लज, नालावली, आसावली और इसके उपरान्त सुहालीका है ॥ ४३ ॥ श्रीरामजी ने पचपन ग्रामों को आपही बनाकर बसने के लिये उन ब्राह्मणों के लिये दे दिया ॥ ४४ ॥ और श्रीरामजी ने उनकी सेवा के लिये छत्तीस हज़ार वैश्यों को दिया व उनसे चौगुने शूद्रों को दिया ॥ ४५ ॥ व उनके लिये बड़े हर्ष से गऊ, घोड़े, वस्त्र, सुवर्ण, चांदी व ताँबा इन दानों को बड़ी भक्ति से

होरली गोविन्दणं थलत्यजम् ॥ चारणसिद्धं सोद्गीत्राभाज्यजं वटमालिका ॥ ४० ॥ गोधरं मारणजं चैव मात्रमध्यं च मातरम् ॥ बलवती गन्धवती ईआम्ली च राज्यजम् ॥ ४१ ॥ रूपावली बहुधनं छत्रीटं वंशजं तथा ॥ जायासंरणं गोतिकी च चित्रलेखं तथैव च ॥ ४२ ॥ दुग्धावली हंसावली च वैहोलं चैल्लजं तथा ॥ नालावली आसावली सुहालीकामतः परम् ॥ ४३ ॥ रामेण पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणि वसनाय च ॥ स्वयं निर्माय दत्तानि द्विजेभ्यस्तेभ्य एव च ॥ ४४ ॥ तेषां शुश्रूषणार्थाय वैश्यात्रामो न्यवेदयत् ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि शूद्रांस्तेभ्यश्चतुर्गुणान् ॥ ४५ ॥ तेभ्यो दत्तानि दानानि गवाश्ववसनानि च ॥ हिरण्यं रजतं ताम्रं श्रद्धया परया मुदा ॥ ४६ ॥ नारद उवाच ॥ अष्टादशसहस्रास्ते ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ कथं ते व्यभजन्ग्रामान् ग्रामोत्पन्नं तथा वसु ॥ वस्त्राद्यं भूषणाद्यं च तन्मे कथय सुव्रत ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यज्ञान्ते दक्षिणा यावत्सर्त्विग्भिः स्वीकृता सुत ॥ महादानादिकं सर्वं तेभ्य एव समर्पितम् ॥ ४८ ॥ ग्रामाः साधारणा दत्ता महास्थानानि वै तदा ॥ ये वसन्ति च यत्रैव तानि तेषां भवन्त्विति ॥ ४९ ॥

दिया ॥ ४६ ॥ नारदजी बोले कि हे सुव्रत ! उन अठारह हज़ार वेदोंके पारगामी ब्राह्मणों ने ग्रामों को व ग्रामों में उत्पन्न धन को कैसे बाँटा और वस्त्रादिक व भूषणादिक को कैसे बाँटा है उसको मुझ से कहिये ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! ऋत्विजों समेत जितने ब्राह्मणों ने यज्ञ के अन्त में जितनी दक्षिणा को पाया है उन्हीं के लिये सब महादानादिक दिया गया है ॥ ४८ ॥ और उस समय साधारण ग्राम व महास्थान दिये गये जो जिसमें बसैं उनके वे ग्राम होवैं ॥ ४९ ॥

इस वसिष्ठजी के वचन से वहां वे ग्राम ब्राह्मणों के अधीन किये गये और जिस प्रकार ब्राह्मण न उजड़ैं वैसेही बुद्धिमान् रघुनायकजी ने ॥ ५० ॥ उन ब्राह्मणों को बहुत साधन व धान्य दिया तदनन्तर हाथों को जोड़कर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों से यह कहा ॥ ५१ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! जैसे सतयुग व जैसे त्रेतायुग में तुम लोग वर्तमान थे वैसेही इससमय भी मेरे राज्यमें निस्सन्देह वर्तमान होना चाहिये ॥ ५२ ॥ और जो कुछ धन, धान्य, वाहन व वसन, मणि, सुवर्णादिक और धन ॥ ५३ ॥ और ताँबा आदिक व चांदी आदिक मुझ से इससमय मांगिये और इस समय व भविष्य समय में यथायोग्य प्रार्थना करनेयोग्य ॥ ५४ ॥ वाचिक हे द्विजोत्तमो ! मैं सदैव पठाऊंगा

वसिष्ठवचनात्तत्र ग्रामास्ते विप्रसात्कृताः ॥ रघूद्वहेन धीरेण नोद्वसन्ति यथा द्विजाः ॥ ५० ॥ धान्यं तेषां प्रदत्तं हि विप्राणां चामितं वसु ॥ कृताञ्जलिस्ततो रामो ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥ ५१ ॥ यथा कृतयुगे विप्रास्त्रेतायां च यथा पुरा ॥ तथा चाद्यैव वर्त्तव्यं मम राज्ये न संशयः ॥ ५२ ॥ यत्किञ्चिद्धनधान्यं वा यानं वा वसनानि वा ॥ मणयः काञ्चनादींश्च हेमादींश्च तथा वसु ॥ ५३ ॥ ताम्राद्यं रजतादींश्च प्रार्थयध्वं ममाधुना ॥ अधुना वा भविष्ये वाभ्यर्थनीयं यथोचितम् ॥ ५४ ॥ प्रेषणीयं वाचिकं मे सर्वदा द्विजसत्तमाः ॥ यं यं कामं प्रार्थयध्वं तं तं दास्याम्यहं सदा ॥ ५५ ॥ ततो रामः सेवकादीनादरात्प्रत्यभाषत ॥ विप्राज्ञा नोल्लङ्घनीया सेवनीया प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥ यं यं कामं प्रार्थयन्ते कारयध्वं ततस्ततः ॥ एवं नत्वा च विप्राणां सेवनं कुरुते तु यः ॥ ५७ ॥ स शूद्रः स्वर्गमाप्नोति धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥ अन्यथा निर्धनत्वं हि लभते नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ यवनोम्लेच्छजातीयो दैत्यो वा राक्षसोपि वा ॥ योत्र विघ्नं करो

व जिस जिस कामनाकी प्रार्थना करियेगा उस उसको मैं सदैव दूंगा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर श्रीरामजी ने आदर से सेवकादिकों से कहा कि ब्राह्मणों की आज्ञा उल्लंघन करने योग्य नहीं है बरन बड़े यत्न से सेवने योग्य है ॥ ५६ ॥ और जिस जिस काम की वे प्रार्थना करैं उस उसको तुम लोग करो इस प्रकार प्रणाम कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है ॥ ५७ ॥ वह शूद्र सुख को पाता है और धनवान् व पुत्रवान् होताहै नहीं तो दरिद्रता को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ और यवन व म्लेच्छ

जातिवाला मनुष्य तथा दैत्य व राक्षस जो यहां विघ्न करताहै वह उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि तदनन्तर बड़े प्रसन्न श्रीरामजी ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों से आशीर्वादों को पाकर यात्राके सामने हुए ॥ ६० ॥ और हद्दतक पीछे जाकर स्नेहसे विकल लोचनोंवाले सब मोहित ब्राह्मण धर्मारण्य में लौट आये ॥ ६१ ॥ ऐसा करके तदनन्तर श्रीरामजी अपनी पुरी को चले और दृढ़ व्रतवाले काश्यप व गर्ग गोत्रवाले ब्राह्मण कृतार्थ हुए ॥ ६२ ॥ और उस समय बड़ी सेना से संयुत स्त्री सभेत व मित्र पुत्रों समेत श्रीरामजी गुणों से संयुत अयोध्यापुरी को प्राप्त हुए ॥ ६३ ॥ और श्रीरघुनाथजी को देखकर सब मनुष्य प्रसन्न हुए

त्येव भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य द्विजान्रामोऽतिहर्षितः ॥ प्रस्थानाभिमुखो विप्रैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ ६० ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य स्नेहव्याकुललोचनाः ॥ द्विजाः सर्वे विनिर्वृत्ता धर्मारण्ये विमोहिताः ॥ ६१ ॥ एवं कृत्वा ततो रामः प्रतस्थे स्वां पुरीं प्रति ॥ काश्यपाश्चैव गर्गाश्च कृतकृत्या दृढव्रताः ॥ ६२ ॥ गुरुसेनासमाविष्टः सभार्यः ससुहृत्सुतः ॥ राजधानीं तदा प्राप रामोऽयोध्यां गुणान्विताम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे लोकाः श्रीरघुनन्दनम् ॥ ततो रामः स धर्मात्मा प्रजापालनतत्परः ॥ ६४ ॥ सीतया सह धर्मात्मा राज्यं कुर्वंस्तदा सुधीः ॥ जानक्यां गर्भमाधत्त रविवंशोद्भवाय च ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर वे धर्मात्मा श्रीरामजी प्रजाओं के पालन में तत्पर हुए ॥ ६४ ॥ तब बुद्धिमान् श्रीरामजी ने सीता समेत राज्य करते हुए सूर्यवंश की उत्पत्ति के लिये जानकी जी में गर्भ को धारण किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन जिमि सेतुबंध गम कीन । छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ नारदजी बोले कि हे सुव्रत ! इसके उपरान्त क्या हुआ है उसको मुझ से कहिये हे कहनेवालों में श्रेष्ठ ! पहले उसको मुझ से संपूर्णता से कहिये ॥ १ ॥ और कितने समयतक वह स्थान स्थिर हुआ व हे प्रभो ! किससे वह रक्षित हुआ व किसकी आज्ञा वर्तमान हुई इसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि त्रेता से द्वापर के अन्त तक जबतक कलियुग का आगम हुआ तबतक एक पवनपुत्र हनुमान् जी भलीभांति रक्षा करने में ॥ ३ ॥ समर्थ हैं व हे पुत्र ! विना हनुमान्जी के अन्यथा कोई भी समर्थ नहीं है जिन्होंने लंका को विध्वंस किया व प्रबल राक्षसों को मार

नारद उवाच ॥ अतः परं किमभवत्तन्मे कथय सुव्रत ॥ पूर्वं च तदशेषेण शंस मे वदतां वर ॥ १ ॥ स्थिरीभूतं च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे ॥ केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याज्ञा वर्तते प्रभो ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्रेतातो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागमः ॥ तावत्संरक्षणे चैको हनूमान्पवनात्मजः ॥ ३ ॥ समर्थो नान्यथा कोपि विना हनुमता सुत ॥ लङ्का विध्वंसिता येन राक्षसाः प्रबला हताः ॥ ४ ॥ स एव रक्षते तत्र रामादेशेन पुत्रक ॥ द्विजस्याज्ञा प्रवर्तेत श्रीमातायास्तथैव च ॥ ५ ॥ दिनेदिने प्रहर्षोभूज्जनानां तत्र वासिनः ॥ पठन्ति स्म द्विजास्तत्र ऋग्यजुःसामलक्षणान् ॥ ६ ॥ अथर्वणं चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् ॥ वेदनिर्घोषजः शब्दस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७ ॥ उत्सवास्तत्र जायन्ते ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ नाना यज्ञाः प्रवर्तन्ते नानाधर्मसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कदापि तस्य स्थानस्य भङ्गो जातोथ वा नवा ॥ दैत्यैर्जितं कदा स्थानमथवा दुष्टराक्षसैः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन्ध

डाला ॥ ४ ॥ हे पुत्र ! वही हनुमान्जी श्रीरामजी की आज्ञा से रक्षा करते हैं और ब्राह्मण वसिष्ठजी की व श्रीमाताजी की आज्ञा वर्तमान है ॥ ५ ॥ और प्रतिदिन वहां के लोगों को बड़ा हर्ष हुआ व वहां के बसनेवाले ब्राह्मण ऋक्, यजुः व साम लक्षणोंवाले वेदों को पढ़ते थे ॥ ६ ॥ और दिन रात अथर्वण वेद को भी पढ़ते थे व चराचर समेत त्रिलोक में वेदों से उपजा हुआ शब्द होता था ॥ ७ ॥ और वहां गांव गांव व नगर नगर में उत्साह होते थे और अनेक प्रकार के धर्मों में आश्रित अनेक भांति के यज्ञ होते थे ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि कभी उस स्थान का भंग हुआ या नहीं हुआ है व कभी दैत्यों ने व दुष्ट राक्षसों ने उस स्थान को जीत लिया है ॥ ९ ॥ व्यासजी

बोले कि हे राजन्! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा व तुम सदैव पवित्र व धर्मज्ञ हो पहले कलियुग प्राप्त होने पर जो वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये ॥ १० ॥ हे राजन्! लोकों के हित के लिये व मनोरथ और सुख के लिये मैं जो कहूंगा उस सब को सुनिये ॥ ११ ॥ कि इससमय कलियुग प्राप्त होने पर नाम से आम नामक कान्यकुब्ज देश का स्वामी श्रीमान्, धर्मज्ञ व नीति में परायण हुआ है ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! जोकि शांत, दांत, सुशील व सत्यधर्म में तत्पर था द्वापर के अन्त में कलियुग न आने पर ॥ १३ ॥ कलियुग के विशेष भय से व अधर्म के भयादिकों से सब देवता पृथ्वी को छोड़कर नैमिषारण्यमें टिके ॥ १४ ॥

र्मज्ञस्त्वं सदा शुचिः ॥ आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः ॥ १० ॥ लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च ॥ यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणु भूपते ॥ ११ ॥ इदानीं च कलौ प्राप्त आमो नाम्ना बभूव ह ॥ कान्यकुब्जाधिपः श्रीमान्धर्मज्ञो नीतितत्परः ॥ १२ ॥ शान्तो दान्तः सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः ॥ द्वापरान्ते नृपश्रेष्ठ अनागते कलौयुगे ॥ १३ ॥ भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः ॥ सर्वे देवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः ॥ १४ ॥ रामोऽपि सेतुबन्धं हि ससहायो गतो नृप ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं हि कलौ प्राप्ते भयं लोके सुदुस्तरम् ॥ यस्मिन्सुरैः परित्यक्ता रत्नगर्भा वसुन्धरा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणुष्व कलिधर्मांस्त्वं भविष्यन्ति यथा नृप ॥ असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ॥ १७ ॥ दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ॥ स्वगोत्रदाराभिरता लौल्यध्यानपरायणाः ॥ १८ ॥ ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे ॥ १९ ॥

व हे राजन्! सहायकों समेत श्रीरामजी सेतुबंध तीर्थ को गये ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि कलियुग प्राप्त होने पर संसार में कैसा बहुत कठिन डर है कि जिसमें देवताओं ने रत्नगर्भवाली पृथ्वी को छोड़ दिया ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृप! तुम कलियुग के धर्मों को सुनो कि जिस प्रकार झूंठ कहनेवाले लोग सज्जनों की निन्दा में परायण होंगे ॥ १७ ॥ और सब चोर के कर्म में परायण होते हैं व पितरों की भक्ति से रहित तथा अपने वंश की स्त्रियों में अनुरागी और चंचलता के ध्यान में परायण होते हैं ॥ १८ ॥ और ब्राह्मणों से वैर करनेवाले सब आपस में विरोधी व शरणमें आये हुए लोगोंको मारनेवाले मनुष्य कलियुगमें होवेंगे ॥ १९ ॥

और कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वैश्यों के आचार में तत्पर तथा वेदों से भ्रष्ट व अहंकारी होवैंगे और ब्राह्मण संध्या को लोप करनेवाले होवैंगे ॥ २० ॥ व शांति में शूर तथा भय में दीन व श्राद्ध और तर्पण से रहित होवैंगे व दैत्यों के आचार में परायण और विष्णुजी की भक्ति से रहित होवैंगे ॥ २१ ॥ और पराये धन की इच्छा करनेवाले व घूस लेने में परायण होवैंगे और ब्राह्मण बिन नहाये भोजन करैंगे व क्षत्रिय युद्ध से रहित होवैंगे ॥ २२ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर सब ब्राह्मण दुष्ट जीविका करनेवाले तथा मलिन व मदिरा पीने में परायण व यज्ञ न कराने योग्य पुरुषों को यज्ञ करानेवाले होवैंगे ॥ २३ ॥ और स्त्रियां पतियों से वैर करनेवाली व

वैश्याचाररता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ॥ भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ॥ २० ॥ शान्तौ शूरा भये दीनाः श्राद्धतर्पणवर्जिताः ॥ असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ २१ ॥ परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचग्रहणे रताः ॥ अस्नातभोजिनो विप्राः क्षत्रिया रणवर्जिताः ॥ २२ ॥ भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते मलिना दुष्टवृत्तयः ॥ मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्यानां हि याजकाः ॥ २३ ॥ भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः सुताः ॥ भ्रातृद्वेषकराः क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २४ ॥ गव्यविक्रयिणस्ते वै ब्राह्मणा वित्ततत्पराः ॥ गावो दुग्धं न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ॥ २५ ॥ फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत ॥ कन्याविक्रयकर्त्तारो गोजाविक्रयकारकाः ॥ २६ ॥ विषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारकाः ॥ वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २७ ॥ नारी गर्भं समाधत्ते हायनैकादशेन हि ॥ एकादश्युपवासस्य विरताः सर्वतो जनाः ॥ २८ ॥ न तीर्थसेवनरता भविष्यन्ति च

पुत्र पिता से वैर करनेवाले होवैंगे व कलियुग प्राप्त होनेपर नीच पुरुष भाइयों से वैर करनेवाले होवैंगे ॥ २४ ॥ और धन में तत्पर वे ब्राह्मण कलियुग प्राप्त होनेपर गऊ का दूध, दही व घी आदिकके बेंचनेवाले होवैंगे व गाइयां दूध न देवैंगी ॥ २५ ॥ व हे भारत ! कभी वृक्ष नहीं फलतेहैं और कन्याको बेंचनेवाले तथा गऊ व छगड़ी को बेंचनेवाले होवैंगे ॥ २६ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण विष को बेंचनेवाले तथा रस को बेंचनेवाले और वेदों को बेंचनेवाले होवैंगे ॥ २७ ॥ और स्त्री गेरहवर्षसे गर्भको धारण करैगी और सबलोग एकादशी व्रत से रहित होवैंगे ॥ २८ ॥ और ब्राह्मणलोग तीर्थसेवा में परायण न होवैंगे और बहुत भोजन करनेवाले तथा

बहुत निद्रा से व्याकुल होवैंगे ॥ २९ ॥ और सब कुटिल जीविका करनेवाले तथा वेदों की निन्दामें परायण व संन्यासियों की निन्दा करनेवाले व आपसमें छल करने वाले होंगे ॥ ३० ॥ और कलियुग में स्पर्श के दोष का भय न होगा व क्षत्रिय राज्य से हीन होवैंगे और म्लेच्छ राजा होगा ॥ ३१ ॥ व सब विश्वासघाती तथा गुरुवों के द्रोह में परायण होंगे व हे राजन् ! मित्रों के द्रोह में तत्पर तथा लिंग व उदर में परायण होवैंगे ॥ ३२ ॥ व हे महाराज ! कलियुग प्राप्त होनेपर चारों वर्ण एकही वर्ण होजावेंगे मेरा वचन अन्यथा नहीं है ॥ ३३ ॥ गुरु से यह सुनकर कान्यकुब्ज देश का स्वामी आम नामक उस पृथ्वी में राज्य करने लगा ॥ ३४ ॥ और

वाडवाः॥ बह्वाहारा भविष्यन्ति बहुनिद्रासमाकुलाः ॥ २९॥ जिह्मवृत्तिपराः सर्वे वेदनिन्दापरायणाः ॥ यतिनिन्दापरा श्चैवच्छद्मकाराः परस्परम् ॥ ३० ॥ स्पर्शदोषभयं नैव भविष्यति कलौ युगे ॥ क्षत्रिया राज्यहीनाश्च म्लेच्छो राजा भविष्यति ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा ॥ मित्रद्रोहरता राजञ्छिश्नोदरपरायणाः ॥ ३२ ॥ एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ॥ कलौ प्राप्ते महाराज नान्यथा वचनं मम ॥ ३३ ॥ एतच्छ्रुत्वा गुरोरेव कान्यकुब्जा धिपो बली ॥ राज्यं प्रकुरुते तत्र आमो नाम्ना हि भूतले ॥ ३४ ॥ सार्वभौमत्वमापन्नः प्रजापालनतत्परः ॥ प्रजा नां कलिना तत्र पापे बुद्धिरजायत ॥ ३५ ॥ वैष्णवं धर्ममुत्सृज्य बौद्धधर्ममुपागताः ॥ प्रजास्तमनुवर्तिन्यः क्षपणैः प्रतिबोधिताः ॥ ३६ ॥ तस्य राज्ञो महादेवी मामानाम्न्यतिविश्रुता ॥ गर्भं दधार सा राज्ञो सर्वलक्षणसंयुता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्णे दशमे मासि जाता तस्याः सुरूपिणी ॥ दुहिता समये राज्ञ्याः पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ ३८ ॥ रत्नगङ्गे

प्रजाओं के पालन में तत्पर वह चक्रवर्तित्व को प्राप्तहुआ और कलियुगसे उस समय प्रजाओं की बुद्धि पाप में होगई ॥ ३५ ॥ व वैष्णवधर्म को छोड़कर प्रजा बौद्धधर्म को प्राप्त हुए और उनके अनुगामी प्रजालोग बौद्धधर्मानुगामी लोगों से प्रबोधित होगये ॥ ३६ ॥ और बहुतही प्रसिद्ध जो मामा नामक उस राजा की महादेवी थी सब लक्षणों से संयुत उसने राजा से गर्भ को धारण किया ॥ ३७ ॥ और दशम महीना पूर्ण होनेपर समय में उस रानी के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली स्वरूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३८ ॥ मणि व माणिक्य से भूषित वह नाम से रत्नगंगा ऐसी प्रसिद्ध हुई एक समय इन्द्रसूरि नामक राजा दैवयोगसे इस कान्यकुब्ज देश

में अन्य देश से आया और सोलह वर्ष की वह राजकुमारी कन्या नहीं ब्याही गई थी ॥ ३९ । ४० ॥ और दासी के विना वह मिली व हे भारत ! जीविक इन्द्रसूरिजी शाबरी मंत्रविद्या को कहा ॥ ४१ ॥ और शूली के कर्म से मोहित वह एकचित्त हुई तदनन्तर उस उस वाक्य में परायण वह मोह को प्राप्तहुई ॥ ४२ ॥ व हे वत्स ! जैनधर्म में परायण वह बौद्धमतानुगामी लोगों से समझाई गई और उस बड़े बलवान् राजा ने रत्नगंगा महादेवी को ब्रह्मावर्त के स्वामी बुद्धिमान् कुंभीपाल राजा के लिये दिया व दैव से मोहित उसने विवाह में उसके लिये मोहेरक को दिया ॥ ४३ । ४४ ॥ तब धर्मारण्य को आकर राजधानी की गई और उसने जैन-

ति नाम्ना सा मणिमाणिक्यभूषिता ॥ एकदा दैवयोगेन देशान्तरादुपागतः ॥ ३९ ॥ नाम्ना चैवेन्द्रसूरिर्वै देशेस्मिन्कान्यकुब्जके ॥ षोडशाब्दा च सा कन्या नोपनीता नृपात्मजा ॥ ४० ॥ दास्यान्तरेण मिलिता इन्द्रसूरिश्च जीविकः ॥ शाबरीं मन्त्रविद्यां च कथयामास भारत ॥ ४१ ॥ एकचित्ताभवत्सा तु शूलिकर्मविमोहिता ॥ ततः सा मोहमापन्ना तत्तद्वाक्यपरायणा ॥ ४२ ॥ क्षपणैर्बोधिता वत्स जैनधर्मपरायणा ॥ ब्रह्मावर्ताधिपतये कुम्भीपालाय धीमते ॥ ४३ ॥ रत्नगङ्गां महादेवीं ददौ तामतिविक्रमी ॥ मोहेरकं ददौ तस्मै विवाहे दैवमोहितः ॥ ४४ ॥ धर्मारण्यं समागत्य राजधानी कृता तदा ॥ देवांश्च स्थापयामास जैनधर्मप्रणीतकान् ॥ ४५ ॥ सर्वे वर्णास्तथाभूता जैनधर्मसमाश्रिताः ॥ ब्राह्मणा नैव पूज्यन्ते न च शान्तिकपौष्टिकम् ॥ ४६ ॥ न ददाति कदा दानमेवं कालः प्रवर्तते ॥ लब्धशासनका विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम् ॥ ४७ ॥ समाकुलितचित्तास्ते नृपमामं समाययुः ॥ कान्यकुब्जस्थितं शूरं पाखण्डैः परिवेष्टितम् ॥ ४८ ॥ कान्यकुब्जपुरं प्राप्य कतिभिर्वासरैर्नृप ॥ गङ्गोपकण्ठे न्यवसञ्छ्रांतास्ते मोढ

धर्म प्रतिपादन करनेवाले देवताओं को स्थापित किया ॥ ४५ ॥ और जैनधर्म में आश्रित सब वर्ण वैसेही होगये और ब्राह्मण नहीं पूजे जाते हैं व शांतिक, पौष्टिक कर्म नहीं होता है ॥ ४६ ॥ व कभी कोई दान नहीं देताहै ऐसा समय वर्तमान है और शासन को पाये हुए लुप्त स्वामितावाले ब्राह्मण दिनरात ॥ ४७ ॥ विकल चित्त वाले वे पाखण्डों से घिरें हुए व कान्यकुब्ज देश में स्थित शूर आम राजा के समीप आये ॥ ४८ ॥ व हे राजन् ! कुछ दिनों से कान्यकुब्ज नगर को प्राप्त होकर थके

हुए वे मूढ़ ब्राह्मण गंगाजी के समीप बसे ॥ ४९ ॥ और गुप्त दूतोंने राजा के आगे उन आये हुए ब्राह्मणों को कहा व प्रातःकाल बुलाये हुए वे ब्राह्मण राजा की सभा में आये ॥ ५० ॥ तदनन्तर राजा ने आदर समेत प्रत्युत्थान व प्रणामादिक नहीं किया और यह राजा खड़ेहुए सब ब्राह्मणों से पूंछने लगा ॥ ५१ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! तुम लोग किस लिये आये हो और क्या कार्य है उसको कहिये ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे नराधिप ! हम लोग धर्मारण्य से यहां तुम्हारे समीप आये हैं क्योंकि हे राजन् ! तुम्हारी कन्या का पति जो कुमारपालक है ॥ ५३ ॥ इन्द्रसूरि से प्रेरित व जैनधर्म से वर्तमान उसने बड़े अद्भुत ब्राह्मणों के शासन (आज्ञा) को लुप्तकर

वाडवाः ॥ ४९ ॥ चारैश्च कथितास्ते च नृपस्याग्रे समागताः ॥ प्रातराकारिता विप्रा आगता नृपसंसदि ॥ ५० ॥ प्रत्युत्थानाभिवादादीन्न चक्रे सादरं नृपः ॥ तिष्ठतो ब्राह्मणान्सर्वान्पर्यपृच्छदसौ ततः ॥ ५१ ॥ किमर्थमागता विप्राः किंस्वित्कार्यं ब्रुवन्तु तत् ॥ ५२ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ धर्मारण्यादिहायातास्त्वत्समीपं नराधिप ॥ राजंस्तव सुतायास्तु भर्ता कुमारपालकः ॥ ५३ ॥ तेन प्रलुप्तं विप्राणां शासनं महदद्भुतम् ॥ वर्तता जैनधर्मेण प्रेरितेनेन्द्रसूरिणा ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ केन वै स्थापिता यूयमस्मिन्मोहेरकेपुरे ॥ एतद्धि वाडवाः सर्वं ब्रूत वृत्तं यथातथम् ॥ ५५ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ काजेशैः स्थापिताः पूर्वं धर्मराजेन धीमता ॥ कृता चात्र शुभे स्थाने रामेण च ततः पुरी ॥ ५६ ॥ शासनं रामचन्द्रस्य दृष्ट्वाऽन्यैश्चैव राजभिः ॥ पालितं धर्मतो ह्यत्र शासनं नृपसत्तम ॥ ५७ ॥ इदानीं तव जामाता विप्रान्पालयते न हि ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवाक्यं तु राजा विप्रानथाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ यान्तु शीघ्रं हि भो विप्राः कथयन्तु मम

दिया है ॥ ५४ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस मोहेरक पुरमें तुम लोगों को किसने स्थापित किया है इस सब वृत्तान्तको तुमलोग यथार्थ कहो ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण बोले कि पुरातन समय में ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने स्थापित किया तदनन्तर बुद्धिमान् धर्मराज ने व श्रीरामजी ने इस उत्तम स्थान में पुरी को बनाया है ॥ ५६ ॥ व हे नृपोत्तम ! रामचन्द्र के शासन को देखकर अन्य राजाओं ने यहां धर्म से उस शासन को पालन किया ॥ ५७ ॥ इससमय तुम्हारा दामाद ब्राह्मणों को पालन नहीं करता है उस ब्राह्मणों के वचन को सुनकर राजा ने ब्राह्मणों से कहा ॥ ५८ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! शीघ्रही जावो व मेरी आज्ञा से कुमारपाल राजा से कहो कि तुम ब्राह्मणों

के स्थान को दे दीजिये ॥ ५६ ॥ इस वचन को सुनकर तदनन्तर ब्राह्मण बड़े हर्षको प्राप्त हुए उसके बाद बड़े प्रसन्न होकर चले गये और वहां वचन को कहा ॥ ६० ॥ श्वसुर का वचन सुनकर राजा ने वचन कहा कुमारपाल बोले कि हे ब्राह्मणो ! श्रीरामजी के शासन को मैं पालन न करूंगा ॥ ६१ ॥ व हे ब्राह्मणो ! यज्ञ में पशु की हिंसा में लगे हुए ब्राह्मणों को मैं छोड़ता हूं उस कारण हिंसा करनेवालों की मेरे भक्ति न होगी ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण बोले कि पाखंड के धर्म से कैसे आप शासन के लोपकर्त्ता होगे हे नृपश्रेष्ठ ! उसको पालन कीजिये पापमें मन न कीजिये ॥ ६३ ॥ राजा बोले कि अहिंसा बड़ा भारी धर्म है व हिंसा न करना उत्तम तप है और अ-

ज्ञया ॥ राज्ञे कुमारपालाय देहि त्वं ब्राह्मणालयम् ॥ ५६ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ जग्मुस्ततोऽतिमुदिता वाक्यं तत्र निवेदितम् ॥ ६० ॥ श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ॥ कुमारपाल उवाच ॥ रामस्य शासनं विप्राः पालयिष्याम्यहं नहि ॥ ६१ ॥ त्यजामि ब्राह्मणान्यज्ञे पशुहिंसापरायणान् ॥ तस्माद्धि हिंसकानां तु न मे भक्तिर्भवेद्विजाः ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ कथं पाखण्डधर्मेण लुप्तशासनको भवान् ॥ पालयस्व नृपश्रेष्ठ मा स्म पापे मनः कृथाः ॥ ६३ ॥ राजोवाच ॥ अहिंसा परमो धर्मो अहिंसा च परन्तपः ॥ अहिंसा परमं ज्ञानम हिंसा परमं फलम् ॥ ६४ ॥ तृणेषु चैव वृक्षेषु पतङ्गेषु नरेषु च ॥ कीटेषु मत्कुणाद्येषु अजाश्वेषु गजेषु च ॥ ६५ ॥ लूतासु चैव सर्पेषु महिष्यादिषु वै तथा ॥ जन्तवः सदृशा विप्राः सूक्ष्मेषु च महत्सु च ॥ ६६ ॥ कथं यूयं प्रवर्तध्वे विप्रा हिंसापरायणाः ॥ तच्छ्रुत्वा वज्रतुल्यं हि वचनं च द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥ प्रत्यूचुर्वाडवाः सर्वे क्रोधरक्तेक्षणास्तदा ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ अहिंसा परमो धर्मः सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ परं तथापि धर्मोऽस्ति शृणुष्वैकाग्रमा

हिंसा परम ज्ञान है व अहिंसा बड़ाभारी फल है ॥ ६४ ॥ तृणों में और वृक्ष, पतंग, मनुष्य, कीट, खटमलादिक और छाग, घोड़ा व हाथियों में ॥ ६५ ॥ और मकड़ी व सर्प तथा भैंसी आदिकों में हे ब्राह्मणो ! छोटे व बड़े प्राणियों में सब जंतु बराबर हैं ॥ ६६ ॥ और हिंसा में परायण तुम लोग ब्राह्मण कैसे वर्तमान हो वज्र के समान उस वचनको सुनकर उस समय क्रोधसे लाल लोचनोंवाले सब द्विजोत्तम ब्राह्मणों ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ६७ । ६८ ॥ ब्राह्मण बोले कि तुमने यह सत्य कहा कि अहिंसा

बड़ा उत्तम धर्म है परन्तु तौ भी धर्म है उसको एकाग्र मन होकर सुनिये ॥ ६९ ॥ कि जो हिंसा वेद में कही गई है वह हिंसा नहीं है ऐसा निर्णय है क्योंकि जो शस्त्र से मारा जाता है और प्राणियों में जो पीड़ा होती है ॥ ७० ॥ हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! संसार में वही अधर्म है और विना शस्त्रके जो प्राणी वेदमंत्रों से मारेजाते हैं ॥ ७१ ॥ वह हिंसा प्राणियों को पीड़ा करनेवाली नहीं होती है बरन सुखदायिनी होती है और पराया उपकार पुण्य के लिये है व पराई पीड़ा पाप के लिये है ॥ ७२ ॥ और वेदों में कही हुई हिंसा को करके भी मनुष्य पाप से युक्त नहीं होता है ब्राह्मणों का वचन सुनकर राजाने फिर वचन कहा ॥ ७३ ॥ राजा बोले कि अति उत्तम धर्मारण्य

नसः ॥ ६९ ॥ या वेदविहिता हिंसा सा न हिंसेति निर्णयः ॥ शस्त्रेणाहन्यते यच्च पीडा जन्तुषु जायते ॥ ७० ॥ स एवा धर्म एवास्ति लोके धर्मविदां वर ॥ वेदमन्त्रैर्विहन्यन्ते विना शस्त्रेण जन्तवः ॥ ७१ ॥ जन्तुपीडाकरा नैव सा हिंसा सुखदायिनी ॥ परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ ७२ ॥ वेदोदितां विधायापि हिंसां पापैर्न लिप्यते ॥ विप्राणां वचनं श्रुत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ७३ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मादीनां परं क्षेत्रं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नेदानीमत्र सन्ति ते ॥ ७४ ॥ न धर्मो विद्यते वात्र उक्तो रामः स मानुषः ॥ क्व वापि लम्बपुच्छोऽसौ यो मुक्तो रक्षणाय वः ॥ ७५ ॥ शासनं चेन्न दृष्टं वो नैव तत्पालयाम्यहम् ॥ द्विजाः कोपसमाविष्टा दद्दुः प्रत्युत्तरं तदा ॥ ७६ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ रे मूढ त्वं कथं वेत्थं भाषसे मदलोलुपः ॥ स दैत्यानां विनाशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ ७७ ॥ रामश्चतुर्भुजः साक्षान्मानुषत्वं गतो भुवि ॥ अगतीनां च गतिदः स वै धर्मपरायणः ॥ दयालुश्च कृपालुश्च जन्तूनां

ब्रह्मादिक देवताओं का उत्तम क्षेत्र है और इससमय ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक वे देवता नहीं हैं ॥ ७४ ॥ और यहां धर्म नहीं है तथा वे श्रीरामजी मनुष्य कहे गयेहैं और जो तुमलोगों की रक्षा के लिये छोड़े गये थे वे लम्बी पूंछवाले हनुमान्जी कहां हैं ॥ ७५ ॥ यदि शासन न देखा जायगा तो मैं तुमलोगों को पालन न करूंगा तब क्रोध से संयुत ब्राह्मणों ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण बोले कि रेमूढ़ ! मद से लोभी तुम कैसे ऐसा कहते हो क्योंकि दैत्यों के नाश के लिये व धर्म की रक्षा के लिये वे ॥ ७७ ॥ चतुर्भुज साक्षात् रामजी पृथ्वी में मनुजता को प्राप्तहुए हैं और अगतिवालों को गति देनेवाले श्रीरामजी धर्म में परायण हैं और दयालु, कृपालु

व जंतुवों के पालक हैं ॥ ७८ ॥ राजा बोले कि आज श्रीरामजी कहां वर्तमान हैं व पवनपुत्र कहां हैं वे सब फूटेहुए बादल की नाईं होगये क्योंकि श्रीराम व हनुमान् जी कहां हैं ॥ ७९ ॥ परन्तु यदि श्रीराम व हनुमान्जी सर्वत्र वर्तमान हैं तो इस समय ब्राह्मणों की सहायता में आवैंगे ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मणो ! हनुमान् व श्रीराम और लक्ष्मणजी को दिखलाइये यदि कोई विश्वास है तो वह हमलोगों को दिखलाइये ॥ ८१ ॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! हनुमान्जी को दूत करके श्रीरामजी ने एक सौ चवालीस ग्रामों को दिया है ॥ ८२ ॥ फिर इस स्थान में आकर तेरह ग्रामों को दिया और काश्यपी व श्रीगंगाजी के समीप सोलह महादानों

परिपालकः ॥ ७८ ॥ राजोवाच ॥ कुतोऽद्य वर्त्तते रामः कुतो वै वायुनन्दनः ॥ अष्टाभ्रमिव ते सर्वे क्व रामो हनुमानिति ॥ ७९ ॥ परन्तु रामो हनुमान्यदि वर्त्तेत सर्वतः ॥ इदानीं विप्रसाहाय्य आगमिष्यति मे मतिः ॥ ८० ॥ दर्शयध्वं हनूमन्तं रामं वा लक्ष्मणं तथा ॥ यद्यस्ति प्रत्ययः कश्चित्स नो विप्राः प्रदर्श्यताम् ॥ ८१ ॥ उक्तं तै रामदेवेन दूतं कृत्वाञ्जनीसुतम् ॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकं दत्तं ग्रामशतंनृप ॥८२॥ पुनरागत्य स्थानेऽस्मिन्दत्ता ग्रामास्त्रयोदश ॥ काश्यप्यां चैव गङ्गायां महादानानि षोडश ॥ ८३ ॥ दत्तानि विप्रमुख्येभ्यो दत्ता ग्रामाः सुशोभनाः ॥ पुनः सङ्कल्पिता वीर षट्पञ्चाशकसंख्यया ॥ ८४ ॥ षट्त्रिंशच्चसहस्राणि गोभुजा जज्ञिरे वराः ॥ सपादलक्षा वणिजो दत्ता माण्डलिकाभिधाः ॥ ८५ ॥ तेनोक्तं वाडवाः सर्वे दर्शयध्वं हि मारुतिम् ॥ यस्याभिज्ञानमात्रेण स्थितिं पूर्वां ददाम्यहम् ॥ ८६ ॥ विप्रवाक्यं करिष्यामि प्रत्ययो दर्श्यते यदि ॥ ततः सर्वे भविष्यन्ति वेदधर्मपरायणाः ॥ ८७ ॥ अन्यथा

को ॥ ८३ ॥ मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया और बहुतही उत्तम ग्रामों को दिया और फिर छप्पन संख्यक ग्रामों को संकल्प किया ॥ ८४ ॥ और छत्तिस हज़ार श्रेष्ठ गोभुज वैश्य उत्पन्न हुए व मांडलिक नामक सवालाख वैश्य दिये गये ॥ ८५ ॥ उस राजा ने सब ब्राह्मणों से कहा कि हनुमान्जी को दिखलाइये कि जिनके जाननेही से मैं पहली मर्यादा को दूंगा ॥ ८६ ॥ और यदि विश्वास देख पड़ैगा तो मैं ब्राह्मणों का वचन करूंगा और तदनन्तर सब वेदधर्म में तत्पर होवैंगे ॥ ८७ ॥ नहीं तो तुम

सब जैनधर्म से वर्तमान होवो राजा का वचन सुनकर वे ब्राह्मण अपने २ स्थान को आये ॥ ८८ ॥ और क्रोध से अन्ध किये व दुःखित मनवाले वे ब्राह्मण पृथ्वी में श्वासों को छोड़ते हुए हाहा ऐसा कहने लगे ॥ ८९ ॥ और दांतोंको घिसते व हाथों से हाथों को पीसते हुए वे परस्पर कहनेलगे कि हम लोग इससे क्या करैं ॥ ९० ॥ और उन सब ब्राह्मणों ने मिलकर उत्तम सम्मति किया व हृदय में श्रीराम व हनुमान्जी को ध्यान कर ॥ ९१ ॥ बालक व वृद्ध भी ब्राह्मणों ने मेल किया तब उनके मध्य में बहुतही वृद्ध ब्राह्मण ने उत्तम वचन कहा ॥ ९२ ॥ कि चौंसठि गोत्रोंवाले हम लोगों के मध्य में जो बहत्तरि अपने अपने गोत्र के अवटंकवाले तथा एक ग्राम

जिनधर्मेण वर्त्तयध्वं हि सर्वशः ॥ नृपवाक्यं तु ते श्रुत्वा स्वेस्वे स्थाने समागताः ॥ ८८ ॥ बाडवाः खिन्नमनसः क्रोधेनान्धीकृता भुवि ॥ निश्वासान्मुञ्चमानास्ते हाहेति प्रवदन्ति च ॥ ८९ ॥ दन्तान्प्राघर्षयन्सर्वान्न्यपीडंश्च करैः करान् ॥ परस्परं भाषमाणाः कथं कुर्मो वयं त्वितः ॥ ९० ॥ मिलित्वा बाडवाः सर्वे चक्रुस्ते मन्त्रमुत्तमम् ॥ रामवाक्यं हृदि ध्यात्वा ध्यात्वा चैवाञ्जनीसुतम् ॥ ९१ ॥ द्विजा मेलापकं चक्रुर्बाला वृद्धतमा अपि ॥ तेषां वृद्धतमो विप्रो वाक्यमूचे शुभं तदा ॥ ९२ ॥ चतुःषष्टिश्च गोत्राणामस्माकं ये द्विसप्ततिः ॥ स्वस्वगोत्रस्यावटङ्का एकग्रामा भिलाषिणः ॥ ९३ ॥ प्रयातु स्वस्ववर्गस्य एको ह्येको द्विजः सुधीः ॥ रामेश्वरं सेतुबन्धं हनूमांस्तत्र विद्यते ॥ ९४ ॥ सर्वे प्रयान्तु तत्रैव रामपार्श्वे निरामयाः ॥ निराहारा जितक्रोधा मायया वर्जिताः पुनः ॥ ९५ ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे स्तुत्वा ध्यात्वा जपन्तु तम् ॥ ततो दाशरथी रामो दयां कृत्वा द्विजन्मसु ॥ ९६ ॥ शासनं च प्रदास्यति अचलं च

के अभिलाषी हैं ॥ ९३ ॥ उनमें से अपने अपने वर्ग का एक एक विद्वान् ब्राह्मण रामेश्वर व सेतुबंध तीर्थ को जावें वहां हनुमान्जी विद्यमान हैं ॥ ९४ ॥ और व्याधि रहित सबलोग वहीं श्रीरामजी के समीप चलैं और निराहार व क्रोधको जीतनेवाले व फिर माया से रहित ॥ ९५ ॥ सावधान मनवाले सब उन की स्तुति कर व ध्यान कर जप करैं तदनन्तर दशरथकुमार श्रीरामजी ब्राह्मणों के ऊपर दयाकर ॥ ९६ ॥ युग युग में अचल शासन को देवैंगे और बड़े तप से प्रसन्न होकर वे मनोरथ को

देवैंगे ॥ ६७ ॥ और जिस वर्ग का जो ब्राह्मण वहां न जावैगा वह वर्ग से व स्थान के धर्मसे परित्याग करने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ और वह वणिग्वृत्त वाले सम्बंध तथा विवाह व ग्रामवृत्त में सम्बंध न होगा और सब स्थान में वे बाहर किये जावैंगे ॥ ६६ ॥ सभा के उस वचन को सुनकर उनके मध्य में उत्तम वचन व उत्तम शब्दवाला पवित्र तथा प्रवीण ब्राह्मण तीन शब्दों से ब्राह्मणों को सुनाता ॥ १०० ॥ व खड़ा होता हुआ दिये हुए तालवाले इस प्रत्युत्तर को कहा कि असत्य-वादियों को और पराई निन्दा करनेवाले में जो पाप होता है और पराई स्त्री के समीप जाने में व पराये द्रोह में परायण पुरुष में जो पाप होताहै ॥ १ ॥ और मदिरा

युगेयुगे ॥ महता तपसा तुष्टः प्रदास्यति समीहितम् ॥६७॥ यस्य वर्गस्य यो विप्रो न प्रयास्यति तत्र वै ॥ स च वर्गात्परित्याज्यः स्थानधर्मान्न संशयः ॥ ६८ ॥ वणिग्वृत्ते न सम्बन्धे न विवाहे कदाचन ॥ ग्रामवृत्ते न सम्बन्धः सर्वस्थाने बहिष्कृताः ॥ ६६ ॥ सभावाक्यं च तच्छ्रुत्वा तन्मध्ये वाडवः शुचिः ॥ वाग्मी दक्षः सुशब्दश्च त्रिरवैः श्रावयन्द्विजान् ॥ १०० ॥ प्रतिवाक्यं दत्ततालं तिष्ठन्नेतद्वचोऽब्रवीत् ॥ असत्यवादिनां यच्च पातकं परनिन्दके ॥ परदाराभिगमने परद्रोहरते नरे ॥ १ ॥ मद्यपेषु च यत्पापं यत्पापं हेमहारिषु ॥ तत्पापं च भवेत्तस्य गमने यः पराङ्मुखः ॥ अथ किं बहुनोक्तेन यान्तु सत्यं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं गमनाय मनोदधे ॥ गच्छतस्तान्द्विजाञ्छ्रुत्वा कुमारपालको नृपः ॥ ३ ॥ समाहूय कृषेः कर्म भिक्षाटनमथापि वा ॥ नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रापयिष्ये न संशयः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा व्यथिताः सर्वे किं भविष्यत्यतः परम् ॥ तथा त्रीणि सहस्राणि प्रबन्धं चक्रिरे

पीनेवालों में व सोना चुरानेवालों में जो पाप होताहै वह पाप उसको होवै जोकि वहां जाने में विमुख होवै अथवा बहुत कहनेसे क्याहै सत्यही द्विजोत्तम लोग जावैं ॥ २ ॥ उस कठिन वचन को सुनकर उसने जानेके लिये मन धारण किया और उन जाते हुए ब्राह्मणों को सुनकर कुमारपालक राजा ने कहा ॥ ३ ॥ कि उन सबों को बुलाकर कृषी कर्म या भिक्षाटन को अनेक गोत्रोंवाले ब्राह्मणों के लिये प्राप्त कराऊंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ उसको सुनकर सब दुःखित हुए कि इसके उपरान्त

क्या होगा तब तीन हज़ार ब्राह्मणों ने यह प्रबंध किया ॥ ५ ॥ कि हम सब श्रीरामजी के समीप जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है और आपस में ब्राह्मणों ने हस्ताक्षर दान किया ॥ ६ ॥ व हाथों को जोड़कर ब्राह्मणों ने इस वचन को कहा कि यहां त्रयीविद्या नाश होजावैगी और त्रयीमूर्त्ति याने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी क्रोधित होवैंगे ॥ ७ ॥ इस कारण अठारह हज़ार ब्राह्मणों को वहीं जाना चाहिये तदनन्तर उस श्रेष्ठ राजा ने सब श्रेष्ठ गोभुज वणिजों को बुलाकर यह वचन कहा कि ब्राह्मणों को मना कीजिये ॥ ८ । ६ ॥ व्यासजी बोले कि जो उत्तम वणिज् जैनधर्म में लिप्त नहीं थे उन्होंने वहां जीविका नाश होने के डर से मौन धारण

तदा ॥ ५ ॥ गमिष्यामो वयं सर्वे रामं प्रति न संशयः ॥ हस्ताक्षरप्रदानं वै अन्योन्यं तु कृतं द्विजैः ॥ ६ ॥ कृताञ्जलिपुटा विप्रा वाक्यमेतदथाब्रुवन् ॥ नश्यतेऽत्र त्रयी विद्या त्रयीमूर्तिः प्रकुप्यति ॥ ७ ॥ तस्मात्तत्रैव गन्तव्यमष्टादशसहस्रकैः ॥ ततः स वणिजः सर्वान्समाहूय च गोभुजान् ॥ ८ ॥ वाक्यमूचे नृपश्रेष्ठो वारयध्वं द्विजानिति ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ न जैनधर्मे ये लिप्ता गोभुजा वणिगुत्तमाः ॥ वृत्तिभङ्गभयात्तत्र मौनमेव समाचरन् ॥ १० ॥ वारयाम कथं विप्रान्वह्निरूपान्दहन्ति ते ॥ शापाग्निना नरपते द्विजा मृत्युपरायणाः ॥ ११ ॥ अडालयेषु ये जाताः शूद्रा आहूय तान्नृपः ॥ निवार्यन्तामिति प्राह वाडवा गमनोद्यताः ॥ १२ ॥ तेषां मध्ये कतिपया जैनधर्मसमाश्रिताः ॥ गता वाडवपुञ्जेषु राजादेशान्निवारणे ॥ १३ ॥ केचिच्छूद्रा ऊचुः ॥ क्व रामो लक्ष्मणोपेतः क्व च वायुसुतो बली ॥ वर्तमानेन कालेन वक्तव्यं द्विजसत्तमाः ॥ १४ ॥ व्याघ्रसिंहाकुले दुर्गे वने वनगजाश्रिते ॥ परित्यज्य प्रियान्प्राणान्पुत्रान्दारान्निकेत

किया ॥ १० ॥ कि अग्निरूपी ब्राह्मणों को मैं कैसे मना करूं क्योंकि हे राजन् ! मृत्यु में परायण ब्राह्मण शापरूपी अग्नि से जलावैंगे ॥ ११ ॥ तब जो अडालय में शूद्र पैदाहुए थे उनको बुलाकर राजा ने कहा कि जाने के लिये तैयार ब्राह्मणों को मना कीजिये ॥ १२ ॥ उनके मध्य में जैनधर्म में आश्रित कुछ शूद्र राजा की आज्ञा से ब्राह्मणों के गणों में मना करने के लिये गये ॥ १३ ॥ कितेक शूद्र बोले कि लक्ष्मण से संयुत श्रीरामजी कहां हैं व पवनकुमार बलवान् हनुमान् जी कहां हैं हे द्विजोत्तमो ! वर्तमान समय से यह कहना चाहिये ॥ १४ ॥ व्याघ्रों व सिंहों से पूर्ण तथा वनके हाथियों से संयुत कठिन वन में प्यारे प्राणों को व पुत्रों, स्त्रियों और मन्दिरों

को छोड़कर ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! दुष्ट शासनवाले राज्य में क्यों जाते हो उस वचन को सुनकर कितेक ब्राह्मणों ने वचन व मन से स्मरण किया ॥ १६ ॥ और पंद्रह हज़ार उन ब्राह्मणों ने श्रेष्ठ राजा के सकाश से भय, लोभ व दान के कारण यह कहा कि वह सब होगा ॥ १७ ॥ और हम लोग जीविका की कल्पना कभी न करैंगे या कृषीकर्म करैंगे अथवा भिक्षाटन करैंगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन पंद्रहहज़ार द्विजोत्तमों ने उनसे यह कठिन वचन कहा कि अन्य ब्राह्मण यथायोग्य चले जावैं ॥ १९ ॥ और आपलोगों को श्रीरामजी से दिया हुआ शासन होवै और त्रयी विद्यावाले सब प्रसिद्ध द्विजोत्तम ॥ २० ॥ तीनहज़ार निश्चयकर त्रैविद्य हुए ॥ २१ ॥

नान् ॥ १५ ॥ किमर्थं गम्यते विप्रा राज्ये वै दुष्टशासने ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः केचिद्वाक्येन मनसाऽस्मरन् ॥ १६ ॥ पञ्चदशसहस्रास्ते वाडवा नृपसत्तमात् ॥ भयाल्लोभाच्च दानाच्च तत्सर्वं भवतामिति ॥ १७ ॥ वृत्त्योपकल्पनं नैव करिष्यामः कदाचन ॥ कृषिकर्म करिष्यामो भिक्षाटनमथापि वा ॥ १८ ॥ ततश्च ते पञ्चदशसहस्रा द्विजसत्तमाः ॥ दारुणं वाक्यमूचुस्तान्यान्तु चान्ये यथोचितम् ॥ १९ ॥ शासनं भवतामस्तु रामदत्तं न संशयः ॥ त्रयीविद्यास्तु विख्याताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः ॥ २० ॥ सहस्राणि च त्रीण्येव त्रैविद्या अभवन्ध्रुवम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ चतुर्थांशेन राज्यं च किञ्चिद्दत्ता वसुन्धरा ॥ तस्माच्चतुर्विधेत्येवं ज्ञातिबन्धमतः परम् ॥ २२ ॥ च्यवनो दास्यते कन्यां यूयं कन्यामवाप्नुत ॥ न वृत्तिर्न च सम्बन्धो भवतां स्यात्कदापि वा ॥ २३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयीविद्याश्च वाडवाः ॥ स्वे स्वे स्थाने गताः सर्वे सङ्केतादनिवृत्त्य च ॥ २४ ॥ पञ्चदशसहस्राणि ततस्तु द्विजपुङ्गवाः ॥ यथागतं गताः सर्वे चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ तद्दिनं ह्यतिवाह्याथ चिन्ताविष्टेन चेतसा ॥ वार्यमाणाः स्वपुत्रैस्ते दारैश्च विन

राजा बोले कि चौथाई अंश से कुछ राज्य व पृथ्वी दीगई उस कारण इसके उपरान्त चारही प्रकार का ज्ञातिप्रबन्ध होगा ॥ २२ ॥ और च्यवनजी कन्या को देवैंगे व तुमलोग कन्या को पावोगे और आपलोगों की कभी जीविका व सम्बन्ध न होगा ॥ २३ ॥ उस राजा के इस वचन को सुनकर त्रयी विद्यावाले सब ब्राह्मण संकेत से न लौटकर अपने स्थान में चले गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर पंद्रह हज़ार सब चातुर्विद्य द्विजोत्तमलोग जिसप्रकार आये थे वैसेही चले गये ॥ २५ ॥ और चिन्ता से संयुत

चित्त करके उस दिन को व्यतीत कर विनय से संयुत पुत्रों व स्त्रियों से वे ब्राह्मण मना किये गये ॥ २६ ॥ व सावधान मनवाले सब ब्राह्मण निद्रा को न प्राप्त हुए और ब्राह्ममुहूर्त में उठकर संसार की माया को छोड़कर ॥ २७ ॥ और स्थान समेत प्यारे पुत्रों व स्त्रियों को छोड़कर ग्राम के समीप सब श्रेष्ठ ब्राह्मण मिले ॥ २८ ॥ तब नित्य के दिनवाले कर्मों को करके तीन हज़ार ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा को देकर व कुलमाता को पूजकर ॥ २९ ॥ विघ्नसमूहों के नाश के लिये दक्षिण द्वारपै स्थित गणेशजी को सिंदूर व पुष्प की मालाओंसे पूजन किया ॥ ३० ॥ व सब प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाले बकुलस्वामी सूर्यनारायण को पूजा और आदर से

यान्वितैः ॥ २६ ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे न निद्रामुपलेभिरे ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय मायां त्यक्त्वा हि लौकिकीम् ॥ २७ ॥ परित्यज्य प्रियान्पुत्रान्दारान्सनिलयानपि ॥ ग्रामोपान्तेषु मिलिताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सहस्राणि तदा त्रीणि कृतनित्याह्निकक्रियाः ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा सम्पूज्य कुलमातरम् ॥ २९ ॥ विघ्नसङ्घविनाशाय दक्षिणद्वारसंस्थितः ॥ सिन्दूरपुष्पमालाभिः पूजितो गणनायकः ॥ ३० ॥ पूजितो बकुलस्वामी सूर्यः सर्वार्थसाधकः ॥ आदराच्च महाशक्तिः श्रीमाता पूजिता तथा ॥ ३१ ॥ शान्तां चैव नमस्कृत्य ज्ञानजां गोत्रमातरम् ॥ गमने नोद्यमानास्ते परं हर्षमुपाययुः ॥ ३२ ॥ चातुर्विद्या द्विजाश्चैव पुनरामन्त्र्य तान्प्रति ॥ पप्रच्छुश्च मुहुः सर्वं समागमनकारणम् ॥ ३३ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ न गन्तव्यं भवद्भिर्वै गत्वा वाऽऽयान्तु सत्वराः ॥ ३४ ॥ यथा रामप्रदत्तं हि उपकल्पयसेऽचिरात् ॥ श्रुत्वा पुनरथोचुस्ते चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ न स्थानेन द्विजैर्वापि न च वृत्त्या कथंचन ॥ वयं

श्रीमाता महाशक्ति को पूजन किया ॥ ३१ ॥ और शान्ता व ज्ञानजा गोत्रमाता को प्रणामकर गमन के लिये प्रेरित वे बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ फिर चातुर्विद्य ब्राह्मणों ने उनको बुलाकर सब आनेके कारण को पूंछा ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि आप लोगों को जाना न चाहिये या जाकर शीघ्रही आइयेगा ॥ ३४ ॥ और रामजीने जैसी आज्ञा दियाहै वैसाही शीघ्रही कीजियेगा यह सुनकर फिर उन चातुर्विद्य ब्राह्मणों ने कहा ॥ ३५ ॥ कि स्थान से व ब्राह्मणों से और जीविका से किसी प्रकार

हम लोग न आवैंगे और फिर न कहना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रघुनायकजीने हम सबों को जो जीविका दिया है उस जीविका को हम लोग जप, होम व पूजनादिकों से प्राप्त होवैंगे ॥ ३७ ॥ फिर उन पंद्रह हज़ार ब्राह्मणोंने उनसे आदर से कहा कि अग्निकी सेवा में तत्पर हम सबों को यहां टिकना चाहिये ॥ ३८ ॥ सबोंके कार्य की सिद्धि के लिये तुम लोगों को वहां जाना चाहिये और आपस में सब सहायवाले हम लोग जीविका को प्राप्त होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ और अपने वचनको छोड़नेवाले तुम लोग जीविका से रहित होवोगे तदनन्तर उनके मध्य में किसी चातुर्विद्य ब्राह्मण ने कहा ॥ ४० ॥ चातुर्विद्य बोला कि हे ब्राह्मणो ! श्रीरामजी

नैवागमिष्यामः कथनीयं न वै पुनः ॥ ३६ ॥ रघूद्वहेन दत्ता वै वृत्तिर्नो द्विजसत्तमाः ॥ तां वृत्तिं प्रति यास्यामो जप होमार्चनादिभिः ॥ ३७ ॥ ते पञ्चदशसाहस्राः पुनस्तानूचुरादरात् ॥ अस्माभिरत्र स्थातव्यमग्निसेवार्थतत्परैः ॥ ३८ ॥ युष्माभिस्तत्र गन्तव्यं सर्वेषां कार्यसिद्धये ॥ अन्योन्यं सर्वसाहाया वृत्तिं याम न संशयः ॥ ३९ ॥ त्यक्तस्वकीयवचना वृत्तिहीना भविष्यथ ॥ ततस्तन्मध्यतः कश्चिच्चातुर्विद्य उवाच ह ॥ ४० ॥ चातुर्विद्य उवाच ॥ पूर्वं हि वृत्तिमस्माकं रामो वै दत्तवान्द्विजाः ॥ चातुर्विद्या महासत्त्वाः स्वधर्मप्रतिपालकाः ॥ ४१ ॥ याजनाध्ययनायुक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ दानं दत्त्वा तु रामेण उक्तं हि भवतां पुनः ॥ ४२ ॥ स्थानं त्यक्त्वा न गन्तव्यमित्थं हि नियमः कृतः ॥ आपत्काले तु स्मर्तव्यो वायुपुत्रो महाबलः ॥ ४३ ॥ इति रामेण पूर्वं हि स्वे स्थाने स्थापितास्तदा ॥ अन्यथा रामवाक्यं तत्कृत्वा गच्छेत्कथं पुनः ॥ ४४ ॥ तस्माद्युष्मान्वयं ब्रूमो गच्छतः कार्यसिद्धये ॥ भवतां कार्यसिद्ध्यर्थं वयं

ने पहले हमलोगों को जीविका दिया है व अपने धर्म के पालक बड़े सत्त्ववाले चातुर्विद्य ब्राह्मण ॥ ४१ ॥ यज्ञ कराने व वेद पाठसे संयुत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये गये और श्रीरामजीने आप लोगों को दान देकर फिर कहा ॥ ४२ ॥ कि स्थान को छोड़कर जाना न चाहिये ऐसा नियम किया गया और विपत्ति समय में बड़े बलवान् पवनकुमार को स्मरण करना चाहिये ॥ ४३ ॥ उस समय इस प्रकार श्रीरामजी ने पहले अपने स्थान में स्थापित किया और उस रामजी के वचन को अन्यथा करके फिर कैसे जावैं ॥ ४४ ॥ उसी कारण हमलोग कार्य की सिद्धि के लिये जाते हुए तुमलोगों से कहते हैं कि आपलोगों की कार्यसिद्धि के लिये हमलोग होम व पूजना-

दिकोंसे प्राप्त हैं ॥ ४५ ॥ और शीघ्रही कार्य की सिद्धि है यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है इस वचनको सुनकर तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने गमनके लिये ॥ ४६ ॥ पहले प्रस्थान करके जानेके लिये मनको धारण किया तब तीनहज़ार उत्तम ब्राह्मण वहां से गये ॥ ४७ ॥ और देशसे अन्य देश व वन से अन्य वन को जाकर पूर्वजों को तृप्त करके उन्होंने प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध किया ॥ ४८ ॥ व राम राम और हनुमंत ऐसा ध्यान करते हुए उत्तम आचार व एक बार भोजन करनेवाले वे ब्राह्मण धीरे धीरे गये ॥ ४९ ॥ और सत्य के व्रत में परायण व प्रतिग्रह (दान लेना) छोड़े हुए वे हनुमान्जी के दर्शन की इच्छावाले ब्राह्मण दूर मार्गको चलेगये ॥ ५० ॥ और

होमार्चनादिभिः ॥ ४५ ॥ झटिति कार्यसिद्धिः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ इति वाक्यं ततः श्रुत्वा ते द्विजा गमनं प्रति ॥ ४६ ॥ प्रस्थानं च विधायादौ गमनाय मनो दधुः ॥ त्रिसाहस्रास्तदा तस्मात्प्रस्थिता द्विजसत्तमाः ॥ ४७ ॥ देशाद्देशान्तरं गत्वा वनाच्चैव वनान्तरम् ॥ तीर्थेतीर्थे कृतश्राद्धाः सुसन्तर्पितपूर्वजाः ॥ ४८ ॥ ध्यायन्तो रामरामेति हनुमन्तेति वै पुनः ॥ एकाशनाः सदाचारा द्विजा जग्मुः शनैःशनैः ॥ ४९ ॥ त्यक्तप्रतिग्रहाः शान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ते गता दूरमध्वानं हनुमद्दर्शनार्थिनः ॥ ५० ॥ सन्ध्यामुपासते नित्यं त्रिकालं चैकमानसाः ॥ एवं तु गच्छतां तेषां शकुना अभवञ्छुभाः ॥ ५१ ॥ एवं तु गच्छतां तेषां पाथेयं त्रुटितं तदा ॥ श्रान्ता ग्लानिं गताः सर्वे पदं परममास्थिताः ॥ ५२ ॥ क्रमित्वा कियतीं भूमिं पदं गन्तुं न तु क्षमाः ॥ मनसा निश्चयं कृत्वा दृढीकृत्य स्वमानसम् ॥ ५३ ॥ हनूमन्तमदृष्ट्वैव न यास्यामो वयं गृहान् ॥ त्रैविद्यास्तु गतास्तत्र यत्र रामेश्वरो हरिः ॥ ५४ ॥

सावधान मनवाले वे नित्य त्रिकाल संध्योपासन करते थे इस प्रकार जाते हुए उन को उत्तम शकुन हुए ॥ ५१ ॥ और इस प्रकार जाते हुए उनका मार्गव्यय चुक गया तब बड़े स्थान में प्राप्त वे सब थकगये और बड़े उदासीन होगये ॥ ५२ ॥ और कितनी पृथ्वी को नाँघकर पगभर चलने के लिये न समर्थ हुए तब मनसे निश्चय कर व अपने मन को दृढ़ करके ॥ ५३ ॥ कि हनुमान्जी को न देखकर हम लोग घरको न जावेंगे और वे त्रैविद्य ब्राह्मण वहां गये जहां कि रामेश्वर हरि थे ॥ ५४ ॥

और दृढ़व्रत व सत्य में परायण तथा कन्द, मूल व फलों को खानेवाले वे राम राम व हनूमंत ऐसा ध्यान करते हुए ॥ ५५ ॥ वे नियम को ग्रहणकर और अन्न व जल को छोड़कर प्यास से विकल व क्षुधा से व्याकुल व्रतमें परायण वे गये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार दुःखित ब्राह्मणों के भक्तिपात्र श्रीरामजी उचाट मन होकर हनुमान्जी से बोले ॥ ५७ ॥ कि हे पवनकुमार ! धर्म को जाननेवाले तुम ब्राह्मणों के लिये शीघ्रही जावो क्योंकि धर्मारण्य में बसनेवाले सब ब्राह्मण दुःखित होतेहैं ॥ ५८ ॥ और मेरा मन जलता है अन्यथा मेरी शांति न होगी व ब्राह्मणों को दुःख करनेवाला दण्ड देने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ हे कपे ! जिससे ब्राह्मण दुःखित

दृढव्रताः सत्यपराः कन्दमूलफलाशनाः ॥ ध्यायन्तो रामरामेति हनूमन्तेति वै पुनः ॥ ५५ ॥ गृहीत्वा नियमं तेऽपि त्यक्त्वा चान्नं तथोदकम् ॥ तृषार्ताश्च क्षुधार्त्ताश्च ययुर्व्रतपरायणाः ॥ ५६ ॥ एवं तु क्लिश्यमानानां द्विजानां भक्तिभाजनः ॥ उद्विग्नमानसो रामो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५७ ॥ शीघ्रं गच्छ द्विजार्थे त्वं पवनात्मज धर्मवित् ॥ क्लिश्यन्ते वाडवाः सर्वे धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ५८ ॥ दह्यते मानसं मेऽद्य नान्यथा शान्तिरस्ति मे ॥ विप्राणां दुःखकर्त्ता च शास्तव्यो नात्र संशयः ॥ ५९ ॥ येन वै दुःखिता विप्रास्तेनाहं दुःखितः कपे ॥ याहि शीघ्रं हि मां त्यक्त्वा विप्राणां परिपालने ॥ ६० ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य च राघवम् ॥ कृपया परयाविष्टः प्रादुरासीद्धरीश्वरः ॥ ६१ ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेण परीक्षार्थं द्विजन्मनाम् ॥ उवाच परया भक्त्या ब्राह्मणाञ्छ्रमदुर्बलान् ॥ ६२ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा करान्मुक्त्वा कमण्डलुम् ॥ सर्वान्प्रत्यभिवाद्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ कुतः स्थानादिह प्राप्ता गन्तु

हैं उसी से मैं दुःखित हूं तुम मुझ को छोड़कर शीघ्रही ब्राह्मणों के पालन के लिये जाइये ॥ ६० ॥ श्रीरामजी का वचन सुनकर व श्रीरघुनाथजी को प्रणामकर बड़ी दया से संयुत कपीश्वर हनुमान्जी ब्राह्मणों की परीक्षा के लिये बूढ़े ब्राह्मण के रूप से प्रकटहुए और परिश्रम से दुर्बल ब्राह्मणों से बड़ी भक्ति से बोले ॥ ६१ । ६२ ॥ हाथ से कमंडलु को छोड़कर व हाथों को जोड़कर हनुमान्जी सबों को प्रणामकर इसके उपरान्त यह वचन बोले ॥ ६३ ॥ कि आप लोग किस स्थान से यहां प्राप्त

हुए हो और कहां को जाने की इच्छा करतेहो व किस लिये आप लोग भयंकर वन में जातेहो ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण बोले कि हम लोग ब्राह्मण अपना दुःख कहने के लिये धर्मारण्य से आये हैं और हमलोग श्रीरामजी के दर्शन के लिये सब कामनाओं को देनेवाले सेतुबंध महातीर्थ को जानेकी इच्छा करते हैं और नियममें स्थित व दुर्बल शरीरवाले हमलोग श्रीरामजी को देखने के लिये उत्कंठित हैं ॥ ६५ । ६६ ॥ जहां कि रामेश्वरदेव व साक्षात् पवनकुमार वानर (हनुमान्जी) हैं उसको सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा कि श्रीरामजी कहां हैं व हनुमान्जी कहां हैं ॥ ६७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! दूर से भी अधिक दूर सेतुबंध रामेशजी कहां हैं और व्याघ्रों व सिंहों

कामाश्च वै कुतः ॥ किमर्थं वै भवद्भिश्च गम्यते दारुणं वनम् ॥ ६४ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ धर्मारण्यात्समायाता निजदुःखं निवेदितुम् ॥ रामस्य दर्शनार्थं हि गन्तुकामा वयं द्विजाः ॥ ६५ ॥ सेतुबन्धं महातीर्थं सर्वकामप्रदायकम् ॥ नियमस्थाः क्षीणदेहा रामं द्रष्टुं समुत्सुकाः ॥ ६६ ॥ यत्र रामेश्वरो देवः साक्षाद्वायुसुतः कपिः ॥ तच्छ्रुत्वा स द्विजः प्राह क्व रामः क्व च वायुजः ॥ ६७ ॥ क्व सेतुबन्धरामेशो दूराद्दूरतरो द्विजाः ॥ व्याघ्रसिंहाकुलं चोग्रं वनं घोरतरं महत् ॥६८॥ गत्वा यस्मान्न वर्तन्ते तदुग्रमनुजीविनः ॥ निवर्तध्वं महाभागा यदि कार्यं हि मद्वचः ॥ ६९ ॥ अथवा गम्यतां विप्राश्चिरं जीव सुखी भव ॥ वृद्धस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा वाडवाश्चैकमानसाः ॥ ७० ॥ विप्र गच्छामहे सर्वे रामपार्श्वमसंशयः ॥ म्रियेत यदि मार्गेऽस्मिन् रामलोकमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ जीवन्वृत्तिमवाप्नोति रामादेव न संशयः ॥ अन्यथा शरणं नास्ति अस्माकं राघवं विना ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा निर्गताः सर्वे रामदर्शनतत्पराः ॥ दिनान्तमतिवाह्याथ प्रभाते

से संयुत उग्र वन बड़ा भारी व बहुत भयंकर है ॥ ६८ ॥ व जिस में जाकर जीविकावाले प्राणी नहीं वर्तमान होते हैं वह उग्र वन है हे महाभागो ! यदि मेरा वचन करनाहै तो लौटिये ॥ ६९ ॥ अथवा हे ब्राह्मणो ! जाइये और बहुत दिनोंतक जियो व सुखी होवो वृद्धके उस वचनको सुनकर सावधान मनवाले ब्राह्मणोंने कहा ॥७०॥ कि हे विप्रजी ! हम सब श्रीरामजी के समीप जावेंगे इसमें सन्देह नहीं है यदि इस मार्ग में कोई मरजाता है तो वह श्रीरामजी के लोकको पाता है ॥७१॥ और जीता हुआ वह श्रीरामहीसे जीविका को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है अन्यथा हमलोगों की श्रीरामजी के विना शरण नहीं है ॥ ७२ ॥ यह कहकर श्रीरामजी के

दर्शन में तत्पर सब लोग चले और दिनके अन्त को व्यतीत कर फिर निर्मल प्रातःकाल होने पर ॥ ७३ ॥ पहले के गुणों से संयुत वे ब्राह्मणरूपी वृद्ध बुद्धिमान् हनुमान्जी ने कमंडलु को धारण कर प्रणाम किया ॥ ७४ ॥ व कहा कि किस स्थान से तुम सब ब्राह्मणलोग यहां प्राप्त हुए हो कहीं बड़ा लाभ है या बड़ा भारी उत्सव है ॥ ७५ ॥ उसके इस वचन को सुनकर ब्राह्मणलोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रणामपूर्वक उन्हों ने आदर समेत विनय कहा ॥ ७६ ॥ कि हे भूमिदेव ! बड़े आश्चर्यकारक हमलोगों के पहले के वृत्तान्त को सुनिये क्योंकि तुम दयालु देख पड़ते हो ॥ ७७ ॥ पहले सृष्टि के प्रारंभ में हमलोगों को विष्णु, शिव व ब्रह्माजी

विमले पुनः ॥ ७३ ॥ हनुमान्ब्रह्मरूपी स वृद्धः पूर्वगुणान्वितः ॥ कमण्डलुधरो धीमानभिवादनतत्परः ॥ ७४ ॥ कुत्र स्थानादिह प्राप्ताः सर्वे यूयं हि वाडवाः ॥ कुत्रास्ति वा महालाभो विवाहोत्सव एव वा ॥ ७५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा वाडवा विस्मयं गताः ॥ प्रणामपूर्वां विज्ञप्तिं कथयामासुरादृताः ॥ ७६ ॥ अस्माकं तु पुरा वृत्तं महदाश्चर्यकारकम् ॥ भूमिदेव शृणुष्व त्वं दयालुर्दृश्यसे यतः ॥ ७७ ॥ आदौ सृष्टिसमारम्भे स्थापिताः केशवेन च ॥ शिवेन ब्रह्मणा चैव त्रिमूर्तिस्थापिता वयम् ॥ ७८ ॥ श्रीरामेण ततः पश्चाज्जीर्णोद्धारेण स्थापिताः ॥ ग्रामाणां वेतनं दत्तं हरिराजेन चादरात् ॥७९॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतमितात्मनाम् ॥ ग्रामास्त्रयोदशार्चार्थे सीतापुरसमन्विताः ॥८०॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वणिजो द्विजपालने ॥ गोभूजसंज्ञास्ते शूद्रास्तेभ्यः सपादलक्षकाः ॥ ८१ ॥ ते च जातास्त्रिधा तात गोभूजाडालजास्तथा ॥ माण्डलीयास्तथा चैते त्रिविधाश्च मनोरमाः ॥ ८२ ॥ वृत्त्यर्थं तेन दत्ता वै ह्यनर्घ्या

ने स्थापन किया है इससे हमलोग तीनों मूर्तियों से स्थापित हैं ॥ ७८ ॥ तदनन्तर पश्चात् श्रीरामजी ने जीर्णोद्धार से स्थापित किया है और हनुमान्जी ने आदर से ग्रामों को वेतन (नौकरी) दिया है ॥ ७९ ॥ और पूजन के लिये सीतापुर समेत चार सौ चवालीस व तेरह ग्रामों को दिया ॥ ८० ॥ और ब्राह्मणों के पालन में छत्तीस हज़ार वैश्य दिये गये और उनके लिये सवालाख गोभुजसंज्ञक वे शूद्र दिये गये ॥ ८१ ॥ हे तात ! वे तीन प्रकार के हुए याने गोभुज, अडालज, मांडलीय ये तीनों प्रकार के मनोहर हैं ॥ ८२ ॥ और जीविका के लिये उन्हों ने अमूल्य करोड़ों रत्नों को दिया है तब वे मोढ, गोभूज, मांडलीय और अडालज संज्ञक

हुए ॥ ८३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस समय दुर्बुद्धि श्राम नामक राजा श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा को नहीं मानताहै ॥ ८४ ॥ व उसका दामाद कुमारपालक नामक सदैव पाखंडों से व्याप्त व कलियुग के धर्म से संमत है ॥ ८५ ॥ और बौद्धधर्मवाले इन्द्रसूत्र जैनी ने उसकी प्रेरणा किया व उसने श्रीरामजी के दिये हुए शासन को लुप्त किया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८६ ॥ और कितेक वैसेही वणिज्लोग उसी मनवाले होगये वे श्रीराम व बड़े बुद्धिमान् हनुमान्जी को मना करते हैं ॥ ८७ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! विना विश्वास के मैं निश्चयकर न दूंगा उसको जानकर ये ब्राह्मण श्रीरामजी की शरण में आये ॥ ८८ ॥ व श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करनेवाले

रत्नकोटयः ॥ तदा ते मोढ १८००० गोभूजा १८००० माण्डलीया १२५००० अडालजाः १८००० ॥ ८३ ॥ अधुना वाडवश्रेष्ठ आमोनाम महीपतिः ॥ शासनं रामचन्द्रस्य न मानयति दुर्मतिः ॥ ८४ ॥ जामाता तस्य दुष्टो वै नाम्ना कुमारपालकः ॥ पाखण्डैर्वेष्टितो नित्यं कलिधर्मेणसंमतः ॥ ८५ ॥ इन्द्रसूत्रेण जैनेन प्रेरितो बौद्धधर्मिणा ॥ शासनं तेन लुप्तं हि रामदत्तं न संशयः ॥ ८६ ॥ वणिजस्तादृशाः केऽपि तन्मनस्का बभूविरे ॥ निषेधयन्ति रामं ते हनुमन्तं महामतिम् ॥ ८७ ॥ प्रत्ययं तु विना विप्रा न दास्यामीति निश्चितम् ॥ तं ज्ञात्वा तु इमे विप्रा रामं शरणमाययुः ॥ ८८ ॥ हनुमन्तं महावीरं रामशासनपालकम् ॥ तस्माद्गच्छामहे सर्वे रामं प्रति महामते ॥ ८९ ॥ आञ्जनेयो यदस्माकं न दास्यति समीहितम् ॥ अनाहारव्रतेनैव प्राणांस्त्यक्ष्यामहे वयम् ॥ ९० ॥ अस्माभिस्ते विशेषेण कथितं परिपृच्छितम् ॥ स्नेहभावं विचिन्त्याशु निजवृत्तिं प्रकाशय ॥ ९१ ॥ हनुमानुवाच ॥ प्राप्ते कलियुगे

महावीर हनुमान्जी की शरण में आये उसी कारण हे महामते ! हम सब श्रीरामजी के समीप जाते हैं ॥ ८९ ॥ और यदि हनुमान्जी हमलोगों को मनोरथ न देवैंगे तो हम सब निराहार व्रत से प्राणों को छोड़देवैंगे ॥ ९० ॥ हमलोगों ने तुम से विशेष कर पूंछे हुए वृत्तान्त को कहा तुम स्नेह के भाव को विचारकर शीघ्रही अपनी वृत्ति को प्रकाशित करो ॥ ९१ ॥ हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! कलियुग प्राप्त होने पर कहां देवदर्शन होगा हे द्विजेन्द्रो ! यदि बहुत सुख चाहते हो तो

लौट जाइये ॥ ९२ ॥ क्योंकि व्याघ्रों व सिंहों से पूर्ण तथा वन के हाथियों से आश्रित व बहुत से वनाग्नियों से संयुत शून्य वन में प्रवेश नहीं किया जा सक्ता है ॥ ९३ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे विप्र ! दिन बीतने पर आपने इस एक वृत्तान्त को कहा और तुम आजही आकर तुम ऐसा कहते हो ॥ ९४ ॥ विप्र के रूप से तुम कौन हो श्रीराम हो व हनुमान्जी हो हे महाद्विज ! दया करके हमलोगों से सत्य कहिये ॥ ९५ ॥ हनुमान्जी ने जो गुप्त था उसको ब्राह्मणों के आगे कहा कि हे ब्राह्मणो ! मैं हनुमान्जी हूं ऐसा निश्चयकर तुमलोग मुझ को जानो ॥ ९६ ॥ और स्वरूप को प्रकटकर बड़े भारी लांगूल (पुच्छ) को दिखाते हुए ॥ ९७ ॥ हनुमान्जी बोले

विप्राः क देवदर्शनं भवेत् ॥ निवर्त्तध्वं हि विप्रेन्द्रा यदीच्छथ सुखं महत् ॥ ९२ ॥ व्याघ्रसिंहाकुले शून्ये वने वनगजाश्रिते ॥ बहुदावसमाविष्टे प्रवेष्टुं नैव शक्यते ॥ ९३ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ अतीते दिवसे विप्र एकं कथितवानिदम् ॥ अद्यैव त्वं समागम्य एवमेव प्रभाषसे ॥ ९४ ॥ कस्त्वं वाडवरूपेण रामो वाप्यथ वायुजः ॥ सत्यं कथय न स्वास्मिन्दयां कृत्वा महाद्विज ॥ ९५ ॥ हनुमान्कथयामास गोपितं यद्विजाग्रतः ॥ हनुमानित्यहं विप्रा बुध्यध्वं निश्चिता हि माम् ॥९६॥ स्वरूपं प्रकटीकृत्य लाङ्गूलं दर्शयन्महत् ॥ ९७॥ हनुमानुवाच ॥ अयमम्भोनिधिः साक्षात्सेतुबन्धो मनोरमः ॥ अयं रामेश्वरो देवो गर्भवासविनाशकृत् ॥ ९८ ॥ इयं तु नगरी श्रेष्ठा लङ्कानामेति विश्रुता ॥ यत्र सीता मया प्राप्ता रामशोकापहारिणी ॥ ९९ ॥ तर्जन्यग्रे द्विजश्रेष्ठा अगम्या मां विना परैः ॥ सा सुवर्णमयी भाति यस्यां राज्ये विभीषणः ॥ २०० ॥ स्थापितो रामदेवेन सेयं लङ्का महापुरी ॥ नियमस्थैः साधुवृन्दैस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ १ ॥ आनीय

कि यह साक्षात् समुद्र है व सुन्दर सेतुबंध है और गर्भवास को विनाशनेवाले ये रामेश्वर देवजी हैं ॥ ९८ ॥ और लंका नाम ऐसी प्रसिद्ध यह उत्तम नगरी है जहां कि श्रीरामजी के शोक को हरनेवाली सीताजी को मैंने पाया था ॥ ९९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तर्जनी अंगुली के आगे यह पुरी मुझ को छोड़कर अन्यलोगों से जाने योग्य नहीं है और वह लंकापुरी सुवर्णमयी शोभित है व जिसमें राज्य पै विभीषणजी को ॥ २०० ॥ श्रीराम देवजी ने स्थापित किया है वही यह लंका महापुरी है और नियम में स्थित साधुगणों से तीर्थयात्रा के प्रसंग से ॥ १ ॥ श्रीगंगाजी का जल मंगाकर रामेश्वरजी को अभिषेक करके ये बड़े भाग्यवान् समुद्र के मध्य में डाले

हुए देख पड़ते हैं ॥ २ ॥ उस से वे दृढ़ नियमोंवाले साधुलोग पापरहित होगये पुण्य के उदय में निश्चय कर वृद्धि होती है व पाप में न्यूनता होती है ॥ ३ ॥ पहले चातुर्विद्य ब्राह्मणलोग स्थान से भ्रष्ट किये गये फिर श्रीरामजी से जीर्णोद्धार से स्थापित किये गये हे ब्राह्मणो ! पूर्व जन्म में मैंने विष्णुजी का पूजन किया है ॥ ४ ॥ व इस समय आपलोगों के निश्चल भक्ति देखपड़ती है उस पुण्य के प्रभाव से प्रसन्न होकर मैं तुमलोगों को वर दूंगा ॥ ५ ॥ और पृथ्वी में मैं धन्य हूं व कृतार्थ हूं और उत्तम भाग्यवान् हूं व आज मेरा जन्म सफल होगया व जीवन भलीभांति जीवित हुआ ॥ ६ ॥ जो कि मैंने ब्राह्मणों के चरणों के समीप को

गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ॥ क्षिप्ता एते महाभागा दृश्यन्ते सागरान्तरे ॥ २ ॥ निष्पापास्तेन संजाताः साधवस्ते दृढव्रताः ॥ नूनं पुण्योदये वृद्धिः पापे हानिश्च जायते ॥ ३ ॥ स्थानभ्रष्टाः कृताः पूर्वं चातुर्विद्या द्विजातयः ॥ जीर्णोद्धारेण रामेण स्थापिताः पुनरेव हि ॥ पूर्वजन्मनि भो विप्रा हरिपूजा कृता मया ॥ ४ ॥ साम्प्रतं निश्चला भक्तिर्भवत्स्वेव हि दृश्यते ॥ तेन पुण्यप्रभावेण तुष्टो दास्यामि वो वरम् ॥ ५ ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं सुभाग्योहं धरातले ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ ६ ॥ यदहं ब्राह्मणानां च प्राप्तवांश्चरणान्तिकम् ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ दृष्ट्वैव हनुमन्तं ते पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥ सगद्गदमथोचुस्ते वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ २०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येहनुमत्समागमोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे प्रत्यूचुः पवनात्मजम् ॥ अधुना सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ १ ॥ अद्य नो

पाया ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि इस प्रकार हनुमान्जी को देखकर रोमांचित शरीरवाले उन वाक्य में चतुर ब्राह्मणों ने गद्गद समेत वचन को कहा ॥ २०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्समागमोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र को पुनि आये जिमि विप्र । सैंतिसवें अध्याय में सोई सुभग चरित्र ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर उन सब ब्राह्मणों ने हनुमान्जी से कहा कि इस समय हम सबों का जन्म सफल होगया व जीवित सुजीवित हुआ ॥ १ ॥ और आज हम सब मोढलोगों का धर्म व घर धन्य हैं और सब पृथ्वी धन्य है

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जहां कि अनेक प्रकार के धर्म हैं ॥ २ ॥ श्रीरामजी के भक्त और अक्षकुमार को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है और राक्षसों की पुरी को जलानेवाले तथा वज्र को धारनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३ ॥ और जानकीजी के हृदय की रक्षा करनेवाले दयात्मक के लिये तथा सीताजी के विरह से संतप्त श्रीरामजी के प्यारे हनुमान्जी के लिये प्रणाम है ॥ ४ ॥ हे महावीर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी में डूबते हुए हमलोगों की रक्षा कीजिये व ब्राह्मण देवजी के लिये प्रणाम है और पवन के पुत्र आप के लिये प्रणाम है ॥ ५ ॥ व श्रीरामजी के भक्त तथा गऊ व ब्राह्मणों का हित करनेवाले के लिये प्रणाम है और रुद्ररूपी व कृष्णमुखवाले आप के लिये प्रणाम

मोढलोकानां धन्यो धर्मश्च वै गृहाः ॥ धन्या च सकला पृथ्वी यत्र धर्मा ह्यनेकशः ॥ २ ॥ नमः श्रीरामभक्ताय अक्षविध्वंसनाय च ॥ नमो रक्षःपुरीदाहकारिणे वज्रधारिणे ॥ ३ ॥ जानकीहृदयत्राणकारिणे करुणात्मने ॥ सीताविरहतप्तस्य श्रीरामस्य प्रियाय च ॥ ४ ॥ नमोऽस्तु ते महावीर रक्षास्मान्मज्जतः क्षितौ ॥ नमो ब्राह्मणदेवाय वायुपुत्राय ते नमः ॥ ५ ॥ नमोऽस्तु रामभक्ताय गोब्राह्मणहिताय च ॥ नमोस्तु रुद्ररूपाय कृष्णवक्राय ते नमः ॥ ६ ॥ अञ्जनीसूनवे नित्यं सर्वव्याधिहराय च ॥ नागयज्ञोपवीताय प्रबलाय नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ स्वयं समुद्रतीर्णाय सेतुबन्धनकारिणे ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ स्तोत्रेणैवामुना तुष्टो वायुपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ वृणुध्वं हि वरं विप्रा यद्वोमनसि रोचते ॥ ९ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश रामाज्ञापालक प्रभो ॥ स्वरूपं दर्शयस्वाद्य लङ्कायां यत्कृतं हरे ॥ १० ॥ तथा विध्वंसयाद्य त्वं राजानं पापकारिणम् ॥ दुष्टं कुमारपालं हि आमं चैव न सं

है ॥ ६ ॥ व अंजनीकुमार के लिये तथा सदैव सब रोगों को हरनेवाले के लिये प्रणाम है व सर्पों का जनेऊ पहने और प्रबल आप के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ और आपही समुद्र को नाँघनेवाले व सेतु को बाँधनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले कि इस स्तोत्र से प्रसन्न पवनकुमार ने यह वचन कहा कि हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों के मन में जो रुचता हो उस वर को मांगिये ॥ ९ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करनेवाले, देवेश, प्रभो, हरे ! यदि तुम प्रसन्न हो तो तुमने लंका में बिध्वंस करने के लिये जिस रूप को दिखाया था उसको वैसेही आज तुम पापकारी व दुष्ट कुमारपाल और आम राजा को निस्सन्देह दिखलाइये

व उसको इस समय नाश कीजिये ॥ १० । ११ ॥ और जिस प्रकार वह जीविका के लोप के फल को इसी क्षण पावै तुम वैसाही करो व हे महाबाहो ! विश्वास के लिये हमलोगों को कुछ चिह्न दीजिये ॥ १२ ॥ कि जिस चिह्न के देने से वह राजा पुण्यभागी होवै और विश्वास दिखलाने पर वह शासन को पालैगा ॥ १३ ॥ और वेदत्रयी का धर्म विस्तार को प्राप्त करावैगा हे धर्मधीर, महावीर ! हमलोगों को स्वरूप को दिखलाइये ॥ १४ ॥ हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! बड़े शरीरवाला व तेजपुंजमय मेरा दिव्यस्वरूप कलियुग में नेत्रों के सामने प्राप्त होने योग्य नहीं है आपलोग ऐसा जानिये ॥ १५ ॥ तथापि मैं बड़ी भक्ति व स्तोत्रादिकों से प्रसन्न

शयः ॥ ११ ॥ वृत्तिलोपफलं सद्यः प्राप्नुयात्त्वं तथा कुरु ॥ प्रतीत्यर्थं महाबाहो किञ्चिच्चिह्नं ददस्व नः ॥ १२ ॥ येन चिह्ने न दत्तेन स राजा पुण्यभाग्भवेत् ॥ प्रत्यये दर्शिते वीर शासनं पालयिष्यति ॥ १३ ॥ त्रयीधर्म्मः पृथिव्यां तु विस्तारं प्रापयिष्यति ॥ धर्मधीर महावीर स्वरूपं दर्शयस्व नः ॥ १४ ॥ हनुमानुवाच ॥ मत्स्वरूपं महाकायं न चक्षुर्विषयं कलौ ॥ तेजोराशिमयं दिव्यमिति जानन्तु वाडवाः ॥ १५ ॥ तथापि परया भक्त्या प्रसन्नोऽहं स्तवादिभिः ॥ वसनान्तरितं रूपं दर्शयिष्यामि पश्यत ॥ १६ ॥ एवमुक्तास्तदा विप्राः सर्वकार्यसमुत्सुकाः ॥ महारूपं महाकायं महापुच्छसमाकुलम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा दिव्यस्वरूपं तं हनुमन्तं जहर्षिरे ॥ कथंचिद्धैर्यमालम्ब्य विप्राः प्रोचुः शनैः शनैः ॥ १८ ॥ यथोक्तं तु पुराणेषु तत्तथैव हि दृश्यते ॥ उवाच स हि तान्सर्वांश्चक्षुः प्रच्छाद्य संस्थितान् ॥ १९ ॥ फलानीमानि गृह्णीध्वं भक्षणार्थमृषीश्वराः ॥ एभिस्तु भक्षितैर्विप्रा ह्यतितृप्तिर्भविष्यति ॥ २० ॥ धर्मारण्यं विना चाद्य क्षुधा वः शाम्यति ध्रुवम् ॥ २१ ॥

हूं इस से वस्त्र से आच्छादितरूप को दिखलाता हूं देखिये ॥ १६ ॥ तब ऐसा कहे हुए सब कार्यों में उत्कंठित ब्राह्मण बड़ी भारी पूंछ से संयुत और बड़े शरीरवाले महारूप ॥ १७ ॥ व दिव्य स्वरूपवाले उन हनुमान्जी को देखकर प्रसन्नहुए और किसी प्रकार धीरज धरकर ब्राह्मणलोग धीरे धीरे बोले ॥ १८ ॥ कि पुराणों में जैसा कहा है वह वैसाही देख पड़ता है उन हनुमान्जी ने नेत्रों को मूंदकर स्थित उन सब ब्राह्मणों से कहा ॥ १९ ॥ कि हे ऋषीश्वरो ! खाने के लिये इन फलों को लीजिये हे ब्राह्मणो ! इन के खाने से बड़ी तृप्ति होगी ॥ २० ॥ और बिन धर्मारण्य के आज तुमलोगों की क्षुधा निश्चयकर शांत होजावैगी ॥ २१ ॥

व्यासजी बोले कि उस समय क्षुधा से संयुत ब्राह्मणोंने फलों का भक्षण किया और अमृत भोजनके समान उनकी तृप्ति हुई ॥ २२ ॥ हे राजन् ! न प्यास और न क्षुधा रही बरन यकायक वे ब्राह्मण प्रसन्न मन व विस्मय से संयुत चित्तवाले हुए ॥ २३ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! कलियुग प्राप्त होने पर मैं रामेश्वर शिवजी को छोड़कर वहां न आऊंगा॥ २४ ॥ मुझ से दिये हुए चिह्न को लेकर तुम वहां जावो तो उस राजा को यह सत्य प्रतीत होगा इसमें सन्देह नहीं है॥ २५ ॥ यह कहकर भुजा को उठाकर दोनों भुजाओं के अलग अलग रोमों को लेकर दो पोटली किया ॥ २६ ॥ और भूर्जपत्र से लपेटकर उन दोनों को ब्राह्मण की बगल

व्यास उवाच ॥ क्षुधाक्रान्तैस्तदा विप्रैः कृतं वै फलभक्षणम् ॥ अमृतप्राशनमिव तृप्तिस्तेषामजायत ॥ २२ ॥ न तृषा नैव क्षुच्चैव विप्राः संहृष्टमानसाः ॥ अभवन्सहसा राजन्विस्मयाविष्टचेतसः ॥ २३ ॥ ततः प्राहाञ्जनीपुत्रः सम्प्राप्ते हि कलौ द्विजाः ॥ नागमिष्याम्यहं तत्र मुक्त्वा रामेश्वरं शिवम् ॥ २४ ॥ अभिज्ञानं मया दत्तं गृहीत्वा तत्र गच्छत ॥ तथ्यमेतत्प्रतीयेत तस्य राज्ञो न संशयः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा बाहुमुद्धृत्य भुजयोरुभयोरपि ॥ पृथग्रोमाणि संगृह्य चकार पुटिकाद्वयम् ॥ २६ ॥ भूर्जपत्रेण संवेष्ट्य ते अदाद्द्विप्रकक्षयोः ॥ वामे तु वामकक्षोत्थां दक्षिणोत्थां तु दक्षिणे ॥ २७ ॥ कामदां रामभक्तस्य अन्येषां क्षयकारिणीम् ॥ उवाच च यदा राजा ब्रूते चिह्नं प्रदीयताम् ॥ २८ ॥ तदा प्रदीयतां शीघ्रं वामकक्षोद्भवा पुटी ॥ अथवा तस्य राज्ञस्तु द्वारे तु पुटिकां क्षिप ॥ २९ ॥ ज्वालयति च तत्सैन्यं गृहं कोशं तथैव च ॥ महिष्यः पुत्रकाः सर्वे ज्वलमानं भविष्यति ॥ ३० ॥ यदा तु वृत्तिं ग्रामांश्च वणि

में देदिया याने बायें बगल से रचित पोटली को बाईं बगल में व दाहिने बगल से उत्पन्न पोटली को दाहिनी बगल में दिया ॥ २७ ॥ जो कि श्रीरामजी के भक्त को मनोरथ को देनेवाली व अन्यलोगों का नाश करनेवाली थी और यह कहा कि जब राजा कहै कि चिह्न को दीजिये ॥ २८ ॥ तब शीघ्रही बायें बगल में उपजी हुई पोटली को दीजियेगा अथवा उस राजा के द्वार पै पोटली को फेंक दीजियेगा ॥ २९ ॥ तो वह उसकी सेना, घर व कोश (ख़ज़ाना) को जलावैगी और स्त्रियां व पुत्र सब जल जावैगा ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! जब जीविका, ग्राम व वणिजों की बलि और जो कुछ पहले स्थित था उस उस वस्तु को

देवैगा ॥ ३१ ॥ याने लिखकर व निश्चयकर वह राजा जब पहले की नाईं देदेवै और हाथों को जोड़कर प्रणाम करै ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तब श्रीरामजी से पहले दीहुई जीविका को पाकर तदनन्तर दाहिनी बगल में स्थित बालों की इस पोटली को ॥ ३३ ॥ फेंक दीजियेगा तब पहले की नाईं सेना होजावैगी और घर, ख़ज़ाना व पुत्र, पौत्रादिक ॥ ३४ ॥ अग्नि से छोड़े हुए वे उसी क्षण देख पड़ैंगे हनुमान्जी से कहे हुए अमृत के समान उत्तम वचन को सुनकर ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणों ने हर्ष को पाया और नृत्य किया व बहुत गरजनेलगे और कोई जय कहनेलगे व परस्पर हँसनेलगे ॥ ३६ ॥ व सब शरीर में रोमांच संयुत वे बार २ स्तुति करनेलगे और कितेक

जां च बलिं तथा ॥ पूर्वं स्थितं तु यत्किञ्चित्तत्तद्दास्यति वाडवाः ॥ ३१ ॥ लिखित्वा निश्चयं कृत्वाप्यथ दद्यात्स पूर्ववत् ॥ करसम्पुटकं कृत्वा प्रणमेच्च यदा नृपः ॥ ३२ ॥ सम्प्राप्य च पुरावृत्तिं रामदत्तां द्विजोत्तमाः ॥ ततो दक्षिणकक्षास्थकेशानां पुटिका त्वियम् ॥ ३३ ॥ प्रक्षिप्यतां तदा सैन्यं पुरावच्च भविष्यति ॥ गृहाणि च तथा कोशः पुत्रपौत्रादयस्तथा ॥ ३४ ॥ वह्निना मुच्यमानास्ते दृश्यन्ते तत्क्षणादिति ॥ श्रुत्वाऽमृतमयं वाक्यं वायुजेनोदितं परम् ॥ ३५ ॥ अलभन्त मुदं विप्रा ननृतुः प्रजगुर्भृशम् ॥ जयं चोदैरयन्केऽपि प्रहसन्ति परस्परम् ॥ ३६ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः स्तुवन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ पुच्छं तस्य च संगृह्य चुचुम्बुः केचिदुत्सुकाः ॥ ३७ ॥ ब्रूतेऽन्यो मम यत्नेन कार्यं नियतमेव हि ॥ अन्यो ब्रूते महाभाग मयेदं कृतमित्युत ॥ ३८ ॥ ततः प्रोवाच हनुमांस्त्रिरात्रं स्थीयतामिह ॥ रामतीर्थस्य च फलं यथा प्राप्स्यथ वाडवाः ॥ ३९ ॥ तथेत्युक्त्वाथ ते विप्रा ब्रह्मयज्ञं प्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मघोषेण महता तद्वनं बधिरं कृतम् ॥ ४० ॥

हर्षित ब्राह्मणलोग उन हनुमान्जी की पूंछ को पकड़कर चूमनेलगे ॥ ३७ ॥ व अन्य कोई कहनेलगा कि मेरे उपाय से कार्य निश्चयकर होगया और कोई अन्य कहता था कि हे महाभाग ! मैंने इसको किया है ॥ ३८ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग यहां तीन रात्रि तक टिकिये कि जिस प्रकार श्रीरामतीर्थ का फल पाइयेगा ॥ ३९ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर उन ब्राह्मणों ने ब्रह्मयज्ञ किया और बड़ी भारी वेदध्वनि से वह वन बहरा करदिया गया ॥ ४० ॥

तीन रात्रि तक टिककर जाने की बुद्धि करके उन ब्राह्मणों ने रात्रि में हनुमान्‌जी के आगे उत्तम भक्ति से यह कहा ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे तात ! हमलोग प्रातः-काल बहुतही निर्मल धर्मारण्य को जावैंगे और हमको भूलना न चाहिये व क्षमा कीजिये क्षमा कीजियेगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! पवनकुमार ने पर्वत से दश योजन चौड़ी और चार शालाओंवाली बड़ी भारी शिलाको ॥ ४३ ॥ बिछाकर उन ब्राह्मणों से कहा कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! मुझसे रक्षा किये हुए तुमलोग शोक रहित होकर शिला पै शयन करो ॥ ४४ ॥ यह सुनकर तदनन्तर सब ब्राह्मण सुखदायिनी निद्रा को प्राप्त हुए इस प्रकार वे कृतार्थ होकर संध्यासमय में सो गये ॥ ४५ ॥

स्थित्वा त्रिरात्रं ते विप्रा गमने कृतबुद्धयः ॥ रात्रौ हनुमतोऽग्रे त इदमूचुः सुभक्तितः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ वयं प्रातर्गमिष्यामो धर्मारण्यं सुनिर्मलम् ॥ न विस्मार्या वयं तात क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ ४२ ॥ ततो वायुसुतो राजन्पर्वतान्महतीं शिलाम् ॥ बृहतीं च चतुःशालां दशयोजनमायतीम् ॥ ४३ ॥ आस्तीर्य प्राह तान्विप्रान्द्विलायां द्विजसत्तमाः ॥ रक्ष्यमाणा मया विप्राः शयीध्वं विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा ततः सर्वे निद्रामापुः सुखप्रदाम् ॥ एवं ते कृतकृत्यास्तु भूत्वा सुप्ता निशामुखे ॥ ४५ ॥ कृपालुः स च रुद्रात्मा रामशासनपालकः ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणामतिष्ठच्च धरातले ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्ते सर्वे निद्रामुपागताः ॥ तातं सम्प्रार्थयामास कृतानुग्रहको भवान् ॥ ४७ ॥ समीरण द्विजानेतान्स्थानं स्वं प्रापयस्व भोः ॥ ततो निद्राभिभूतांस्तान्वायुः पुत्रप्रणोदितः ॥ ४८ ॥ समुद्धृत्य शिलां तां तु पिता पुत्रेण भारत ॥ निशीथे यापयामास स्वस्थानं द्विजसत्त

और श्रीरामजी का शासन पालन करनेवाले वे रुद्रात्मक दयालु हनुमान्‌जी ब्राह्मणों की रक्षा के लिये पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि आधी रात प्राप्त होने पर जब सब निद्रा को प्राप्त हुए तब हनुमान्‌जी ने पिता (पवन) जी से प्रार्थना किया कि आप दया करनेवाले हो ॥ ४७ ॥ हे पवन ! इन ब्राह्मणों को अपने स्थान में प्राप्त कीजिये तदनन्तर हे भारत ! पुत्र से प्रेरित पवन पिता ने शिला को उठाकर निद्रा से तिरस्कृत उन द्विजोत्तमों ब्राह्मणों को आधी रात में अपने स्थान

को प्राप्त किया ॥ ४८ । ४६ ॥ जिस मार्ग को ब्राह्मणलोग छः महीने में नाँघे थे उसको द्विजोत्तमलोग तीन मुहूर्त में प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ और घूमती हुई शिला को जानकर वात्स्यगोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के आगे लोगों से मधुर व अप्रकट गान किया ॥ ५१ ॥ और गायक से गाये हुए गीतों को सुनकर ब्राह्मण लोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रातःकाल होने पर वे उठपड़े और आपस में ॥ ५२ ॥ विस्मय को प्राप्त उन सब ब्राह्मणों ने कहा कि यह स्वप्न है व भ्रम है और शीघ्रता समेत उन ब्राह्मणों ने उठकर सत्यमंदिर को देखा ॥ ५३ ॥ और भीतर की बुद्धि से हनुमानजी के प्रभाव को देखकर व वेदध्वनि को सुनकर ब्राह्मणलोग बड़े हर्ष

मान् ॥४६॥ षड्भिर्मासैश्च यः पन्था अतिक्रान्तो द्विजातिभिः ॥ त्रिभिरेव मुहूर्तैस्तु तं च प्रापुर्द्विजर्षभाः ॥५०॥ भ्रम माणां शिलां ज्ञात्वा विप्र एको द्विजाग्रतः ॥ वात्स्यगोत्रसमुत्पन्नो लोकान्सङ्गीतवान्कलम् ॥ ५१ ॥ गीतानि गाय नोक्तानि श्रुत्वा विस्मयमाययुः ॥ प्रभाते सुप्रसन्ने तु उदतिष्ठन्परस्परम् ॥ ५२ ॥ ऊचुस्ते विस्मिताः सर्वे स्वप्नोऽयं वाथ विभ्रमः ॥ ससम्भ्रमाः समुत्थाय ददृशुः सत्यमन्दिरम् ॥ ५३ ॥ अन्तर्बुद्ध्या समालोक्य प्रभावं वायुजस्य च ॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ ५४ ॥ ग्रामीणाश्च ततो लोका दृष्ट्वा तु महतीं शिलाम् ॥ अद्भुतं मेनिरे सर्वे किमिदं किमिदं त्विति ॥ ५५ ॥ गृहे गृहे हि ते लोकाः प्रवदन्ति तथाद्भुतम् ॥ ब्राह्मणैः पूर्यमाणा सा शिला च महती शुभा ॥ ५६ ॥ अशुभा वा शुभा वापि न जानीमो वयं किल ॥ संवदन्ते ततो लोकाः परस्परमिदं वचः ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ ततो द्विजानां ते पुत्राः पौत्राश्चैव समागताः ॥ ऊचुश्च दिष्ट्या भो विप्रा आगताः पथिका द्विजाः ॥५८॥

को प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सब ग्रामीणलोगों ने बड़ी भारी शिला को देखकर अद्भुत माना कि यह क्या है यह क्या है ॥ ५५ ॥ और घर घर में वे लोग वैसे आश्चर्य को कहते थे कि ब्राह्मणों से पूर्ण वह बड़ी भारी शिला ॥ ५६ ॥ अशुभ है या शुभ है इसको हमलोग नहीं जानते हैं उसी कारण लोग परस्पर यह वचन कहते थे ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर ब्राह्मणों के वे पुत्र व पौत्र आये व बोले कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये यह आनन्द है ॥ ५८ ॥

और वे ब्राह्मण प्रसन्न मन से हर्ष से प्रत्युत्थान व प्रणाम से गये और मिलकर ॥ ५९ ॥ व सूंघकर और यथायोग्य पूजकर विस्तार करके सब अपने आगमन को शीघ्रही कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर चन्दन, ताम्बूल व कुंकुम से उन सबों को पूजकर शांतिपाठ को पढ़ते हुए वे प्रसन्न होकर अपने घरों को गये ॥ ६१ ॥ और प्रातःकाल उठ कर उत्कंठा समेत व हर्ष से पूर्ण उन पथिकलोगों ने आनंदा के महास्थान में बड़े भारी स्थान को देखा ॥ ६२ ॥ और वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए कि यह कौन उत्तम स्थान है और यहां दक्षिण द्वार पै शांतिपाठ पढ़ा जाता है ॥ ६३ ॥ और इन्द्र के घर के समान सुन्दर घर देख पड़ते हैं व अग्नि के समान सुन्दर कुलमातृ-

ते तु सन्तुष्टमनसा सन्मुखाः प्रययुर्मुदा ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां परिरम्भणकं तथा ॥ ५९ ॥ आघ्राणकादींश्च कृत्वा यथायोग्यं प्रपूज्य च ॥ सर्वं विस्तार्य कथितं शीघ्रमागममात्मनः ॥ ६० ॥ ततः सम्पूज्य तान्सर्वान्गन्ध ताम्बूलकुङ्कुमैः ॥ शान्तिपाठं पठन्तस्ते हृष्टा निजगृहान्ययुः ॥ ६१ ॥ आनन्दाया महापीठे प्रातः पान्थाः समुत्थिताः ॥ ददृशुस्ते महास्थानं सोत्कण्ठा हर्षपूरिताः ॥ ६२ ॥ आश्चर्यं परमं प्रापुः किमेतत्स्थानमुत्तमम् ॥ अयं तु दक्षिणद्वारे शान्तिपाठोऽत्र पठ्यते ॥ ६३ ॥ गृहा रम्याः प्रदृश्यन्ते शचीपतिगृहोपमाः ॥ प्रासादाः कुलमातृ णां दृश्यन्ते चाग्निशोभनाः ॥ ६४ ॥ एवं ब्रुवत्सु विप्रेषु महाशक्तिप्रपूजने ॥ आगतो ब्राह्मणोऽपश्यत्तत्र विप्रक दम्बकम् ॥ ६५ ॥ हर्षितो धावितस्तत्र यत्र विप्राः सभासदः ॥ उवाच दिष्ट्या भो विप्रा ह्यागताः पथिका द्वि जाः ॥ ६६ ॥ प्रत्युत्तस्थुस्ततो विप्राः पूजां गृह्य समागताः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादौ चाकुर्वंस्ते च परस्परम् ॥ ६७ ॥ तेते

काओं के घर देख पड़ते हैं ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर महाशक्ति के पूजन में वहां आये हुए ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के समूह को देखा ॥ ६५ ॥ और वहां ब्राह्मण प्रसन्न होकर गया जहां कि ब्राह्मण थे व सभासद ब्राह्मण ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! आनन्द है जो कि आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर आये हुए ब्राह्मण पूजन को लेकर उठे और उन्हों ने परस्पर प्रत्युत्थान व प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ और उन्हों ने यथायोग्य विधिपूर्वक पूजकर जो हनुमान्जी का वृत्तान्त था उसको

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ब्राह्मण के आगे प्रकाशित किया ॥ ६८॥ पथिकों का वचन सुनकर द्विजोत्तमलोग हर्ष से पूर्ण हुए व शांतिपाठ को पढ़ते हुए वे प्रसन्न होकर अपने घरों को चले गये ॥ ६९ ॥ व प्रातःकाल प्रतिष्ठित ब्राह्मणलोग विचारकर ज्योतिषियों से मिले और ब्राह्मय मुहूर्त में उठकर ब्राह्मणलोग कान्यकुब्जदेश को गये ॥ ७० ॥ कितेक दोलाओं के ऊपर सवार हुए व कितेक ब्राह्मण घोड़ों व रथों के ऊपर सवार हुए और कितेक पालकियों के ऊपर सवार हुए और वे ब्राह्मण अनेक प्रकार की सवारियों पै प्राप्त हुए ॥ ७१ ॥ और उस नगर को जाकर श्रीगंगाजी के उत्तम किनारे बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने निवास किया व स्नान और दानादिक कर्म किया ॥ ७२ ॥ और

सम्पूज्य वेगात्तु यथायोग्यं यथाविधि ॥ हरीश्वरस्य यद्वृत्तं विप्राग्रे सम्प्रकाशितम् ॥ ६८ ॥ पथिकानां वचः श्रुत्वा हर्षपूर्णा द्विजोत्तमाः ॥ शान्तिपाठं पठन्तस्ते हृष्टा निजगृहान्ययुः ॥ ६९ ॥ विमृश्य मिलिताः प्रातर्ज्योतिर्विद्भिः प्रतिष्ठिताः ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय कान्यकुब्जं गता द्विजाः ॥ ७० ॥ दोलाभिर्वाहिताः केचित्केचिदश्वै रथैस्तथा ॥ केचित्तु शिबिकारूढा नानावाहनगाश्च ते ॥ ७१ ॥ तत्पुरं तु समासाद्य गङ्गायाः शोभने तटे ॥ अकुर्वन्वसतिं धीराः स्नानदानादिकर्म्म च ॥ ७२ ॥ चरेण केनचिद्दृष्टाः कथिता नृपसन्निधौ ॥ अश्वाश्च बहुशो दोला रथाश्च बहुशो वृषाः ॥ ७३ ॥ विप्राणामिह दृश्यन्ते धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ नूनं ते च समायाता नृपेणोक्तं ममाग्रतः ॥ ७४ ॥ अभिज्ञानाय मे पूर्वं प्रेषिताः कपिसन्निधौ ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनं नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

किसी गुप्त दूत ने देखा व राजा के समीप कहा कि बहुत से घोड़ा, दोला, रथ और बहुत से बैल ॥ ७३ ॥ यहां धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मणों के देख पड़ते हैं राजा ने कहा कि वे निश्चयकर मेरे आगे आवैंगे ॥ ७४ ॥ क्योंकि पहले मैंने उनको चिह्न के लिये हनुमान्जी के समीप पठाया था ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । दियो वृत्ति जिमि द्विजन पुनि रामपाल भूपाल । अर्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल होने पर दिन के पूर्वभाग का कार्य करके उत्तम वस्त्रों को पहने हुए उन ब्राह्मणों ने पृथक् २ फलों को हाथ में लिया ॥ १ ॥ और रत्न के बजुल्ला को भुजदंडों में पहने तथा अँगूठियों से भूषित और कर्णों के आभूषणों से संयुत वे ब्राह्मण प्रसन्न होकर आये ॥ २ ॥ और राजद्वार को प्राप्त होकर वे ब्रह्मवादी ब्राह्मण स्थित हुए व उनको देखकर बलवान् राजपुत्र ने कुछ हास्य किया ॥ ३ ॥ व कहा कि हे सब मंत्रियो ! सुनिये कि श्रीराम व हनुमान्जी के समीप जाकर व देखकर आये हैं उन द्विजोत्तमों को

व्यास उवाच ॥ ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ॥ शुभवस्त्रपरीधानाः फलहस्ताः पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ रत्नाङ्गदाढ्यदोर्दण्डा अङ्गुलीयकभूषिताः ॥ कर्णाभरणसंयुक्ताः समाजग्मुः प्रहर्षिताः ॥ २ ॥ राजद्वारं तु सम्प्राप्य सन्तस्थुर्ब्रह्मवादिनः ॥ तान्दृष्ट्वा राजपुत्रस्तु ईषत्प्रहसितो बली ॥ ३ ॥ रामं च हनुमन्तं च गत्वा विप्राः समागताः ॥ श्रूयतां मन्त्रिणः सर्वे पश्यत द्विज सत्तमान् ॥ ४ ॥ एतदुक्त्वा तु वचनं तूष्णीं भूत्वा स्थितो नृपः ॥ ततो द्वित्रा द्विजाः सर्वे उपविष्टाः क्रमात्ततः ॥ ५ ॥ क्षेमं पप्रच्छुर्नृपतिं हस्तिरथपदातिषु ॥ ततः प्रोवाच नृपतिर्विप्रान्प्रति महामनाः ॥ ६ ॥ अर्हन्देवप्रसादेन सर्वत्र कुशलं मम ॥ सा जिह्वा या जिनं स्तौति तौ करौ यौ जिनार्चनौ ॥ ७ ॥ सा दृष्टिर्या जिने लीना तन्मनो यज्जिने रतम् ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या जीवात्मा पूज्यते सदा ॥ ८ ॥ योगशाला हि गन्त

देखिये ॥ ४ ॥ यह वचन कहकर राजा चुप होकर स्थित हुआ तदनन्तर दो तीन व सब ब्राह्मण क्रम से बैठे ॥ ५ ॥ व उन्हों ने राजा से हाथी, रथ और पैदलों में कुशल पूंछा तदनन्तर उदार मनवाले राजा ने ब्राह्मणों से कहा ॥ ६ ॥ कि अर्हन्देव की प्रसन्नता से मेरे सब कहीं कुशल है और वह जिह्वा है कि जो जिन देवता की स्तुति करती है और वे हाथ हैं कि जो जिन देवता के पूजक हैं ॥ ७ ॥ और वह दृष्टि है जो कि जिन में लीन है व मन वही है जो कि जिन में अनुरागी है और सब में दया करना चाहिये व जीवात्मा सदैव पूजा जाता है ॥ ८ ॥ और योगशाला में जाना चाहिये व गुरु का प्रणाम करना चाहिये और नचकार मंत्र दिन

रात जपना चाहिये ॥ ९ ॥ व पंचूषण करना चाहिये और सदैव श्रमण देना चाहिये उसका वचन सुनकर तदनन्तर ब्राह्मणलोग दांतों को पीसनेलगे ॥ १० ॥ और बड़े श्वास को छोड़कर उन्हों ने राजा से कहा कि हे राजन्! श्रीराम व हनुमान्जी ने कहा है ॥ ११ ॥ कि ब्राह्मणों की जीविका को देदीजिये क्योंकि पृथ्वी में तुम धर्मिष्ठ हो और तुम्हारी दीहुई जानी जाती है मुझ से नहीं दीगई है ॥ १२ ॥ श्रीरामजी के वचन की तुम रक्षा करो कि जिसको करके तुम सुखी होवो ॥ १३ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो! जहां श्रीराम व हनुमान्जी हैं वहां आप सब जावो श्रीरामजी सर्बस देवैंगे यहां तुमलोग क्यों प्राप्त हुए हो ॥ १४ ॥

व्या कर्त्तव्यं गुरुवन्दनम् ॥ नचकारं महामन्त्रं जपितव्यमहर्निशम् ॥ ९ ॥ पञ्चूषणं हि कर्त्तव्यं दातव्यं श्रमणं सदा ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्रास्तस्य दन्तानपीडयन् ॥ १० ॥ विमुच्य दीर्घनिश्वासमूचुस्ते नृपतिं प्रति ॥ रामेण कथितं राजन्धीमता च हनूमता ॥ ११ ॥ दीयतां विप्रवृत्तिं च धर्मिष्ठोऽसि धरातले ॥ ज्ञायते तव दत्ता स्यान्मद्दत्ता नैव नैव च ॥ १२ ॥ रक्षस्व रामवाक्यं त्वं यत्कृत्वा त्वं सुखी भव ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ यत्र रामहनूमन्तौ यान्तु सर्वेऽपि तत्र वै ॥ रामो दास्यति सर्वस्वं किं प्राप्ता इह वै द्विजाः ॥ १४ ॥ न दास्यामि न दास्यामि एकां चैव वराटिकाम् ॥ न ग्रामं नैव वृत्तिं च गच्छध्वं यत्र रोचते ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं द्विजाः कोपाकुलास्तदा ॥ सहस्व रामकोपं हि साम्प्रतञ्च हनूमतः ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा हनुमद्दत्ता वामकक्षोद्भवा पुटी ॥ प्रक्षिप्ता चास्य निलये व्यावृत्ता द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥ गते तदा विप्रसङ्घे ज्वालामालाकुलं त्वभूत् ॥ अग्निज्वालाकुलं सर्वं सञ्जातं चैव तत्र

मैं एक कौड़ी को न दूंगा न दूंगा और ग्राम व जीविका को नहीं दूंगा जहां रुचि होवै वहां जाइये ॥ १५ ॥ उस कठिन वचन को सुनकर उस समय क्रोध से विकल ब्राह्मणों ने कहा कि इस समय श्रीराम व हनुमान्जी के कोप को सहिये ॥ १६ ॥ यह कहकर हनुमान्जी से दीहुई बाईं बगल से उपजी पोटली को इसके स्थान में उन्हों ने फेंक दिया व द्विजोत्तम लोग लौटपड़े ॥ १७ ॥ तब द्विजगण चले जाने पर सब स्थान ज्वालाओं की माला से व्याप्त होगया और सब स्थान वहां अग्नि

की ज्वालाओं से युक्त हुआ ॥ १८ ॥ और राजा की वस्तुवें छत्र और चँवर जलने लगे व ख़ज़ाने के सब घर व शस्त्रों के घर जलनेलगे ॥ १९ ॥ और स्त्रियां, राजपुत्र, हांथी व अनेक घोड़े, विमान और सवारी जलनेलगीं ॥ २० ॥ और विचित्र पालकी व हज़ारों रथ जलनेलगे और सब कहीं जलती हुई वस्तु को देखकर राजा भी दुःखी हुआ ॥ २१ ॥ और उसका कोई भी रक्षक न हुआ व मनुष्य भय से विकल हुए और वह अग्नि मंत्रों व यंत्रों और जड़ों से शान्त न हुई ॥ २२ ॥ जहां करोड़ों कुटिलताओं को नाशनेवाले श्रीरामजी क्रोधित होते हैं वहां सब नाश होजाते हैं तो कुमारपालक को क्या कहना है ॥ २३ ॥ तब उस जलतीहुई सब वस्तु को देख

हि ॥ १८ ॥ दह्यन्ते राजवस्तूनिच्छत्राणि चामराणि च ॥ कोशागाराणि सर्वाणि आयुधागारमेव च ॥ १९ ॥ महिष्यो राजपुत्राश्च गजा अश्वा ह्यनेकशः ॥ विमानानि च दह्यन्ते दह्यन्ते वाहनानि च ॥ २० ॥ शिबिकाश्च विचित्रा वै रथाश्चैव सहस्रशः ॥ सर्वत्र दह्यमानं च दृष्ट्वा राजापि विव्यथे ॥ २१ ॥ न कोपि त्राता तस्यास्ति मानवा भयविह्वलाः ॥ न मन्त्रयन्त्रैर्वह्निः स साध्यते न च मूलिकैः ॥ २२ ॥ कौटिल्यकोटिनाशी च यत्र रामः प्रकुप्यते ॥ तत्र सर्वे प्रणश्यन्ति किं तत्कुमारपालकः ॥ २३ ॥ सर्वे तज्ज्वलितं दृष्ट्वा नग्नक्षपणकास्तदा ॥ धृत्वा करेण पात्राणि नीत्वा दण्डाञ्छुभानपि ॥ २४ ॥ रक्तकम्बलिका गृह्य वेपमाना मुहुर्मुहुः ॥ अनुपानहिकाश्चैव नष्टाः सर्वे दिशो दश ॥ २५ ॥ कोलाहलं प्रकुर्वाणाः पलायध्वमिति ब्रुवन् ॥ दाहिता विप्रमुख्यैश्च वयं सर्वे न संशयः ॥ २६ ॥ केचिच्च भग्नपात्रास्ते भग्नदण्डास्तथापरे ॥ प्रणष्टाश्च विवस्त्रास्ते वीतरागमितिब्रुवन् ॥ २७ ॥ अर्हन्तमेव केचिच्च पलायनपरायणाः ॥

कर बौद्धलोग हाथ से पात्रों को धारणकर व उत्तम दंडों को भी लेकर ॥ २४ ॥ और लाली कम्बलियों को लेकर बार २ काँपने लगे और बिन पनहियों को पहने हुए वे सब दशो दिशाओं को भगगये ॥ २५ ॥ कोलाहल करतेहुए उन्होंने ऐसा कहा कि भागिये क्योंकि मुख्य ब्राह्मणों ने हम सबों को जला दिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ कितेक लोगों के पात्र फूट गये व अन्य मनुष्यों के दंड टूट गये और भागने में तत्पर कितेक नग्न वे जैनी उन अर्हन्जी को स्नेहरहित ऐसा कहते हुए

भग गये तदनन्तर अग्नि को बढ़ाता हुआ सा पवन उत्पन्न हुआ ॥ २७ । २८ ॥ जिसको ब्राह्मणों की प्रिय कामना से हनुमान्जी ने पठाया था पश्चात् उस समय इधर उधर दौड़ता हुआ वह राजा ॥ २९ ॥ पैदल अकेला रोता व यह कहता हुआ भगा कि ब्राह्मण कहां हैं तदनन्तर लोगों से सुनकर वह राजा वहां गया जहां कि ब्राह्मण थे ॥ ३० ॥ व हे राजन् ! उस समय जाकर वह राजा यकायक ब्राह्मणों के पैरों को पकड़कर तब मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ३१ ॥ व हे राम राम ! ऐसा बारबार दशरथकुमार श्रीरामजी को जपते हुए व विनय में तत्पर राजा ने ब्राह्मणों से यह कहा ॥ ३२ ॥ कि उन श्रीरामजी के दास का भी मैं दास हूं व

ततो वायुः समभवद्वह्निमान्दोलयन्निव ॥ २८ ॥ प्रेषितो वै हनुमता विप्राणां प्रियकाम्यया ॥ धावन्स नृपतिः पश्चादितश्चेतश्च वै तदा ॥ २९ ॥ पदातिरेकः प्ररुदन्क विप्रा इति जल्पकः ॥ लोकाच्छ्रुत्वा ततो राजा गतस्तत्र यतो द्विजाः ॥ ३० ॥ गत्वा तु सहसा राजन्गृहीत्वा चरणौ तदा ॥ विप्राणां नृपतिर्भूमौ मूर्च्छितो न्यपतत्तदा ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजा विप्रान्विनयतत्परः ॥ जपन्दाशरथिं रामं रामरामेति वै पुनः ॥ ३२ ॥ तस्य दासस्य दासोहं रामस्य च द्विजस्य च ॥ अज्ञानतिमिरान्धेन जातोस्म्यन्धो हि सम्प्रति ॥ ३३ ॥ अञ्जनं च मया लब्धं रामनाममहौषधम् ॥ रामं मुक्त्वा हि ये मर्त्या ह्यन्यं देवमुपासते ॥ दह्यन्ते तेऽग्निना स्वामिन्यथाहं मूढचेतनः ॥ ३४ ॥ हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः ॥ भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेकं जगत्त्रये ॥ ३५ ॥ स्वर्गस्य चैव सोपानं विप्रा भागीरथी हरिः ॥ रामनाममहारज्ज्वा वैकुण्ठे येन नीयते ॥ ३६ ॥ इत्येवं प्रणमन् राजा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ वह्निः प्रशा

ब्राह्मण का सेवक हूं इस समय अज्ञानरूपी बड़े भारी अन्धकार से मैं अन्ध होगया ॥ ३३ ॥ और रामनामरूपी बड़ीभारी औषध को मैंने पाया जो मनुष्य श्रीराम जी को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करते हैं हे स्वामिन् ! वे मुझ मूर्ख की नाईं अग्नि से जलाये जाते हैं ॥ ३४ ॥ विष्णु व गंगाजी ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण गंगा व विष्णुजी हैं त्रिलोक में गंगा, विष्णु व ब्राह्मण केवल सारांश हैं ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण, गंगा व विष्णु स्वर्ग की सीढ़ी हैं कि जिस रामनामरूपी बड़ी भारी रस्सी से मनुष्य वैकुण्ठ में प्राप्त किया जाता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार प्रणाम करते हुए राजा ने हाथों को जोड़कर यह वचन कहा कि हे ब्राह्मणो ! अग्नि को शान्त कीजिये मैं

तुमलोगों को जीविका दूंगा ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैं इस समय दास हूं और मेरा वचन अन्यथा नहीं होताहै पराई स्त्री से भोग करनेवाले मनुष्योंको व ब्रह्महत्या का जो पाप होता है ॥ ३८ ॥ और सुवर्ण चुरानेवाले व मदिरा पीनेवालों को जो पाप होताहै और गुरुको मारनेवालों को जो पाप होता है वही पाप मुझको होवै ॥ ३९ ॥ और जो जिस जिस मनोरथ की इच्छा करैगा उसको मैं उस उस अभिलाष को दूंगा और सदैव ब्राह्मणों की भक्ति व श्रीरामजी की भक्ति करना चाहिये ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्यथा मैं कभी न करूंगा ॥ ४१ ॥ व्यासजी बोले कि हे भूप ! उस समय ब्राह्मणलोग दयालु होगये और जो दूसरी पोटली थी उसको शाप की शान्ति के लिये

म्यतां विप्राः शासनं वो ददाम्यहम् ॥ ३७ ॥ दासोऽस्मि साम्प्रतं विप्रा न मे वागन्यथा भवेत् ॥ यत्पापं ब्रह्महत्यायाः परदाराभिगामिनाम् ॥ ३८ ॥ यत्पापं मद्यपानां च सुवर्णस्तेयिनां तथा ॥ यत्पापं गुरुघातानां तत्पापं वा भवेन्मम ॥ ३९ ॥ यं यं चिन्तयते कामं तं तं दास्याम्यहं पुनः ॥ विप्रभक्तिः सदा कार्या रामभक्तिस्तथैव च ॥ ४० ॥ अन्यथा करणीयं मे न कदाचिद् द्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्मिन्नवसरे विप्रा जाता भूप दयालवः ॥ अन्या या पुटिका चासीत्सा दत्ता शापशान्तये ॥ ४२ ॥ जीवितं चैव तत्सैन्यं जातं क्षिप्तेषु रोमसु ॥ दिशः प्रसन्नाः सञ्जाताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ ४३ ॥ प्रजा स्वस्थाऽभवत्तत्र हर्षनिर्भरमानसा ॥ अवतस्थे यथापूर्वं पुत्रपौत्रादिकं तथा ॥ ४४ ॥ विप्राज्ञाकारिणो लोकाः सञ्जाताश्च यथा पुरा ॥ विष्णुधर्मं परित्यज्य नान्यं जानन्ति ते वृषम् ॥ ४५ ॥ नवीनं शासनं कृत्वा पूर्ववद्विधिपूर्वकम् ॥ निष्कासितास्तु पाखण्डाः कृतशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ४६ ॥

देदिया ॥ ४२ ॥ और रोमों के फेंकने पर वह सेना जीउठी और दिशाएं निर्मल होगईं व दिशाओं में उपजे हुए शब्द शांत होगये ॥ ४३ ॥ और वहां हर्ष से पूर्ण मनवाले प्रजालोग स्वस्थ होगये व पुत्र, पौत्रादिक पहले की नाईं स्थित हुआ ॥ ४४ ॥ और पहले की नाईं मनुष्य ब्राह्मणों की आज्ञा को करनेवाले हुए व विष्णुजी के धर्म को छोड़कर वे अन्य धर्म को न जाननेलगे ॥ ४५ ॥ और शासन को नवीन करके पहले की नाईं विधिपूर्वक शास्त्रों के प्रयोगकर्त्ता हुए और पाखण्ड निकाल दियेगये॥ ४६ ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और वेदसे बाहर कियेहुए वे उत्तम, मध्यम व नीच नष्ट होगये और पहले जो छत्तीस हज़ार गोभुज हुए थे ॥ ४७ ॥ उनके मध्यसे अढबीज वणिज् लोग उत्पन्न हुए और राजा ने उन सबों को ब्राह्मणों की सेवाके लिये निरूपण किया ॥ ४८ ॥ और पाखण्ड के मार्ग को छोड़कर वे उत्तम आचारवाले तथा अत्यन्त निपुण व देवताओं और ब्राह्मणों के पूजक वे विष्णुजी की भक्ति में परायण हुए ॥ ४९ ॥ राजाने गंगाजी के किनारे जाकर त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये जीविका को दिया जब उनको भक्तिपूर्वक शासन (वृत्ति) दिया गया ॥ ५० ॥ तब स्थान के धर्म से चले हुए वे ब्राह्मण आये और क्लेश करनेवाले उन ब्राह्मणों ने राजा से यह कहा ॥५१॥

वेदबाह्याः प्रणष्टास्ते उत्तमाधममध्यमाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि येऽभूवन्गोभुजाः पुरा ॥ ४७ ॥ तेषां मध्यात्तु स ञ्जाता अढबीजा वणिग्जनाः ॥ शुश्रूषार्थं ब्राह्मणानां राज्ञा सर्वे निरूपिताः ॥ ४८ ॥ सदाचाराः सुनिपुणा देवब्राह्मणपूज काः ॥ त्यक्त्वा पाखण्डमार्गं तु विष्णुभक्तिपरास्तु ते ॥ ४९ ॥ जाह्नवीतीरमासाद्य त्रैविद्येभ्यो ददौ नृपः ॥ शासनं तु यदा दत्तं तेषां वै भक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ स्थानधर्मात्प्रचलिता वाडवास्ते समागताः ॥ नृपो विज्ञापितो विप्रैस्तैरेवं क्लेश कारिभिः ॥ ५१ ॥ ये त्यक्तवाचो विप्रेन्द्रास्तान्निःसारय भूपते ॥ परस्परं विवादास्तु सञ्जाता दत्तवृत्तये ॥ ५२ ॥ न्याय प्रदर्शनार्थं च कारितास्तु सभासदः ॥ हस्ताक्षरेषु दृष्टेषु पृथक्पृथक् प्रपादितम् ॥ ५३ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो राजा तुला दानं चकार ह ॥ दीयमाने तदा दाने चातुर्विद्या बभाषिरे ॥ ५४ ॥ अस्माभिर्हारिता जातिः कथं कुर्मः प्रतिग्रहम् ॥ निवारितास्तु ते सर्वे स्थानान्मोहेरका द्विजाः ॥ ५५ ॥ दशपञ्च सहस्राणि वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ततस्तेन तदा राजन्

कि हे भूपते ! जिन्हों ने तुम्हारे वचनको छोड़दिया उनको निकाल दीजिये परस्पर दीहुई जीविका के लिये विवाद हुए ॥ ५२ ॥ और योग्य दिखलाने के लिये सभासद् कियेगये व हस्ताक्षरों के देखनेपर अलग २ सिद्ध कियागया ॥ ५३ ॥ इस वचन को सुनकर तदनन्तर राजा ने तुलादान किया तब दान देनेपर चातुर्विद्य ब्राह्मण बोले ॥ ५४ ॥ कि हम सबों से जाति हारगई तो हमलोग कैसे दान को लेवैंगे और वे सब मोहेरक ब्राह्मण स्थान से मना किये गये ॥ ५५ ॥ जो कि पंद्रह

हज़ार ब्राह्मण वेदों व वेदांगों के पारगामी थे तदनन्तर हे राजन्! उस समय श्रीरामजी के आज्ञानुवर्ती उस राजा ने ॥ ५६ ॥ उन ब्राह्मणों को बुलाकर ज्ञाति का भेद किया कि जो त्रयीविद्य ब्राह्मण सेतुबंध स्वामी को ॥ ५७ ॥ गये थे वे जीविका के भागी हुए और अन्य जीविका के भागी न हुए और जो वहां नहीं गये वे चातुर्वैद्यता को प्राप्तहुए ॥ ५८ ॥ व उनके साथ वणिजों से संबन्ध व विवाह नहीं हुआ और ज्ञातिभेद करने पर ग्राम की जीविका में संबन्ध न हुआ ॥ ५९ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति में परायण जो शूद्र पाखण्डों से लोपित न हुए जैन धर्म से निवृत्त वे गोभुज उत्तम हुए ॥ ६० ॥ और पाखण्ड में तत्पर जो श्रीरामजी के शासन को लोप

राज्ञा रामानुवर्तिना ॥ ५६ ॥ आहूय वाडवांस्तांस्तु ज्ञातिभेदं चकार सः ॥ त्रयीविद्या वाडवा ये सेतुबन्धं प्रति प्रभुम् ॥ ५७ ॥ गतास्ते वृत्तिभाजः स्युर्नान्ये वृत्त्यभिभागिनः ॥ तत्र नैव गता ये वै चातुर्विद्यत्वमागताः ॥ ५८ ॥ वणिग्भिर्न च सम्बन्धो न विवाहश्च तैः सह ॥ ग्रामवृत्तौ न सम्बन्धो ज्ञातिभेदे कृते सति ॥ ५९ ॥ द्विजभक्तिपराः शूद्रा ये पाखण्डैर्न लोपिताः ॥ जैनधर्मात्परावृत्तास्ते गोभूजास्तथोत्तमाः ॥ ६० ॥ ये च पाखण्डनिरता रामशासनलोपकाः ॥ सर्वे विप्रास्तथा शूद्राः प्रतिबन्धेन योजिताः ॥ ६१ ॥ सत्यप्रतिज्ञां कुर्वाणास्तत्रस्थाः सुखिनोऽभवन् ॥ चातुर्विद्या बहिर्ग्रामे राज्ञा तेन निवासिताः ॥ ६२ ॥ यथा रामो न कुप्येत तथा कार्यं मया ध्रुवम् ॥ पराङ्मुखा ये रामस्य सन्मुखा न गताः किल ॥ ६३ ॥ चातुर्विद्यास्ते विज्ञेया वृत्तिबाह्याः कृतास्तदा ॥ कृतकृत्यस्तदा जातो राजा कुमारपालकः ॥६४॥ विप्राणां पुरतः प्राह प्रश्रयेण वचस्तदा ॥ ग्रामवृत्तिर्न मे लुप्ता एतद्दै देवनिर्मितम् ॥ ६५ ॥ स्वयं

करनेवाले हुए वे सब ब्राह्मण व शूद्र प्रतिबन्धसे युक्त हुए ॥ ६१ ॥ और सत्यप्रतिज्ञा को करते हुए वहां स्थित ब्राह्मण सुखी हुए और चातुर्विद्य ब्राह्मणों को उस राजा ने गाँव के बाहर बसाया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार श्रीरामजी क्रोध न करैं मुझको निश्चयकर वैसाही करना चाहिये व श्रीरामजी से जो विमुख हैं और सामने नहीं प्राप्त हुए हैं ॥६३॥ वे चातुर्विद्य उस समय जीविका से बाहर किये गये जानने योग्य हैं तब कुमारपालक राजा कृतार्थ होगया ॥ ६४ ॥ और उसने उस समय नम्रता से ब्राह्मणोंके आगे यह वचन कहा कि मैंने ग्राम की वृत्ति को लुप्त नहीं किया बरन यह देवता से किया गया है ॥ ६५ ॥ व आपही किये हुए अपराधों का दोष किसीको नहीं दिया

जाताहै जैसे वनमें काष्ठ के घिसने से अग्नि दैवयोगसे उत्पन्न होजाती है ॥ ६६ ॥ आपलोगों ने श्रीरामजी का शासन करके हनुमान्जी के लिये चिह्न के कारण पण (वाद्यूत याने बाजी लगाना) किया था ॥ ६७ ॥ और तुमलोग ब्राह्मण लौट आये तो वह दोष किसको दिया जाताहै अन्तमें विष्णुजी को स्मरणकर बड़े पातकों से संयुत भी पुरुष ॥ ६८ ॥ शीघ्रही विष्णुलोक को जाता है तो कैसे सन्देह होवै और बड़े भारी पुण्य के उदय में मनुष्यों की बुद्धि कल्याण में होतीहै ॥ ६९ ॥ और पाप के उदय समय में वह बुद्धि उलटी होजाती है धर्म से जो इस त्रिलोक को एकही साथ पालन करता है ॥ ७० ॥ व जो प्राणियों का जीवात्मा है उसमें संशय

कृतापराधानां दोषो कस्य न दीयते ॥ यथा वने काष्ठघर्षाद्वह्निः स्याद्दैवयोगतः ॥ ६६ ॥ भवद्भिस्तु पणः प्रोक्तोह्य भिज्ञानस्य हेतवे ॥ रामस्य शासनं कृत्वा वायुपुत्रस्य हेतवे ॥ ६७ ॥ व्यावृत्ता वाडवा यूयं स दोषः कस्य दीयते ॥ अवसाने हरिं स्मृत्वा महापापयुतोऽपि वा ॥ ६८ ॥ विष्णुलोकं व्रजत्याशु संशयस्तु कथं भवेत् ॥ महत्पुण्योदये नृणां बुद्धिः श्रेयसि जायते ॥ ६९ ॥ पापस्योदयकाले च विपरीता हि सा भवेत् ॥ सकृत्पालयते यस्तु धर्मेणैतज्जग त्त्रयम् ॥ ७० ॥ योन्तरात्मा च भूतानां संशयस्तत्र नो हितः ॥ इन्द्रादयोऽमराः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः ॥ ७१ ॥ मुक्त्यर्थमर्चयन्तीह संशयस्तत्र नो हितः ॥ सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनामेति गीयते ॥ ७२ ॥ तस्मिन्ननिश्चयं कृत्वा कथं सिद्धिर्भवेदिह ॥ मम जन्मकृतात्पुण्यादभिज्ञानं ददौ हरिः ॥ ७३ ॥ पाखण्डाद्यत्कृतं पापं मृष्टं तद्वः प्रणामतः ॥ प्रसीदन्तु भवन्तश्च त्यक्त्वा क्रोधं ममाधुना ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजन्धर्मो विलुप्तस्ते प्रापितश्च तथा

हित नहीं होता है और इन्द्रादिक सब देवता व सनकादिक तपस्वी लोग ॥ ७१ ॥ जिसको मुक्ति के लिये पूजते हैं उसमें सन्देह हित नहीं होताहै और वह राम नाम सहस्रनाम के तुल्य कहा जाता है ॥ ७२ ॥ उसमें निश्चय न करके इस संसार में कैसे सिद्धि होतीहै मेरे जन्म में कियेहुए पुण्य से विष्णुजी ने चिह्नको दिया ॥ ७३ ॥ और पाखण्ड से मैंने जो पाप किया था वह तुमलोगों के प्रणाम से शुद्ध होगया आप लोग इस समय क्रोध को छोड़कर मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ७४ ॥ ब्राह्मण बोले

कि हे राजन्! तुमने धर्म को लुप्त किया व फिर प्राप्त किया और अवश्य होनेवाले कार्य बड़े लोगों के भी होते हैं॥ ७५॥ शिवजी का नग्न होना व विष्णुजी का शेषजी पै सोना यह सब दैव से किया गया है जोकि सुख व दुःख के स्वामी हैं॥ ७६॥ सत्यप्रतिज्ञावाले त्रैविद्य ब्राह्मण श्रीरामजी के शासन को करें और हम लोगों को उत्तम स्थान दीजिये जहां कि बसैं॥ ७७॥ उन ब्राह्मणों का वचन सुनकर ब्राह्मणों के सुख को चाहनेवाले राजा ने उन ब्राह्मणों को सुखवास नामक स्थान को दिया॥ ७८॥ व हे राजन्! सुवर्ण व रत्न, वसन और कामदुघा गऊ तथा सुवर्ण का भूषण और सब अनेक प्रकारके वस्तुसमूह को॥ ७९॥ बड़ी श्रद्धा से

पुनः॥ अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि॥ ७५॥ नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः॥ एतद्दैवकृतं सर्वं प्रभुर्यः सुखदुःखयोः॥ ७६॥ सत्यप्रतिज्ञास्त्रैविद्या भजन्तु रामशासनम्॥ अस्माकं तु परं देहि स्थानं यत्र वसामहे॥ ७७॥ तेषां तु वचनं श्रुत्वा सुखमिच्छुर्द्विजन्मनाम्॥ तेषां स्थानं च प्रददौ सुखवासं तु नामतः॥ ७८॥ हिरण्यं रत्नवासांसि गावः कामदुघा नृप॥ स्वर्णालङ्करणं सर्वं नानावस्तुचयं तथा॥ ७९॥ श्रद्धया परया दत्त्वा मुदं लेभे नराधिपः॥ त्रयीविद्यास्तु ते ज्ञेयाः स्थापिता ये त्रिमूर्तिभिः॥ ८०॥ चतुर्थेनैव भूपेन स्थापिताः सुखवासने॥ ते बभूवुर्द्विजश्रेष्ठाश्चातुर्विद्याः कलौ युगे॥ ८१॥ चातुर्विद्याश्च ते सर्वे धर्मारण्ये प्रतिष्ठिताः॥ वेदोक्ता आशिषो दत्त्वा तस्मै राज्ञे महात्मने॥ ८२॥ रथैरश्वैरुह्यमानाः कृतकृत्या द्विजातयः॥ महत्प्रमोदयुक्तास्ते प्रापुर्मोहेरकं महत्॥ ८३॥ पौषशुक्लत्रयोदश्यां लब्धं शासनकं द्विजैः॥ बलिप्रदानं तु कृतमुद्दिश्य कुलदेवताम्॥ ८४॥ वर्षे वर्षे

देकर राजा ने आनन्द को पाया और जो तीन मूर्तियों से स्थापित किये गये वे त्रयीविद्य जानने योग्य हैं॥ ८०॥ और चौथे भूप से जो सुखवासन नामक स्थान में स्थापित किये गये वे द्विजोत्तम कलियुग में चातुर्विद्य हुए॥ ८१॥ और वे सब चातुर्विद्य ब्राह्मण धर्मारण्य में स्थित हुए और उस महात्मा राजा के लिये वेदोक्त आशीर्वादों को देकर॥ ८२॥ रथों व घोड़ों पै चढ़कर ब्राह्मण लोग कृतार्थ हुए और बड़े आनन्द से संयुत वे बड़े भारी मोहेरक स्थान को प्राप्त हुए॥ ८३॥ पौष शुक्ल तेरसि में ब्राह्मणों ने शासन को पाया और कुलदेवता को उद्देशकर बलिप्रदान किया॥ ८४॥ महात्मा पुरुष को प्रत्येक वर्ष में विधिपूर्वक बलिदान व मंगल स्नान

करना चाहिये ॥ ८५ ॥ और उस दिन अवश्यकर गीत, नृत्य व बाजन करै व जिसप्रकार जीविकाका नाश न होवै उसप्रकार उस महीने व उस दिनमें करै ॥ ८६ ॥ और जब दैवयोग से व्यतीत समय में वृद्धि प्राप्त होवै तब पहले उसको करके पश्चात् वृद्धि कीजाती है ॥ ८७ ॥ और मोढवंश में उत्पन्न जो त्रैविद्य व चातुर्विद्य अन्य तिथि में प्राप्त होते हैं ॥ ८८ ॥ वे वर्ष के मध्यमें व विष्णुजी के शयनमें बलिप्रदान करते हैं और पौष महीने में जो बलि को न करके श्रौत, स्मार्त कर्म को करता है ॥ ८९ ॥ उसको क्रोधसे संयुत कुलदेवता नाश करती हैं और विवाह व उत्सव के समयमें तथा यज्ञोपवीतादिक कर्म में और सब वृद्धिके समयों में विद्वान्

प्रकर्त्तव्यं बलिदानं यथाविधि ॥ कार्यं च मङ्गलस्नानं पुरुषेण महात्मना ॥ ८५ ॥ गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कुर्वीत तद्दिने ध्रुवम् ॥ तन्मासे तद्दिने नैव वृत्तिनाशो भवेद्यथा ॥ ८६ ॥ दैवादतीतकाले चेद् वृद्धिरापद्यते यदा ॥ तदा प्रथमतः कृत्वा पश्चाद्वृद्धिर्विधीयते ॥ ८७ ॥ ये च भिन्नतिथौ प्राप्तास्त्रैविद्या मोढवंशजाः ॥ तथा चातुर्वेदिनश्च कुर्वन्ति गोत्रपूजनम् ॥ ८८ ॥ वर्षमध्ये प्रकुर्वन्ति तथा सुप्ते जनार्द्दने ॥ पौषे बलिमकृत्वा च श्रौतं स्मार्त्तं करोति यः ॥ ८९ ॥ तन्तु क्रोधसमाविष्टा निघ्नन्ति कुलदेवताः ॥ विवाहोत्सवकाले च मौञ्जीबन्धादिकर्मणि ॥ सर्वेषु वृद्धिकालेषु मातङ्गीं पूजयेद्बुधः ॥ ९० ॥ पूजनं गणनाथस्य ततः प्रभृति शोभनम् ॥ ९१ ॥ मोहेरकस्य भङ्गो हि फाल्गुन्याश्च दिने कृतः ॥ मलस्नानं तदा वर्ज्यं त्रिविद्यैर्मोढवाडवैः ॥ ९२ ॥ अत्राश्चर्यमभूदेकं तच्छृणुष्व महामते ॥ आसीत्कश्चित्पुरारक्षो रुद्राल्लब्धवरो मुने ॥ ९३ ॥ मोहेरकादुत्तरतो वटवृक्षसमाश्रयः ॥ पाणिग्रहणकाले स जहार वरकन्यके ॥ ९४ ॥

मातंगीजी को पूजै ॥ ९० ॥ और तब से लगाकर गणेशजी का उत्तम पूजन करै ॥ ९१ ॥ और फाल्गुनी पौर्णमासी के दिन मोहेरक का भंग किया गया है तब त्रिविद्य मोढब्राह्मणों को मलस्नान न करना चाहिये ॥ ९२ ॥ हे महामते ! इस विषय में जो एक आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि हे मुने ! पुरातन समय शिवजी से वरको पाये हुए कोई राक्षस हुआ है ॥ ९३ ॥ मोहेरक से उत्तर में बरगद के वृक्ष के समीप स्थित वह विवाह के समय में वर व कन्या को हरलेता था ॥ ९४ ॥

इस प्रकार उस दुष्ट आशयवाले राक्षसने बहुत से वरों व कन्याओं को हरलिया तदनन्तर कुछ समय के बाद उस समय ब्राह्मणों ने बहुत पूजनपूर्वक भट्टारिका देवी से कहा तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई उस भट्टारिका देवीने ब्राह्मणों से कहा ॥ ९५।९६ ॥ भट्टारिका बोली कि दुःखित मनवाले तुम लोग किस लिये यहां आये हो व आप लोगों का क्या कार्य है इसको शीघ्रही कहिये॥ ९७॥ ब्राह्मण बोले कि हे मातः! हमारे स्त्री पुरुष विवाह के योग से हरे जाते हैं उसको हम नहीं जानते हैं तुम उस से रक्षा करने के योग्य हो ॥ ९८ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर उस समय वह देवी वहां अन्तर्द्धान होगई व फिर विवाह प्राप्त होने पर वह राक्षस उस समय वेदी पै

एवं बहून्वरान्कन्या जहार स दुराशयः ॥ ततः कालेन कियता देवीं भट्टारिकांतदा ॥ ९५ ॥ द्विजा विज्ञापयामा सुर्बहुपूजापुरःसरम् ॥ ततस्तुष्टा तु सा देवी द्विजान्भट्टारिकाब्रवीत् ॥ ९६ ॥ भट्टारिकोवाच ॥ उद्विग्नमनसो यूयं किमर्थमिहचागताः ॥ किञ्च कार्यं हि भवतां कथ्यतामविलम्बितम् ॥ ९७ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ अस्माकं दम्पती मातः पाणिग्रहणयोगतः ॥ ह्रियेते तु न जानीमस्तद्रक्षां कर्तुमर्हसि ॥ ९८ ॥ तथेत्युक्त्वा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ पुनर्विवाहे सम्प्राप्ते तद्रक्षो दम्पतीं तदा ॥ आवेदिकां गतो हृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ९९ ॥ ततः सुदुःखिता विप्राः पुनर्देवीमुपस्थिताः ॥ आवेदयन् स्ववृत्तान्तं दम्पतीहरणादिकम् ॥ १०० ॥ ततः क्रोधसमाविष्टा देवी शूलं समाददे ॥ युयुधे रक्षसा तेन दिनानि सुबहून्यपि ॥ १ ॥ ततो भट्टारिका श्रान्ता चिरं युद्धसमाकुला ॥ निद्रां प्राप्ता तथा ग्लाना सुष्वाप वटसन्निधौ ॥ २ ॥ तदातद्देहसम्भूता मातङ्गी रक्तलोचना ॥ मदाघूर्णितलोलाक्षी रक्तपुष्पाम्बरावृता ॥ ३ ॥ तद्रक्षः

प्राप्त होकर स्त्री पुरुष को हरकर वहीं अन्तर्द्धान होगया ॥ ९९ ॥ तदनन्तर बहुत दुःखित ब्राह्मण फिर देवीजी के समीप प्राप्त हुए और उन्होंने स्त्री पुरुष का हरण आदिक अपने वृत्तान्तको कहा ॥ १०० ॥ तदनन्तर क्रोधसे संयुत देवीजीने त्रिशूल को लिया और बहुत दिनों तक उस राक्षस से युद्ध किया ॥ १ ॥ तदनन्तर बहुत दिनों तक युद्ध से विकल भट्टारिका देवी थकगई व थककर नींद को प्राप्त हुई व बरगद के समीप सो गई ॥ २ ॥ तब लाल लोचनोंवाली मातंगी उसके शरीर से उत्पन्न हुई और मद से घूर्णित नेत्रोंवाली तथा लाल पुष्पों व बसनोंको धारण करनेवाली मातंगी ने ॥ ३ ॥ हे मुने! बड़ी सेना से उस राक्षस को पीड़ित किया और

उस राक्षस को शीघ्रही मारकर वह मातंगी बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥ ४ ॥ तदनन्तर निद्रा को छोड़कर वह आदियोगिनी शीघ्रही जाग पड़ी और राक्षस को मरे हुए देखकर भट्टारिका देवी हर्षसंयुत हुई ॥ ५ ॥ और उसने विचार किया कि किसने बल से गर्वित राक्षस को मारा है ध्यान के प्रभाव से भट्टारिका देवीने मातंगी से मारे हुए राक्षस को जानकर ॥ ६ ॥ ब्राह्मणों से कहा कि तुमलोगों का कल्याण होवै राक्षस का नाश होगया हे द्विजेन्द्रो ! आज से लगाकर आपलोग अपने घरों में ॥ ७ ॥ विवाह व उत्सव के समयों में तथा यज्ञोपवीत व मुंडनादिक कर्मों में और सब महोत्सवों में हे द्विजो ! मातंगी को पूजियेगा ॥ ८ ॥ श्वेत वस्त्रको पहने

पीडयामास बलेन महता मुने ॥ सा तद्रक्षो निहत्याशु वटवृक्षमुपाश्रिता ॥ ४ ॥ ततो निद्रां विहायाशु प्रबुद्धा आदियोगिनी ॥ देवी भट्टारिका दृष्ट्वा हतं रक्षो मुदान्विता ॥ ५ ॥ अचिन्तयत् केन हतो राक्षसो बलगर्वितः ॥ मातङ्ग्या निहतं ज्ञात्वा देवी ध्यानप्रभावतः ॥ ६ ॥ उवाच विप्रान् भद्रं वो जातं रक्षोविनाशनम् ॥ अद्यप्रभृति विप्रेन्द्रा भवद्भिस्स्वगृहेषु च ॥ ७ ॥ विवाहोत्सवकालेषु मौञ्जीचूडादिकर्मसु ॥ महोत्सवेषु सर्वेषु मातङ्गी पूज्यतां द्विजाः ॥ ८ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना पानपात्रधरा वरा ॥ योत्रं कलशसूर्पादिशिरसा बिभ्रती शुभा ॥ ९ ॥ अष्टादशभुजा देवी सा रमेयकरा तथा ॥ पूजनीया द्विजवरा मातङ्गी मदविह्वला ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ अतः पूज्या द्विजैर्देवी मातङ्गी वटसन्निधौ ॥ ११ ॥ विवाहादिषु कालेषु कुलरक्षणकारिणी ॥ मातङ्गीं मदघूर्णाक्षीं सूर्पयोत्रादिधारिणीम् ॥ १२ ॥ यो नैव पूजयेद्वृद्धौ तत्कुलं याति संक्षयम् ॥ अतएव सदा पूज्या मातङ्गी वृद्धि

व मद्यपान के पात्र को धारण किये और जोत नामक रस्सी व कलश तथा सूपादि को शिर से धारण करनेवाली व श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ और कुत्ता को हाथ में लिये वह अठारह भुजाओंवाली मद से विह्वल मातंगी देवी हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों से पूजने योग्य है ॥ १० ॥ यह कहकर उस समय वह भट्टारिका देवी वहीं अन्तर्द्धान होगई इस कारण बरगद के समीप मातंगीजी ब्राह्मणों से पूजने योग्य हैं ॥ ११ ॥ व विवाहादिक समयों में कुल की रक्षा करनेवाली मातंगी पूजने योग्य है व मद से भ्रमित नेत्रोंवाली तथा सूप व जोत आदि को धारनेवाली मातंगी को ॥ १२ ॥ जो वृद्धि में नहीं पूजता है उसका वंश नाश होजाता है इसी कारण वृद्धि के लिये

मातंगी सदैव पूजने योग्य है ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार के बलिप्रदानों से मोढों की कुलदेवता को पूजना चाहिये तदनन्तर ब्राह्मणलोग गान व बाजन के शब्दों से मोढों की कुलदेवता उस मातंगी को वेदध्वनिपूर्वक पूजकर मनोरथ को पाये हुए उन प्रसन्न ब्राह्मणों ने धर्मारण्य में प्रवेश किया ॥ १४ । १५ ॥ और आमराजा ने अपनी आज्ञा से जिन ब्राह्मणों को निकाल दिया वे पंद्रहहज़ार ब्राह्मण सुखवासक नामक स्थान को चले गये ॥ १६ ॥ श्रीरामजी ने पहले आपही पचपन ग्रामों को दिया है और वहां टिके हुए वणिजों ने उनकी जीविका को कल्पित किया ॥ १७ ॥ और वे अडालज, माण्डलीय व पवित्र गोभुज ब्राह्मणों की जीविका के दायक हुए व ब्राह्मणों

हेतवे ॥ १३ ॥ नानाबलिप्रदानेन मोढानां कुलदेवता ॥ ततो द्विजास्तां सम्पूज्य मोढानां कुलदेवताम् ॥ १४ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिपुरःसरम् ॥ धर्मारण्यं प्रविविशुर्हृष्टाः प्राप्तमनोरथाः ॥ १५ ॥ निर्वासितास्तु ये विप्रा आमराज्ञा स्वशासनात् ॥ पञ्चदशसहस्राणि ययुस्ते सुखवासकम् ॥ १६ ॥ पञ्चपञ्चाशतो ग्रामान्ददौ रामः पुरा स्वयम् ॥ तत्रस्था वणिजश्चैव तेषां वृत्तिमकल्पयन् ॥ १७ ॥ अडालजा माण्डलीया गोभुजाश्च पवित्रकाः ॥ ब्राह्मणानां वृत्तिदास्ते ब्रह्मसेवासु तत्पराः ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमं मतम् ॥ एते ब्रह्मविदः प्रोक्ताश्चातुर्विद्या महाद्विजाः ॥ १ ॥ स्वाध्यायाश्च वषट्काराः स्वधाकाराश्च नित्यशः ॥ रामाज्ञापालकाश्चैव हनुमद्भक्तितत्पराः ॥ २ ॥ एकदा तु ततो देवा

की सेवा में तत्पर हुए ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन के जिमि कह भेद अनेक ॥ उन्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र सुनेक ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं उत्तम रहस्य को कहता हूं कि ये चातुर्विद्य ब्राह्मण लोग ब्रह्मज्ञानी कहे गये हैं ॥ १ ॥ और नित्य स्वाध्याय व वषट्कार तथा स्वधाकार करनेवाले वे श्रीरामजी की आज्ञा को पालनेवाले व हनुमान् जी की भक्ति में तत्पर थे ॥ २ ॥ तदनन्तर एक समय देवता ब्रह्माजी के समीप गये व ब्राह्मणों को देखने की इच्छावाले वे ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता वहां

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गये ॥ ३ ॥ व उन आये हुए देवताओं को देखकर वे ब्राह्मण अर्घ, पाद्य व मधुपर्क को आगे कर अपने स्थान से चले ॥ ४ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदिक देवताओं को पूजकर वे ब्राह्मण ब्रह्मा के आगे बैठकर वेदों को उच्चारण करने लगे ॥ ५ ॥ और संहिता, पद, क्रम व घन और ऋचाओं को व ऋग्वेद की संहिता को उच्चस्वर से कहने लगे ॥ ६ ॥ और सामको गानेवाले वे अनेकप्रकार के स्तोत्रों को करनेलगे व याज्य लोग शास्त्रों को और पुरोनुवाक्यों को पढ़ने लगे ॥ ७ ॥ और चतुरक्षर[१] व परम-चतुरक्षर[२], द्व्यक्षर[३], पंचाक्षर[४] व द्व्यक्षर[५] इस यज्ञस्वरूप को जो ज्ञानपूर्वक जपता है ॥ ८ ॥ उसको अन्त में ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है यह मैं सत्य सत्य कहता हूं सब सावधान

ब्रह्माणं समुपागताः ॥ ब्राह्मणान्द्रष्टुकामास्ते ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ३ ॥ तान्देवानागतान्दृष्ट्वा स्वस्थानाच्चलितास्तु ते ॥ अर्घपाद्यं पुरस्कृत्य मधुपर्कं तथैव च ॥ ४ ॥ पूजयित्वा ततो विप्रा देवान्ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ब्रह्माग्र उपविष्टास्ते वेदानुच्चारयन्ति हि ॥ ५ ॥ संहितां च पदं चैव क्रमं घनं तथैव च ॥ उच्चैः स्वरेण कुर्वीत ऋचामृग्वेदसंहिताम् ॥ ६ ॥ सामगाश्च प्रकुर्वन्ति स्तोत्राणि विविधानि च ॥ शास्त्राणि च तथा याज्याःपुरोनुवाक्यांस्तथा ॥ ७ ॥ चतुरक्षरं परं चैव चतुरक्षरमेव च ॥ द्व्यक्षरं च तथा पञ्चाक्षरं द्व्यक्षरमेव च ॥ एतद्यज्ञस्वरूपं च यो जपेज्ज्ञानपूर्वकम् ॥ ८ ॥ अन्ते ब्रह्मपदप्राप्तिः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे वेदपाठरता द्विजाः ॥ ६ ॥ तेषामङ्गणदेशेषु कण्डूयन्ते कचान्मृगाः ॥ ब्राह्मणा वेदमातां च जपन्ति विधिपूर्वकम् ॥ १० ॥ हस्ते धृतांश्च तैर्दर्भान्भक्षन्ते मृगपोतकाः ॥ निर्वैरं तं तदा दृष्ट्वा आश्रमं गृहमेधिनाम् ॥ ११ ॥ तुतुषुः परमं देवा ऊचुस्ते च परस्परम् ॥ त्रेतायुगमिदानीं च सर्वे धर्मप

मनवाले ब्राह्मण वेदपाठ में परायण थे ॥ ६ ॥ और उनके आंगन के स्थानों में मृग बालों को खुजलाते थे और ब्राह्मणलोग विधिपूर्वक वेदमाता (गायत्री) को जपते थे ॥ १० ॥ व उनसे हाथ में धरे हुए अक्षतों को मृगों के बच्चे खाते थे उस समय गृहस्थों के आश्रम को वैररहित देखकर ॥ ११ ॥ देवतालोग बहुत प्रसन्न हुए और

१ यजामहे २ अस्तु श्रौषट् ३ यजे ४ ये यजामहे ५ वौषट् ये पांच यज्ञसमय में अध्वर्यु आदिकों से कहने योग्य वचन हैं ॥

उन्होंने परस्पर कहा कि इस समय त्रेतायुग है और सब धर्म में परायण हैं॥ १२॥ व कलियुग दुष्ट कहागया है तो वह पापी दुष्ट क्या करैगा चातुर्विद्य ब्राह्मणों को बुला-कर उन तीनों ने कहा ॥ १३ ॥ कि आप लोगों के व त्रैविद्य ब्राह्मणों की जीविका के लिये हम तुमलोगों को विभाग देवैंगे उसको यथायोग्य पालन कीजिये॥ १४॥ पहले जो छत्तीस हज़ार वणिज् कहे गये हैं वे और तीन हज़ार त्रैविद्य तथा पंद्रह हज़ार ॥ १५ ॥ चातुर्विद्य परस्पर वृत्ति में आश्रित हुए कि त्रिभाग समेत त्रैविद्य व चौथाई भागवाले चातुर्विद्य लोग ॥ १६ ॥ नित्य वणिजोंके घरको जाकर पुरोहिती के भाग को बाँटकर ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये हुए ब्राह्मणलोग उस को

रायणाः ॥ १२ ॥ कलिर्दुष्टस्तथा प्रोक्तः किं करिष्यति पापकः ॥ चातुर्विद्यान्समाहूय ऊचुस्ते त्रय एव च ॥ १३ ॥ वृत्त्यर्थं भवतां चैव त्रैविद्यानां तथैव च ॥ विभागं वः प्रदास्यामो यथावत्प्रतिपाल्यताम् ॥ १४ ॥ ये वणिजः पुरा प्रोक्ताः षट्त्रिंशच्च सहस्रकाः ॥ त्रिसहस्रास्तु त्रैविद्या दशपञ्चसहस्रकाः ॥ १५ ॥ चातुर्विद्यास्तथा प्रोक्ता अन्योन्यं वृत्तिमाश्रिताः ॥ सत्रिभागास्तु त्रैविद्याश्चतुर्भागास्तु चात्रिणः ॥ १६ ॥ वणिजां गृहमागत्य पौरोहित्यस्य नित्यशः ॥ भागं विभज्य सम्प्रापुः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ १७ ॥ परस्परं न विवाहश्चातुर्विद्यत्रिविद्ययोः ॥ चातुर्विद्या मया प्रोक्तास्त्रिविद्यास्तु तथैव च ॥ १८ ॥ त्रैविभागेन त्रैविद्याश्चतुर्भागेन चात्रिणः ॥ एवं ज्ञातिविभागस्तु काजेशेन विनिमितः ॥ १९ ॥ कृतकृत्यास्तु ते विप्राः प्रणेमुस्तान्सुरोत्तमान् ॥ वृत्तिं दत्त्वा ततो देवाः स्वस्थानं च प्रतस्थिरे ॥ २० ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां ते द्विजाश्च निवासिनः ॥ चतुर्विद्यास्तु ते प्रोक्तास्तदादि तु त्रिविद्यकाः ॥ २१ ॥ चातुर्विद्यस्य

प्राप्त हुए ॥ १७॥ और चातुर्विद्य व त्रिविद्यलोगों का परस्पर विवाह नहीं होता है मैंने चातुर्विद्य व त्रिविद्य ब्राह्मणोंको कहा॥ १८॥ और तिहाई भाग से त्रैविद्य व चौथाई भागसे चातुर्विद्य ब्राह्मण हुए ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीसे इस प्रकार जाति का विभाग हुआ ॥ १९ ॥ व उन कृतार्थ ब्राह्मणों ने उन सुरोत्तमों को प्रणाम किया और जीविका को देकर तदनन्तर देवता अपने स्थान को चलेगये ॥ २०॥ और वे ब्राह्मण पचपन ग्रामों में निवासी हुए और तब से लगाकर वे चातुर्विद्य और त्रिविद्य कहेगये ॥ २१ ॥

और चातुर्विद्य के पंद्रह गोत्र हैं भारद्वाज, वत्स, कौशिक व कुश ॥ २२ ॥ और शांडिल्य, कश्यप, गौतम, छादन, जातूकर्ण्य, कुंत, वशिष्ठ व धारण ॥ २३ ॥ और आत्रेय, मांडिल व उसके उपरान्त लौगाक्ष है और स्वस्थानों के नामों को मैं क्रम से कहता हूं ॥ २४ ॥ कि सीतापुर, श्रीक्षेत्र, मगोड़ी, ज्येष्ठलोज व उसके उपरान्त शेरथा कहा गया है ॥ २५ ॥ और छेदे, ताली, वनोडी व गोव्यंदली, कंटाचोपली, कोहेच व चंदन ॥ २६ ॥ और थलग्राम, सोह, हाथंज व कपडवाणक,

गोत्राणि दशपञ्च तथैव च ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः ८ कुश एव च ॥ २२ ॥ शाण्डिल्यः ५ कश्यपश्चैव गौतमश्छादनस्तथा ८ ॥ जातूकर्ण्यस्तथा कुन्तो वशिष्ठो ११ धारणस्तथा ॥ २३ ॥ आत्रेयोर्माण्डिलश्चैव १४ लौगाक्षश्च १५ ततः परम् ॥ स्वस्थानानां च नामानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ २४ ॥ सीतापुरं च श्रीक्षेत्रं २ मगोडी च ३ तथा स्मृता ॥ ज्येष्ठलोजस्तथा चैव शेरथा च ततः परम् ॥ २५ ॥ छेदे ताली वनोडी च गोव्यन्दली तथैव च ॥ कण्टाचोपली चैव कोहेचं चन्दनस्तथा ॥ २६ ॥ थलग्रामश्च सोहं च हाथञ्जं कपडवाणकम् ॥ व्रजन्होरी च वनोडी च फीणां वगोलं दृणस्तथा ॥ २७ ॥ थलजा चारणं सिद्धा भालजाश्च ततः परम् ॥ महोवी आईया मलीआ गोधरीग्राम ततः परम् ॥ २८ ॥ वाठसुहाली तथा चैव माणजा सानदीयास्तथा ॥ आनन्दीया पाटडीअटीकोलीया ततः परम् ॥ २९ ॥ गम्भी धणीआ मात्रा च नातमोरास्तथैव च ॥ वलोला रान्त्यजाश्चैव रूपोला बोधणी च वै ॥ ३० ॥ छत्रोटा अलुएवा च वासतडीग्रामतः परम् ॥ जाषासणा गोतीया च चरणीया दुधीयास्तथा ॥ ३१ ॥ हालोला वै

व्रजन्होरी, वनोड़ी, फीणा, वगोल व दृण ॥ २७ ॥ और थलजा, चारण, सिद्धा तदनन्तर भालजा, महोवी, आईया, मलीआ व इसके उपरान्त गोधरीग्राम् ॥ २८ ॥ और वाठसुहाली, माणजा, सानदीया, आनन्दीया, पाटडीअ तदनन्तर टीकोलीआ ॥ २९ ॥ और गंभी, धणीआ, मात्रा व नातमोरा, वलोला, रांत्यजा, रूपोला व बोधणी ॥ ३० ॥ और छत्रोटा, अलुएवा, वासतडीग्राम् व इसके उपरान्त जाषासणा, गोतीया, चरणीया और दुधीया ॥ ३१ ॥ हालोला, वैहोला, असाला, नालाडा,

देहोलो, सौहासीया और संहालीया ॥ ३२ ॥ व स्वस्थान इन पचपन ग्रामों को क्रम से श्रीरामजी ने विधिपूर्वक करके ब्राह्मणों के लिये दिया है ॥३३॥ इसके उपरान्त स्वस्थान के गोत्र में उपजे हुए ब्राह्मणों को व प्रवरों को यथायोग्य विधिपूर्वक कहता हूं ॥ ३४ ॥ क्योंकि गोत्रदेवी व प्रवर को जानकर स्वस्थान होता है और ब्राह्मण अपने स्थान में बसते हैं ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि गोत्र कैसे जाना जाता है व कुल कैसे जाना जाता है ? और देवी कैसे जानी जाती है ? उसको यथार्थ कहिये ॥३६॥ ब्रह्माजी

होला च असाला नालाडास्तथा ॥ देहोलोसौहासीया च संहालीयास्तथैव च ॥ ३२ ॥ स्वस्थानं पञ्चपञ्चाशद्ग्रामा एते ह्यनुक्रमात् ॥ दत्ता रामेण विधिवत्कृत्वा विप्रेभ्य एव च ॥ ३३ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानस्य च गोत्रजान् ॥ तथा हि प्रवरांश्चैव यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वा तु गोत्रदेवीं च तथा प्रवरमेव च ॥ स्वस्थानं जायते चैव द्विजाः स्वस्थानवासिनः ॥ ३५ ॥ नारद उवाच ॥ कथं च ज्ञायते गोत्रं कथं तु ज्ञायते कुलम् ॥ कथं वा ज्ञायते देवी तद्वदस्व यथार्थतः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सीतापुरं तु प्रथमं प्रवरद्वयमेव च ॥ कुशवत्सौ तथा चात्र मया ते परिकीर्त्तितौ ॥ ३७ ॥ १ द्वितीयं चैव श्रीक्षेत्रं गोत्राणां त्रयमेव च ॥ छान्दनसस्तथा वत्सस्तृतीयं कुशमेव च ॥ ३८ ॥ तृतीयं मुद्गलं चैव कुशभारद्वाजमेव च ३ ॥ शोहोली च चतुर्थं वै कुशप्रवरमेव च ॥ ३९ ॥ ज्येष्ठला पञ्चमश्चैव कुशवत्सौ प्रकीर्त्तितौ ५ ॥ श्रेयस्थानं हि षष्ठं वै भारद्वाजः कुशस्तथा ६ ॥ ४० ॥ दन्ताली सप्तमं चैव भारद्वाजः कुशस्तथा १ ॥ वटस्थानमष्टमं च निबोध सुतसत्तम ॥ ४१ ॥ तत्र गोत्रं कुशं कुत्सं भारद्वाजं तथैव च ॥ राज्ञः पुरं नवमं च भारद्वाज

बोले कि पहला सीतापुर और कुश व वत्स दो प्रवरों को मैंने यहां तुमसे कहा है ॥ ३७ ॥ और दूसरा श्रीक्षेत्र है व तीन गोत्र हैं छांदनस, वत्स व तीसरा कुश है ॥ ३८ ॥ और तीसरा मुद्गल है व कुश और भारद्वाज प्रवर हैं और चौथा शोहोली ग्राम है व कुशप्रवर है ॥ ३९ ॥ और पांचवां ज्येष्ठला ग्रामहै व वत्स और कुशप्रवर कहे गये हैं ॥५॥ और छठां श्रेयस्थान है व भारद्वाज और कुश प्रवर हैं ॥ ४० ॥ और सातवां दंताली ग्राम है व भारद्वाज और कुश प्रवर हैं व हे उत्तम सुत ! आठवां वटस्थान जानिये ॥४१॥ वहां

कुश, कुत्स व भारद्वाजगोत्र है और नवां राजापुर है व भारद्वाज प्रवर है ॥ ४२ ॥ और दशवां कृष्णवाट नगर हैं व कुश प्रवर हैं और गेरहवां दहलोटपुर है व वत्स प्रवर है ॥ ४३ ॥ और बारहवां चेखलीपुर है व पौककुश प्रवर है ॥ ४४ ॥ और चांचोदखे, देहोलोडी, आत्रय, वत्स व कुत्सक प्रवर हैं और भारद्वाजी, कोणायाग्राम हैं व भारद्वाज, गोलंद्दणा और शकु प्रवर हैं ॥ ४५ ॥ और थलत्यजाद्दय ग्राम में कुश व धारण प्रवर हैं और नारणसिद्धा स्वस्थान है व कुत्सगोत्र कहागया है ॥४६॥ और भालजाग्राम में कुत्स व वत्स प्रवर हैं और मोहोवी व आकुश हैं तथा ईयाश्लीआ, शांडिल और गोधरीपात्र हैं ॥ ४७ ॥ व आनंदीयाग्राम है और

प्रवरमेव च ९ ॥ ४२ ॥ कृष्णवाटं दशमं चैव कुशप्रवरमेव च ॥ दहलोडमेकादशं वत्सप्रवरमेव हि ॥ ४३ ॥ चेखली द्वादशं पौककुशप्रवरमेव च ॥ ४४ ॥ चाञ्चोदखे देहोलोडी आत्रयश्च वत्सकुत्सकश्चैव ॥ भारद्वाजीकोणाया च भारद्वाजगोलंद्दणाशकुस्तथा ॥ ४५ ॥ थलत्यजाद्दये चैव कुशधारणमेव च ॥ नारणसिद्धा च स्वस्थानं कुत्सं गोत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ४६ ॥ भालजां कुत्सवत्सौ च मोहोवी आकुशस्तथा ॥ ईयाश्लीआ शाण्डिलश्च गोधरीपात्रमेव च॥४७॥ आनन्दीया द्वे चैव भारद्वाजशाण्डिलश्चैवपाटडीआ कुशमेव च ॥ ४८ ॥ वांसडीआश्चैव जास्वा कौत्समणा वत्स आत्रेयौ गीता आकुशगौतमौ ॥ ४९ ॥ चरणीआ भारद्वाजः दुधी आधारणसा हि अहोसोन्ना शाण्डिल्यस्तथा ॥ ५० ॥ वैलोला हुशश्चैवा असाला कुशश्चैव धारणा च द्वितीयकम् ॥ ५१ ॥ नालोला वत्सधारणीया च देलोला कुत्समेव च ॥ सोहासीया भारद्वाजकुशवत्समेव च ॥ ५२ ॥ सुहालीआ वत्सं वै प्रोक्तं गोत्राणि यथाक्रमम् ॥

उसमें दो गोत्र हैं भारद्वाज व शांडिल और पाटडीआ ग्राम है व कुश गोत्र है ॥ ४८ ॥ और बाँसडीआ, जास्वा, कौतसमणा ग्राम हैं व इनमें वत्स और आत्रेय गोत्र है व गीता ग्राम है और आकुश व गौतम प्रवर हैं ॥ ४९ ॥ और चरणीआ ग्राम है व भारद्वाज गोत्र है और दुधीआ धारणसा, अहोसोन्ना ग्राम है व शांडिल्यगोत्र है ॥ ५० ॥ व वैलोला, हुशश्चैवा, असाला ग्राम हैं और कुश व दूसरा धारणागोत्र है ॥ ५१ ॥ और नालोला ग्राम है व वत्स और धारणीय गोत्र हैं व देलोला ग्राम है और कुत्स गोत्र है और सोहासीया ग्राम है उसमें भारद्वाज, कुश व वत्स गोत्र हैं ॥ ५२ ॥ और जो सुहालीआ ग्राम है उसमें वत्स गोत्र है मैंने यहां क्रम से गोत्रों व स्वस्थानों को

कहा ॥ ५३ ॥ और शीतवाडिया ग्राम है उसमें जो गोत्र कहे गये वे ये हैं कि कुश, वत्स और विश्वामित्र, देवरात और तीसरा दल गोत्र है ॥५४॥ और भार्गव, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि ये गोत्र हैं और वचा, अर्द्धशेषा व वुटला ये गोत्रदेवियां कही गई हैं ॥ ५५ ॥ यह प्रथम गोत्र समाप्त हुआ ॥ १ ॥ दूसरा श्रीक्षेत्र कहा गया है और दो गोत्र हैं छान्दनस व वत्स और दो देवियां हैं ॥ ५६ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष, यौवनाश्व, भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि ये प्रवर हैं ॥ ५७ ॥ व हे मुनिसत्तम ! एक भट्टारिका व दूसरी शेपलादेवी कही गई है और जो इस वंश में उत्पन्न हैं उनको सुनिये ॥ ५८ ॥ कि वे क्रोधसमेत व उत्तम आचारवाले

मया प्रोक्तानि चैवात्र स्वस्थानानि यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥ शीतवाडिया ये प्रोक्ताः कुशो वत्सस्तथैव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ५४ ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजमदग्निरेव हि ॥ वचार्द्धशेषावुटला गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥ इति प्रथमं गोत्रम् ॥ १ ॥ श्रीक्षेत्रं द्वितीयं प्रोक्तं गोत्रद्वितयमेव च ॥ छान्दनसस्तथा वत्सं देवी द्वितयमेव च ॥ ५६ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तथैव च ॥ भृगुच्यवनआप्नवानौर्वजमदग्निमेव च ॥ ५७ ॥ देवी भट्टारिका प्रोक्ता द्वितीया शेपला तथा ॥ एतद्वंशोद्भवा ये च शृणु तान्मुनिसत्तम ॥ ५८ ॥ सक्रोधनाः सदाचाराः श्रौतस्मार्तक्रियापराः ॥ पञ्चयज्ञरता नित्यं स्वसम्बन्धसमाश्रिताः ॥ कृतज्ञाः क्रतुजाश्चैव ते सर्वे द्विजसत्तमाः ॥ ५९ ॥ इति द्वितीयगोत्रम् ॥ २ ॥ तृतीयं मगोडोआ वै गोत्रद्वितयमेव च ॥ भारद्वाजस्तथा कुत्सं देवीद्वितयमेव च ॥ ६० ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ विश्वामित्रदेवरातौ प्रवरत्रयमेव च ॥ ६१ ॥ शेषला बुधला प्रोक्ताधारशान्तिस्तथैव च ॥ अस्मिन्ग्रामे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ६२ ॥ द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानायज्ञक्रिया

और श्रौत, स्मार्त कर्मों में परायण हैं व नित्य पञ्चयज्ञों में परायण तथा अपने संबन्ध में आश्रित हैं और वे सब नृपोत्तम कृतज्ञ व यज्ञ से उत्पन्न हैं ॥ ५९ ॥ यह दूसरा गोत्र समाप्त हुआ ॥ २ ॥ और तीसरा मगोडोआ नगर है व दो गोत्र हैं भारद्वाज व कुत्स और दो देवी हैं ॥ ६० ॥ आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, विश्वामित्र व देवरात ये तीन प्रवरहैं ॥ ६१ ॥ और शेषला, बुधला व धारशान्ति कहीगई है और इस ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण सत्यवादी हैं ॥ ६२ ॥ और ब्राह्मणों की पूजा व कर्म में

युक्त हैं तथा अनेक प्रकार के यज्ञकर्मों में परायण हैं व इस गोत्र में उत्पन्न सब ब्राह्मण मुनीश्वर हैं ॥ ६३ ॥ यह तीसरा गोत्र समाप्त हुआ ॥३॥ चौथा शीहोलिया ग्राम है और दो गोत्र हैं विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ६४ ॥ और उनकी चचाई देवी गोत्रदेवी कही गई है व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व उदासीनमन हैं ॥ ६५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी हैं व हे ब्रह्मसत्तम ! वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण हैं ॥ ६६ ॥ यह चौथा स्थान समाप्त हुआ ॥ ४ ॥ और ज्येष्ठलोजा पांचवां स्वस्थान है व वत्सशीया और कुत्सशीया ये दो प्रवर कहेगये हैं ॥६७॥ और आवरिवृवाप्र, यौवनाश्व, भृगु, च्यवन, आप्न, और्व, जमदग्नि ये गोत्र

परा: ॥ अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना द्विजाः सर्वे मुनीश्वराः ॥ ६३ ॥ इति तृतीयगोत्रम् ॥ ३ ॥ चतुर्थं शीहोलियाग्रामं गोत्रद्वितयमेव च ॥ विश्वामित्रदेवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ६४ ॥ देवी चचाई वै तेषां गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ६५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्व्वविद्याप्रवीणाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तम ॥ ६६ ॥ इति चतुर्थं स्थानम् ॥ ४ ॥ ज्येष्ठलोजा पञ्चमं च स्वस्थानं परिकीर्तितम् ॥ वत्सशीया कुत्सशीया प्रवरद्वितयं स्मृतम् ॥ ६७ ॥ आवरिवृवाप्रश्यौवनाश्वभृगुच्यवनआप्नौर्वजमदग्निस्तथैव हि ॥ ६८ ॥ चचाई वत्सगोत्रस्य शान्ता च कुत्सगोत्रजा ॥ एतैस्त्रिभिः पञ्चभिश्च द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ६९ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रैश्च संयुताः ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाः सर्वकर्मसु ॥ ७० ॥ सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः ॥ दानधर्म्मरताः सर्वे अत्रजा जलदा द्विजाः ॥ ७१ ॥ इति पञ्चमं स्थानम् ॥ ५ ॥ शेरथाग्रामेषु वै जाताः प्रवर

हैं ॥ ६८ ॥ और वत्स गोत्र की चचाई देवी है व कुत्सगोत्र में उत्पन्न शांता देवी है और इन तीनों व पांचों से ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूपी होते हैं ॥ ६९ ॥ और वे शान्त, दान्त, सुशील व धन और पुत्रों से संयुत होते हैं व वेदपाठ से संयुत और सब कर्मों में प्रवीण होते हैं ॥७०॥ और उत्तम रूपवान् तथा अच्छे आचरणवाले व सब धर्मों में परायण होते हैं और इसमें पैदा हुए सब ब्राह्मण दान धर्म में परायण व जलदायक होते हैं ॥ ७१ ॥ यह पांचवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५ ॥ और शेरथा ग्रामों में जो

उत्पन्न हैं वे दो प्रवरों से संयुत हैं कुश व भारद्वाज और दो देवी हैं ॥ ७२ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज ये गोत्र हैं ॥७३॥ और कमला महालक्ष्मी व दूसरी यक्षिणी है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे श्रौत स्मार्त कर्मों में परायण व विद्वान् होते हैं ॥ ७४ ॥ और वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी तथा शत्रुमर्दक होते हैं और क्रोधी, लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण हैं और सब वेदकर्म में तत्पर होते हैं वे ब्राह्मण मुझसे कहेगये ॥ ७५ ॥ यह छठां स्थान समाप्त हुआ ॥ ६ ॥ और दन्तालिया ग्राम में भारद्वाज, कुत्स व शाय, आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज गोत्र हैं ॥ ७६ ॥ और यक्षिणी व दूसरी कर्मलादेवी

द्वयसंयुताः ॥ कुशभारद्वाजाश्चैव देवीद्वयं तथैव च ॥ ७२ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ ७३ ॥ कमला च महालक्ष्मीर्द्वितीया यक्षिणी तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ ७४ ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः ॥ रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे ब्राह्मणास्ते मयोदिताः ॥ ७५ ॥ इति षष्ठं स्थानम् ॥ ६ ॥ दन्तालीया भारद्वाजकुत्सशायास्तथैव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ ७६ ॥ देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया कर्मला तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ ७७ ॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ७८ ॥ इति सप्तमं स्थानम् ॥ ७ ॥ वडोद्रीयान्वये जाताश्चत्वारः प्रवराः स्मृताः ॥ कुशः कुत्सश्च वत्सश्च भारद्वाजस्तथैव च ॥ ७९ ॥ तत्प्रवराण्यहं वक्ष्ये तथा गोत्राण्यनुक्रमात् ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ ८० ॥ आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्व

कही गई है और इस गोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे धनी व शुभ होते हैं ॥७७॥ और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण हैं और सब ब्रह्मभोज में परायण व सब धर्म में परायण हैं ॥७८॥ यह सातवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ७ ॥ और जो वडोद्रीय के वंश में उत्पन्न हैं उनके चार प्रवर कहे गये हैं कुश, कुत्स, वत्स व भारद्वाज हैं ॥ ७९ ॥ और उनके प्रवरों व गोत्रों को मैं क्रम से कहता हूं कि विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ८० ॥ और आङ्गिरस, अम्बरीष व तीसरे यौवनाश्व

हैं और भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं ॥ ८१ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज ये गोत्र हैं और कर्मला, क्षेमला और धारभट्टारिका ॥ ८२ ॥ और चौथी क्षेमला कही गई है ये क्रम से गोत्रमाता हैं व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञ में परायण हैं ॥ ८३ ॥ और लोभी, क्रोधी व बहुत प्रजाओंवाले और स्नान, दानादि में परायण व सदैव इन्द्रियों को जीतनेवाले होते हैं ॥ ८४ ॥ और हज़ारों बावली, कुँवा व तड़ागों के बनानेवाले होते हैं और व्रत करनेवाले व गुणज्ञ तथा मूर्ख व वेदों से रहित होते हैं ॥ ८५ ॥ यह आठवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ८ ॥ और उस गोदणीय नामक ग्राम में दो गोत्र टिके हैं पहला वत्स गोत्र है दूसरा

स्तृतीयकः ॥ भार्गवश्च्यावनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ८१ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ कर्मला क्षेमलाचैव धारभट्टारिका तथा ॥ ८२ ॥ चतुर्थी क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाता अनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ ८३ ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ स्नानदानादि निरताः सदा वै निर्जितेन्द्रियाः ॥ ८४ ॥ वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ८५ ॥ इत्यष्टमं स्थानम् ॥ ८ ॥ गोदणीयाभिधे ग्रामे गोत्रौ द्वौ तत्र संस्थितौ ॥ वत्सगोत्रं प्रथमकं भारद्वाजं द्वितीयकम् ॥ ८६ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वपुरोधसमेव च ॥ शीहरी प्रथमा ज्ञेया द्वितीया यक्षिणी तथा ॥ ८७ ॥ अस्मिन्गोत्रोद्भवा विप्रा धनधान्यसमन्विताः ॥ सामर्षा लौल्यहीनाश्च द्वेषिणः कुटिलास्तथा ॥ ८८ ॥ हिंसिनो धनलुब्धाश्च मया प्रोक्तास्तु भूपते ॥ ८९ ॥ इति नवमं स्थानम् ॥ ९ ॥ कण्टवाडीआ ग्रामे विप्राः कुशगोत्र समुद्भवाः ॥ प्रवरं तस्य वक्ष्यामि शृणु त्वं च नृपो

भारद्वाज है ॥ ८६ ॥ और भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व पुरोधस ये प्रवर हैं और प्रथम देवी शीहरी व दूसरी यक्षिणी जानने योग्य है ॥ ८७ ॥ और इस गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण धन, धान्य से संयुत होते हैं और क्रोध समेत व चंचलता रहित तथा द्वेषी व कुटिल होते हैं ॥ ८८ ॥ व हे भूपते ! मुझसे वे हिंसक व धन के लोभी कहे गये ॥ ८९ ॥ यह नवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ९ ॥ व हे नृपोत्तम ! कराटवाडीआ ग्राम में ब्राह्मण कुश गोत्र में उत्पन्न हैं उसका प्रवर मैं कहता हूं तुम

सुनो ॥९०॥ कि विश्वामित्र, देवरात व उदल ये तीन प्रवर कहेगये हैं व हे नृपोत्तम ! वह चचाई देवी कहां गई तुम सुनो॥ ९१ ॥ और वहां प्रसन्न चित्त व सावधान मनवाले वे यज्ञों से पूजते हैं और वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण तथा सत्यवादी होते हैं ॥ ९२ ॥ यह दशवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १० ॥ और मैंने जो वेखलोया ग्राम कहा है उसमें कुशवंश में उपजेहुए ब्राह्मण बसते हैं व हे नृपोत्तम ! वे तीन प्रवरों से संयुत होते हैं उनको सुनो ॥ ९३ ॥ कि विश्वामित्र, देवराज और औदल ये तीन प्रवर कहे गये हैं और उनके कुल की रक्षा करनेवाली चचाई देवी कहीगई है ॥ ९४ ॥ और ब्राह्मण महात्मा, सत्त्ववान् व गुण से संयुत होते हैं और तपस्वी,

त्तम ॥ ९० ॥ विश्वामित्रो देवरात उदलश्च त्रयः स्मृताः ॥ चचाई देवी सा प्रोक्ता शृणु त्वं नृप सत्तम ॥ ९१ ॥ यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः ॥ सर्वविद्यासु कुशला ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ९२ ॥ इति दशमं स्थानम् ॥ १० ॥ वेखलोया मया प्रोक्ता कुत्सवंशे समुद्भवाः ॥ प्रवरत्रयसंयुक्ताः शृणु त्वं च नृपोत्तम ॥ ९३ ॥ विश्वामित्रो देवराजौदलश्चेति त्रयः स्मृताः ॥ चचाई देवी तेषां वै कुलरक्षाकरी स्मृता ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणाश्च महात्मानः सत्त्ववन्तो गुणान्विताः ॥ तपस्वियोगिनश्चैव वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ९५ ॥ साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ स्नानसन्ध्यापरा नित्यं ब्रह्मभोज्यपरायणाः ॥ ९६ ॥ अस्मिन्वंशे मया प्रोक्ताः शृणु त्वं च अतः परम् ॥ ९७ ॥ इत्येकादशं स्थानम् ॥ ११ ॥ देहलोडीआ ये प्रोक्ताः कुत्सप्रवरसंयुताः ॥ आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ९८ ॥ गोत्रदेवी मया प्रोक्ता श्रीशेषदुर्बलेति च ॥ कुत्सवंशे च ये जाताः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ ९९ ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च परच्छिद्रैकद

योगी व वेदों और वेदांगोंके पारगामी होते हैं ॥ ९५ ॥ और साधु व उत्तम आचार वाले तथा विष्णुजी की भक्ति में परायण होते हैं और स्नान व संध्या में तत्पर तथा नित्य ब्रह्मभोज में परायण होते हैं ॥ ९६ ॥ इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे मुझसे कहे गये व इसके उपरान्त तुम सुनो ॥ ९७ ॥ यह गेरहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ११ ॥ और देहलोडीआ ग्राम में जो ब्राह्मण कहेगये हैं वे कुत्स प्रवर से संयुत हैं और आंगिरस, आम्बरीष व तीसरा युवनाश्व प्रवर है ॥ ९८ ॥ व मैंने श्रीशेष दुर्बला ऐसी गोत्रदेवी कहा है और जो कुत्सवंश में उत्पन्न हैं वे उत्तम चरित्रवाले व सत्यवादी होते हैं ॥ ९९ ॥ और वेदपाठ से रहित व पराये छिद्र को देखनेवाले तथा क्रोधसहित

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व चंचलता से रहित और द्वेषी व कुटिल होते हैं ॥ १०० ॥ व जो कुत्सवंश में उत्पन्न हैं वे हिंसक और धन के लोभी होते हैं ॥ १ ॥ यह बारहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १२ ॥ और कोह ग्राम में तीन गोत्रों से संयुत ब्राह्मण कहेगये हैं भारद्वाज, वत्स व तीसरा कुश है ॥ २ ॥ और गोत्र के क्रम से मैं प्रवरों को कहता हूं कि भार्गव,च्यवन,आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं ॥ ३ ॥ और तीसरा कुश प्रवर है व उसमें तीन प्रवर हैं विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ४ ॥ और पहली यक्षिणी व दूसरी शीहुरी देवी कहीगई है और क्रमपूर्वक गोत्र में उत्पन्न तीसरी चचाईदेवी है ॥ ५ ॥ व इस गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण श्रौतस्मार्त कर्मों में परायण व विद्वान् होते हैं और

शिनः ॥ सामर्षा लौल्यतो हीना द्वेषिणः कुटिलास्तथा ॥ १०० ॥ हिंसिनो धनलुब्धाश्च ये च कुत्ससमुद्भवाः ॥ १ ॥ इति द्वादशं स्थानम् ॥ १२ ॥ कोहे च ब्राह्मणाः प्रोक्ता गोत्र त्रितयसंयुताः ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सस्तृतीयः कुश एव च ॥ २ ॥ प्रवराण्यहं तथा वक्ष्ये यथा गोत्रक्रमेण हि ॥ भार्गवच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ३ ॥ कुशप्रवरं तृतीयं तु प्रवरत्रयमेव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ४ ॥ यक्षिणी प्रथमा प्रोक्ता द्वितीया शीहुरी तथा ॥ तृतीया चचाई प्रोक्ता यथानुक्रमगोत्रजा ॥ ५ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः ॥ ६ ॥ रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मकर्मपराः सर्वे मया प्रोक्ता द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशं स्थानम् ॥ १३ ॥ चान्दणखेडे ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यस्तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ ८ ॥ यक्षिणी चास्य वै देवी प्रोक्ता व्यासेन धीमता ॥ भारद्वाजास्तु ये जाता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ९ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रसमन्विताः ॥ धर्मारण्ये द्विजाः श्रेष्ठाः क्रतुकर्माणि को

वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी और शत्रुमर्दक होते हैं ॥ ६ ॥ और क्रोधी, लोभी,दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ करानेमें परायण हैं व मैंने सब द्विजोत्तमों को ब्रह्मकर्म में परायण कहा है ॥ ७ ॥ यह तेरहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १३ ॥ और चांदड़खेड़ में जो उत्पन्न हैं वे भारद्वाज से उत्पन्न हैं और आंगिरस,बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज प्रवर है ॥ ८ ॥ और बुद्धिमान् व्यासजी ने इस गोत्र की यक्षिणी देवी कहा है और भारद्वाज गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूपी हैं ॥ ९ ॥ और शांत, दांत, सुशील व धन

और पुत्रों से संयुत होते हैं और धर्मारण्य में श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञ कर्म में परायण हैं ॥ १० ॥ और गुरुवों की भक्ति में परायण सब अपने कुलको प्रकाशित करते हैं ॥ ११ ॥ यह चौदहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १४ ॥ और थल ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे भारद्वाज से उत्पन्न हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज प्रवर है ॥ १२ ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण उत्तम व धनी होते हैं और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण होते हैं॥ १३ ॥ और सब ब्रह्म भोज में परायण व सब धर्म में तत्पर होते हैं और गोत्र की देवी यक्षिणी नामक रक्षा करनेवाली मुझसे कहीगई ॥ १४ ॥ यह पंद्रहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

विदाः॥ १०॥ गुरुभक्तिरताः सर्वे भासयन्ति स्वकं कुलम् ॥ ११ ॥ इति चतुर्द्दशं स्थानम् ॥ १४॥ थलग्रामे च ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ १२ ॥ अस्मिन् गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः॥१३॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ गोत्रदेवी मया ख्याता यक्षिणी नाम रक्षिणी ॥ १४॥ इति पञ्चदशं स्थानम् ॥१५॥मोऊत्रीयाश्च ये जाता द्वौ गोत्रौ तत्र कीर्तितौ ॥ भारद्वाजः कश्यपश्च देवीद्वितयमेव च ॥ १५ ॥ चामुण्डा यक्षिणीचैव देवी चात्र प्रकीर्त्तिता ॥ कश्यपाऽवत्सारश्चैव नैध्रुवश्च तृतीयकः ॥ १६ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ प्रियवाक्या महादक्षा गुरुभक्ति रताः सदा ॥ १७॥ सदा प्रतिष्ठावन्तश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ यजन्ति ते महायज्ञान्काश्यपा ये द्विजातयः ॥ १८ ॥ सर्वेषां याजनकरा याज्ञिकाः परमाः स्मृताः॥१९॥इति षोडशं स्थानम् ॥१६॥ हाथीजणे च ये जाता वात्सा भारद्वाजास्तथा॥ज्ञानजा यक्षि

और जो मोऊत्रीया ग्राममें उत्पन्न हैं उनमें दो गोत्र कहे गये हैं भारद्वाज व कश्यप और दो देवी हैं ॥ १५ ॥ चामुण्डा और यक्षिणी ये दो देवी इसमें कहीगई हैं और कश्यप अवत्सार व तीसरा नैध्रुव प्रवर है ॥ १६ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज है और वे सब प्रियवचनवाले व बड़े प्रवीण तथा सदैव गुरुवों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ १७ ॥ और सदैव प्रतिष्ठावाले व सब प्राणियों के हित में परायण होते हैं और जो कश्यपगोत्रवाले ब्राह्मण हैं वे महायज्ञों को करते हैं ॥ १८ ॥ और वे सबों को यज्ञ करानेवाले व उत्तम यज्ञकर्ता कहे गये हैं ॥ १९ ॥ यह सोलहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १६ ॥ और जो हाथी जड़ ग्राम में उत्पन्न हैं वे वात्स व भार

द्वाजगोत्रवाले हैं और ज्ञानजा व यक्षिणी गोत्र देवी कही गई हैं ॥ २० ॥ और जो इस गोत्र में उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञों में परायण होते हैं व लोभी, क्रोधी और पुत्रवान् व बहुत शास्त्रों को पढ़नेवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और स्नान, दानादि में तत्पर व विष्णुजी की भक्ति में परायण होते हैं और व्रत करनेवाले तथा गुण व ज्ञान से मूर्ख और वेदों से रहित होते हैं ॥ २२ ॥ यह सत्रहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १७ ॥ और कपड्डाण ग्राम में उत्पन्न ब्राह्मण भारद्वाज व कुशगोत्रवाले हैं और यक्षिणी व दूसरी चचाईदेवी कही गई है ॥ २३ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज गोत्र है और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल प्रवर है ॥ २४ ॥ और इस

णी चैव गोत्रदेव्यौ प्रकीर्तिते ॥ २० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजाव न्तो बहुश्रुताः ॥ २१ ॥ स्नानदानादिनिरता विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ व्रतशीला गुणज्ञानमूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ २२ ॥ इति सप्तदशं स्थानम् ॥ १७ ॥ कपड्डाणजा ब्राह्मणास्तु भारद्वाजाः कुशास्तथा ॥ देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया च चाई तथा ॥ २३ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ २४ ॥ अस्मि न्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितव्रताः ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ २५ ॥ सदोद्यताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ २६ ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महामाया विमोहि ताः ॥ २७ ॥ इत्यष्टादशं स्थानम् ॥ १८ ॥ जन्होरीवाडवाः प्रोक्ताः कुशप्रवरसंयुताः ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ २८ ॥ तारणी च महामाया गोत्रदेवी प्रकीर्त्तिता ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहा नृप ॥ २९ ॥ महो

गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी व व्रतों को जीतनेवाले तथा जितेन्द्रिय व स्वरूप वान् और थोड़ा भोजन करनेवाले व उत्तम मुखवाले होते हैं ॥ २५ ॥ और सदैव उद्यत व पुराणों को जाननेवाले तथा महादानों में परायण और वैररहित, लोभ संयुत व वेदपाठ में परायण रहते हैं ॥ २६ ॥ और बड़े तेजस्वी व महामाया से मोहित होते हैं ॥ २७ ॥ यह अट्ठारहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १८ ॥ और जन्होरी ग्राम के ब्राह्मण कुश के प्रवर से संयुत होते हैं और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥ २८ ॥ और तारणी महादेवी गोत्रदेवी कही गई है व हे राजन् ! इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण दुस्सह होते हैं ॥ २९ ॥ और बड़े उग्र व बड़े शरीर

वाले तथा लम्बे व बड़े गर्वित होते हैं और क्लेशरूप व काले रंग वाले तथा सब शास्त्रों में चतुर होते हैं ॥ ३० ॥ और बहुत भोजन करनेवाले तथा प्रवीण व वैर और पाप से रहित व उत्तम वस्त्र और भूषण व रूपवाले व ब्रह्मवादी ब्राह्मण होते हैं ॥ ३१ ॥ यह उन्नीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १९ ॥ और वनोडीया ग्राम में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं उनके तीन गोत्र हैं कुश व कुत्सप्रवर और तीसरा भारद्वाज है ॥ ३२ ॥ और विश्वामित्र,देवरात व तीसरा औदल है और आंगिरस, आम्बरीष व तीसरा युवनाश्व है ॥ ३३ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज हैं और पहली देवी शेषला व दूसरी शांता कही गई है ॥ ३४ ॥ और तीसरी धारशांति है ये क्रम से गोत्रदेवियां

त्कटा महाकायाः प्रलम्बाश्च महोद्धताः ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ३० ॥ बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः ॥ सुवस्त्रभूषा वै रूपा ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ ३१ ॥ इत्येकोनविंशतितमं स्थानम् ॥ १९ ॥ वनोडीयाश्च ये जाता गोत्राणां त्रयमेव च ॥ कुशकुत्सौ च प्रवरौ तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च ॥ आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ३३ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ शेषला प्रथमा प्रोक्ता तथा शान्ता द्वितीयका ॥ ३४ ॥ तृतीया धारशान्तिश्च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ३५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३६ ॥ इति विंशतितमं स्थानम् ॥ २० ॥ कीणावाचनकं स्थानं यदेकाधिकविंशतिः ॥ भारद्वाजाश्च विप्रेन्द्राः कथिता ब्राह्मणाः शुभाः ॥ ३७ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ यक्षिणी च तथा देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ वस्त्रालंकरणोपेता द्विजभक्ति

हैं व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीनमनवाले होते हैं ॥ ३५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३६ ॥ यह बीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २० ॥ और कीणावाचनक नामक जो इक्कीसवां स्थान है उसमें भारद्वाज गोत्रवाले उत्तम द्विजेन्द्र द्विज कहे गये हैं ॥ ३७ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज प्रवर हैं व यक्षिणीदेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ ३८ ॥ व इस गोत्रमें जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं

वे धनी व उत्तम होते हैं और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ ३९ ॥ और सब ब्रह्मभोज में परायण व सब धर्म में परायण होते हैं ॥ ४० ॥ यह इक्कीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २१ ॥ और गोविंदणा स्वस्थान में जो उत्पन्न हैं वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और कुश गोत्र कहागया है व तीन प्रवर हैं ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र, देवरात व औदल प्रवर है और चचाई महादेवी गोत्रदेवी कही गई है ॥ ४२ ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी होते हैं और वहां प्रसन्न चित्त व सावधान मनवाले वे यज्ञों से पूजते हैं ॥ ४३ ॥ और वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ व ब्रह्मण्य ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर होतेहैं ॥ ४४ ॥ यह बाईसवां स्थान

परायणाः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्म्मपरायणाः ॥ ४० ॥ इत्येकविंशतितमं स्थानम् ॥ २१ ॥ गोविन्दणा च स्वस्थाने ये जाता ब्रह्मसत्तमाः ॥ कुशगोत्रं च वै प्रोक्तं प्रवरत्रयमेव च ॥ ४१ ॥ विश्वामित्रो देवरातौदलप्रवरमेव च ॥ चचाई च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४२ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ॥ यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः ॥४३॥ सर्वविद्यासु कुशला ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥४४॥ इति द्वाविंशतितमं स्थानम् ॥२२॥ थलत्यजा हि विप्रेन्द्रा द्वौ गोत्रौ चाप्यधिष्ठितौ ॥ धारणं संकुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ ४५ ॥ अगस्त्यो दार्ढ्यच्युतश्च रथ्यवाहनमेव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ ४६ ॥ देवी च छत्रजा प्रोक्ता द्वितीया थलजा तथा ॥ धारणसगोत्रे ये जाता ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥ ४७ ॥ त्रिप्रवराश्चैव विख्याता सत्त्ववन्तो गुणान्विताः ॥ तदन्वये च ये जाता धर्मकर्म्मसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ धनिनो ज्ञाननिष्ठाश्च तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ त्रयोविंशं प्रोक्तमेतत्स्थानं

समाप्त हुआ ॥ २२ ॥ और थलत्यजा ग्राम में जो द्विजेन्द्र हैं उनमें दो गोत्र स्थित हैं धारण और संकुश ये दो गोत्रहैं ॥ ४५ ॥ और अगस्त्य, दार्ढ्यच्युत व रथ्यवाहन और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥ ४६ ॥ और छत्रजा देवी व दूसरी थलजा देवी है और जो धारणस गोत्र में उत्पन्न हैं वे ब्रह्मण्य व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ॥ ४७ ॥ और तीन प्रवरवाले वे सत्त्ववान् व गुणों से संयुत होते हैं और उसके वंश में जो उत्पन्न हैं वे धर्म व कर्म में आश्रित होतेहैं ॥ ४८ ॥ और धनी व

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ज्ञान में तत्पर तथा तपस्या व यज्ञ कार्यादिकों में परायण होतेहैं मोढ जातिवालों का यह तेईसवां स्थान है ॥ ४६ ॥ यह तेईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २३ ॥ और ज्ञानियों में श्रेष्ठ जो वारण सिद्ध ब्राह्मण कहे गये हैं व इस गोत्र में जो ब्राह्मण हैं वे सत्यवादी व व्रतों को जीतनेवाले हैं ॥ ५० ॥ और जितेन्द्रिय व स्वरूपवान् तथा थोड़े भोजन व उत्तम मुखवाले हैं और सदैव उद्यत व पुराणोंको जाननेवाले तथा महादानों में परायण हैं ॥ ५१ ॥ और निश्शत्रु व बिनलोभसे संयुत तथा वेदपाठ में तत्पर होते हैं और विद्वान् व बड़े तेजस्वी तथा महामायासे मोहित होतेहैं ॥ ५२ ॥ यह चौबीसवां स्वस्थान कहागया जोकि श्रेष्ठ माना गया है ॥ ५३ ॥ यह चौबीसवां

मोढकजातिनाम् ॥ ४६ ॥ इति त्रयोविंशतितमं स्थानम् ॥ २३ ॥ वारणसिद्धाश्च ये प्रोक्ता ब्राह्मणा ज्ञानवित्तमाः ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितव्रताः ॥ ५० ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ सदोद्यताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ ५१ ॥ निर्द्वेषिणोऽलोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महामायाविमोहिताः ॥ ५२ ॥ चतुर्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं परमं मतम् ॥ ५३ ॥ इति चतुर्विंशतितमं स्थानम् ॥ २४ ॥ भालजाश्चात्र वै प्रोक्ता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ५४ ॥ वत्सगोत्रं कुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ तेषां प्रवराण्यहं वक्ष्ये पञ्चत्रितयमेव च ॥ भृगुश्च्यवनाप्रवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ५५ ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ शान्ता च शेषला चात्र देवीद्वितयमेव च ॥ ५६ ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्धनाश्च कुचैलिनः ॥ ५७ ॥ सगर्वा लौल्य युक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ॥ पञ्चविंशतिमं प्रोक्तं

स्थान समाप्त हुआ ॥ २४ ॥ और यहां भालज व सत्यवादी ब्राह्मण कहेगयेहैं ॥ ५४ ॥ और वत्स गोत्र व कुश ये दो गोत्र कहे गये हैं उनके पांच व तीन प्रवरों को मैं कहता हूं कि भृगु, च्यवन, आप्नवान, और्व व जमदग्नि ॥ ५५ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा युवनाश्व है और इसमें शांता व शेषला दो देवी हैं ॥ ५६ ॥ और इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण उत्तमचरित्रवाले व सत्यवादी होते हैं और शांत व भिन्न रंगवाले तथा निर्धनी व मलिनवस्त्रोंवाले होते हैं ॥ ५७ ॥ और अहंकार

समेत व चंचलतायुक्त तथा वेद व शास्त्रों में निश्चल होते हैं यह मोढ जातिवालों का पचीसवां स्वस्थान कहागयाहै ॥ ५८ ॥ यह पचीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २५ ॥ और महोवीश्रा ग्राम में जो ब्राह्मण हैं वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होते हैं और कुश संज्ञक एकही पवित्रगोत्र है ॥ ५९ ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है और इसमें रक्षारूप चचाई देवी स्थित है ॥ ६० ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं और सत्यव्रत, स्वरूपवान् व थोड़े भोजन तथा उत्तम मुख वाले होते हैं ॥ ६१ ॥ और दयालु, सुशील व सब प्राणियों के हित में परायण होते हैं यह ब्रह्मवादियों का छब्बीसवां स्वस्थान कहा गया ॥ ६२ ॥ जोकि छोटे

स्वस्थानं मोढज्ञातिनाम्॥५८॥ इति पञ्चविंशतितमं स्थानम्॥ २५॥ महोवीश्राश्च ये सन्ति ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः॥ एकमेव च वै गोत्रं कुशसंज्ञं पवित्रकम्॥ ५९ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च ॥ देवी चचाई चैवात्र रक्षा रूपा व्यवस्थिता ॥ ६० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितेन्द्रियाः॥ सत्यव्रताः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः॥६१॥ दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः॥ षड्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं ब्रह्मवादिनाम्॥६२॥ रामेण संस्तुताश्चैव सानुजेन तथैव च॥ ६३ ॥ इति षड्विंशतितमं स्थानम्॥ २६ ॥ तियाश्रीयामथो वक्ष्ये स्वस्थानं स प्तविंशकम्॥ अस्मिन्स्थाने च ये जाता ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ६४॥ शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र कथितं वेदसत्तमैः॥ पञ्चप्रवरमथो प्रोक्तं ज्ञानजा चात्र देवता ॥ ६५ ॥ काश्यपावत्सारश्चैव शाण्डिलोसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव प्रवराणि तथा क्रमात्॥ज्ञानजा च तथा देवी कथिता स्थानदेवता॥६६॥ अस्मिन्वंशे च ये जातास्ते द्विजाः सूर्यवर्चसः॥

भाई लक्ष्मण समेत श्रीरामजी से स्तुति किये गये हैं ॥ ६३ ॥ यह छब्बीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त तियाश्री में सत्ताईसवें स्वस्थान को कहता हूं कि इस स्थान में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण वेदों के पारगामी होतेहैं ॥ ६४ ॥ और इस में श्रेष्ठ ज्ञानियों ने शांडिल्य गोत्र कहा है और इसमें पांच प्रवर व ज्ञानजा देवता कहा गया है ॥ ६५ ॥ काश्यप, अवत्सार, शांडिल, असित व पांचवां देवल ये क्रमसे प्रवर कहे गये हैं और ज्ञानजा देवी स्थानदेवता कही गई है ॥ ६६ ॥ व इस वंशमें

जो उत्पन्न हुए हैं वे ब्राह्मण सूर्य के समान तेजस्वी हैं और धर्मारण्य में टिके हुए वे सब चन्द्रमा के समान शीतल हैं ॥ ६७ ॥ व हे महाराज ! उत्तम आचारवाले तथा वेदों व शास्त्रों में परायण हैं और यज्ञ करनेवाले तथा उत्तम आचार व सत्य तथा शुद्धता में परायण हैं ॥ ६८ ॥ और धर्मज्ञ व दान करनेवाले तथा निर्मल व गर्व से उत्कंठित हैं और तपस्या व निज वेद पाठ में परायण और न्याय धर्म में लगे हुए हैं उत्तम ब्रह्मज्ञानियों ने यह सत्ताईसवां स्थान कहा है ॥ ६९ ॥ यह सत्ताईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २७ ॥ और गोधरीय ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ज्ञान में श्रेष्ठ होते हैं इसके उपरान्त क्रम से मैं तीन गोत्रों को कहता हूं ॥ ७० ॥ पहला धारणस

चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ ६७ ॥ सदाचारा महाराज वेदशास्त्रपरायणाः ॥ याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः ॥ ६८ ॥ धर्मज्ञा दानशीलाश्च निर्मला हि मदोत्सुकाः ॥ तपःस्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपरायणाः ॥ सप्तविंशतिमं स्थानं कथितं ब्रह्मवित्तमैः ॥ ६९ ॥ इति सप्तविंशं स्थानम् ॥ २७ ॥ गोधरीयाश्च ये जाता ब्राह्मणा ज्ञानसत्तमाः ॥ गोत्रत्रयमथोवक्ष्ये यथा चैवाप्यनुक्रमात् ॥ ७० ॥ प्रथमं धारणसं चैव जातूकर्णं द्वितीयकम् ॥ तृतीयं कौशिकं चैव यथा चैवाप्यनुक्रमात् ॥ ७१ ॥ धारणसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ अगस्तिश्च दार्ढच्युत इध्मवाहनसंज्ञकः ॥ ७२ ॥ वसिष्ठश्च तथात्रेयो जातूकर्णस्तृतीयकः ॥ विश्वामित्रो मधुच्छन्दसस्तृतीयो ह्यघमर्षणः ॥ ७३ ॥ महाबला च मालेया द्वितीया चैव यक्षिणी ॥ तृतीया च महायोगी गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ अलौल्याश्च महायज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ॥ ७५ ॥ इत्यष्टाविंशं

दूसरा जातूकर्ण तीसरा कौशिक ये क्रम से हैं ॥ ७१ ॥ और जो धारणस गोत्र में उत्पन्न हैं वे तीन प्रवरों से संयुत होते हैं अगस्ति, दार्ढच्युत व इध्मवाहन संज्ञक ॥ ७२ ॥ और वसिष्ठ, आत्रेय व तीसरा जातूकर्ण है और विश्वामित्र, मधुच्छंदस व तीसरा अघमर्षण है ॥ ७३ ॥ और बड़ी बलवती मालेया व दूसरी यक्षिणी और तीसरी महायोगी ये गोत्रदेवियां कही गई हैं ॥ ७४ ॥ व इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं व सत्यवादी होते हैं और चंचलताहीन व महायज्ञों को करनेवाले तथा वेदों की आज्ञा के पालक होते हैं ॥ ७५ ॥ यह अट्ठाईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २८ ॥ और जो वाटस्थ हाल में उत्पन्न हैं उनके तीन गोत्र हैं पहला धारण व दूसरा वत्स

संज्ञक जानने योग्य है ॥ ७६ ॥ और तीसरा कुत्ससंज्ञक है ये गोत्रदेवियां कही हैं और गोत्र देवियां हैं व पहला धारणस गोत्र व तीन प्रवर हैं ॥ ७७ ॥ व अगस्ति, दार्ढच्युत व इध्मवाहन और दूसरा वत्ससंज्ञक व पांच प्रवर हैं ॥ ७८ ॥ भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं और तीसरा कुत्ससंज्ञक व तीन प्रवर हैं ॥ ७९ ॥ आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है और देवी छत्रजा व दूसरी शेषला है ॥ ८० ॥ और तीसरी ज्ञानजा देवी हैं ये क्रम से गोत्र की देवियां हैं और इस गोत्र में जो ब्राह्मण हैं वे सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं ॥ ८१ ॥ और स्वरूपवान् व थोड़े भोजन वाले तथा महादानों में परायण होते हैं और बिन द्वेषी व लोभ से संयुत तथा वेद

स्थानम् ॥ २८ ॥ वाटस्वहाले ये जाता गोत्रत्रितयमेव च ॥ धारणं प्रथमं ज्ञेयं वत्ससंज्ञं द्वितीयकम् ॥ ७६ ॥ तृतीयं कुत्ससंज्ञं च गोत्रदेव्यस्तथैव च ॥ प्रथमं धारणसगोत्रं प्रवरत्रयमेव च ॥ ७७ ॥ अगस्तिदार्ढच्युतश्चैव इध्मवाहन एव च ॥ द्वितीयं वत्ससंज्ञं हि प्रवराणि च पञ्च वै ॥ ७८ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ तृतीयं कुत्ससंज्ञं हि प्रवरत्रयमेव च ॥ ७९ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषौ च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ देवी चच्छत्रजा चैव द्वितीया शेषला तथा ॥ ८० ॥ ज्ञानजा चैव देवी च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ॥ ८१ ॥ सुरूपाश्चाल्पाहाराश्च महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ८२ ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महोत्काः सत्यवादिनः ॥ ८३ ॥ इत्येकोनत्रिंशं स्थानम् ॥ २९ ॥ माणजा च महास्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ शाण्डिल्यश्च कुशश्चैव गोत्रद्वयमितीरितम् ॥ ८४ ॥ काश्यपोऽवत्सारश्च शाण्डिल्योऽसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव एकगोत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ८५ ॥ ज्ञानजा च तथा देवी कथिता चात्र सैव च ॥ द्वितीयं च कुशं गोत्रं प्रवरत्रयमेव च ॥ ८६ ॥ विश्वामित्रो

पाठ में तत्पर होते हैं ॥ ८२ ॥ और विद्वान् व बड़े तेजस्वी तथा बड़े उत्कंठित व सत्यवादी होते हैं ॥ ८३ ॥ यह उन्तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २९ ॥ और माणजा महास्थान में दो गोत्र हैं शांडिल्य व कुश ये दो गोत्र कहे गये हैं ॥ ८४ ॥ और काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य, असित व पांचवां देवल है और एक गोत्र कहा गया है ॥ ८५ ॥ और यहां वह ज्ञानजा देवी कही है व दूसरा कुश गोत्र है और तीन प्रवर हैं ॥ ८६ ॥ विश्वामित्र, देवराज व तीसरा औदल है और यहां ज्ञानदा देवी

कही गई है ॥ ८७ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल तथा दीन मनवाले होते हैं व हे नृपसत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं ॥ ८८ ॥ और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर होते हैं ॥ ८९ ॥ यह तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३० ॥ और साणदा नामक उत्तम स्थान बहुत पवित्र मानागया है और वहां टिके हुए ब्राह्मण पवित्रकारक कहे गये हैं ॥ ९० ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल कहा गया है और ज्ञानदा महादेवी गोत्र देवी कही गई है ॥ ९१ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीनमनवाले होते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं ॥ ९२ ॥ और सब विद्या में प्रवीण वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञा-

देवराजस्तृतीयोदलमेव च ॥ ज्ञानदा चात्र वै देवी द्वितीया संप्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ ८८ ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ ८९ ॥ इति त्रिंशं स्थानम् ॥ ३० ॥ साणदा च परं स्थानं पवित्रं परमं मतम् ॥ कुशप्रवरजा विप्रास्तत्रस्थाः पावनाः स्मृताः ॥ ९० ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ ज्ञानदा च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ९१ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ ९२ ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ९३ ॥ इत्येकत्रिंशं स्थानम् ॥ ३१ ॥ आनन्दीया च संस्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ भारद्वाजं नाम चैकं शाण्डिल्यं च द्वितीयकम् ॥ ९४ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ चचाई चात्र या देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ९५ ॥ काश्यपावत्सारश्च शाण्डिल्योऽसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव प्रवराणि यथाक्रमम् ॥ ९६ ॥ ज्ञानजा च तथा देवी कथिता गोत्रदेवता ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता निर्लोभाः शुद्धमानसाः ॥ ९७ ॥ यदृच्छालाभसंतुष्टा ब्राह्मणा

नियों में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९३ ॥ यह इकतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥ और आनन्दीया संस्थान में दो गोत्र हैं एक भारद्वाज नामक व दूसरा शांडिल्य है ॥ ९४ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज है और यहां जो गोत्रदेवी है वह चचाई कही गई है ॥ ९५ ॥ और काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य, असित व पांचवां देवल है ये प्रवर क्रम से कहे गये हैं ॥ ९६ ॥ और ज्ञानजा देवी गोत्रदेवता कही गई है व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे निर्लोभ व शुद्धमनवाले होते हैं ॥ ९७ ॥ और

स्वच्छंद लाभ से संतोषवाले ब्राह्मण बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥ ९८ ॥ यह बत्तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥ और पाटडीआ नामक उत्तम पवित्र स्थान कहा गया है इस में तीन प्रवरों से संयुत कुश गोत्र है ॥ ९९ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे वेद शास्त्रों में परायण होते हैं ॥ २०० ॥ और वे ब्राह्मण गर्व से उद्धत व न्यायमार्ग में प्रवृत्त होते हैं ॥ १ ॥ यह तेंतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥ और टीकोलिया नामक उत्तमस्थान है उसमें कुशगोत्र है विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल है ॥ २ ॥ व इसमें चचाई देवी गोत्रदेवी कही गई है और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में परायण हैं ॥ ३ ॥ और रोगी,

ब्रह्मवित्तमाः ॥ ९८ ॥ इति द्वात्रिंशं स्थानम् ॥ ३२ ॥ पाटडीया परं स्थानं पवित्रं परिकीर्तितम् ॥ कुशगोत्रं भवेदत्र प्रवरत्रयसंयुतम् ॥ ९९ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव हि ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वेदशास्त्रपरायणाः ॥ २०० ॥ मदोद्धुराश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ १ ॥ इति त्रयस्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३३ ॥ टीकोलिया परं स्थानं कुशगोत्रं तथैव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च ॥ २ ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३ ॥ रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे मोढाः प्रोक्ता मयात्र वै ॥ ४ ॥ इति चतुस्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३४ ॥ गमीधाणीयं परमं स्थानं प्रोक्तं वै पञ्चत्रिंशकम् ॥ गोत्रं धारणसं चैव देवी चात्र महाबला ॥ ५ ॥ अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकाः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः ॥ ६ ॥ अलौल्याश्च महाप्राज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ॥ ७ ॥ इति पञ्चत्रिंशं स्थानम् ॥ ३५ ॥ मात्रा च परमं स्थानं पवित्रं

लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में तत्पर होते हैं मैंने यहां वेद कर्म में परायण सब मोढा ब्राह्मणों को कहा ॥ ४ ॥ यह चौतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥ पैंतीसवां गमीधाणीय नामक उत्तम स्थान कहा गया है इसमें धारणसगोत्र व महाबला गोत्रदेवी है ॥ ५ ॥ और अगस्ति दार्ढच्युत व इध्मवाहन संज्ञक प्रवर हैं और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे ब्रह्म में तत्पर होते हैं ॥ ६ ॥ और अचंचल व बड़े बुद्धिमान् तथा वेद की आज्ञा के प्रतिपालक होते हैं ॥ ७ ॥ यह पैंतीसवां स्थान

समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥ और मात्रा नामक पवित्र व उत्तम सब देहधारियों का स्थान है इसमें पवित्र कुश गोत्र स्थित है ॥ ८॥ व विश्वामित्र, देवरात और तीसरा दल प्रवर है व इसमें ज्ञानदा महादेवी सब लोकों की एक रक्षा करनेवाली है ॥९॥ और इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण देवताओं में तत्पर होते हैं और वेद पठन व वषट्कारों समेत तथा वेदों व शास्त्रों के प्रवर्तक होते हैं ॥ १० ॥ यह छत्तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥ और नातमोरा नामक उत्तम तथा पवित्र व शुभ स्थान मानागया है उसमें तीन प्रवरों से संयुत कुश गोत्र है ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है और इसमें ज्ञानजादेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ १२ ॥ और इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे

सर्वदेहिनाम् ॥ कुशगोत्रं पवित्रं तु परमं चात्र धिष्ठितम् ॥ ८ ॥ विश्वामित्रो देवरातो दलश्चैव तृतीयकः ॥ ज्ञान दा च महादेवी सर्वलोकैकरक्षिणी ॥ ९ ॥ अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा देवतत्पराः ॥ सस्वाधायवषट्कारा वेदशास्त्र प्रवर्तकाः ॥१०॥ इति षट्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३६ ॥ नातमोरापरं स्थानं पवित्रं परमं शुभम् ॥ कुशगोत्रं च तत्रास्ति प्रव रत्रयसंयुतम् ॥ ११ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च ॥ ज्ञानजा चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ १२ ॥ अ स्मिन्वंशे भवा ये च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ धर्मज्ञाः सत्यवक्तारो व्रतदानपरायणाः ॥ १३ ॥ इति सप्तत्रिंशं स्था नम् ॥३७॥ बलोला च महास्थानं पवित्रं परमाद्भुतम् ॥ कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव च ॥१४॥ पूर्वोक्तं प्रवरं चैव देवी चैवात्र मानदा ॥ वंशेऽस्मिन्परमाः प्रोक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ १५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृप सत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥१६॥ इत्यष्टत्रिंशं स्थानम् ॥ ३८ ॥ राज्यजा च महास्थानं लोगा

ब्राह्मण बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हैं और धर्मज्ञ व सत्यवादी तथा व्रत व दानों में परायण होते हैं ॥१३॥ यह सैंतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥३७॥ और बलोला नामक महास्थान बड़ा अद्भुत व पवित्र है और कुशगोत्र व तीन प्रवर कहेगये हैं ॥ १४ ॥ इसमें पहले कहा हुआ प्रवर व मानदादेवी हैं और इस वंश में ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से बनाये हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ कहेगये हैं ॥ १५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और सब विद्याओं में चतुर व श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥१६॥ यह अठतीसवां स्थान

समाप्त हुआ ॥३८॥ और राज्यजा महास्थान में लौगाक्षा प्रवर है और काश्यप, अवत्सार, वाशिष्ठ ये तीन प्रवर हैं ॥ १७ ॥ और भद्रायोगिनी गोत्रदेवी कहीगई है व इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण वेदों में तत्पर होते हैं ॥ १८ ॥ और नित्य स्नान, नित्य होम व नित्य दान में परायण होते हैं और नित्य धर्म में तत्पर तथा नित्य नैमित्त कर्मों में परायण होते हैं ॥ १९ ॥ यह उन्तालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥ और रूपोला नामक उत्तम स्थान पवित्र व बड़ा पुण्यदायक है और इन तीनों गोत्रों में तीन देवियाँ हैं ॥ २० ॥ पहला कुत्स व वत्स नामक और तीसरा भारद्वाज है और आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है ॥ २१॥ भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जम-

क्षाप्रवरं तथा ॥ काश्यपावत्सारवाशिष्ठं प्रवरत्रयमेव च ॥ १७॥ भद्रा च योगिनी चैव गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा वेदतत्पराः ॥ १८ ॥ नित्यस्नाननित्यहोमनित्यदानपरायणाः ॥ नित्यधर्मरताश्चैव नित्यनैमित्त तत्पराः ॥ १९ ॥ इत्येकोनचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ३९ ॥ रूपोला परमं स्थानं पवित्रमतिपुण्यदम् ॥ अस्मिन्गोत्रत्रये चैव देवीत्रितयमेव च ॥ २० ॥ प्रथमं कुत्सवत्साख्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ २१ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ २२ ॥ क्षेमला चैव वै देवी धारभट्टारिका तथा ॥ तृतीया क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाता ह्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ २४॥ स्नानदानादिनिरताः सदा च विजितेन्द्रियाः ॥ वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ २५ ॥ इति चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४० ॥ बोधणी परमं स्थानं

दग्नि हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज हैं ॥ २२ ॥ और क्षेमला व धारभट्टारिकादेवी हैं और तीसरी क्षेमला है ये क्रम से गोत्रमाता हैं ॥ २३ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञ में परायण होते हैं और लोभी, क्रोधी व बहुत पुत्रोंवाले होते हैं ॥ २४ ॥ व स्नान दानादिकों में परायण तथा सदैव जितेन्द्रिय होते हैं और हज़ारों बावली, कूप व तड़ागों के निर्माणकर्ता होते हैं ॥ २५ ॥ यह चालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ और बोधणीनामक उत्तम स्थान पवित्र व पापनाशक

कहा गया है और कुश व कौशिक दो गोत्र कहेगये हैं ॥ २६ ॥ और पहला विश्वामित्र व दूसरा देवरात और तीसरा दल है व विश्वामित्र, अघमर्षण तथा कौशिक ऐसा प्रवर है ॥ २७ ॥ और पहली यक्षिणीदेवी व दूसरी तारणी है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीन मनवाले होते हैं ॥ २८ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और सब विद्याओं में प्रवीण वे ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥ २९ ॥ यह इकतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और छत्रोटा नामक उत्तम स्थान सब लोकों में एकही पूजित है और कुशगोत्र कहागया है व तीन प्रवर हैं ॥ ३० ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है और इसमें चचाईदेवी गोत्रदेवी

पवित्रं पापनाशनम् ॥ कुशं च कौशिकं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ २६ ॥ विश्वामित्रश्च प्रथमो देवरातो दलेति च ॥ विश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति तथैव च ॥ २७ ॥ यक्षिणी प्रथमा चैव द्वितीया तारणी तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ २८ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्म सत्तमाः ॥ २९ ॥ इत्येकचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४१ ॥ छत्रोटा च परं स्थानं सर्वलोकैकपूजितम् ॥ कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव हि ॥ ३० ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव वै ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ३१ ॥ अस्मिन्वंशे भवाश्चैव वेदशास्त्रपरायणाः ॥ महोदयाश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ ३२ ॥ इति द्विचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४२ ॥ खल एवात्र संस्थानं त्रयश्चत्वारिंशमेव हि ॥ वत्सगोत्रोद्भवा विप्राः कृषिकर्मप्रवर्तकाः ॥ ३३ ॥ गोत्रजा ज्ञानजा देवी प्रवराः पञ्च एव हि ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति चैव हि ॥ ३४ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः

कहीगई है ॥ ३१ ॥ व इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण वेदों व शास्त्रों में परायण होते हैं और बड़े ऐश्वर्यवाले वे ब्राह्मण न्यायमार्ग के प्रवर्तक होते हैं ॥ ३२ ॥ यह बयालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥ और यहां तेंतालीसवां खलस्थान है व वत्सगोत्र में उपजे हुए ब्राह्मण खेती के कर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ ३३ ॥ और गोत्रजा ज्ञानजा देवी है व पांच प्रवर हैं भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व जामदग्न्य प्रवर हैं ॥ ३४ ॥ और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रौत अग्नियों के सेवक होते हैं और

वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी तथा शत्रुमर्दक होते हैं ॥ ३५ ॥ और क्रोधी, लोभी, प्रसन्न व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण होते हैं और सब प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले व परोपकारी होते हैं ॥३६॥ यह तेंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥ और वासंतडी में ब्राह्मणों का कुशगोत्र कहागया है और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥३७॥ और इसमें चचाईदेवी गोत्रदेवी कहीगई है और इस वंश में जो पूर्वोक्त ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे ब्रह्म में तत्पर होते हैं ॥३८॥ और पराया उपकार करने वाले व पराये चित्तके अनुवर्ती होते हैं और पराये द्रव्य से विमुख तथा पराये मार्ग के प्रवर्तक होते हैं ॥ ३९ ॥ यह चवालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त

श्रौताग्निसुनिषेवकाः॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्दनाः॥ ३५॥ रोषिणो लोभिनो हृष्टा यजने याजने रताः॥ सर्वभूतदयाविष्टास्तथा परोपकारिणः॥ ३६ ॥ इति त्रयश्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४३॥ वासंतड्यां च विप्राणां कुशगोत्र मुदाहृतम् ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदलमेव हि ॥ ३७॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मि न्वंशे च ये जाताः पूर्वोक्ता ब्रह्मतत्पराः॥ ३८ ॥ परोपकारिणश्चैव परचित्तानुवर्तिनः॥ परस्वविमुखाश्चैव परमार्गप्रवर्त्त काः ॥ ३९ ॥ इति चतुश्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४४ ॥ अतः परं च संस्थानं जाखासणमुदाहृतम् ॥ गोत्रं वै वात्स्यसंज्ञं तु गोत्रजा शीहुरी तथा ॥ प्रवराणि च पञ्चैव मया तव प्रकाशितम् ॥ ४० ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वपुरोधसः स्मृ ताः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता वाडवाः सुखवासिनः ॥ विप्राः स्थूलाश्च ज्ञातारः सर्वकर्मरताश्च वै ॥ ४१ ॥ सर्वे धर्मैक विश्वासाः सर्वलोकैकपूजिताः॥ वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥ ४२॥ सदाचाराः सुरूपाश्च तुन्दिला दीर्घ

जाखासण स्थान कहागया है और वात्स्यसंज्ञकगोत्र है व शीहुरी गोत्रजादेवी है और पांचही प्रवरों को मैंने तुमसे प्रकाशित किया ॥ ४० ॥ भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व पुरोधस कहेगये हैं और इस वंश में जो उत्पन्नहैं वे ब्राह्मण सुखवासी होते हैं और स्थूल व बुद्धिमान् ब्राह्मण सब कर्मों में परायण होते हैं ॥ ४१ ॥ और सब धर्मही में केवल विश्वास करनेवाले तथा सब लोकों में एकही पूजित और वेदों व शास्त्रार्थों में निपुण और यज्ञ करने व यज्ञ कराने में तत्पर हैं ॥ ४२ ॥ और उत्तम

आचारवाले व स्वरूपवान् तथा तोंदवाले व विद्वान् होते हैं और यहां शीहुरीदेवी कुलदेवी कहीगई है ॥ ४३ ॥ यह पैंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥ और छियालीसवां स्थान मोट ब्राह्मणों का प्रकाशित कियागया है जो कि गोतीआ नाम संज्ञक है और इसमें कुशगोत्र है ॥ ४४ ॥ और पहला विश्वामित्र व दूसरा देवरात और तीसरा औदल है ये तीन प्रवर हैं ॥ ४५ ॥ और यहां राक्षसों को नाशनेवाली यक्षिणीदेवी है और इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्म में परायण होते हैं ॥ ४६ ॥ और उनकी बुद्धि धर्म में प्रवृत्त होती है व धर्मशास्त्रों में वे स्थित होते हैं ॥ ४७ ॥ यह छियालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥ और सैंतालीसवां

दर्शिनः ॥ शीहुरी चात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४३ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४५ ॥ षट्चत्वारिंशकं स्थानं मोटानां तु प्रकाशितम् ॥ गोतीआनामसंज्ञा तु कुशगोत्रमिहास्ति च ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रं प्रथमं चैव द्वितीयं देवरातकम् ॥ तृतीयमौदलं चैव प्रवरत्रितयन्त्विदम् ॥ ४५ ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी राक्षसानां प्रभञ्जनी ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः ॥ ४६ ॥ धर्मे मतिप्रवृत्ताश्च धर्मशास्त्रेषु निष्ठिताः ॥ ४७ ॥ इति षट्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४६ ॥ सप्तचत्वारिंशकं च संस्थानं परिकीर्तितम् ॥ वरलीयाख्यसंस्थानं पवित्रं परमं मतम् ॥ ४८ ॥ भारद्वाजं तथा गोत्रं प्रवराणि तथैव च ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४९ ॥ आङ्गिरसं बार्हस्पत्यं भारद्वाजं तृतीयकम् ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा पूतमूर्तयः ॥ ५० ॥ येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति पापिनो नराः ॥ ५१ ॥ इति सप्तचत्वारिंशकं स्थानम् ॥ ४७ ॥ दुधीयाख्यं परं स्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ धारणसं तथा गोत्रमाङ्गिरसकमेव च ॥ ५२ ॥

स्थान कहागया है व वरलीयनामक स्थान वह बड़ा पवित्र मानागया है ॥ ४८ ॥ और भारद्वाज गोत्र व प्रवर हैं व इसमें यक्षिणीदेवी कुलदेवी कही गई है ॥ ४९ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज गोत्र है और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं वे पवित्रमूर्ति होते हैं ॥ ५० ॥ कि जिनके वचनरूपी जलही से पापी मनुष्य शुद्ध होजाते हैं ॥ ५१ ॥ यह सैंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥ और दुधीयनामक जो उत्तम स्थान है उसमें दो गोत्र हैं धारणस व आंगिरस है ॥ ५२ ॥

और अगस्ति, दार्ढ्यच्युत व इध्मवाहनसंज्ञक प्रवर है और छत्राई महादेवी है व दूसरा प्रवर सुनिये ॥ ५३ ॥ कि आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है और ज्ञानदा व शेषलादेवी सब प्राणियों को ज्ञान देनेवाली है ॥ ५४ ॥ व हे राजन् ! इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण दुस्सह होते हैं और मद से उग्र व बड़े शरीरवाले तथा छली व मद से उद्धत होते हैं ।।५५॥ और क्लेशरूपी व कालेरंगवाले तथा समस्त शास्त्रों में चतुर होते हैं और बहुत खानेवाले व प्रवीण और द्वेष व पाप से रहित होते हैं॥५६॥ यह अर्तालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥ और यहां प्रसिद्ध हासोल्लास स्वस्थान को मैं कहता हूं इसमें पांच गोत्रों से संयुक्त शांडिल्यगोत्र है ॥ ५७ ॥ भार्गव,

अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकम् ॥ छत्राई च महादेवी द्वितीयं प्रवरं शृणु ॥५३॥ आङ्गिरसाम्बरीषौ च यौवनाश्वस्तृतीयकः॥ ज्ञानदा शेषला चैव ज्ञानदा सर्वदेहिनाम् ॥ ५४ ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुस्सहा नृप॥ मदोत्कटा महाकायाः प्रलम्भाश्च मदोद्धताः ॥ ५५ ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः ॥ ५६ ॥ इत्यष्टाचत्वारिंशकं स्थानम् ॥ ४८ ॥ हासोल्लासं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानं चात्र संश्रुतम् ॥ शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र प्रवरैः पञ्चभिर्युतम् ॥ ५७ ॥ भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वं वै जामदग्न्यकम् ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी पवित्रा पापनाशिनी ॥ ५८ ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः स्थूलदेहिनः ॥ लम्बोदरा लम्बकर्णा लम्बहस्ता महाद्विजाः ॥ ५९ ॥ अरोगिणः सदा देव सत्यव्रतपरायणाः ॥ ६० ॥ इत्येकोनपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥४९॥ वैहालाख्यं च संस्थानं पञ्चाशत्तममेव हि ॥ कुशगोत्रं तथा चैव देवी चात्र महाबला ॥ ६१ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा

च्यावन, आप्नवान्, और्व व जामदग्न्य प्रवर हैं और इसमें पापनाशिनी व पवित्र यक्षिणीदेवी हैं ॥ ५८ ॥ और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे मोटे शरीरवाले होते हैं और वे महाब्राह्मण लम्बे पेट व लम्बे कान तथा लम्बे हाथोंवाले होते हैं॥ ५९ ॥ और वे सदैव अरोग व देवता और सत्य के व्रत में परायण होते हैं ॥६०॥ यह उंचासवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥ और वैहाल नामक पचासवां स्थान है व इसमें कुशगोत्र और बड़ी महाबलादेवी है ॥६१ ॥ और इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण

दुष्ट व कुटिलगामी होते हैं और धनी व धर्म में परायण तथा वेदों व वेदांगों के पारगामी होते हैं॥ ६२ ॥ और सब दान व भोग में तत्पर तथा श्रौत कर्ममें बुद्धि को लगानेवाले होते हैं ॥ ६३ ॥ यह पचासवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५० ॥ और असालानामक उत्तम स्थान दो प्रवरोंवाला है और क्रम से कुश व धारण दो प्रवर हैं ॥ ६४ ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा देवल प्रवर है और ज्ञानजादेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ ६५ ॥ यह इक्यावनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥ और बावनवां नालोला नामक उत्तम स्थान है और एक वत्सगोत्र व दूसरा धारणस गोत्र है ॥ ६६ ॥ और पूर्वोक्त प्रवर हैं व पहलेही कहीहुई देवी हैं व इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे बड़े पवित्र

विप्रा दुष्टाः कुटिलगामिनः ॥ धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ६२ ॥ दानभोगरताः सर्वे श्रौते च कृतबुद्धयः ॥ ६३ ॥ इति पञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५० ॥ असालापरमं स्थानं प्रवरद्वयमेव हि ॥ कुशं च धारणं चैव प्रवराणि क्रमेण तु ॥ ६४ ॥ विश्वामित्रो देवरातो देवलस्तु तृतीयकः ॥ ज्ञानजा च तथा देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥६५॥ इत्येकपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५१ ॥ नालोला परमं स्थानं द्विपञ्चाशत्तमं किल ॥ वत्सगोत्रं तथा ख्यातं द्वितीयं धारणसं तथा ॥ ६६ ॥ प्रवराश्चैव पूर्वोक्ता देव्युक्ता पूर्वमेव हि ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाताः पवित्राः परमा मताः ॥ ६७ ॥ बहुनोक्तेन किं विप्राः सर्व एवात्र सत्तमाः ॥ सर्वे शुद्धा महात्मनः सर्वे कुलपरम्पराः ॥ ६८ ॥ इति द्वापञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५२ ॥ देहोलं परमं स्थानं ब्राह्मणानां परंतप ॥ कुशवंशोद्भवा विप्रास्तत्र जाता नृसत्तम ॥ पूर्वोक्तप्रवराएये व देवी पूर्वोदिता मया ॥ ६९ ॥ तस्मिन्गोत्रे द्विजा जाताः पूर्वोक्तगुणशालिनः ॥ ७० ॥ इति त्रिपञ्चाशत्तमं स्था

मानेगये हैं ॥ ६७ ॥ बहुत कहने से क्या है यहां सबही ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं और सब शुद्ध व महात्मा तथा सब कुल की परंपरावाले होते हैं ॥ ६८ ॥ यह बावनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥ व हे परंतप ! ब्राह्मणों का देहोल नामक उत्तम स्थान है हे नृपसत्तम ! वहां कुश वंश में उपजे हुए ब्राह्मण हैं और पूर्वोक्त प्रवर हैं व मुझसे पहले कहीहुई देवी है ॥ ६९ ॥ और उस गोत्र में पैदा हुए ब्राह्मण पूर्वोक्त गुण से शोभित होते हैं ॥ ७० ॥ यह तिरपनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥ और सोहासीयानामक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्तम स्थान तीन गोत्रोंवाला है और भारद्वाज व वत्सगोत्र कहागया है ॥ ७१ ॥ और ज्ञानजा व सिहोली यक्षिणी क्रमसे है हे नृपोत्तम ? इस वंश की परीक्षा पहले कहीगई है ॥ ७२ ॥ यह चौवनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥ इस समय मैं तुम से पचपनवें स्थान को कहता हूं कि पुरातन समय श्रीरामजीने संहालियानामक स्थान को दिया है ॥ ७३ ॥ उसमें कुत्स गोत्र में स्थित ब्राह्मण हैं और वे सदैव अपने धर्म में परायण व अपने कर्म में तत्पर होते हैं ॥ ७४ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष व इसके उपरान्त यौवनाश्व प्रवर है और इसमें शांतिकर्म में शांति को देनेवाली शांता देवी है ॥ ७५ ॥ यह पचपनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥ हे परंतप ! मैंने यहां इस

नम् ॥ ५३ ॥ सोहासीयापुरं स्थानं गोत्रत्रितयमेव हि ॥ भारद्वाजस्तथा ख्यातं गोत्रं वत्सं तथैव च ॥ ७१ ॥ यक्षिणी ज्ञानजा चैव सिहोली च यथाक्रमम् ॥ एतद्वंशपरीक्षा च पूर्वोक्ता नृपसत्तम ॥ ७२ ॥ इति चतुःपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५४ ॥ पञ्चपञ्चाशकं स्थानं प्रवक्ष्यामि तवाधुना ॥ नाम्ना संहालियास्थानं दत्तं रामेण वै पुरा ॥ ७३ ॥ तत्र वै कुत्सगोत्रस्था ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसः ॥ स्वधर्मनिरता नित्यं स्वकर्म्मनिरताश्च ते ॥ ७४ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषे च यौवनाश्वमतः परम् ॥ शान्ता चैवात्र वै देवी शान्तिकर्म्मणि शान्तिदा ॥ ७५ ॥ इति पञ्चपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५५ ॥ एवं मया ते गोत्राणि स्थानान्यपि तथैव च ॥ प्रवराणि तथैवात्र ब्राह्मणानां परंतप ॥ ७६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि त्रैविद्यानां परंतप ॥ स्वस्थानं हि मया प्रोक्तं यथाचानुक्रमेण तु ॥ ७७ ॥ शीलायाः प्रथमं स्थानं मण्डोरा च द्वितीयकम् ॥ एवडी च तृतीयं हि गुन्दराणा चतुर्थकम् ॥ ७८ ॥ पञ्चमं कल्याणीया देगामा षष्ठकं तथा ॥ नायकपुरा सप्तमं च डलीआ चाष्टमं तथा ॥ ७९ ॥ कडोव्या नवमं चैव कोहाटोया दशमं तथा ॥ हरडीयेकादशं चैव भद्रुकीया द्वादशं तथा ॥ ८० ॥

प्रकार तुमसे ब्राह्मणों के गोत्र, स्थान व प्रवरों को कहा ॥ ७६ ॥ व हे परन्तप ! इसके उपरान्त त्रैविद्यों के स्थानों को कहूंगा और क्रम से मैंने स्वस्थान को कहा ॥ ७७ ॥ पहला शीला का स्थान है व दूसरा मंडोरा स्थान है और तीसरा एवडी व चौथा गुंदराणा स्थान है ॥ ७८ ॥ और पांचवां कल्याणीया व छठां देगामा स्थान है और सातवां नायकपुरा व आठवां डलीआ स्थान है ॥ ७९ ॥ और कडोव्या नवां स्थान है व दशवां कोहाटोया स्थान है और गेरहवां हरडीया व बारहवां भद्रुकीया स्थान है ॥ ८० ॥

और यहां संप्राणावा व कंदरावा स्थान कहागया है और तेरहवां वासरोवा व चौदहवां शरंडावा स्थान है ॥ ८१ ॥ और पंद्रहवां लोलासणा, सोलहवां वारोला स्थान है व मैंने यहां सत्रहवां नागलपुरा स्थान कहा है ॥ ८२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि जो चातुर्विद्य ब्राह्मण नहीं आये थे वे फिर आये और उस सुन्दर स्थान में उन्होंने निवास किया ॥ ८३ ॥ और चौबीस संख्यक वे श्रीरामजी के शासन (आज्ञा) की मिलने की इच्छा से हनुमान्जी के समीप गये और फिर लौट आये ॥ ८४ ॥ व उनके दोष से वे सब स्थान च्युति को प्राप्तहुए और कुछ समय बीतनेपर उनका वैर हुआ ॥ ८५ ॥ और भिन्न आचार व भिन्न भाषावाले वे वेष के सन्देह को प्राप्त हुए व पंद्रह हज़ार

संप्राणावा तथा चात्र कन्दरावा प्रकीर्तितम् ॥ वासरोवा त्रयोदशं शरण्डावा चतुर्दशम् ॥ ८१ ॥ लोलासणा पञ्चदशं वारोला षोडशं तथा ॥ नागलपुरा मया चात्र उक्तं सप्तदशं तथा ॥ ८२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ चातुर्विद्यास्तु ये विप्रा नागताः पुनरागताः ॥ वसतिं तत्र रम्ये च चक्रिरे ते द्विजोत्तमाः ॥ ८३ ॥ चतुर्विंशतिसंख्याका रामशासनलिप्सया ॥ हनूमन्तं प्रति गता व्यावृत्ताः पुनरागताः ॥ ८४ ॥ तेषां दोषात्समस्तास्ते स्थानभ्रंशत्वमागताः ॥ कियत्काले गते तेषां विरोधः समपद्यत ॥ ८५ ॥ भिन्नाचारा भिन्नभाषा वेशसंशयमागताः ॥ पञ्चदशसहस्राणां मध्ये ये के च वाडवाः ॥ ८६ ॥ कृषिकर्मरता आसन्केचिद्यज्ञपरायणाः ॥ केचिन्मल्लाश्च सञ्जाताः केचिद्वै वेदपाठकाः ॥ ८७ ॥ आयुर्वेदरताः केचित्केचिद्रजकयाजकाः ॥ सन्ध्यास्नानपराः केचिन्नीलीकर्तृप्रयाजकाः ॥ ८८ ॥ तन्तुकृद्याजनरतास्तन्तुवायादियाचकाः ॥ कलौ प्राप्ते द्विजा भ्रष्टा भविष्यन्ति न संशयः ॥ ८९ ॥ शूद्रेषु जातिभेदः स्यात्कलौ प्राप्ते नराधिप ॥

ब्राह्मणों के मध्य में कोई ब्राह्मण ॥ ८६ ॥ खेती के कर्म में परायण हुए व कोई यज्ञों में तत्पर हुए तथा कोई मल्ल और कोई वेदपाठी हुए ॥ ८७ ॥ और कोई वैद्यक करनेवाले तथा कोई धोबियों को यज्ञ करानेवाले हुए और कोई संध्या व स्नान में परायण तथा कोई नील करनेवालों को यज्ञ करानेवाले हुए ॥ ८८ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर कोई वस्त्र बुननेवालों को यज्ञ कराने में परायण व कोई उनसे मांगनेवाले और भ्रष्ट होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥ व हे नराधिप ! कलियुग प्राप्त होने

पर शूद्रों में जाति का भेद होगा और बहुतही भ्रष्ट आचारवाले लोगों को जानकर कुटुम्ब के बन्ध से पीड़ित ॥ ९० ॥ कोई ब्राह्मण हे राजन् ! भोजन व आच्छादन में स्वजनों से छोड़ दिये जावैंगे और कोई भी मेल होने से कभी कन्या को न ब्याहैगा तदनन्तर हे राजन् ! कलियुग में वे वणिज् तेली होवैंगे ॥९१॥ और कोई कुम्हार व कोई चावलों के बनानेवाले होवैंगे और कलियुग प्राप्त होनेपर कोई वणिज राजपुत्रों के आश्रय व कोई अनेक जातियों के आश्रित होवैंगे व कोई पृथ्वी में भ्रष्ट होवैंगे ॥ ९२ ॥ और उनके पृथक् आचार व पृथक् सम्बन्ध कियेगये और कितेक ब्राह्मणों का सीतापुर में निवास हुआ ॥ ९३ ॥ और कोई साभ्रमती के किनारे जहां कहीं

भ्रष्टाचारान् परं ज्ञात्वा ज्ञातिबन्धेन पीडिताः ॥ ९० ॥ भोजनाच्छादने राजन्परित्यक्ता निजैर्जनैः ॥ न कोऽपि कन्यां विवहेत्संसर्गेण कदाचन ॥ ततस्ते वणिजो राजंस्तैलकाराः कलौ किल ॥ ९१ ॥ केचिच्च कुम्भकाराश्च केचित्तन्दुलकारिणः ॥ राजपुत्राश्रिताः केचिन्नानावर्णसमाश्रिताः ॥ कलौ प्राप्ते तु वणिजो भ्रष्टाः केपि महीतले ॥ ९२ ॥ तेषां तु पृथगाचाराः सम्बन्धाश्च पृथक्कृताः ॥ सीतापुरे च वसतिः केषांचित्समजायत ॥ ९३ ॥ साभ्रमत्यास्तटे केचिद्यत्र कुत्र व्यवस्थिताः ॥ सीतापुरात्तु ये पूर्वं भयभीताः समागताः ॥ ९४ ॥ साभ्रमत्युत्तरे कूले श्रीक्षेत्रे ते व्यवस्थिताः ॥ यदा तेषां परं स्थानं दत्तं वै सुखवासकम् ॥ ९५ ॥ पुनस्तेऽपि गताः सद्यस्तस्मिन्सीतापुरे स्वयम् ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाश्च दत्तास्तु पुनरागमे ॥ ९६ ॥ रामेण मोढविप्राणां निवासांस्तेषु चक्रिरे ॥ वृत्तिबाह्यास्तु ये विप्रा धर्मारण्यान्तरस्थिताः ॥ ९७ ॥ नास्माकं वणिजां वृत्तौ ग्रामवृत्तौ न किञ्चन ॥ प्रयोजनं हि विप्रेन्द्रा वासोऽस्माकं तु

स्थितहुए और जो कोई सीतापुर से पूर्व भयभीत होकर आये ॥ ९४ ॥ वे साभ्रमती के उत्तर किनारे में श्रीक्षेत्रनगर में स्थित हुए जब उनको सुखवासक नामक उत्तम स्थान दियागया ॥ ९५ ॥ तब फिर वे उसीक्षण उस सीतापुर में आपही स्थित हुए और फिर आनेपर श्रीरामजी ने मोढ ब्राह्मणों को पचपन ग्राम दिये और उन ग्रामों में उन्हों ने निवास किया व जीविका के बाहर जो ब्राह्मण धर्मारण्य के मध्य में स्थित हुए ॥ ९६ । ९७ ॥ उन्होंने कहा कि हे द्विजेन्द्रो ! वणिजों की जीविका व ग्राम की जीविका

में हमलोगों का कुछ प्रयोजन नहीं है वरन हमलोगों को यहां निवास रुचता है ॥ ९८ ॥ यह कहने पर उन त्रैविद्य ब्राह्मणों ने उन चातुर्विद्य ब्राह्मणों को आज्ञा दिया और उन ग्रामों में वे चातुर्विद्य द्विजोत्तम ब्राह्मण ॥ ९९ ॥ अपने कर्मों में परायण व शान्त और कृषीकर्म में लगेहुए थे और धर्मारण्य से थोड़ेही दूर पै वे गौवों को चराते थे ॥ ३०० ॥ वहां बहुत से ब्राह्मणों के पुत्र गोपाल हुए और चातुर्विद्य बालकों ने उनकी गौवों को चराया और उनके भोजन के लिये भलीभांति बनायेहुए अन्न पानादिको ॥ १ ॥ विधवा स्त्रियां व बालकलोग भी ले आते थे ॥२॥ हे राजन्! कुछ समय के बाद परस्पर उनकी प्रीति हुई और प्रेम से गोपाल व बालकों की कन्याओं

रोचते ॥ ९८ ॥ इत्युक्ते समनुज्ञातास्त्रैविद्यैस्तैर्द्विजोत्तमैः ॥ तेषु ग्रामेषु ते विप्राश्चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ ९९ ॥ स्वकर्मनिरताः शान्ताः कृषिकर्मपरायणाः ॥ धर्मारण्यान्नातिदूरे धेनूः सञ्चारयन्ति ते ॥ ३०० ॥ बहवस्तत्र गोपाला बभूवुर्द्विजबालकाः ॥ चातुर्विद्यास्तु शिशवस्तेषां धेनूरचारयन् ॥ तेषां भोजनकामाय अन्नपानादिसत्कृतम् ॥ १ ॥ अनयन्वै युवतयो विधवा अपि बालकाः ॥ २ ॥ कालेन कियता राजंस्तेषां प्रीतिरभून्मिथः ॥ गोपाला बुभुजुः प्रेम्णा कुमार्यो द्विजबालिकाः ॥ ३ ॥ जाताः सगर्भास्ताः सर्वा दृष्टास्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ परित्यक्ताश्च सदनाद्धिक्कृताः पापकर्मणा ॥ ४ ॥ ताभ्यो जाताः कुमारा ये कातीभा गोलकास्तथा ॥ धेनुजास्ते धरालोके ख्यातिं जग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ वृत्तिबाह्यास्तु ते विप्रा भिक्षां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥ कुष्ठी कोऽपि तथा पङ्गुर्मूर्खो वा बधिरोऽपि वा ॥ काणो वाप्यथ कुब्जो वा बद्धवागथवा पुनः ॥ ७ ॥ अप्राप्तकन्यका ह्येते

ने भोजन किया ॥३॥ और उन द्विजोत्तमों से देखी हुई वे सब स्त्रियां गर्भिणी हुई और पापकर्म से धिक्कार कीहुई वे घर से छोड़ दीगई ॥४॥ और उनसे जो बालक उत्पन्न हुए वे कातीभ और गोलक संज्ञक हुए व वे द्विजोत्तम लोग पृथ्वीलोक में धेनुक ऐसे प्रसिद्ध हुए ॥ ५ ॥ और जीविका से बाहर वे ब्राह्मण नित्य भिक्षा करते थे व हे राजन्! त्रैविद्य ब्राह्मणों के अन्य चारित्र को सुनिये ॥ ६ ॥ कि कोई कुष्ठी व लँगड़ा, मूर्ख, बहरा, काना व कूबरा और बँधे वचनवाला पुरुष ॥ ७ ॥ कन्याओं को न पाये

हुए ये चातुर्विद्य ब्राह्मणों के आश्रित हुए व हे राजन् ! बड़े द्रव्य के कारण उनकी कुँवारी कन्या ॥ ८ ॥ उस समय हे राजन् ! ब्याही गईं और उससे जो लड़के उत्पन्न हुए वे पृथ्वीलोकमें उसी से त्रिदलज उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ व मेलसे उपजे हुए उन ब्राह्मणोंने परस्पर जीविका किया व हे राजन् ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका अन्य चरित्र सुनिये ॥ १० ॥ कि श्रीरामजी से दिये हुए ग्राम से कर लेने के कारण सब ब्राह्मणों ने इकट्ठा होकर उस ग्राम को भेंट लेकर ॥ ११ ॥ आधा निवेदन किया व आधे की रक्षा किया और यह मिला ऐसा मानते हुए वे ब्राह्मण चांचल्यभागी हुए ॥ १२ ॥ और जो महास्थान को गये वे विस्मय को प्राप्त हुए व उनके मध्य में किसी ब्राह्मण ने क्रोधित होकर

चातुर्विद्यान्समाश्रिताः ॥ वित्तेन महता राजन्सुतास्तेषां कुमारिकाः ॥ ८ ॥ उद्वाहितास्तदा राजंस्तस्माज्जातार्भकास्तु ये ॥ त्रिदलजास्ते विख्याताः क्षितिलोकेऽभवंस्ततः ॥ ६ ॥ वृत्तिं चक्रुर्ब्राह्मणास्तेऽन्योन्यं मिश्रसमुद्भवाः ॥ अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ रामदत्तेन ग्रामेण करग्रहणहेतवे ॥ एकीभूय द्विजैः सर्वैर्ग्रामं प्रादाय तं बलिम् ॥ ११ ॥ अर्द्धं निवेदयामासुरर्द्धं चैवोपरक्षितम् ॥ एतल्लब्धं हि मन्वानास्ते द्विजा लौल्यभागिनः ॥ १२ ॥ महास्थानगता ये च ते हि विस्मयमाययुः ॥ तन्मध्ये कोऽपि विप्रस्तानुवाच कुपितो वचः ॥ १३ ॥ विप्र उवाच ॥ अनृतं चैव भाषन्ते लौल्येन महता वृताः ॥ पुत्रपौत्रविनाशाय ब्रह्मस्वेष्वतिलोलुपाः ॥ १४ ॥ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मस्वेन च दग्धेषु पुत्रदारगृहादिषु ॥ न च ते ह्यपि तिष्ठन्ति ब्रह्मस्वेन विनाशिताः ॥ १६ ॥ न नाकं लभते सोऽथ सदा ब्रह्मस्वहारकः ॥ यदा वराटिकां

उनसे वचन कहा ॥ १३ ॥ ब्राह्मण बोला कि बड़ी चंचलता से घिरेहुए और ब्राह्मणों के धनों में बहुत ही लोभी मनुष्य पुत्रों व पौत्रों के नाश के लिये झूंठ बोलते हैं ॥ १४ ॥ विष को विद्वान्लोग विष नहीं कहते हैं बरन ब्राह्मण का धन विष कहाजाता है क्योंकि विष एकही को मारता है और ब्राह्मण का धन पुत्रों व पौत्रों को नाश करता है ॥ १५ ॥ और ब्राह्मण के धन से पुत्र, स्त्री व घर आदि के जलजाने पर ब्रह्मधन से नाश किये हुए वे भी नहीं स्थित होते हैं ॥ १६ ॥ और सदैव ब्राह्मण का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

धन हरनेवाला वह मनुष्य स्वर्ग को नहीं पाता है और ब्राह्मण की कौड़ी को जब जो मनुष्य हरते हैं ॥ १७ ॥ तदनन्तर हरनेवाला मनुष्य तीन जन्मों तक नरक को जाता है और उससे दिये हुए जल को पूर्वज लोग कभी नहीं ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ और क्षयाह में उसके पिंड व जलदान कर्म को पितर नहीं भोजन करते हैं और वह सन्तान को नहीं पाता है व मिलीहुई सन्तान जीती नहीं है ॥ १९ ॥ और यदि दैवयोग से सन्तान जीती है तो भ्रष्ट आचारवाली होती है ॥ २० ॥ गेरह ब्राह्मण बोले कि हे विप्र ! झूंठ नहीं कहागया हमलोगों को तुम क्यों दूषित करते हो और अपराध के विना किस को कड़ुई उक्ति योग्य होती है ॥ २१ ॥ हे पार्थ ! उस

चैव ब्राह्मणस्य हरन्ति ये ॥ १७ ॥ ततो जन्मत्रयाण्येव हर्त्ता निरयमाव्रजेत् ॥ पूर्वजा नोपभुञ्जन्ति तत्प्रदत्तं जलं क्वचित् ॥ १८ ॥ क्षयाहे नोपभुञ्जन्ति तस्य पिण्डोदकक्रियाः ॥ सन्ततिं नैव लभते लभ्यमाना न जीवति ॥ १९ ॥ यदि जीवति दैवाच्चेद्भ्रष्टाचारा भवेदिति ॥ २० ॥ एकादशविप्रा ऊचुः ॥ नासत्यं भाषितं विप्र कथं दूषयसे हि नः ॥ अपराधं विना कस्य कट्रक्तिर्युज्यते किल ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा तैर्द्विजैः पार्थ ग्रामग्राहयिता वणिक् ॥ परिपृष्टः स तत्सर्वं कथयामास कारणम् ॥ २२ ॥ वणिजैरेव मे दत्तो बलिश्च द्विजसत्तमाः ॥ तत्सर्वं शुद्धभावेन कथितं तु द्विजन्मसु ॥ २३ ॥ ततोऽर्द्धदलं ज्ञात्वा ते कुपिता द्विजपुत्रकाः ॥ वृत्तेर्बहिष्कृतास्ते वै एकादश द्विजास्ततः ॥ २४ ॥ एकादशसमा ज्ञातिर्विख्याता भुवनत्रये ॥ न तेषां सह संबन्धो न विवाहश्च जायते ॥ २५ ॥ एकादशसमा ये च बहिर्ग्रामे वसन्ति ते ॥ एवं भेदाः समभवन्नाना मोढद्विजन्मनाम् ॥ युगानुसारात्कालेन ज्ञातीनां च

वचन को सुनकर उन ब्राह्मणों ने ग्राम को ग्रहण करनेवाले वणिज् से पूंछा और उसने उस सब कारण को कहा ॥ २२ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! वणिजों ने मुझको बलि दिया है वह सब ब्राह्मणों से शुद्धभाव से कहागया ॥ २३ ॥ तदनन्तर आधा भाग जान कर वे ब्राह्मणों के पुत्र क्रोधित हुए तदनन्तर जीविका से बाहर किये हुए गेरह ब्राह्मण ॥ २४ ॥ त्रिलोक में कुटुम्ब से एकादशसमा ऐसे प्रसिद्ध हुए व उनके साथ संबन्ध व विवाह नहीं होता है ॥ २५ ॥ और जो एकादशसमा

संज्ञक ब्राह्मण हैं वे गाँव के बाहर बसते हैं इस प्रकार समय से युग के अनुसार मोढ ब्राह्मणों के वंशों के व धर्म के अनेक भेद हुए ॥ ३२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ज्ञातिभेदवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । धर्मारण्यमहात्म के, सुने मिलै फल जौन । चालिसवें अध्याय में, कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! उस मोहेरकपुर में जाति का भेद होनेपर त्रैविध ब्राह्मणों ने क्या किया है उसको पूंछते हुए मुझसे कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्मा बोले कि अपने स्थान में सब ब्राह्मण हर्ष से पूर्ण मन वाले थे और कोई अग्निहोत्र में

वृषस्य वा ॥ ३२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये ज्ञातिभेदवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

नारद उवाच ॥ ज्ञातिभेदे तु संजाते तस्मिन्मोहेरके पुरे ॥ त्रैविद्यैः किं कृतं ब्रह्मंस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्वस्थाने वाडवाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ॥ अग्निहोत्रपराः केऽपि केऽपि यज्ञपरायणाः ॥२॥ केऽपि चाग्निसमाधानाः केऽपि स्मार्ता निरन्तरम् ॥ पुराणन्यायवेत्तारो वेदवेदाङ्गवादिनः ॥ ३ ॥ सुखेन स्वान्सदाचारान्कुर्वन्तो ब्रह्मवादिनः ॥ एवं धर्मसमाचारान्कुर्वतां कुशलात्मनाम् ॥ ४ ॥ स्थानाचारान्कुलाचारानधिदेव्याश्च भाषितान् ॥ धर्मशास्त्रस्थितं सर्वं काजेशैरुदितं च यत् ॥ ५ ॥ परम्परागतं धर्ममूचुस्ते वाडवोत्तमाः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ यस्याभिधानं लिखितं रक्तपादैस्तु वाडवाः ॥ ज्ञातिश्रेष्ठः स विज्ञेयो बहिर्ज्ञेयस्ततः परम् ॥ ७ ॥ रक्तं पदं नाम साध्यं प्र

परायण व कोई यज्ञों में परायण थे ॥ २ ॥ और कोई अग्न्याधान करनेवाले व कोई सदैव स्मार्त थे और कोई पुराणों व न्याय के जाननेवाले तथा वेदों व वेदांगोंके कहनेवाले थे ॥ ३ ॥ और वे ब्रह्मवादी सुखसे अपने उत्तम आचारोंको करते थे इसप्रकार अधिदेवी से कहेहुए धर्माचार, स्थानाचार व कुलाचारों को करते हुए निपुण चित्तवाले उन ब्राह्मणों का वह सब धर्मशास्त्र में स्थित कर्म हुआ जोकि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया था ॥ ४ । ५ ॥ और उन द्विजोत्तमों ने परंपरा से प्राप्त धर्म को कहा ॥ ६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे ब्राह्मणो ! रक्तपादों से जिसका नाम लिखा गया है वह जाति में श्रेष्ठ जानने योग्य है व उसके उपरान्त बाहर जानने योग्य है ॥ ७ ॥ और रक्तपद

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

साध्य नाम है व अपने वंश की प्रसिद्धि के लिये चन्दन व पुष्पादिकों से पूजित उन कुंकुम से कुछ लाल चरणोंवाले द्विजों से ॥ ८ ॥ मिलकर जो लिखा गया है वह रक्तपाद कहाजाता है और वे सब सावधान होकर श्रीरामजी के लेखको पूजन करैं ॥ ९ ॥ व सदैव ब्राह्मणलोग श्रीरामजी के हाथ की मुद्रा (छाप) को पूजन करैं और यदि जिनके उत्तम आचार में व्यभिचार आदिक दोष होवैंगे ॥ १० ॥ उनको वह दण्ड करने योग्य होगा जोकि विधिपूर्वक ब्राह्मणों से कहा गया है और जबतक दण्ड (बलि) नहीं देता है तबतक श्रीरामजी की मुद्रा का चिह्न नहीं होता है ॥ ११ ॥ क्योंकि बलि देने के विना मुद्रा का चिह्न नहीं

सिद्ध्यै स्वकुलस्य वै ॥ कुङ्कुमारक्तपादैस्तैर्गन्धपुष्पादिचर्चितैः ॥ ८ ॥ संभूय लिखितं यच्च रक्तपादं तदुच्यते ॥ रामस्य लेख्यं ते सर्वे पूजयन्तु समाहिताः ॥ ९ ॥ रामस्य करमुद्रां च पूजयन्तु द्विजाः सदा ॥ येषां दोषाः सदाचारे व्यभिचारादयो यदि ॥ १० ॥ तेषां दण्डो विधेयस्तु य उक्तो विधिवद्द्विजैः ॥ चिह्नं न राममुद्राया यावद्दण्डं ददाति न ॥ ११ ॥ विना दण्डप्रदानेन मुद्राचिह्नं न धार्यते ॥ मुद्राहस्ताश्च विज्ञेया वाडवा नृपसत्तम ॥ १२ ॥ पुत्रे जाते पिता दद्याच्छ्रीमात्रे तु बलिं सदा ॥ पलानि विंशतिः सर्पिर्गुडः पञ्चपलानि च ॥ १३ ॥ कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्यो जातमात्रः सुतस्तदा ॥ षष्ठे च दिवसे राजन्षष्ठीं पूजयते सदा ॥ १४ ॥ दद्यात्तत्र बलिं साज्यं कुर्याद्धि बलिपञ्चकम् ॥ पञ्चप्रस्थान्बलीन्दद्यात्सवस्त्राञ्छ्रीफलैर्युतान् ॥ १५ ॥ कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्य श्रीमात्रे भक्तिपूर्वकम् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुले सन्ततिवृद्धये ॥ १६ ॥ तद्धि चार्पयता द्रव्यं वृद्धौ यद्भाषितं पुनः ॥ जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म

धारण किया जाता है व हे नृपोत्तम ! मुद्रा हाथवाले ब्राह्मण जानने योग्य हैं ॥ १२ ॥ पुत्र पैदा होनेपर पिता सदैव श्रीमाताजी के लिये बलि को देवै बीसपल घी और पांच पल गुड़ देवै ॥ १३ ॥ और पैदा हुआ पुत्र उस समय कुंकुमादिकों से पूजने योग्य है और हे राजन् ! सदैव छठें दिन छठी को पूजै ॥ १४ ॥ और उसमें घी समेत बलि को देवै व पांच बलियों को देवै और श्रीफलों से संयुत व वस्त्रोंसमेत पांच प्रस्थ प्रमाणभर बलियों को देवै ॥ १५ ॥ और भक्तिपूर्वक श्रीमाता के लिये कुंकुम आदि से पूजकर वंश में सन्तान की वृद्धि के लिये वित्तशाठ्य न करै ॥ १६ ॥ और वृद्धि में जो कहा गया है उस धनको देते हुए पिता को जन्म के बाद

विधिपूर्वक जातकर्म करना चाहिये ॥ १७ ॥ और इसमें जो वृत्ति ब्राह्मणों से कहीगई है वह विभाग कीजाती है कि पहली जितनी वृत्ति मिलै ॥ १८ ॥ उस जीविका का आधाभाग गोत्रदेवी के लिये देवै और पुत्र उत्पन्न होनेपर वणिज् को दूना होता है ॥ १९ ॥ और जो मांडलीय शूद्र हैं उनका यह आधा कर होता है और अडालजों का तिगुना व गोभुजों को चौगुना होता है ॥ २० ॥ यह व अन्य सब शूद्रजातियों में कहागया है और दैव के वश से जिसके हत्या का दोष उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥ उसका वेदशास्त्री लोगों से विधिपूर्वक दण्ड करना चाहिये और अगम्यास्त्री के गमन से जब जिसको दोष उत्पन्न होवै तब त्रैविद्य जातिवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को फिर उसका

यथाविधि ॥ १७ ॥ विप्रानुकीर्तिता याऽत्र वृत्तिः सापि विभज्यते ॥ प्रथमा लभ्यमाना च वृत्तिर्वै यावती पुनः ॥ १८ ॥
तस्या वृत्तेरर्द्धभागो गोत्रदेव्यै तु कल्प्यताम् ॥ द्विगुणं वणिजां चैव पुत्रे जाते भवेदिति ॥ १९ ॥ माण्डलीयाश्च ये
शूद्रास्तेषामर्धकरंत्विदम् ॥ अडालजानां त्रिगुणं गोभुजानां चतुर्गुणम् ॥ २० ॥ इत्येतत्कथितं सर्वमन्यच्च शूद्रजातिषु ॥
यस्य दोषस्तु हत्यायाः समुद्भूतो विधेर्वशात् ॥ २१ ॥ दण्डस्तु विधिवत्तस्य कर्त्तव्यो वेदशास्त्रिभिः ॥ अगम्या गमनाद्य
स्य दोष उत्पद्यते यदा ॥ तस्य दण्डःपुनः कार्य आर्यैस्त्रैविद्यजातिभिः ॥ २२ ॥ पङ्क्तिभेदस्य कर्त्ता च गोसहस्रवधः स्मृतः ॥
वृत्तिभागविभजनं तथा न्यायविचारणम् ॥ श्रीरामदूतकस्याग्रे कर्त्तव्यमिति निश्चयः ॥ २३ ॥ तस्य पूजां प्रकुर्वीत तदा
कालेऽथवा सदा ॥ तैलेन लेपयेत्तस्य देहे वै विघ्नशान्तये ॥ २४ ॥ धूपं दीपं फलं दद्यात्पुष्पैर्नानाविधैःकिल ॥ पूजितो हनुमा
नेव ददाति तस्य वाञ्छितम् ॥ २५ ॥ प्रतिपुत्रं तु तस्याग्रे कुर्यान्नान्यत्र कुत्रचित् ॥ श्रीमातावकुलस्वामिभागधेयं तु

दण्ड करना चाहिये ॥ २२ ॥ और जो पंक्तिभेद का करनेवाला है वह हज़ार गऊ का वधकर्ता कहा गया है और जीविका के अंश का विभाग व न्याय का विचार श्रीरामजी के दूत हनुमान्जी के आगे करना चाहिये यह निश्चय है ॥ २३ ॥ और उस समय या सदैव उन हनुमान्जी का पूजन करै व विघ्न की शान्ति के लिये तैलसे उनके शरीर में लेपन करै ॥ २४ ॥ और धूप, दीप व फलको देवै क्योंकि अनेक भांति के पुष्पों से पूजे हुए हनुमान्जी उसको मनोरथ देते हैं ॥ २५ ॥ उन हनुमान्जी के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आगे प्रत्येक पुत्र में ऐसा करै अन्यत्र कहीं न करै और पहले श्रीमाता व बकुलस्वामी को बलि देवै ॥ २६ ॥ पश्चात् ब्राह्मणों को प्रतिग्रह (दान) करना चाहिये और ब्राह्मणों के समाजों में न्याय व अन्याय के निर्णय में ॥ २७ ॥ हृदय में निर्णयको धरकर वहां बैठे हुए ब्राह्मणों को केवल धर्म की बुद्धि से निर्णय को सुनावै और पक्षपात वर्जित करै ॥२८॥ और सबों का सम्मत करना चाहिये क्योंकि वह विकाररहित होता है यदि बुलाया हुआ ब्राह्मण सभा में उससे भय को प्राप्त होवै ॥२६॥ तो निर्णय किये हुए अर्थ के विचार में उसका वचन न सुनना चाहिये और सब ब्राह्मण मिलकर जिसको वर्जित करैं ॥ ३० ॥ उसके साथ अन्न पानादिक

पूर्वतः ॥ २६ ॥ पश्चात्प्रतिग्रहं विप्रैः कर्त्तव्यमिति निश्चितम् ॥ समागमेषु विप्राणां न्यायान्यायविनिर्णये ॥ २७ ॥ निर्णयं हृदये धृत्वा तत्रस्थाञ्छ्रावयेद्द्विजान् ॥ केवलं धर्मबुद्ध्या च पक्षपातं विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ सर्वेषां संमतं कार्यं तद्व्यविकृतमेव च ॥ आकारितस्ततो विप्रः सभायां भयमेति चेत् ॥ २९ ॥ न तस्य वाक्यं श्रोतव्यं निर्णीतार्थविचारणे ॥ यस्य वर्जस्तु क्रियते मिलित्वा सर्ववाडवैः ॥ ३० ॥ अन्नपानादिकं सर्वं कार्यं तेन विवर्जयेत् ॥ तस्य कन्या न दातव्या तत्संसर्गी च तादृशः ॥ ३१ ॥ ततो दण्डं प्रकुर्वीत सर्वैरेव द्विजोत्तमैः ॥ भोजनं कन्यकादानमिति दाशरथेर्मतम् ॥ ३२ ॥ यत्किंचित्कुरुते पापं लघुस्थूलमथापि वा ॥ शुष्कार्द्रं वसते चान्ने तस्मादन्नं परित्यजेत् ॥ ३३ ॥ कुर्वंस्तत्पापभागी स्यात्तस्य दण्डो यथाविधि ॥ न्यायं न पश्यते यस्तु शक्तो सत्यां सदा यतः ॥ ३४ ॥ पापभागी स

सब कार्य वर्जित करै और उसको कन्या न देना चाहिये व उसका मेल करनेवाला भी वैसाही होताहै ॥ ३१ ॥ उसी कारण सब द्विजोत्तमों से दण्ड करना चाहिये और भोजन व कन्यादान करना चाहिये यह श्रीरामजी का सम्मत है ॥ ३२ ॥ और जो कुछ छोटा या बड़ा व सूखा या भीगा पाप मनुष्य करताहै वह सब उसके अन्न में बसता है इस कारण अन्न को त्याग देवै ॥ ३३ ॥ क्योंकि करता हुआ मनुष्य उसके पाप का भागी होता है और उसका विधिपूर्वक दण्ड करना चाहिये और शक्ति होने पर जो सदैव जिससे न्याय को नहीं देखता है ॥ ३४ ॥ उसी कारण वह पाप भागी जानने योग्य है यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है और जो दुष्टकर्मी

पापियों की घूस लेता है उनका सब पाप उसको होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और उसका अन्न व कन्या को भी कभी न ग्रहण करै व जो मनुष्य पुत्रों का भी हित करै ॥ ३६ ॥ वह इन सब नियमों को पालन करै इसमें सन्देह नहीं है ऐसा पत्र लिखकर वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर मनुष्य पाप न करैं ऐसा जानकर उन सबों ने न्यायधर्म को किया ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले कि कलियुग प्राप्त होने पर जिस लिये सब ब्राह्मण स्थान से भ्रष्ट होवेंगे उससे उत्कृष्ट पक्ष को ग्रहण करेंगे और पक्षपाती होवेंगे ॥ ३९ ॥ और म्लेच्छों के ग्राम कोलाविध्वंसियों से भोग किये जावेंगे और कलियुग में वे ब्राह्मण वेदोंसे भ्रष्ट

विज्ञेय इति सत्यं न संशयः ॥ उत्कोचं यस्तु गृह्णाति पापिनां दुष्टकर्मिणाम् ॥ सकलं च भवेत्तस्य पापं नैवात्र संशयः ॥ ३५ ॥ तस्यान्नं नैव गृह्णीयात् कन्यापि न कदाचन ॥ हितमाचरते यस्तु पुत्राणामपि वै नरः ॥ ३६ ॥ स एतान्नियमान्सर्वान्पालयेन्नात्र संशयः ॥ एवं पत्रं लिखित्वा तु वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे यथा पापं न कुर्वते ॥ इति ज्ञात्वा तु सर्वे ते न्यायधर्मं प्रचक्रिरे ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ कलौ प्राप्ते द्विजाः सर्वे स्थानभ्रष्टा यतस्ततः ॥ ग्रहीष्यन्त्युत्कलं पक्षं तथा स्युः पक्षपातिनः ॥ ३९ ॥ भोक्ष्यन्ते म्लेच्छकग्रामान्कोलाविध्वंसिभिः किल ॥ वेदभ्रष्टाश्च ते विप्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देशे देशे गमिष्यन्ति ते विप्रा वणिजस्तथा ॥ ज्ञायन्ते वै कथं सर्वैः केन चिह्नेन मारिष ॥ ४१ ॥ यस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना वाडवा ये महाबलाः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ज्ञायते गोत्रसंज्ञाऽथ केचिच्चैव पराक्रमैः ॥ यस्य यस्य च यत्कर्म तस्य तस्यावटङ्ककः ॥ ४३ ॥ अवटङ्कैर्हि ज्ञायन्ते

होवेंगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मारिष ! वे ब्राह्मण व वणिज् देश, देश में जावेंगे तो किस चिह्न से सबों से वे जानेजाते हैं ॥ ४१ ॥ जो कि बड़े बलवान् ब्राह्मण जिस गोत्र में उत्पन्न हैं ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले कि गोत्र की संज्ञा जानीजाती है और कोई ब्राह्मण पराक्रम से जानेजाते हैं और जिस जिसका जो कर्म है उस उसका वह अवटंक होताहै ॥ ४३ ॥ और अवटंकों से वे जानेजाते हैं और अन्यथा कभी नहीं जानेजाते हैं व हे नृपात्मज, राजन् ! गोत्रों से और प्रवरों तथा

अवटंकों से श्रेष्ठ मोढसंज्ञक ब्राह्मण जानेजाते हैं ॥ ४४ । ४५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि तुम्हारे मुख से गोत्रों और प्रवरों से ये सुने गये हैं व किस शाखा के वे पढ़ने वाले हैं हे पितामहजी ! उसको मुझसे कहिये ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि जहां तहां स्थित बड़े बलवान् माध्यंदिनी शाखावाले ब्राह्मण जानेजाते हैं और गुणों से संयुत कोई ब्राह्मण कौथमी शाखा के आश्रित होकर स्थित होते हैं ॥ ४७ ॥ व हे महामते ! ऋग्वेद व अथर्वण वेद से उपजी हुई वह शाखा नष्ट होगई है इस प्रकार धर्मारण्य में धर्म से उपजे हुए वे बड़े ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण पुत्रों व पौत्रों से संयुत हुए और बड़े ऐश्वर्यवान् सब शूद्र पुत्रों व पौत्रों से संयुत हुए ॥ ४८ । ४९ ॥

ज्ञायन्ते नान्यथा क्वचित् ॥ गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव अवटङ्कैर्नृपात्मज ॥ ४४ ॥ ज्ञायन्ते हि द्विजा राजन्मोढब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव श्रुता एते तवाननात् ॥ कां वा शाखामधीयानास्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ ज्ञायन्ते यत्र तत्रस्था माध्यन्दिनीया महाबलाः ॥ कौथमीं च समाश्रित्य केचिद्विप्रा गुणान्विताः ॥ ४७ ॥ ऋगथर्वणजा शाखा नष्टा सा च महामते ॥ एवं वै वर्तमानास्ते वाडवा धर्मसंभवाः ॥ ४८ ॥ धर्मारण्ये महाभागाः पुत्रपौत्रान्विताऽभवन् ॥ शूद्राः सर्वे महाभागाः पुत्रपौत्रसमावृताः ॥ ४९ ॥ धर्मारण्ये महातीर्थे सर्वे ते द्विजसेवकाः ॥ अभवन्रामभक्ताश्च रामाज्ञां पालयन्ति च ॥ ५० ॥ आज्ञामत्याऽऽदरेणेह हनूमन्तश्च वीर्यवान् ॥ पालयेत्सोऽपि चेदानीं संप्राप्ते वै कलौ युगे ॥ ५१ ॥ अदृष्टरूपी हनुमांस्तत्र भ्रमति नित्यशः ॥ त्रैविद्या वाडवा यत्र चातुर्विद्यास्तथैव च ॥ ५२ ॥ सभायामुपविष्टा येऽन्यायात्पापं प्रकुर्वते ॥ जयो हि न्यायकर्त्तॄणामजयोऽन्याय

व धर्मारण्य महातीर्थ में वे सब ब्राह्मणों के सेवक हुए और रामजी के भक्त वे श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करते हैं ॥ ५० ॥ और पराक्रमी हनुमान्जी बड़े आदर से आज्ञा को पालन करते हैं इस समय कलियुग प्राप्त होनेपर वे ॥ ५१ ॥ हनुमान्जी अदृष्टरूप होकर वहां नित्य घूमते हैं और जिस कलियुग में त्रैविद्य व चातुर्विद्य ब्राह्मण ॥ ५२ ॥ जो सभा में बैठे हैं वे अन्याय से पापको करते हैं न्याय करनेवालों की जय होती है व अन्याय करनेवालों की पराजय

होती है ॥ ५३ ॥ और अपराध समेत पुत्र, पिता व भाई में जो पक्षपात करता है उसके ऊपर हनुमान्‌जी क्रोधित होते हैं ॥ ५४ ॥ और ये क्रोधित हनुमान्‌जी धन का नाश करते हैं व पुत्रनाश करते हैं और घर को नाश करतेहैं ॥ ५५ ॥ और सेवाके लिये बनाया हुआ जो शूद्र ब्राह्मणों की सेवा नहीं करता है व जो जीविकाको नहीं देता है उसके ऊपर हनुमान्‌जी क्रोधित होते हैं ॥ ५६ ॥ व श्रीरामजी का वचन स्मरण करते हुए हनुमान्‌जी धननाश, पुत्रनाश व स्थाननाश करते हैं ॥ ५७ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्रीरामजी की प्रसन्नता से जहां कहीं भी स्थित वे ब्राह्मण या शूद्र धनहीन नहीं होते हैं ॥ ५८ ॥ और जो मूर्ख व अधर्मी पाप और पाषण्डमें स्थित होकर अपने

कारिणाम् ॥ ५३ ॥ सापराधे यस्तु पुत्रे ताते भ्रातरि चापि वा ॥ पक्षपातं प्रकुर्वीत तस्य कुप्यति वायुजः ॥ ५४ ॥ कुपितो हनुमानेष धननाशं करोति वै ॥ पुत्रनाशं करोत्येव धामनाशं तथैव च ॥ ५५ ॥ सेवार्थं निर्मितः शूद्रो न विप्रान्परिषेवते ॥ वृत्तिं वा न ददात्येव हनुमांस्तस्य कुप्यति ॥ ५६ ॥ अर्थनाशं पुत्रनाशं स्थाननाशं महाभयम् ॥ कुरुते वायुपुत्रो हि रामवाक्यमनुस्मरन् ॥ ५७ ॥ यत्र कुत्र स्थिता विप्राः शूद्रा वा नृपसत्तम ॥ न निर्द्धना भवेयुस्ते प्रसादाद्राघवस्य च ॥ ५८ ॥ यो मूढश्चाप्यधर्मात्मा पापपाषण्डमाश्रितः ॥ निजान्विप्रान्परित्यज्य परज्ञातींश्च मन्यते ॥ ५९ ॥ तस्य पूर्वकृतं पुण्यं भस्मीभवति नान्यथा ॥ अन्येषां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ६० ॥ वृथा भवति वै पूर्वं ब्रह्मविष्णुशिवैः स्मृतम् ॥ तस्य देवा न गृह्णन्ति हव्यं कव्यं च पूर्वजाः ॥ ६१ ॥ वञ्चयित्वा निजान्विप्रानन्येभ्यः प्रददेत्तु यः ॥ तस्य जन्मार्जितं पुण्यं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ६२ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव पूजिता ये

ब्राह्मणों को छोड़कर पराये कुटुम्बों को मानता है ॥ ५९ ॥ उसका पहले किया हुआ पुण्य भस्म होजाता है अन्यथा नहीं होता है और अन्य लोगों को थोड़ा या बहुत जो दान दियाजाता है ॥ ६० ॥ वह वृथा होजाता है ऐसा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया है और पूर्वज पितरलोग उसके हव्य व कव्य को नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ६१ ॥ और अपने ब्राह्मणों को छलकर जो अन्यलोगोंके लिये दान देता है उसका जन्म में इकट्ठा कियाहुआ पुण्य उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ६२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु

व शिवजी से जो ब्राह्मण पूजेगये हैं उनसे जो विमुख होते हैं वे रौरव नरक में बसते हैं ॥ ६३ ॥ और जो चंचलता से कुल का आचार व गोत्र का आचार लोप करता है और जो मोहित मनुष्य अपने आचार को नहीं करता है ॥ ६४ ॥ उसका सब नाश होजाता है और उसी क्षण भस्म होजाता है इस लिये सब कुल का आचार व स्थान का आचार ॥ ६५ ॥ और गोत्र का आचार धन के अनुसार पालन करनेयोग्य है हे राजन् ! इसप्रकार तुमसे प्राचीन धर्मारण्य कहागया ॥ ६६ ॥ सतयुग में ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से धर्मारण्य स्थापित कियागया है और त्रेता में सत्यमन्दिर व द्वापर में वेदभवन और कलियुग में मोहेरक कहागया है ॥ ६७ ॥ ब्रह्माजी बोले

द्विजोत्तमाः ॥ तेषां ये विमुखाः शूद्रा रौरवे निवसन्ति ते ॥ ६३ ॥ यो लौल्याच्च कुलाचारं गोत्राचारं प्रलोपयेत् ॥ स्वाचारं यो न कुर्वीत कदाचिद्वै विमोहितः ॥ ६४ ॥ सर्वनाशो भवेत्तस्य भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ तस्मात्सर्वैः कुलाचारः स्थानाचारस्तथैव च ॥ ६५ ॥ गोत्राचारः पालनीयो यथावित्तानुसारतः ॥ एवं ते कथितं राजन्धर्मारण्यं पुरातनम् ॥ ६६ ॥ स्थापितं देवदेवैश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥ द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम् ॥ ६७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ य इदं शृणुयात्पुत्र श्रद्धया परया युतः ॥ धर्मारण्यस्य माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ६८ ॥ मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति श्रवणात्कीर्तनात्सकृत् ॥ ६९ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसंतानदायकम् ॥ माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्याप्तये नरः ॥ ७० ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वक्षेत्रेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति धर्मारण्यस्य सेवनात् ॥ ७१ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मारण्यस्य

कि हे पुत्र ! बड़ी श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य सब पातकों को नाशनेवाले धर्मारण्य के इस माहात्म्य को सुनता है ॥ ६८ ॥ उसका मन, वचन व शरीर से उपजाहुआ जो तीन प्रकार का पाप होता है वह सब एक बार सुनने व कहने से नाश को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ हे वत्स ! धनदायक व यशदायक तथा सुख व संतान को देनेवाले माहात्म्यको सब सुखों के मिलने के लिये मनुष्य सुनै ॥ ७० ॥ सब तीर्थों में जो पुण्य होता है व सब क्षेत्रों में जो फल होता है उस फलको मनुष्य धर्मारण्य के सेवन से प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ नारदजी बोले कि धर्मारण्य का जो माहात्म्य है वह तुम्हारे मुख से सुनागया और जहां धर्मबावली में धर्मराज ने कठिन

तप कियाहै ॥ ७२ ॥ उस क्षेत्र की महिमा को मैंने तुमसे सुना तुम्हारा कल्याण होवै मैं धर्मारण्य को देखने की इच्छा से जाऊंगा ॥ ७३ ॥ हे चतुर्मुख ! तुम्हारे वचनरूपी जलके प्रवाह से मैं पवित्र होगया ॥ ७४ ॥ व्यासजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! यह सब कथानक कहागया जिसको सुनकर मनुष्य गोसहस्र का फल पाता है ॥ ७५ ॥ और पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनवान् होता है और रोगी रोग से छूटजाता है व बँधुवा मनुष्य बन्धन से छूटजाता है ॥ ७६ ॥ और विद्यार्थी कर्म को साधन करनेवाली उत्तम विद्या को पाता है और उसको तीर्थयात्रा का फल होता है व करोड़ कन्यादान के फल को पाता है ॥ ७७ ॥ व हे नरोत्तम ! जो स्त्री या

माहात्म्यं यच्छ्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥ धर्मवाप्यां यत्र धर्म्मस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ७२ ॥ तस्य क्षेत्रस्य महिमा मया त्वत्तोऽवधारितः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि धर्मारण्यदिदृक्षया ॥ ७३ ॥ तव वाक्यजलौघेन पावितोऽहं चतुर्मुख ॥ ७४ ॥ व्यास उवाच ॥ इदमाख्यानकं सर्वं कथितं पाण्डुनन्दन ॥ यच्छ्रुत्वा गोसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्द्धनो धनवान्भवेत् ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ७६ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यामुत्तमां कर्मसाधनाम् ॥ तीर्थयात्राफलं तस्य कोटिकन्याफलं लभेत् ॥ ७७ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वाथ नरोत्तम ॥ निरयं नैव पश्येत्स एकोत्तरशतैः सह ॥ ७८ ॥ शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिभिस्तथा ॥ पुराणपुस्तकं राजन्प्रयतः शिष्टसंमतः ॥ ७९ ॥ अर्चयेच्च यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक् ॥ समाप्तौ नृप ग्रन्थस्य वाचकस्यानुपूजनम् ॥ ८० ॥ दानादिभिर्यथान्यायं सम्पूर्णफलहेतवे ॥ मुद्रिकां कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं हिरण्मयम् ॥ ८१ ॥ वस्त्राणि च विचित्राणि गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ देववत्पूजनं कृत्वा गां च दद्यात्पय

पुरुष भक्ति से इसको सुनता है वह एक सौ एक पुश्तियों समेत नरक को नहीं देखता है ॥ ७८ ॥ व हे राजन् ! सज्जनों से संमत पवित्र मनुष्य पुराण की पुस्तक को उत्तम स्थान में धरकर रेशमी वस्त्रादिकों से ॥ ७९ ॥ और अलग २ चन्दन व मालाओं से यथायोग्य पूजन करै व हे राजन् ! ग्रंथ की समाप्ति में बांचनेवाले को पूजै ॥ ८० ॥ और संपूर्ण फल के लिये यथायोग्य दानादिकों से पूजै और मुंदरी व कुंडल और सुवर्ण का यज्ञोपवीत देवै ॥ ८१ ॥ और विचित्र वस्त्रों को देवै व चन्दन,

माला और अनुलेपनों से देवता के समान पूजन कर दूधवाली गऊ को देवै ॥ ८२ ॥ इस प्रकार विधि से धर्मारण्य की कथा को सुनकर मनुष्य धर्मारण्य के निवास का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांधर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वक धर्मारण्यश्रवणमाहात्म्यवर्णनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्विनीम् ॥ ८२ ॥ एवं विधानतः श्रुत्वा धर्मारण्यकथानकम् ॥ धर्मारण्यनिवासस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये धर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वकधर्मारण्य श्रवणमाहात्म्यवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति धर्मारण्यमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

दो० । श्रीगणेश के पदकमल, युग को करिकै ध्यान । धर्मारण्यमहात्मकर, तिलक कियो सुखदान ॥ १ ॥

पढ़ै सुनै प्रत्येक दिन, जो याको चित लाय । ताकोधनअरुधान्यसब, मिलत बहुत सरसाय ॥ २ ॥

प्रथम बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेख़ाने में छपा ॥